NORTH-WEST FRONTIER POLICY
OF THE
SULTANS OF DELHI AND AGRA

Thesis Submitted for the Degree of
DOCTOR OF PHILOSOPHY

By
DILIP KUMAR DWIVEDI

Under the Supervision of:
Dr. P. L. VISHWAKARMA

DEPARTMENT OF MED./MOD. HISTORY
University of Allahabad
Allahabad
1990

प्राक्कथन

पूर्व मध्य युगीन भारत के इतिहास में उत्तर-पश्चिमी सीमान्त समस्या का विशेष महत्व है क्यों कि दिल्ली सल्तनत की आन्तरिक एवं वाह्य नीति पर इस समस्या का गम्भीर प्रभाव पड़ा । उत्तर-पश्चिमी सीमान्त भारत की भौगोलिक स्थिति एवं अपनी भौतिक संरचना के कारण तीन दृष्टियों से विस्फोटक था । प्रथम मध्य युग में जब आवागमन के आधुनिक वैज्ञानिक साधन नहीं थे, भारत पर केवल उत्तर-पश्चिमी कोने से ही वाह्य आक्रमण हो सकता था । पूर्वी हिमालय तथा आसाम की पहाड़ियों से होकर भी वाह्य आक्रमणकारियों को मार्ग मिल सकता था । किन्तु उस काल में आक्रमणकारी सेना के लिए उन्हें पार करना असंभव था । यही कारण था कि प्राचीन तथा मध्य युग के विदेशी आक्रमणकारियों ने हमारे देश में उत्तर-पश्चिमी ओर से ही आक्रमण किया । द्वितीय, विद्रोही सरदारों के लिए उत्तरी-पश्चिमी सीमा प्रान्त शरणस्थली की भाँति था । यहाँ उन्हें मध्य एशिया तथा पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त की लड़ाकू जनजातियों से मदद भी मिल जाती थी । तृतीय, पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त पर निवासित जनजातियाँ दिल्ली सुल्तानों को विदेशी समझती थीं तथा उनके विरूद्ध सरदारों एवं वाह्य आक्रमणकारियों की मदद किया करती थीं । ये जनजातियाँ स्वयं भी सल्तनत के भीतरी भागों तक लूटमार किया करती थीं । अतः ऐसी परिस्थिति में उत्तर-पश्चिमी सीमान्त की सुरक्षा करना दिल्ली सुल्तानों की महत्वपूर्ण समस्या एवं नीति बन गई ।

जिन उदारचेता विद्वज्जन एवं सुधी सहयोगियों की सहायता से सम्प्रति यह कृति इस रूप में प्रस्तुत हो सकी, उनका उल्लेख करना मैं अपना पावन कर्त्तव्य समझता हूँ ।

सर्वप्रथम मैं इस शोध प्रबन्ध के पर्यवेक्षक श्रद्धेय डॉ॰पी॰एल॰विश्वकर्मा, प्रवक्ता, मध्य/आधुनिक इतिहास विभाग,इलाहाबाद विश्व विद्यालय के प्रति अत्यधिक आभारी हूँ, जिनकी हार्दिक सत्प्रेरणा एवं अनवरत सक्रिय सहायता से

ही यह कार्य सम्पन्न हो सका ।

शोधकार्य से सम्बन्धित बहुमूल्य सुझावों के लिए मैं अपने परम श्रद्धेय गुरूवर्य प्रो॰ राधेश्याम, अध्यक्ष, मध्य/आधुनिक इतिहास विभाग, इलाहाबाद विश्व विद्यालय के प्रति अत्यधिक उपकृत हूँ । जिन्होंने अत्यधिक व्यस्तताओं के बावजूद भी अपना बहुमूल्य समय देकर इस शोध प्रबन्ध के कलेवर में श्री वृद्धि किया ।

पूज्य गुरूदेव प्रो॰ सी0बी0 त्रिपाठी भूतपूर्व अध्यक्ष, मध्य/आधुनिक इतिहास विभाग, इलाहाबाद विश्व विद्यालय का मैं विशेष रूप से आभारी हूँ । जिन्होंने अपना बहुमूल्य समय देकर शोधकार्य में सक्रिय सहयोग प्रदान किया । इसके अतिरिक्त विभाग के समस्त श्रद्धेय गुरूजन मेरी चेतसिक श्रद्धा एवं विनीत आत्म निवेदन के अधिकारी हैं जिन्होंने वस्तुतः मुझे इस कार्य के योग्य बनाया ।
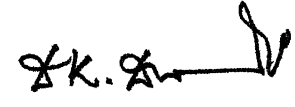
मैं अपने परम शुभ चिन्तक डॉ॰ हर्ष देव सिंह प्राचार्य, इलाहाबाद डिग्री कालेज, इलाहाबाद के प्रति अपना आभार प्रकट करता हूँ, जिन्होंने सदैव मुझे इस कार्य के लिए प्रोत्साहित किया । साथ ही महाविद्यालय के अपने वरिष्ठ सहयोगियों डॉ॰ रामनिहोर पाण्डेय, प्रवक्ता, प्राचीन इतिहास, डॉ॰ एस॰डी॰ मौर्य, प्रवक्ता, भूगोल विभाग, डॉ॰ विभाकर डबराल, प्रवक्ता, अंग्रेजी विभाग एवं ईश्वर शरण डिग्री कालेज की डॉ॰ श्रीमती गायत्री सिंह गहलौत, प्रवक्ता मध्य कालीनइतिहास विभाग के प्रति आभारी हूँ, जो मुझे शोधकार्य के लिए सतत् प्रोत्साहन देते रहे हैं ।

शोध कार्य सम्पन्न होने में मेरे परिवारजनों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है जिनके लिए धन्यवाद ज्ञापित करना तुच्छ सा प्रतीत होता है ।

मैं॰ अपने अभिन्न सुधी मित्रों डॉ॰ उमाकान्त शुक्ल, प्रवक्ता, दर्शन विभाग, इलाहाबाद डिग्री कालेज, श्री तारकेश्वर प्रसाद त्रिपाठी, श्री धीरेन्द्र बहादुर सिंह, श्री अखिलेश जायसवाल इत्यादि को विस्मृत नहीं कर सकता, जिनका साहचर्य विश्व विद्यालयीय विद्यार्थी जीवन से आज तक प्रिय रहा है ।

शोध प्रबन्ध के प्रणयन में विभाग के वरिष्ठ लिपिक श्री जगदीश प्रसाद मिश्र एवं विश्व विद्यालय पुस्तकालय के कर्मचारियों ने भी पर्याप्त सहायता की अत एवं इन सभी के प्रति भी मैं आभारी हूँ । साथ ही इस शोध प्रबन्ध के टंकण के लिए मैं श्री "प्रदीप कुमार श्रीवास्तव" को धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ जिन्होंने पूर्ण तन्मयता से अत्यल्प समय में यह कार्य समाप्त किया ।

D.K. Dwivedi

मार्च: 1990

दिलीप कुमार द्विवेदी

विषय-अनुक्रमणिका

भूमिका

भारत की भौगोलिक स्थिति ने उसकी उत्तरी-पश्चिमी सीमा को भारतीय इतिहास में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान प्रदान किया है । भारत के दक्षिण, दक्षिण-पूर्व तथा दक्षिण-पश्चिम में हिन्द महासागर, बंगाल की खाड़ी तथा अरब सागर हैं । इसी प्रकार उत्तर-पूर्व में भी भारत पर्वत श्रेणियों से घिरा है, जो आसाम से अन्तरीप तक विस्तृत है, ये पहाड़ियां पटकोई या पटकाई के नाम से विख्यात हैं । यद्यपि इन पहाड़ियों के मध्य भी कुछ दर्रे एवं घाटियाँ हैं,परन्तु ये दर्रे सघन वनों एवं तीव्रगामी प्रवाहित होने वाली नदियों से सर्वदा अवरूद्ध रहते हैं । अत: आवश्यकता पड़ने पर उधर से भागना मौत के मुँह में जाने के समान था । सम्भवत: यही कारण है कि भारत पर उत्तर-पूर्व से आक्रमण नहीं हुए ।

भारत का पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त उत्तर में हिमालय पर्वत और उत्तर-पश्चिम में हिन्दूकुश, सुलेमान एवं किरथर की पहाड़ियों से घिरा हुआ है । पश्चिमोत्तर सीमान्त क्षेत्र का मध्य एवं दक्षिणी भाग मैदानी है जिसे "सिन्ध बेसिन" कहते हैं क्योंकि इस पर सिन्ध एवं उसकी पाँच सहायक नदियाँ प्रवाहित है । मध्य एशिया से भारत आने वाला मार्ग इन्ही पहाड़ियों से होकर था । उन दिनों सुलेमान के उस पार से आगे का साधारण मार्ग न तो प्रसिद्ध खैबर दर्रे से था और न दक्षिण में स्थित बोलन दर्रे से था बल्कि गोमल दर्रे से था जो डेरा इस्माइल खाँ को जाता था और वहाँ से सिन्ध सागर दोआब को । खैबर, बोलन और कम सुगम कुर्रम तथा तोची दर्रों का उतना इस्तेमाल नहीं होता था जितना गोमल दर्रे का ।

जब कभी भी मध्य एशिया में राजनैतिक उथल-पुथल हुआ उसका प्रभाव भारत की उत्तरी-पश्चिमी सीमा पर भी पड़ा । आदि युग से लेकर मध्य-युग तक आक्रमणकारी उत्तर-पश्चिम की ओर से ही भारत में प्रवेश किए । इनमें आर्य, ईरानी, यूनानी, शक, कुषाण, हूण, अरब, तुर्क एवं मंगोल प्रमुख हैं ।

मध्य एशिया ने भारतीय राजनीति को अत्यधिक प्रभावित किया । जब तक गोर अफगानिस्तान में एक शक्तिशाली राज्य था तब तक दिल्ली का राज्य सुरक्षित था किन्तु जब गजनी का विलय ख्वारिज्म साम्राज्य में हो गया तो उसकी पूर्वी सीमा सिन्ध नदी को स्पर्श करने लगी । ऐसी परिस्थिति में दिल्ली सुल्तनत की सुरक्षा प्रत्यक्ष संकट में पड़ गई । लगभग इसी समय मध्य एशिया में मंगोलों का उदय हुआ । चंगेज खाँ ने मंगोलों को संगठित किया तथा उन्हें कुशल योद्धा बना कर उसने विशाल साम्राज्य की स्थापना की । धीरे-धीरे मंगोलों ने अपने साम्राज्य को अत्यधिक विस्तृत कर लिया और एशिया के पूरे नक्शे को बदल डाला । भारत भी इन मंगोलों की साम्राज्य-लिप्सा का शिकार हुआ ।

उत्तरी-पश्चिमी सीमा समस्या का द्वितीय पक्ष उन पर्वतीय जन-जातियों का नियन्त्रण था जो काश्मीर से समुद्रतट तक विस्तृत स्थल की पहाड़ी पट्टी में विकसित थी । इस क्षेत्र से हो कर ही सभी प्रमुख दर्रे गुजरते थे । सिन्ध सागर दोआब में नमक की पहाड़ियों के चारों ओर मध्य युग के प्रारम्भ में खोकर, अवान, जनजूह, युसुफजई एवं दिलजाक आदि अनेक उद्दण्ड एवं लड़ाकू जातियां रहती थी । इन जातियों की राजनैतिक अस्थिरता एवं झेलम तथा चिनाव घाटियों की इनकी आवर्ती लूटपाट से समस्या और अधिक जटिल हो जाती थी । ये जातियाँ दिल्ली सुल्तानों को विदेशी समझती थी तथा आक्रमणकारियों का पथ-प्रदर्शन तथा उनके साथ मिलकर लूटपाट किया करती थी ।

पश्चिमोत्तर सीमा के माध्यम से ही भारत का मध्य एशिया तथा उसके निकटवर्त्ती भागों से व्यापारिक एवं सांस्कृतिक आदान-प्रदान तथा विदेशी आक्रमण होते रहे हैं । मंगोलों के उत्पात के कारण मध्य एशिया से भाग कर आए हुए राजकुमारों, विद्वानों, कलाकारों तथा राजकर्मचारियों के लिए दिल्ली सुल्तनत शरणस्थली बन गई थी । इन आगन्तुकों ने सल्तनत को अपनी सांस्कृतिक विशेषताओं से परिचित कराया और प्राचीन तथा मुस्लिम संस्कृतियों के आपस में सम्मेलन से एक नवीन संस्कृति का जन्म हुआ जिसे विद्वान इण्डो-मुस्लिम संस्कृति के नाम से जानते हैं । दूसरी ओर उत्तरी-पश्चिमी सीमा समस्या ने न केवल सुल्तानों की राजनैतिक, आर्थिक, प्रशासनिक एवं सांस्कृतिक नीतियों को ही प्रभावित किया बल्कि सल्तनत

को बुरी तरह अस्थिर भी रखा । मात्र तीन शताब्दी के अन्दर ही सल्तनत के सिंहासन पर पाँच वंशों का शासन हुआ ।

इस प्रकार उत्तर-पश्चिमी सीमा की सुरक्षा एवं व्यवस्था दिल्ली एवं आगरा सुल्तानों की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण समस्या थी । इस समस्या के समाधानार्थ विभिन्न सुल्तानों ने भिन्न-भिन्न नीतियों का आश्रय लिया ।

इस विषय पर गहन अध्ययन करने की आवश्यकता से इन्कार नहीं किया जा सकता हैं क्योंकि सल्तनत काल का इतिहास अधिकांशत: इस समस्या से राजनीति ही नहीं बल्कि आर्थिक, धार्मिक व सांस्कृतिक क्षेत्रों में भी गम्भीर रूप से प्रभावित होता रहा । इस क्षेत्र से होने वाले आक्रमणों ने अंतत: सल्तनत का ही अन्त कर दिया । उत्तरी-पश्चिमी सीमा समस्या की जटिलता और सुल्तानों की इस समस्या से निपटने की नीतियों पर समग्र रूप से प्रकाश डालते हुए कोई यथेष्ट शोध प्रबन्ध अभी तक नहीं था । शोध कर्ताओं में एक डॉ० पी०एल० श्रीवास्तव के निकट अतीत में इस विषय का आंशिक अध्ययन किया है । इस विषय पर पिछले सात वर्षों से मैंने गहन अध्ययन किया है और सभी समकालीन आवश्यक स्त्रोतों पर आधारित करके एवं परवर्त्ती स्त्रोतों से भी उसका परीक्षण करके प्रस्तुत शोध प्रबन्ध तैयार किया है,।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध को मैंने आठ अध्यायों में विभक्त किया है । प्रथम अध्याय के अन्तर्गत सल्तनतकालीन उत्तरी-पश्चिमी सीमा प्रान्त की भौगोलिक स्थिति का विस्तृत विवेचन किया गया है । पश्चिमोत्तर प्रान्तों की जलवायु एवं भौतिक संरचना के साथ ही साथ उन महत्त्वपूर्ण दर्रों का उल्लेख है जिनसे हो कर आक्रमणकारी सुल्तनत पर आक्रमण करते रहे । इस अध्याय में ही पश्चिमोत्तर सीमा से होने वाले आक्रमणों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का तथा तत्कालीन सम्राटों एवं शासकों की नीतियों का भी विवेचन किया गया है ।

द्वितीय अध्याय के अन्तर्गत मध्य एशिया के इतिहास का संक्षिप्त विवेचन किया गया है। पूर्व मध्य युग में मध्य एशिया में दो विशेष शक्तियों का उदय

हुआ- तुर्क एवं मंगोल । तुर्कों की भी कई शाखाएं थी जो प्रभुता के लिए आपस में संघर्षरत थी । मध्य एशिया के इतिहास की सर्वाधिक महत्वपूर्ण बात गोरखान, ख्वारिज्म तथा गोर राज्य का उत्थान तथा खुरासान राज्य के लिए उनका अन्तिम संघर्ष था । मंगोलों का उत्कर्ष भी मध्य एशिया के इतिहास की दूसरी महत्वपूर्ण विशेषता थी । मंगोलों का सर्वाधिक उत्कर्ष चंगेज खाँ के समय हुआ और उसने अपनी विजयों के माध्यमसे लगभग पूरे यूरोप का नक्शा ही बदल डाला । मध्य एशिया की इन राजनैतिक गतिविधियों ने सल्तनत को बुरी तरह प्रभावित किया ।

तृतीय अध्याय के अन्तर्गत मामलुक वंश के सुल्तानों की उत्तरी-पश्चिमी सीमा नीति का विवेचन किया गया है । यह वंश 1206 ई0 से लेकर 1290 ई0 तक रहा तथा इस वंश के कई सुल्तानों ने सल्तनत की गद्दी को सुशोभित किया । इनमें कुतुबुद्दीन ऐबक, इल्तुतमिश, बलबन का नाम प्रमुख है । इन सुल्तानों के अतिरिक्त कई अन्य अल्पकालीन सुल्तान भी हुए । मामलुक वंश के सुल्तानों के काल में पश्चिमोत्तर से होने वाले आक्रमणों के साथ ही पश्चिमोत्तर प्रान्त में नियुक्त महत्वाकांक्षी इक्तादारों के विद्रोहों का भी विस्तृत विवेचन किया गया है । साथ ही साथ पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त में निवासित लड़ाकू जन-जातियों की लूटों एवं तबाहियों का भी विवेचन किया गया है मामलुक वंश के सुल्तानों की उत्तरी-पश्चिमी सीमा नीति का मूल्यांकन करते हुए इल्तुतमिश एवं बलबन की नीतियों के अन्तर को भी स्पष्ट किया गया है ।

चतुर्थ अध्याय के अन्तर्गत खल्जी सुल्तानों की पश्चिमोत्तर सीमा नीति का विवेचन किया गया है । खल्जी सुल्तानों का काल 1290 ई0 से लेकर 1320 ई0 तक रहा । इस वंश के सुल्तानों के काल में सल्तनत पर होने वाले मंगोलों के भयंकर आक्रमणों के साथ ही उनके सल्तनत के प्रति बदले हुए दृष्टिकोण का भी विश्लेषण हुआ है । खल्जी सुल्तानों की पश्चिमोत्तर सीमा नीति का विवेचन करते हुए बलबन एवं अलाउद्दीन खल्जी की नीतियों में अन्तर को भी स्पष्ट किया गया है । साथ ही पश्चिमोत्तर सीमा को सुदृढ़ करने के लिए अलाउद्दीन खल्जी द्वारा किए गए प्रयत्नों का भी विवेचन किया गया है ।

पंचम अध्याय में तुगलक सुल्तानों की पश्चिमोत्तर सीमा नीति का विवेचन किया गया है । तुगलक सुल्तानों का काल 1320 ई० से 1414 ई० तक रहा । तुगलक वंश की स्थापना उत्तरी-पश्चिमी समस्या की ही उपज थी । अतः उनकी उत्पत्ति का भी विवेचन किया गया है । तुगलक काल में हुए शेर मुगल तथा तरमाशीरी के विवादास्पद आक्रमण का वर्णन करते हुए मुहम्मद तुगलक एवं मंगोलों के सम्बन्धों पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है । इस काल में पश्चिमोत्तर प्रान्तों में नियुक्त इक्तादारों के विद्रोहों का एवं सुल्तानों द्वारा उनके दमन के लिए किए गए प्रयासों का विवेचन किया गया है । प्रस्तुत अध्याय में ही ईरान के शासक तैमूर लंग की मध्य एशियाई स्थिति एवं सल्तनत पर उसके आक्रमण, तबाही एवं वापसी का विस्तृत विवेचन किया गया है ।

छठे अध्याय के अन्तर्गत सैयूयद एवं लोदी सुल्तानों की उत्तरी-पश्चिमी सीमा समस्या एवं सुल्तानों की इसके प्रति नीति का विस्तृत विवेचन किया गया है । सैयूयदों एवं लोदियों ने उत्तरी-पश्चिमी सीमा समस्या का लाभ उठा कर अपने वंश की स्थापना की थी । अतः उनकी उत्पत्ति एवं साम्राज्य की संस्थापना का भी विवेचन किया गया है । इस वंश के अन्तर्गत पश्चिमोत्तर सीमा समस्या का स्वरूप आक्रमणात्मक न होकर विद्रोहात्मक अधिक है । पश्चिमोत्तर प्रान्तों में नियुक्त इक्तादारों के विद्रोहों के साथ ही साथ लड़ाकू जनजातियों विशेषकर गक्खर जनजाति के विद्रोह का विवेचन प्रस्तुत किया गया है । लोदी सुल्तानों के राजत्व सिद्धान्त ने पश्चिमोत्तर सीमा समस्या को और बढ़ाया अतः उनके राजत्व सिद्धान्त का भी विवेचन किया गया है । अंततः मुगल सम्राट बाबर के आक्रमणों एवं उसके द्वारा मुगल साम्राज्य की स्थापना के साथ ही लोदी सुल्तानों की उत्तर-पश्चिम सीमा नीति का समीक्षात्मक विवेचन किया गया है ।

सातवें एवं आठवें अध्याय के अन्तर्गत क्रमशः उत्तरी-पश्चिमी सीमा समस्या से उत्पन्न परिस्थितियों का सल्तनत पर प्रभाव एवं सुल्तानों की नीतियों का समीक्षात्मक विवेचन प्रस्तुत किया गया है । इस समस्या के विध्वंसात्मक प्रभावों

के साथ ही साथ रचनात्मक प्रभावों का भी उल्लेख हुआ है । आठवें अध्याय में सल्तनत के पाँचों वंशों के सुल्तानों की उत्तरी-पश्चिमी सीमा नीति की समीक्षा हुई है ।

शोध प्रबन्ध के अन्त में पश्चिमोत्तर प्रान्तों में नियुक्त गर्वनरों की सूची दी गई है तथा संलग्न मानचित्रों के माध्यम से उन दर्रों को दर्शाया गया है जिनसे हो कर आक्रमणकारियों का आगमन संभव हो सका था । अन्त में शोध प्रबन्ध में प्रयुक्त एवं उपयोगी ग्रंथों की सूची भी संलग्न की गई है ।

अध्याय -1 पृष्ठभूमि

(क) सल्तनत् काल मे उत्तरी-पश्चिमी सीमा की भौगोलिक स्थिति ।

(ख) उत्तरी - पश्चिमी सीमा पर होने वाले आक्रमणों की ऐतिहासिक पृष्ठ-भूमि ।

अध्याय- 1

(क)

सल्तनत काल में उत्तरी-पश्चिमी सीमा की भौगोलिक स्थिति

मनुष्य और प्रकृति का अभिन्न सम्बन्ध है । प्रत्येक मानवीय क्रियाओं पर वहाँ की प्राकृतिक दशाओं का प्रभाव होता है । इसी प्रकार ऐतिहासिक घटनाएँ भी भौगोलिक दशाओं पर अवलम्बित होती हैं । मनुष्य अपनी परिस्थितियों की उपज कहा गया है अतएवं भौगोलिक परिस्थितियों का उसके जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ता है । भौगोलिक परिस्थितियों का तात्पर्य है कि उस देश की सीमा कैसी है, उसका विस्तार कैसा है, उसकी भू-रचना कैसी है, उसमें कौन-कौन से खनिज पदार्थ पाये जाते हैं, वहाँ की जलवायु कैसी है, वहाँ के पर्वतों तथा नदियों की स्थिति कैसी है, इन सब का प्रभाव वहाँ के लोगों की राजनीतिक तथा सांस्कृतिक स्थिति पर पड़ता है । इतिहास पर भौगोलिक प्रभाव का आकलन करते हुए सर यदुनाथ सरकार ने लिखा है, भारत का इतिहास यहाँ की भौगोलिक स्थिति से सदैव प्रभावित होता रहा है ।[1] पनिंकर महोदय ने "ए सर्वे आफ इण्डियन हिस्ट्री" में लिखा है कि भारतीय इतिहास पर उसके भूगोल, उसकी भू-रचना तथा वहाँ के पर्वतों एवं नदियों का अत्यन्त अधिक एवं महत्वपूर्ण प्रभाव रहा है ।[2] पनिंकर ने एक अन्य ग्रंथ में लिखा है कि भूगोल प्रत्येक राष्ट्र को स्थाई आधार प्रदान करता है साथ ही वह मनुष्य के विकास को निर्धारण करने वाले कारकों में प्रमुख स्थान रखता है ।[3]

1- सरकार यदुनाथ: युग-युगीन भारत, पृ. 13-14-15 हेग, डब्लू.: कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया, भाग- 1, पृष्ठ- 28,30,

2- पनिंकर के0 एम0: ए सर्वे आफ इण्डियन हिस्ट्री, पृ0- 1

3- पनिंकर के0 एम0: जियोग्राफिकल फैक्टर्स इन इण्डियन हिस्ट्री, पृ. -1

किसी देश की सीमा का उसके इतिहास पर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ता है । यदि उसकी अपनी निश्चित प्राकृतिक सीमाएं होती हैं तो पड़ोस के देशों से वह पृथक हो जाता है और स्वतन्त्र रूप से अपनी सभ्यता तथा संस्कृति का विकास करता है । डी0 पी0 सरन के अनुसार यदि कोई ऐसा देश है, जिसका इतिहास किसी अन्य भौगोलिक कारक की अपेक्षा सर्वाधिक अपनी सीमाओं द्वारा प्रभावित होता रहा है तो उसमें भारत का नाम प्रमुख है ।[1] पर्वतों का भी इतिहास पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है । यदि कोई देश चारों ओर से पर्वत मालाओं से घिरा रहता है तो वह अपने पड़ोसी देशों से स्वतन्त्र अपनी सभ्यता तथा संस्कृति का विकास करता है । ऐसे समय में जब गमनागमन के अत्याधुनिक साधन विकसित नहीं हुए थे तथा पर्वतमालाएँ देश की सुरक्षा प्रहरी का कार्य करती थीं ।[2] पर्वतीय प्रदेश की जलवायु अत्यधिक ठंडी होने के कारण वहाँ के लोग वीर, साहसी तथा युद्धप्रिय हो जाते हैं और अपने शत्रुओं का सफलता पूर्वक सामना कर सकते हैं । इस प्रकार इतिहास पर भौगोलिक प्रभाव को देखते हुए, दिल्ली एवं आगरा सुल्तानों की उत्तरी-पश्चिमी सीमा नीति के संदर्भ में, पश्चिमोत्तर सीमांत की भौगोलिक दशाओं का संक्षिप्त विवरण प्रेक्षणीय है ।

भारत एक अत्यन्त विशाल देश है । क्षेत्रफल की दृष्टि से विश्व में इसका सातवाँ स्थान है ।[3] यह पूर्णतया उत्तरी गोलार्द्ध में स्थित है । इसकी मुख्य भूमि $8^{0}4'$ और $37^{0}6'$ उत्तरी अक्षांश और $68^{0}7'$ और $97^{0}25'$ पूर्वी देशांतर के बीच फैली हुई है ।[4] यदि रूस को यूरोप से अलग कर दें तो भारतवर्ष का क्षेत्रफल उतना ही बड़ा होगा जितना शेष यूरोप का । इस देश की निश्चित प्राकृतिक सीमाएँ हैं जो पर्वत श्रेणियों एवं समुद्र के कारण एशिया के अन्य देशों से अपना

1- सरन, पी0, स्टडीज इन मेडिवल इण्डिया, पृ.-188
2- हेग, डब्लू0, कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, भाग- 1, पृ.-30
3- भारत वार्षिक संदर्भ ग्रंथ, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार के गवेषणा और संदर्भ प्रभाग द्वारा संकलित "इंडिया 1987" का हिन्दी रूपान्तर, पृ0- 1,
4- वही, पृ0- 1,

पृथक भौगोलिक अस्तित्व रखता है ।[1] इसके उत्तर में हिमालय पर्वत की ऊँची-ऊँची चोटियाँ हैं । हिमालय पर्वत की शाखाएँ उत्तर-पश्चिम तथा उत्तर-पूर्व की ओर फैली हुई हैं । हिमालय पर्वत में कुछ पर्वतीय मार्ग है जिनसे पड़ोसी देशों में जाना संभव है । भारत के दक्षिण, दक्षिण पूर्व तथा दक्षिण-पश्चिम में हिन्द महासागर, बंगाल की खाड़ी तथा अरब सागर हैं । इसी प्रकार उत्तरपूर्व में भी भारत पर्वत श्रेणियों से घिरा है, जो असम से निग्रेस अन्तरीय तक विस्तृत हैं । ये पहाड़ियाँ पटकोई या पटकाई के नाम से विख्यात हैं । स्टैम्प महोदय ने उत्तर पूर्व की पहाड़ियों का विस्तृत विवेचन किया है । इस क्षेत्र में वैरल, जैनतिया, नागा, खासी, गारो तथा पूर्व दक्षिण में लुशाई एवं चिन पहाड़ियाँ प्रमुख हैं । ऐसा नहीं कि उत्तर-पूर्व की पहाड़ियों के रास्ते भारत में प्रवेश नहीं किया जा सकता था । बल्कि इन जटिल श्रृंखलाओं के मध्य भी ऐन, तुंगय तथा हूजू दर्रे एवं हुकांग की घाटी उत्तर पूर्व से भारत आने के कुछ संकरे मार्ग हैं । किंतु इन मार्गों की उपयोगिता एवं व्यावहारिकता के विषय में प्रकाश डालते हुए इतिहासकार सरकार ने लिखा है कि: ये दर्रे सघन बनों एवं तीव्रगामी, सर्वदा प्रवाहित रहने वाली नदियों से सदैव अवरूद्ध रहते हैं ।[2] ऐसा प्रतीत होता है कि उत्तर पूर्व की पर्वत श्रृंखलाओं से गुजरने वाले दर्रे किसी भी आक्रमणकारी सेना के लिए दुरूह थे । क्योंकि आवश्यकता पड़ने पर उधर से भागना मौत के मुंह में जाने के समान था । संभवत: यही कारण है कि भारत पर उत्तर पूर्व से आक्रमण नहीं हुए । होल्डिक महोदय ने भारत की भौगोलिक संरचना पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि भारत की संरचना त्रिभुजाकार न होकर एक विषमकोणीय आयत के समान है, जो भू-संरचना की दृष्टि से सर्वत्र या तो समुद्रों या पर्वतों से घिरा है । उत्तर, उत्तर पूर्व एवं उत्तर पश्चिम में नगाधिराज हिमालय भारत के प्रहरी के रूप में खड़े हैं जो दोनों ओर समुद्र को स्पर्श कर रहे हैं । दक्षिण पश्चिम

1- "इण्डिया 1987" का हिन्दी रूपान्तर, पृ॰ 1,

2- सरकार यदुनाथ: युग-युगीन भारत, पृ॰-14-15 श्रीवास्तव, आशीर्वादीलाल: दिल्ली सल्तनत, पृ॰-299 स्टैम्प, एल0 डड्ले: एशिया का भूगोल, पृ॰ 189-90,

में अरब सागर, दक्षिण में हिन्द महासागर तथा दक्षिण पूर्व में बंगाल की खाड़ी भारतीय दीवार के रूप में है । इस प्रकार भारत एक प्रकृति प्रदत्त दुर्ग है ।[1]

भारत का पश्चिमोत्तर सीमाप्रांत उत्तर में हिमालय पर्वत, उत्तर-पश्चिम में हिन्दूकुश, सुलेमान एवं किरथर की पहाड़ियों के घिरा हुआ है ।[2] हिमालय का विस्तार सम्पूर्ण उत्तरी भारत से पूर्व में असम से पश्चिम में अफगानिस्तान तक है । इसका विस्तार दक्षिण पूर्व आर्क के रूप में सम्पूर्ण उत्तरी भारतीय सीमा पर है जो तिब्बत के पठार से अलग होता है । इसका विस्तार 1500 मील की लम्बाई तथा 150-200 मील की चौड़ाई में है । इसकी श्रेणियों की ऊँचाई 20 हजार फीट तक है ।[3] तिब्बत क्षेत्र के अन्तर्गत भौतिक भूगोल के दृष्टिकोण से कश्मीर में स्थित काराकोरम श्रेणियों के उत्तरी भाग हैं जिनकी ऊँचाई 15 हजार फीट तक है । इसी के अन्तर्गत उत्तरी पश्चिमी नेपाल का कोना भी है जिसमें मानसरोवर झील प्रास्थित है जहाँ से तीन महान भारतीय नदियाँ सिन्ध, सतलज एवं ब्रम्हपुत्र निकलती हैं ।[4] हिमालय पर्वत के इस उत्तरी श्रेणी के विस्तार में भी जोजिला, जाराल, चारडिंगला, इमिसला एवं काराकोरम आदि दर्रे हैं, परन्तु सदैव वर्फ से ढके होने एवं अत्यधिक ऊँचाई पर होने के कारण ये अत्यन्त दुर्गम एवं दुरूह हैं ।[5] यही कारण है कि भारत पर उत्तर से भी आक्रमण नहीं हुए । हिन्दुकुश का विस्तार पामीर से दक्षिण-पश्चिम में है, जो भारत की उत्तरी-पश्चिमी प्राकृतिक सीमा के रूप में माना जाता है । हिन्दुकुश

1- होल्डिक, टी० एच०; "इण्डिया" पृ.- 18,

2- निज्जर, बी० एस०; "पंजाब अण्डर द सुल्तान्स", पृ.- 3 ,

3- वही, पृ.- 3,

4- स्पाते, ओ० एच० के०; "इण्डिया एण्ड पाकिस्तान," पृ.-463-467,
हेग डब्लू०; कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, पृ.-32,

5- वर्मा, एच० सी०; "मेडिकल रूट्स टू इण्डिया" एपेन्डिक्स-ए, पृ.-260-62

की ऊँचाई 1500 फीट से अधिक है और कुछ श्रेणियाँ तो 1,800 फीट से भी अधिक ऊँची हैं । यह भारत को पूर्वी अफगानिस्तान से पृथक करता है । सुलेमान पर्वत पंजाब को उत्तरी विलोचिस्तान से पृथक करता है ।[1] किरथर की श्रेणी सिन्ध को दक्षिणी विलोचिस्तान से पृथक करती है । इस प्रकार ये सभी श्रेणियाँ मिलकर भारत की प्राकृतिक सीमा बनाती हैं । हेग ने हिन्दूकुश की इस घेराबंदी पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि ऐसा प्रतीत होता है, प्रकृति ने इसे भारत की सुरक्षा के लिए ही रचा है ।[2] हिन्दूकुश पर्वत श्रेणी सुलेमान की अपेक्षा अधिक ऊँची है । यह श्रेणी अनेक स्थानों पर कट-फट गई है, जिसका प्रमुख कारण नदियाँ हैं । इस प्रकार इसके आर-पार अनेक दर्रे बन गये हैं जिनमें खैबर, बोलन, टोची एवं गोमल प्रमुख हैं । भारतीय इतिहास में इन दर्रों का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है ।[3] इन दर्रों से होकर ही मध्य एशिया, अफगानिस्तान तथा यूनान की ओर से यवन, शक, कुषाण, हूण, अरब, तुर्क एवं मंगोल आदि आक्रमणकारियों ने पश्चिमोत्तर भारत पर आक्रमण किया ।

मुख्य हिमालय श्रेणी के दक्षिण में एक उप पर्वतीय पेटी भी पाई जाती है ।[4] यह पेटी भी भारत की पश्चिमोत्तर सीमा प्रांत पर अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रखती है । इस पेटी में अनेक निचली पहाड़ियाँ पाई जाती है जो नदी घाटियों द्वारा पृथक-पृथक हो गई हैं । इन घाटियों को "दून" के नाम से जाना जाता है । हिमालय की ऊँची पर्वत श्रेणियों से होकर नीचे उतरती हुई नदियों द्वारा लाये गये कंकड़-पत्थरों, बोल्डर, मिट्टी आदि के जमाव से इस भू-भाग का निर्माण हुआ है । इस उपपर्वतीय प्रदेश को शिवालिक पहाड़ी के नाम से जाना जाता है ।[5] साल्टरेंज पहाड़ियाँ शिवालिक पर्वत में ही पाई जाती है ।

1- स्टैम्प, एल0 डड्ले0: "एशिया का भूगोल," पृ.- 188,

2- हेग, डब्लू0: "कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया," पृ.- 10

3- वर्मा, एच0 सी0: "मेडिवल रूट्स टू इण्डिया" एपेन्डिक्स-ए,

4- हेग, डब्लू0: "कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया," भाग-1, पृ.-27,

5- होल्डिच, टी0 एच0: "दि गेट्स ऑफ इण्डिया," पृ.-135-136,

शिवालिक पहाड़ियाँ भारत के मध्यवर्ती भाग के लिए सुरक्षा कवच जैसी है । ये इतनी गहरी घाटियाँ एवं सघन जंगलो से आच्छादित है कि इनको पार करना बड़ा ही दुरूह काम है ।[1] संभवत: यही कारण है कि बड़ी संख्या में विदेशी इसे पार करके भारत के मध्यवर्ती भाग तक नहीं पहुँच सके ।

पश्चिमोत्तर सीमान्त क्षेत्र का मध्य एवं दक्षिणी भाग मैदानी है तथा नदियों द्वारा निक्षेपित मिट्टी से बना है । इसे सिंध बेसिन कहते हैं क्योंकि इस पर सिंध एवं उसकी पाँच सहायक नदियाँ प्रवाहित होती हैं । सिंध वेसिन का पूर्वी भाग जिस पर चिनाब, रावी और झेलम बहती हैं भारत संघ के अन्तर्गत हैं । सिंध वेसिन के दक्षिण पूर्व में रेगिस्तानी भूमि है जो थार रेगिस्तान के नाम से विख्यात है । सीमान्त क्षेत्र का दक्षिणी पश्चिमी भाग पठारी है जिसे विलोचिस्तान का पठार कहते हैं । इसकी ऊँचाई 300 से लेकर 900 मीटर तक है । यह अत्यन्त शुष्क पठार है और मकरान का निर्जन मरूस्थल इसी पठार पर स्थित है । जब सिकन्दर महान को इसी मार्ग से यूनान लौटना पड़ा था तो मकरान मरूभूमि में ही उसके अधिकांश सैनिक प्यास से तड़प कर मर गये थे ।[2]

उत्तरी-पश्चिमी सीमा मार्ग-

उत्तर-पश्चिम में आक्रमणकारियों का एक मार्ग दजला घाटी से होता हुआ हिन्दूकुश को पार करके काबुल घाटी और वहाँ से सिन्धु घाटी की ओर था । एक दूसरा मार्ग कैस्पियन सागर से हेरात होता हुआ पहाड़ियों को पार करके कांधार और गजनी होते हुए काबुल के लिए था । किरथर पहाड़ियों तथा समुद्र तट के बीच एक अन्य मार्ग है ।[3] सुरक्षा की दृष्टिकोण से ये महत्वपूर्ण नहीं हैं क्योंकि इन पहाड़ियों को काटकर कई नदियों ने घाटियाँ बना ली हैं ।

1- निज्जर, बी0 एस0; "पंजाब अण्डर द सुल्तान्स;" पृ.- 4 हेग, डब्लू; कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया-भाग- 1, पृ. 33-34,
2- निज्जर, बी0 एस0; पंजाब अण्डर द सुल्तान्स, पृ.-6,
3- सरन, पी0; रेजिस्टेन्स ऑफ इण्डिया प्रिन्सेज टू तुर्किश अफेन्सिव, पृ.-2, मुकर्जी, राधा कुमुद; प्राचीन भारत, पृ.- 10,

और इन घाटियों या दर्रों से होकर सेनाएँ आर-पार होने में समर्थ रही हैं। यहीं वे प्रवेश द्वार है जिनसे होकर अफगानिस्तान से सिकन्दर महान तथा परवर्ती आक्रामकों ने पश्चिमोत्तर सीमा प्रांत पर विजय प्राप्त किया।[1] इन मार्गों के दर्रों में खैबर, कुर्रम, गोमल, एवं बोलन विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। इनका विवरण अधोलिखित है-

खैबर दर्रा-

यह पश्चिमोत्तर क्षेत्र का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण दर्रा है जो पेशावर से लगभग 17 कि0 मी0 पश्चिम में जामरूद के निकट आरम्भ होता है। इसकी पहाड़ी लम्बाई 53 कि0 मी0 है। खैबर सफेद कुश का अन्तिम पाद प्रदेश है जहाँ से यह पहाड़ी काबुल नदी घाटी में विलीन हो जाती है। यह दर्रा अफगानिस्तान से भारत में प्रवेश हेतु सदैव महान उत्तरी मार्ग रहा है। महमूद गजनवी ने इसी मार्ग से 1000-1002[2] ई. में पंजाब पर विजय प्राप्त की थी। खैबर वह मार्ग है जो मरूस्थल और पहाड़ियों के संकरे अंतराल से होकर सीधे पंजाब के मैदान पर पहुँचती है। यही कारण है कि पश्चिमी विदेशी आक्रामकों ने भारत पर आक्रमण करने हेतु इसी मार्ग का प्रयोग किया।

कुर्रम दर्रा-

खैबर के दक्षिण में कुर्रम नदी है जो पश्चिम में पैवार कोटल तथा पूर्व में मिरानजई की सीमा के मध्य स्थित है। इसकी अधिकतम लम्बाई 115 कि0 मी0 तथा चौड़ाई 18 कि0 मी0 से 40 कि0 मी0 है। कुर्रम नदी के उच्चतम स्थल खोस्ट खोरम से क्रमिक ढाल आरम्भ होता है जिसके निचले भाग में कुर्रम नदी बहती है जिसने सैददा के विपरीत काटकर एक मार्ग बना लिया है जो

1- लायल; "दि राइज ऑफ दि ब्रिटिश डोमीनियन इन इण्डिया," VII-I

2- सिराज, मिनहाज; तबकात-ए-नासिरी, भाग- 1, अनु0 रैवर्टी, पृ.-76,

इसे ऊपरी तथा निचली दो भागों में विभक्त कर दिया है । किरमान कुर्रम घाटी में स्थित सर्वाधिक महत्त्व पूर्ण स्थान है जो पश्चिमी आक्रमणकारियों के लिए मुख्य पड़ाव स्थान था । मुहम्मद गोरी ने भारतीय अभियान के दौरान यहीं पड़ाव डाला था । कुर्रम घाटी से होकर अफगानिस्तान में प्रवेश सुगम है । यही कारण है कि मध्यकाल एवं आधुनिक काल में इस दर्रे का महत्त्व बना रहा । 1898 में लार्ड राबर्ट्स तक ने काबुल की ओर बढ़ते समय इसका उपयोग किया था ।[1]

टोची दर्रा-

उत्तर में कुर्रम घाटी और दक्षिण में गोमल नदी के मध्य अत्यधिक विषम विस्तृत पहाड़ी क्षेत्र है जिसे वजीरस्तानी के नाम से जाना जाता है । इसके उत्तरी भाग में टोची नदी प्रवाहित होती है । टोची घाटी के पश्चिम की ओर ऊँची पर्वत श्रृंखला है । भारत एवं गजनी के मध्य टोची घाटी एक सीधा मार्ग है । टोची घाटी की उच्चतम चोटियाँ हैं-वजीरस्तान, शुईदार, पीरमाल और वीरमल आदि ।[2] इस घाटी पर उपद्रवी जातियों का अधिकार था ।

गोमल दर्रा-

वजुरी कच्छ के पूर्व में जनजातीय शासित प्रदेश से होकर गोमल मार्ग जाता है जहाँ से यह डेराइस्माइल खान जिले के मैदान में मिल जाता है । यह मार्ग गोमल नदी घाटी से होकर जाता है जो अफगानिस्तान की सीमा पर दक्षिणी वजीरस्तान, मुरतजा और डोमण्डी तथा बलूचिस्तान से होकर अफगान पठार के लिए जाता है । यह दक्षिणी अफगानिस्तान और सिंधु घाटी के मध्य

1- दि वैदिक एज; भाग- 1, भारतीय विद्या भवन, पृ॰ 242-243 डोई; द पंजाब एन० डब्लू० एफ० पी० और काश्मीर, पृ॰-295-96,

2- ट्रावस्की; द लैण्ड ऑफ फाइव रीवर्स, पृ॰-7 इम्पीरियल गजेटियर; एन० डब्लू० एफ० प्राविन्स, 1908, पृ॰ 246-247,

सर्वाधिक प्राचीनतम एवं प्रयुक्त व्यापारिक मार्ग रहा है ।[1] प्रो० हबीबुल्ला ने इस दर्रे की उपयोगिता के विषय में लिखा है- उन दिनों सुलेमान के उस पार से आने का साधारण मार्ग न तो प्रसिद्ध खैबर दर्रे से था और न दक्षिण में स्थित बोलन दर्रे से, बल्कि गोमल से था जो डेरा इस्माइल खाँ को जाता था और वहाँ से उत्तरी सिंध सागर दोआब को । खैबर, बोलन और कम सुगम कुर्रम तथा टोची दर्रों का उतना प्रयोग नहीं होता था जितना गोमल दर्रे का जो सामान्य सैनिक मार्ग था ।[2] यह इस तथ्य से भी सिद्ध होता है कि पूरी तेरहवीं शताब्दी भर सुलेमान पर्वत के उस पार से आक्रामक सेना के आक्रमण का प्रथम स्थान सुल्तान या उच होता था न कि लाहौर या पेशावर । गजनी से पंजाब आने का सबसे छोटा मार्ग कुर्रम, टोची एवं गोमल दर्रों से था और खैबर से होकर आने में उत्तर में बहुत चक्कर काटना पड़ता था । इतना ही नहीं राजनीतिक दृष्टि से खैबर क्षेत्र सुरक्षित नहीं था क्योंकि उत्तरी सिंध सागर दोआब की जन जातियाँ बराबर विरोध करती थीं ।

बोलन दर्रा-

यह मार्ग सुदूर दक्षिण में कन्धार से क्वेटा तथा बोलन होकर सिन्धु नदी पर स्थित सक्खर को जाता है । निचली सिंधु के विजेताओं और आक्रमणकारियों के लिए यहाँ से मार्ग अवरुद्ध हो जाता है ।[3] क्योंकि इसके पूर्व में विशाल मरूभूमि फैली हुई है । भारत के प्रवेश द्वार के रूप में अन्य दर्रों की तुलना में इसका महत्व कम ही रहा है । इसका कारण यह है कि यह राजस्थान के मरूस्थल में समाप्त हो जाता है जहाँ से भारत के आन्तरिक भागों में प्रवेश करना अत्यन्त कठिन है ।

1- कानूनगो, के० आर०: शेरशाह- पृ.- 2

2- हबीबुल्ला, ए० बी० एम०: भारत में मुस्लिम राज्य की बुनियाद,

3- होल्डिच, टी० एच०: गेट्स ऑफ इण्डिया, पृ.-143-144,

उपरोक्त सामरिक महत्व के प्रमुख दर्रों के अतिरिक्त उत्तरी भाग में कुछ अन्य दर्रे एवं मार्ग भी हैं जिनका व्यापारिक दृष्टि से अधिक महत्व रहा है । इनमें मालाखण्ड, चित्राल, तिब्बतदर्रा तथा काश्मीर एवं मध्य एशियायी दर्रे प्रमुख हैं ।

(ख)

उत्तरी-पश्चिमी सीमा पर होने वाले आक्रमणों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि:

आदियुग से लेकर मध्य युग एवं कुछ अर्थों में आज भी उत्तरी-पश्चिमी सीमा ने भारतीय इतिहास को सर्वाधिक प्रभावित किया है । तीन ओर से समुद्र तथा पश्चिम से पूर्व तक फैले हिमालय पर्वत श्रृंखलाओं ने जहाँ एक ओर भारत को स्वतन्त्र इकाई का रूप प्रदान किया है, वहीं दूसरी ओर वाह्य आक्रमणकारियों से इसकी रक्षा भी की है । इन्हीं पर्वत श्रृंखलाओं के उत्तर-पश्चिम के मार्गों में खैबर, बोलन, गोमल, आदि दर्रे हैं जिन मार्गों से आना जाना सरल न होने पर भी संभव रहा है । उत्तर-पश्चिम से भारत में प्रवेश करने वाली जातियों में आर्यों का नाम सर्वप्रथम है। आर्य उत्तर-पश्चिम मार्ग से आकर सर्वप्रथम पंजाब में निवसित हुए और शीघ्र ही सम्पूर्ण उत्तर भारत में फैल गये ।[1] आर्यों के भारत में दृढ़तापूर्वक स्थापित हो जाने के बाद यहाँ अनेक आक्रमण हुए । ईरानी तथा यूनानी आक्रमण भी उत्तरी-पश्चिमी सीमा से ही हुए । सिकन्दर महान् के नेतृत्व में हुए यूनानी आक्रमण ने भारतीय इतिहास को अत्यधिक प्रभावित किया । इस आक्रमण के राजनीतिक परिणाम ने भारत में मौर्यों की अधीनता में चक्रवर्ती साम्राज्य की स्थापना को संभव बनाया ।[2]

यूनानी आक्रमण के उपरान्त भारत पर शकों का आक्रमण हुआ जो धीरे-धीरे तक्षशिला से मथुरा तक फैल गये और उन्होंने अपने साम्राज्य की स्थापना की शकों के प्रवसन के कुछ समय उपरान्त यू-ची जाति को उत्तर-पश्चिम से भारत में प्रवेश किया और इन्हीं की एक शाखा कुषाण ने यहाँ कनिष्क साम्राज्य की स्थापना की । महान् गुप्तों के काल में भी उत्तर-पश्चिम की ओर से हूणों का आक्रमण हुआ । जब तक समुद्र गुप्त जैसे शक्तिशाली शासक रहे हूण सफल न हो सके । किंतु उत्तर वर्त्ती गुप्तों के काल में हूण सफल रहे, और गुप्त साम्राज्य के विघटन में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की ।[3]

1- यद्यपि, इस सम्बन्ध में इतिहासकारों में मतभेद है ।
2- स्मिथ, वी०ए०, दि अर्ली हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, अध्याय-3-4,
3- राय चौधरी, एच०सी०, पोलिटिकल हिस्ट्री ऑफ ऐंशिएंट इंडिया, पृ.-629, रॉय. यू. एन., गुप्त सम्राट एवं उनका काल, पृ. 238

सातवीं सदी के पूर्वार्द्ध में अरब में इस्लाम के उदय ने भी भारत की उत्तरी-पश्चिमी सीमा को प्रभावित किया । मुहम्मद बिन कासिम के नेतृत्व में अरबों का महत्वपूर्ण आक्रमण हुआ । कासिम का यह आक्रमण 712 ई0 में सिंध के राजा दाहिर के ऊपर हुआ ।[1] दाहिर पराजित हुआ और सिंध पर कासिम का अधिकार हो गया ।[2] आगे बढ़कर कासिम ने मुल्तान पर भी अधिकार कर लिया ।[3] इस प्रकार मुहम्मद बिन कासिम के नेतृत्व में सिंध एवं मुल्तान अरबों के अधिकार में आ गया । अरबों की इस विजय के महत्व के विषय में विद्वानों का वैमत्य है । अधिकांश विद्वानों का मत है कि, यह विजय इस्लाम तथा भारत के इतिहास में एक महत्व हीन, क्षणिक एवं रोचक घटना है, जिसका भारत के राजनैतिक आर्थिक एवं सांस्कृतिक जीवन पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा ।[4] परन्तु अरबों की विजय का निश्चित रूप से गहरा प्रभाव पड़ा और उसने भारत में इस्लाम का बीजारोपण किया । अरब अधिकृत प्रान्तों की अधिकांश जनता को इस्लाम धर्म अपनाना पड़ा । इस प्रकार नवीन धर्म इस्लाम की, जो सिद्धान्तों तथा जीवन प्रणाली की दृष्टि से विदेशी था, की जड़े हमारे देश में स्थायी रूप से जम गईं । सांस्कृतिक दृष्टि से भी इस विजय का बड़ा महत्व है । भारतीय संस्कृति का अरबों पर विशेष प्रभाव पड़ा । उन लोगों ने भारतीय ज्ञान विशेषकर ज्योतिष, दर्शन तथा अंकों को यूरोप पहुँचाया सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रभाव यह हुआ कि अरबों ने तुर्क आक्रमणकारियों के लिए मार्ग प्रशस्त कर दिया । सिंध पर अरबों के स्थायी प्रभुत्व के कारण अनेक व्यापारी, संत व यात्री यहाँ से भारत के अन्य भागों में गये और उन्होंने जो भौगोलिक विवरण तैयार किया उससे कालान्तर में आक्रमणकारी तुर्कों को बड़ी सहायता मिली ।[5]

1- ईश्वरी प्रसाद; भारतीय मध्य युग का इतिहास, पृ.-52,
2- चचनामा; इलियट एवं डाउजन, भाग-1, पृ0-171-72,
3- चचनामा; इलियट एवं डाउजन, भाग-1, पृ.-192-95,
4- लेनपूल, एस0; मेडिवल इण्डिया अण्डर मुहमंडन रूल, पृ0-12
5- पाण्डेय, ए0बी0; दि फर्स्ट अफगान इम्पायर इन इण्डिया, पृ.-5,

तुर्कों का आक्रमण-

जब उमय्यद वंश के खलीफा अपने धार्मिक कार्यों को भूल कर सांसारिक कार्यों में लिप्त हो गये तो उनका पतन होने लगा और सन् 750 ई0 में उमय्यद वंश को समाप्त कर अब्बासी वंश ने खलीफा पद ग्रहण किया ।[1] अब्बासी खलीफाओं ने अरबों के स्थान पर ईरानी एवं तुर्कों को अपना सहयोगी बनाया । किंतु अब्बासी खलीफाओं में भी राजनैतिक पतन के साथ ही साथ नैतिक पतन भी प्रारम्भ हो गया । फलत: खलीफा साम्राज्य, ईरानी, तुर्क, कुर्द, अरब तथा अन्य जातियों के द्वारा शासित अनेक राज्यों में विभक्त हो गया । इसी क्रम में समानी वंश भी स्वतन्त्र शासक के रूप में उदित हुआ तथा कुछ काल उपरान्त तुर्क दास अलप्तगीन ने गजनी में एक स्वतंत्र राज्य की नींव डाली ।[2] गजनी में स्वतंत्र तुर्की राज्य की स्थापना से भारत की उत्तरी-पश्चिमी सीमा असुरक्षित हो गई । तुर्क अत्यन्त बर्बर, निर्भीक, वीर एवं पराक्रमी तथा आक्रामक थे । अलप्तगीन ने भारत के सीमान्त नगरों पर अनेक आक्रमण किए । यह आक्रमण उसके उत्तराधिकारियों के काल में भी होते रहे । इनकी प्रबलता का कारण इनकी धार्मिकता थी ।[3] सुबुक्तगीन ने अपने शासन काल में वैहन्द के शासक जयपाल पर कई बार आक्रमण किया । उसका साम्राज्य लगमान तक विस्तृत हो गया ।[4] इस प्रकार तुर्क भारतीय पश्चिमोत्तर सीमा के अत्यन्त निकट आ गए ।

महमूद गजनवी-

सन् 998 ई0 में सुबुक्तगीन की मृत्यु के उपरान्त उसका पुत्र महमूद गजनवी गद्दी पर बैठा । उसने भारत पर 17 बार आक्रमण किया । प्रथम आक्रमण खैबर दर्रे एवं सीमान्त दुर्गों तक सीमित था ।[5] द्वितीय आक्रमण अगले वर्ष वैहन्द के

1- प्रसाद, डॉ0 ईश्वरी:भारतीय मध्य युग का इतिहास, पृ0-66,
2- वही, पृ0- 67-68,
3- श्रीवास्तव, ए0एल0: दिल्ली सल्तनत, पृ.-52,
4- जाफर, एस0एम0: मेडिवल इण्डिया अण्डर मुस्लिम किंग्स, पृ.-49,
5- इसामी: फुतूहस्सलातीन, आगा में हदी हुसैन, भाग-1, कमेंट्री, पृ.-120,

शासक जयपाल पर हुआ । 27 नवम्बर 1001 ई॰ को पेशावर के निकट हुए भंयकर युद्ध में जयपाल पराजित हो गया ।[1] इस विजय से महमूद की विजय लालसा और तीव्र हो गई । तत्पश्चात् अक्टूबर 1004 ई॰ में महमूद ने भटिंडा के शासक बाजी राय पर आक्रमण किया ।[2] इस युद्ध में भी महमूद की विजय हुई और बाजीराय मारा गया ।[3] सन् 1006 ई॰ में महमूद ने मुल्तान के शासक अबुल फतेह दाउद पर आक्रमण करने के लिए प्रस्थान किया । मार्ग में उसने आनन्दपाल को भी परास्त किया । तत्पश्चात मुल्तान पर आक्रमण किया और विजयी हुआ । अगले वर्ष ही सन् 1007 ई॰ में महमूद ने सुखपाल पर आक्रमण किया तथा 4 लाख दिरहम जुर्माने के रूप में प्राप्त किया ।[4]

सन् 1008 ई॰ में महमूद ने पुनः आनन्द पाल पर आक्रमण किया । इस बार आनन्द पाल ने पड़ोसी राजाओं की मदद से एक विशाल सेना एकत्रित करके महमूद का सामना किया । पेशावर के निकट भयंकर युद्ध हुआ । किंतु इस बार भी विजय श्री महमूद को ही मिली ।[5] इस विजय ने महमूद का उत्साह और बढ़ा दिया । इससे प्रोत्साहित होकर महमूद ने नगरकोट पर भी आक्रमण कर दिया और अपार धन सम्पदा प्राप्त की ।[6] सन् 1009 ई॰ में महमूद ने नारायन पुर पर आक्रमण कर विजित किया ।[7] सन् 1010 ई॰ में महमूद ने मुल्तान पर पुनः

1- तारीख-ए-यामिनी; इलियट एवं डाउसन, भाग-2, पृ॰-25-26,

2- इलियट एवं डाउसन; भाग-2, पृ॰-439-40,

3- मजूमदार, आर॰सी॰: स्ट्रगल फॉर इम्पायर, पृ॰-7

4- बदायुनी, मुन्तखवुत्तवारीख, रैकिंग, भाग-1-पृ॰-20

5- तारीख-ए-यामिनी; इलियट एवं डाउसन, भाग-2, पृ॰-34,

6- फरिश्ता; तारीख-ए-फरिश्ता-, ब्रिग्स, भाग-1-पृ॰-28

7- मजूमदार, आर॰सी॰; स्ट्रगल फॉर इम्पायर, पृ॰-10,

आक्रमण किया और वहाँ के शासक दाउद को परास्त कर बन्दी बना लिया । सन् 1014 ई. में महमूद ने नन्दना नगर पर आक्रमण किया और वहाँ से अपार धन सम्पत्ति वसूल की ।[2] इसी वर्ष कुछ समय उपरान्त थानेश्वर नगर को लूटा । सन् 1015 ई. में महमूद ने कश्मीर पर आक्रमण किया किन्तु विपरीत जलवायु के कारण उसे वापस लौटना पड़ा । सन् 1018 ई. में महमूद ने पूर्वी भारत की प्रमुख राजधानी कन्नौज पर आक्रमण करने के लिए प्रस्थान किया ।[3] वह पंजाब होते हुए बरन, मथुरा, वृन्दावन, कन्नौज, मुन्ज, अस्नी, के दुर्गों पर विजय करते हुए आगे बढ़ा । सन् 1019 ई. में उसने चन्देल राज्य पर आक्रमण किया और विजय श्री प्राप्त की ।[4]

सन् 1021 ई. में महमूद पंजाब पर स्थायी शासन स्थापित करने के उद्देश्य से आया और वहाँ की व्यवस्था ठीक करने के पश्चात् 1023 ई. में कालिंजर एवं ग्वालियर पर आक्रमण कर विजित किया ।[5] महमूद का सर्वाधिक प्रसिद्ध एवं विवादास्पद आक्रमण सन् 1025-26 ई. में सोमनाथ के मन्दिर पर हुआ । इस अभियान में महमूद को अपार धन राशि प्राप्त हुई ।[6] महमूद का अंतिम आक्रमण 1027 ई. में सिंध के जाटों पर उनके विरुद्ध प्रतिशोध की भावना से हुआ । इस अभियान में भी महमूद को विजय मिली ।

महमूद के भारतीय आक्रमणों के स्वरूप से स्पष्ट है कि वह भारत पर मुस्लिम साम्राज्य की स्थापना नहीं करना चाहता था । वह तो यहाँ की अपार धन संपदा मात्र से आकर्षित हुआ था । राहुल सांस्कृत्यायन ने लिखा है:

1- निजामुद्दीन, अहमद; तबकाते अकबरी, डे0बी0, भाग-1, पृ. -47,
2- तारीख-ए-यामिनी, इलियट एवं डाउसन, भाग-2, पृ. -37,
3- वही, पृ. -41-42,
4- फरिश्ता, तारीखे फरिश्ता, ब्रिग्स, भाग-1, पृ. -38,
5- निजामुद्दीन, अहमद; तबकाते अकबरी, डे0बी0, भाग-1, पृ. -14,
6- कमीलुत तवारीख; इलियट एवं डाउसन, भाग-2, पृ. -471,

पंजाब को छोड़कर शेष भारत के साथ गजनवियों का सम्बन्ध लूटमार तक ही सीमित था ।[1] यद्यपि भारतीय शासकों ने यथाशक्ति महमूद का प्रति रोध किया किन्तु पारस्परिक फूट एवं वैमनस्य ने उन्हें संगठित न होने दिया । जिसके परिणाम स्वरूप वे पराजित हुए और महमूद जी भरकर भारत को लूटता रहा ।

पश्चिमोत्तर सीमा समस्या के सन्दर्भ में महमूद के आक्रमणों का भारतीय इतिहास में महत्व पूर्ण स्थान है । महमूद ने 1000 ई. से 1027 ई. तक गजनी से भारत पर 17 बार आक्रमण किए जिसके परिणाम स्वरूप भारतीय शासकों की पश्चिमोत्तर सीमा समस्या अत्यधिक जटिल हो गई । क्योंकि पंजाब का सीमांत प्रदेश तुर्कों के अधिकार में चला गया तथा इस दिशा से कालान्तर में भारत आने वाले आक्रमण कारियों के लिए मार्ग प्रशस्त हो गया । इसके अतिरिक्त भारतीय शासकों की दुर्बलता एवं यहाँ की धन प्रचुरता से तुर्क भलीभाँति परिचित हो गये

गजनी वंश के पतन के पश्चात गोर में एक नये राजवंश का उदय हुआ जो गोरी वंश के नाम से प्रसिद्ध हुआ । सन् 1073 ई. में गोर के शासक गयासुद्दीन ने मुहम्मद गोरी को गजनी का शासक नियुक्त किया । मुहम्मद गोरी का मुख्य उद्देश्य भारत में मुस्लिम साम्राज्य की स्थापना करना था ।[2] मुहम्मद गोरी का भारत पर प्रथम आक्रमण सन् 1175 ई. में मुल्तान पर हुआ । इसी समय उच्च पर भी आक्रमण किया । दोनों स्थानों पर उसे विजय मिली । सन् 1178-79 ई. में मुहम्मद गोरी ने राजपूताना पार कर नहरवाला पर आक्रमण किया किंतु यहाँ उसे पराजित होना पड़ा । वास्तव में यह मुहम्मद गोरी के लिए एक महान शिक्षा थी जिसे उसने नतमस्तक होकर स्वीकार कर लिया ।[3] उसे अब ज्ञात हो गया कि भारत पर आक्रमण का सिंहद्वार पंजाब है । अतः उसने पंजाब से होकर भारत के मध्य प्रवेश का निर्णय लिया ।[4]

1- सांकृत्यायन, राहुल: मध्य एशिया का इतिहास, भाग-1, पृ.-392,
   हबीब एवं निजामी: दिल्ली सुल्तनत, भाग-1, पृ.-154,
2- पाण्डेय, ए०बी०: दि फर्स्ट अफगान इम्पायर इनइण्डिया, पृ.-9-10,
3- हबीब एवं निजामी, दि० सु०, पृ.-157,
4- श्रीवास्तव, ए०एल०, दिल्ली सल्तनत, पृ.-74,

सन् 1179-80 ई. में मुहम्मद गोरी ने पेशावर पर अधिकार कर लिया। दो वर्ष उपरान्त वह पुनः लाहौर की ओर बढ़ा किंतु वहाँ के शासक ने अत्य-अधिक धन देकर संधिकर ली। सन् 1182 ई. में मुहम्मद ने देबल पर आक्रमण किया और अपार धन संपदा प्राप्त की।[1] सन् 1185 ई. में मुहम्मद गोरी ने पंजाब पर आक्रमण करके सियालकोट तक को अधिकृत कर लिया। अगले वर्ष लाहौर को भी अधिकृत कर लिया। इस प्रकार मुल्तान, पंजाब तथा सिंध पर अधिकार कर लेने से भारत को अधिकृत करने का मार्ग प्रशस्त हो गया।

सन् 1191 ई. में मुहम्मद गोरी ने ताबर हिन्द पर आक्रमण कर उसे अपने अधिकार में कर लिया। तत्पश्चात तराइन के प्रथम युद्ध में पृथ्वी राज चौहान तथा मुहम्मद गोरी की सेनाओं में भीषण युद्ध हुआ जिसमें मुहम्मद गोरी पराजित हुआ और गजनी भाग गया।[2] सन् 1192 ई. में मुहम्मद गोरी ने पुनः भारत की ओर एक विशाल सेना के साथ प्रस्थान किया और तराइन के ही मैदान में पुनः पृथ्वीराज व मुहम्मद गोरी की सेनाओं में भयंकर तथा निर्णायक युद्ध हुआ,[3] जिसमें इस बार पृथ्वीराज को पराजय मिली एवं बंदीबना लिया गया।

तराइन विजय के उपरान्त मुहम्मद गोरी ने हांसी, कुहराम तथा सरसुती सहित समस्त शिवालिक प्रदेश पर अपना अधिकार कर लिया।[4] इसके उपरान्त भारत के विजित प्रान्तों पर शासन के लिए अपने दास कुत्बुद्दीन को नियुक्त कर मुहम्मद गोरी गजनी वापस लौट गया। मुहम्मद गोरी की मृत्यु के उपरांत कुत्बुद्दीन ने गजनी से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लिया और सल्तनत की नींव डाली जिसे सुदृढ़ करने का कार्य इल्तुतमिश ने किया।

1- मिनहाज सिराज; तबकाते नासिरी, रैवर्टी, भाग-1, पृ.-452-53,
2- प्रसाद, डॉ0 ईश्वरी; भारतीय मध्य युग का इतिहास, पृ. 126,
3- मजूमदार, आर.सी.; स्ट्रगल फॉर इम्पायर, पृ.-111,
4- मिनहाज सिराज; तबकाते नासिरी, रैवर्टी, भाग-1, पृ.-468-69,

राजपूतों की उत्तरी-पश्चिमी सीमा नीतिः-

ग्यारहवीं एवं बारहवीं शताब्दी में राजपूतों की स्थिति अत्यन्त अनिश्चित थी । वे उत्तर-पश्चिम सीमा की ओर से आने वाले खतरे को कभी भी भली-भाँति समझ नही पाए । इसके अतिरिक्त लगभग इसी समय कुछ तुर्की योद्धाओं एवं विजेताओं का भी प्रादुर्भाव हुआ जो सैन्य कला में पारंगत तथा इस्लामी उत्साह से भरे हुए थे । वे फारसी साम्राज्यवाद की महत्त्वाकांक्षा से प्रेरित थे और इनका सामना परम्परागत युद्ध प्रणाली को अपनाने वाले राजपूत योद्धा नहीं कर सके ।[1] इसके अतिरिक्त राजपूत राजाओं में आक्रामक अथवा प्रतिरक्षात्मक नीति का भी अभाव था । राजपूतों ने उत्तर-पश्चिम सीमा की सुरक्षा का कोई सुदृढ़ प्रयत्न नहीं किया, जिसके कारण विदेशी आक्रमणों का क्रम निर्बाध गति से होता रहा ।

महमूद गजनवी द्वारा बार-बार आक्रमण करने के बावजूद राजपूत शासकों ने उत्तर-पश्चिम सीमा की सुरक्षा का कोई प्रयत्न नही किया।मुहम्मद गोरी के आक्रमण के समय भी राजपूत उतने ही असंगठित थे जितने ग्यारहवीं सदी के प्रारंभ में ।[2] वास्तव में मुस्लिम आक्रमण के समय भारत छोटे-छोटे स्वतंत्र राज्यों में विभक्त था । इन राज्यों के शासक साम्राज्य-विस्तार की भावना से अपने पड़ोसी राज्यों से संघर्ष में लिप्त थे । वे एक दूसरे के पतन में ही अपना गौरव समझते थे । इन कारणों से उनमें सदैव परस्पर वैमनस्य रहता था । हर्ष के मृत्योपरान्त भारत में कोई ऐसी केन्द्रिय शक्ति नही रह गई थी जो इन असंगठित राजपूतों को एक कर सके । ऐसी परिस्थिति में भारत की उत्तरी-पश्चिम सीमा की सुरक्षा का प्रबन्ध करना कोई भी शासक अपनी जिम्मेदारी नही समझता था ।उत्तर -पश्चिम सीमा की ओर से जिस राज्य पर आक्रमण होता था वही राज्य इन वाह्य आक्रान्ताओं

1- सरन, पी.- दि प्राविन्शियल गवर्नमेंट आफ दि मुगल्स- पृ.-14-16,

2- श्रीवास्तव, ए.एल.: दिल्ली सुल्तनत- पृ.- 334-35,

का सामना करता था । अन्य शासक तब तक निष्क्रिय रहते थे जब तक उन पर भी न आक्रमण हो । यही इन राजाओं की भारी त्रुटि थी । किन्तु फिर भी इन राजाओं ने जितना विरोध कर सकते थे, उतना तो किया ही । जैसा कि, डॉ॰ ए.एल. श्रीवास्तव यह लिखते हैं कि, "यदि हम अपने देश की एशिया तथा यूरोप के उन देशों के भाग्यों से तुलना करें, जिन्होंने अरब तुर्क आक्रान्ताओं के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया तो हमें अपने पूर्वजों की सराहना करनी पड़ेगी जिन्होंने दीर्घकाल तक उन शत्रुओं के विरूद्ध जिन्होंने सरलता से विश्व के तीन महाद्वीपों पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया था, डट कर संघर्ष किया ।"[1]

1- श्रीवास्तव, ए.एल.: दिल्ली सुल्तनत- पृ.-335,

अध्याय - 2

मध्य एशियायी पृष्ठभूमि

(क) मध्य एशियायी राज्य ।

(ख) मंगोलो का इतिहास ।

अध्याय-2

(क)

मध्य एशिया

दिल्ली एवं आगरा सुल्तानों की उत्तरी पश्चिमी सीमा नीति के संदर्भ में मध्य एशिया के इतिहास का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है । क्योंकि दिल्ली सल्तनत् का इतिहास सदैव यहाँ से प्रभावित होता रहा । मध्य एशिया में सर्व प्रथम गजनवियों एवं सल्जूकों का वंश सर्वाधिक उत्कर्ष पर था । गजनी का शासक महमूद मुस्लिम इतिहास का सर्वप्रथम सुल्तान था ।[1] उसकी फारस, ट्रांसआक्सियाना एवं भारत विजय से स्पष्टहै कि सच्चे अर्थों में वह इस उपाधि का अधिकारी है । दूसरी ओर सल्जूक वंश में दो महान सुल्तान उत्पन्न हुए : मलिक शाह[2] (1072-92 ई॰) एवं संजर (1117-57ई॰) । गजनवी एवं सल्जूक मूल रूप से तुर्क शासक वर्ग से थे और फारसी संस्कृति के पोषक थे ।

मध्य एशिया के इतिहास की सबसे महत्वपूर्ण बात गोरखान, ख्वारिज्म तथा गोर राज्य का उत्थान तथा खुरासान राज्य के लिए उनका अन्तिम संघर्ष था ।[3]

गोरख़ान राज्य की स्थापना:

यह पूर्वी मंगोलिया की खिता जन जाति की एक शाखा थी ।[4] खिता जन जाति ने तंग वंश के पतन के पश्चात् 938 ई॰ सन् में चीन के पेकिंग नगर को अपनी राजधानी बनायी । इन लोगों ने चीनी संस्कृति को अपना लिया था । परन्तु 1114 ई॰ में उत्तरी मंचूरिया की एक किन नामक जनजाति ने आक्रमण

1- हबीब निजामी: दिल्ली सुल्तनत, भाग- 1, पृ॰-31,

2- गिबन: "डिक्लाइन एण्ड फॉल आफ दि रोमन इम्पायर," अध्याय-57,

3- हबीबुल्ला: ए0 बी0 एम0, भारत में मुस्लिम राज्य की बुनियाद, पृ॰-20

4- हबीब निजामी: दिल्ली-सुल्तनत, भाग-1, पृ॰-33,

कर पेकिंग पर अधिकार कर लिया । किंतु कुछ खिताइयों ने इनका आधिपत्य स्वीकार नहीं किया । खिता राजवंश का एक व्यक्ति येह-लू-ता-शिह अपने कुछ अनुयायियों सहित भागकर बेशबालिग के ऐगुर शासक की शरण में पहुँचा । यहाँ उसने एक सेना संगठित की और वह विजय अभियान पर निकल पड़ा । उसने वर्ष के भीतर ही एक ऐसे साम्राज्य की स्थापना की जो जनगरियान मरूभूमि से भारत वर्ष की सीमा तक विस्तृत था । मुस्लिम इतिहासकारों ने इन्हें करा-खिता (काले खिताई) की संज्ञा दी है ।[1] यही करा-खिता शासक गोर खान कहलाते थे । 1137 ई. में उन्होंने समरकंद पर आक्रमण किया और इसी समय संजर के अधीनस्थ शासक पर निर्णायक विजय प्राप्त की ।[2] पाँच वर्ष उपरान्त संजर ने पुनः समरकंद के शासक अहमद खाँ को पराजित किया । गोर खाँ के प्रदेशों में बसी हुई कुछ जनजातियों को लूटकर संजर ने गोरखान शासक से भी संघर्ष किया । प्रोफसर-हबीबुल्ला इस जनजाति का नाम कारगुल मित्र लिखते हैं ।[3] गोर खान सम्राट ने शीघ्र ही जक्सारटीज पार किया और आगे बढ़कर सुल्तान संजर को चारों ओर से घेर लिया । जो युद्ध हुआ वह संजर के जीवन की सबसे बड़ी पराजय थी । लगभग 30,000 सैनिक मारे गये और केवल थोड़े से अनुयायियों के साथ भाग कर उसने जान बचाई ।[4] इस पराजय से उसे पूरे ट्रांसआक्सियाना से हाथ धोना पड़ा। किंतु गोर खान ट्रांस आक्सियाना में अपना प्रत्यक्ष शासन स्थापित नहीं कर सके । वरन वे खिराज से ही संतुष्ट हो गये ।[5] अग्रिम 50 वर्षों तक उन्होंने मध्य एशिया की राजनीति में अपने को प्रमुख बनाये रखा । इसी बीच गज्ज तुर्कों ने अपनी स्थिति को सुदृढ़ किया और 1152 ई.में सुल्तान संजर को बुरी तरह पराजित कियाऔर उसे बन्दी बना लिया ।[6] 1156ई.सन में संजर कारागार से भागने में सफल हुआ

1- आर्थर वेली:इंट्रोडक्शन टू दि ट्रैवेल्स आफ ऐन आल्केमिस्ट, 2,
2- बार्टोल्ड: तुर्किस्तान, पृ.-323,
3- हबीबुल्ला,ए.बी.एम. : भारत में मुस्लिम राज्य की बुनियाद पृ. 19,
4- इब्नुल असीर:कमीलुत तवारीख,x1,पृ.-281-82,
5- हबीब एवं निजामी: दिल्ली सुल्तनत, पृ.-34,
6- हबीब एवं निजामी: दिल्ली सुल्तनत, पृ.-34,

किंतु 1157 ई॰ में ही उसकी मृत्यु हो गई । शीघ्र ही गोर-खान सर्वशाक्तिमान हो गये । उनकी सहायता से तुर्किस्तान के मलिकों ने एक दूसरे कादमन किया । इस प्रकार गोर खान उन सबका शासक बन बैठे । स्वयं गोरखानों ने आक्सस नदी पार कर बल्ख, तिर्मिज, आमू, तालिकान, क्जखाना, गर्जिस्तान तक लूटमार की । ट्रांस आक्सियाना, फरगना, ख्वारज्म यहाँ तक की खुरासान के शासकों से उन्होंने उपहार प्राप्त किया । गोर एवं बामियान को छोड़कर शेष सभी सीमांत क्षेत्र के इस्लामी राज्य गोर खानों के अधीन आ गए ।[1] इस प्रकार गोरखान मध्य एशिया में अत्यधिक प्रभाव शाली हो गए ।

ख्वारिज्म साम्राज्य:-

ख्वारिज्म साम्राज्य का संस्थापक सुल्तान संजर को दास नुश्तगीन था किंतु उसे सुल्तान कुत्बुद्दीन के समय तक मुक्ति न मिली । ख्वारिज्म की वास्तविक महत्ता का संस्थापक आटसिज [कुत्बुद्दीन का पुत्र] था ।[2] यह भी प्रारम्भ में संजर का स्वामिभक्त जागीरदार था । इससे संजर के दरबारियों ने ईर्ष्यावश 1138 ई॰ में खुला विद्रोह करा दिया । संजर ने उसे पराजित कर अपने भतीजे सुलेमान को उसके पद पर नियुक्त किया ।[3] संजर के वापस लौटते ही आट्सिज ने सुलेमान पर आक्रमण करके उसे ख्वारज्म से बाहर निकाल दिया । जब 1142 ई॰ में संजर करा-खिता द्वारा पराजित हुआ तो आट्सिज ने इस अवसर का लाभ उठाकर बल्ख नगर लूटा और वहाँ भीषण रक्तपात किया और इसी समय वह स्वतन्त्र शासक बन गया ।[4] किंतु इस अवसर पर भी आट्सिज को कराखिताइयों का खिराज गुजार बनकर रहना पड़ा[5] और वह प्रतिवर्ष तीस हजार सोने की दीनारें उन्हें देने के लिए बाध्य हुआ । इसके बाद भी आट्सिज का कई बार संजर

1- सिराज, मिनहाज: तबकाते नासिरी, पृ॰-328-29,
2- हबीबुल्ला, ए॰ बी॰ एम॰: भारत में मुस्लिम राज्य की बुनियाद, पृ॰-20,
3- इब्नुल असीर: कमीलुत तवारीख, xI, पृ॰-168,
4- हबीब एवं निजामी: दिल्ली सुल्तनत, पृ॰-37,
5- हबीब एवं निजामी: दिल्ली सुल्तनत, पृ॰-35,

से संघर्ष हुआ । और संजर ने उसे प्रत्येक बार पराजित करने के बावजूद क्षमा कर दिया । अपने जीवन के अंतिम वर्षों में भी आट्सिज अपने राज्य की सीमा बढ़ाने में लगा रहा । सन् 1156 ई॰ में अपनी मृत्यु के पूर्व उसने जंद (JAND) और मनकिस्लग (MANKISLAGH) को अपने राज्य का अंग बना लिया ।[1] पर गज्ज लोगों ने खुरासान की ओर बढ़ने नहीं दिया ।

यद्यपि आट्सिज ने अपने ज्येष्ठ पुत्र ईल-अर्सलान" को उत्तराधिकारी घोषित किया, किंतु उसके छोटे पुत्र सुलेमान शाह ने इसका विरोध किया । ईल अर्सलान ने उसे बन्दी बना लिया । इतना ही नहीं ईल अर्सलान ने अपने पिता का अनुसरण करते हुए संजर से अपने सिंहासनारोहण का अनुमोदन और ईराक के सेल्जुक शासक अताबेक गियासुद्दीन से मान्यता प्राप्त कर लिया । 1158 ई॰ में ईल अर्सलान ने समरकन्द पर प्रथम बार आक्रमण किया पर यह आक्रमण असफल रहा । 1162 में वह दिहिस्तान को अपने राज्य में मिलाने में सफल हुआ ।[2] 1159 ई॰ में कारलुगों और समरकन्द के खान के मध्य संघर्ष छिड़ गया । ईल अर्सलान ने इसमें मध्यस्थता की । पर उसके इस कदम ने समरकन्द के खान का पक्षपात करने के कारण कराखिताइयों को रूष्ट कर दिया । अब ईल अर्सलान एवं कराखिता शासक के मध्य संघर्ष छिड़ गया । उसने वार्षिक कर देना बन्द कर दिया । इसलिए 1172 ई॰ में कराखिताई शासक ने ईल अर्सलान पर आक्रमण कर दिया । आक्सस नदी पर स्थित अमूया नगर के युद्ध में ईल अर्सलान की सेना पराजित हो गई । अगस्त 1170 ई॰ में ख्वारज्म वापस आते समय ईल अर्सलान की मृत्यु हो गयी ।[3] प्रो॰ हबीबुल्ला ईल अर्सलान की पराजय पर टिप्पणी करते हुए लिखते हैं कि: यह घटना इस बात की प्रबल स्मारक थी कि मध्य एशिया में कोई साम्राज्य तब तक नहीं स्थापित किया जा सकता जब तक वहाँ की विधर्मी शक्ति पूर्णतः न कुचल दी जाय । अब से ख्वारिज्म ने इस उद्देश्य की पूर्ति करने वाली नीति का अनुसरण आरम्भ कर दिया ।[4]

1- बार्टोल्ड: तुर्किस्तान, पृ॰-333,
2- जुवैनी: तारीखे जहाँकुशा, अनु॰ ब्वायल, पृ॰-356-57,
इब्नुल असीर: कमीलुत तवारीख, xi, पृ॰-168,
हबीबुल्ला, ए॰बी॰एम॰: भारत में मुस्लिम राज्य की बुनियाद, पृ॰-21,

ईल अर्सलान की मृत्यु के पश्चात् उसका छोटा पुत्र सुल्तान शाह गद्दी पर बैठा जबकि शासन की बागडोर उसकी माता मलिका तुर्कां ने संभाला ।[1] सुल्तानशाह के बड़े भाई तक्ष ने जो जुंद में था, ने अपने हिस्से की मांग की । इस प्रकार दोनों भाइयों में संघर्ष आरम्भ हो गया । तक्ष ने विवशतः गोर खान शासक से मदद मांगी । सुल्तानशाह तक्ष और गोरखान की सेना से पराजित हो गया और भागकर शादयख के शासक मलिक मुअय्यद के यहाँ शरण ली । उधर दि० 1172 ई॰ में तक्ष ने ख्वारज्म के सिंहासन को सुशोभित किया । सुल्तान शाह और उसकी माता दिहिस्तान भाग गए । तक्ष ने दिहिस्तान पर अधिकार कर लिया । मलिक तुर्कां बंदी बना कर मार दी गई परसुल्तान शाह भागने में सफल रहा ।[2] वह गोरी भाइयों के पास पहुँचा । इन लोगों ने उसका सम्मान तो किया किंतु उसकी सहायता करने से इंकार कर दिया । इसी बीच तक्ष और कराखिताई शासकों के मध्य अनबन हो गई । इसका कारण कराखिताई राजदूतों का खारज्म शाह के प्रति अशिष्ट व्यवहार था ।[3] इस कारण गोरखानों ने सुल्तान शाह की सहायता करने का निर्णय लिया । किंतु इनकी संयुक्त सेना भी तक्ष को ख्वारज्म से निकालने में असफल रही ।[4] तक्ष ने ख्वारज्म राज्य को एक साम्राज्य में परिवर्तित किया । 1195 ई॰ में उसने खलीफा नासिर की सेना को पराजित कर उससे संधि कर ली । इस संधि के माध्यम से उसने खलीफा नासिर से ईराक, खुरासान और तुर्किस्तान का सुल्तान नियुक्त होने का फरमान प्राप्त कर लिया । शासन के अंतिम समयों में तक्ष ने अलमूत का विधर्मी राज्य नष्ट करने का निश्चय किया ,पर 1200 ई॰ में तर्शीज जाते हुए रास्ते में ही उसकी मृत्यु हो गई । इसी बीच चंगेज खाँ ने मंगोलिया लगभ संगठित कर लिया था । अतः तक्ष उसके भय से आतंकित था

1- हबीब एवं निजामी: दिल्ली सुल्तनत्, पृ॰-35,
2- हबीब एवं निजामी: दिल्ली सुल्तनत्, पृ॰-35,
3- हबीब एवं निजामी: दिल्ली सुल्तनत्, पृ॰-36,
4- हबीब एवं निजामी: दिल्ली सुल्तनत्, पृ॰-36,

और अपने उत्तराधिकारियों को यह परामर्श दे गया था कि वह गोर खान से मधुर सम्बन्ध रखे क्योंकि मंगोलों के विरूद्ध वे सुदृढ़ दीवार का काम कर सकते हैं।[1]

तक्ष के बाद ख्वारज्म साम्राज्य की गद्दी परअलाउद्दीन मुहम्मद सिंहासनारूढ़ हुआ । मिनहाजुस्सिराज के अनुसार, अलाउद्दीन ने गयासुद्दीन और शहाबुद्दीन से यह आग्रह किया कि वे उसे अपना पुत्र समझें, इतना ही नहीं उसने अपनी माता तुर्की खातून तथा शहाबुद्दीन के विवाह का प्रस्ताव भेजा ।[2] पर शहाबुद्दीन ने विवाह के प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया । इसका कारण अधिकांश इतिहासकार यह बताते हैं कि खातून भयंकर रूप से वीभत्स थी । जुवैनी लिखता है कि वह तुर्क जनजाति की थी जिन्हें कनकली कहते हैं । दया और अनुकम्पा उसके हृदय से कोसों दूर थी । वास्तव में उसकी क्रूरता अत्याचार, हिंसा और धूर्तता से ही सुल्तान के वंश का पतन हुआ ।[3] शहाबुद्दीन ने अलाउद्दीन मुहम्मद की महत्वाकांक्षा को देखते हुए खलीफा की प्रेरणा पर उस पर आक्रमण कर दिया । समस्त खुरासान उनके नियन्त्रण में आ गया और उसे शस्त्रहीन कर दिया गया । एक विशिष्ट गोरी सैनिक ने मर्व को भी विजित कर लिया । शाही परिवार के लोगों को विजित प्रान्तों का प्रशासक नियुक्त किया गया ।[4] गयासुद्दीन के चचेरे भाई और जामाता मलिक जियाउद्दीन को निशापुर दिया गया । मलिक ताजुद्दीन जंगी को जो दोनों सुल्तानों का चचेरा भाई था, सरख्श प्रदान किया गया । इतना ही नहीं गोरियों ने ख्वारज्म के राजस्व प्रशासन से सम्बन्धित प्रत्येक व्यक्ति की सम्पत्ति जब्त कर ली । 1200 ई॰ में एक बार पुनः ख्वारज्म शाह ने अपनी स्थिति दृढ़ की और शाहदयख तथा सरख्श पर अधिकार कर लिया । 1201 ई॰ में हेरात के कोतवाल इज्जुद्दीन मुर्गजी की प्रार्थना पर ख्वारज्म शाह

1- जुवैनी : तारीखे जहाँकुशा, भाग-2, अनु॰ ब्वायल, भाग-1, पृ॰-357,

2- हबीब एवं निजामी : दिल्ली सुल्तनत्, पृ॰-37,

3- जुवैनी : तारीखे जहाँकुशा भाग-2, अनु॰ ब्वायल, पृ॰-465-66,

4- हबीब एवं निजामी : दिल्ली सुल्तनत्, पृ॰-33,

ने उससे संधि कर ली । किंतु ख्वारज्म शाह की यह प्रगति गोर शासक शहाबुद्दीन को खटकने लगी, अतः एक बार पुनः उसने निशापुर के विरूद्ध कूच किया । ख्वारज्म शाह अपनी स्थिति को देखते हुए प्रत्यक्ष युद्ध के लिए नहीं आया[1] और अपनी राजधानी वापस चला आया । पर इस समय भी उसने खुरासान का कोई प्रदेश समर्पित करने से अस्वीकार कर दिया । उधर शहाबुद्दीन ने इस पर अधिकार कर लिया और वहाँ के नागरिकों की सम्पत्ति को जब्त कर लिया । जुवैनी लिखता है कि गोरियों के इन कृत्यों ने जनता का मन पूर्णतः उनके विपरीत कर दिया और वह ख्वारज्म शाह की इच्छुक हो गई ।[2] शहाबुद्दीन ख्वारज्म शाह के विरूद्ध और कोई कदम उठा पाता, इसके पूर्व ही उसे वापस आना पड़ा क्योंकि 13 मार्च 1203 ई. को गयासुद्दीन की मृत्यु हो चुकी थी । शहाबुद्दीन ने गजनी तथा भारतीय साम्राज्य पर अपना आधिपत्य रखा तथा गयासुद्दीन का पैतृक प्रदेश उसके उत्तराधिकारियों में वितरीत कर दिया । पर यह विभाजन न्यायोचित नहीं था ।[3]

शहाबुद्दीन जिसने अब मुईजुद्दीन मुहम्मद बिन शाम की उपाधि धारण कर ली थी ने अपने को गजनी एवं भारत में केन्द्रित किया । इस अवसर का लाभ उठाते हुए ख्वारज्म शाह ने मर्व पर अधिकार कर लिया और खरंग का सर काट कर ख्वारज्म भेज दिया । ख्वारज्म शाह हेरात की ओर बढ़ा किंतु वहाँ के प्रशासक अलप गाजी ने उससे संधि कर ली और वह हेरात देने को तैयार हो गया । इस संधि को सुनकर मुईजुद्दीन बहुत नाराज हुआ और संधि को अस्वीकार कर दिया । आगे बढ़कर उसने ख्वारज्म की राजधानी परअधिकार करना चाहा किंतु ख्वारज्म शाह ने शीघ्र ही मरूभूमि के रास्ते वापस आकर मुईज्जुद्दीन को आश्चर्यचकित कर दिया । फिर भी मुईजुद्दीन ने "धर्म युद्ध" का नाम देकर[4] लगभग 70 हजार सैनिकों को आक्सस की सहायक नदी नुजवार के निकट एकत्रित कर लिया । दूसरी ओर ख्वारज्म शाह ने गोर खान तथा समरकन्द के शासक से अपनी सहायता की याचना की।[5]

1- हबीब एवं निजामी: दिल्ली सुल्तनत, पृ.-37,
2- जुवैनी= तारीखे जहाँकुशा, भाग-2, अनु. ब्वायल, भाग-1, पृ.-319,
3- हबीब एवं निजामी: दिल्ली सुल्तनत, पृ.-37,
4- हबीब एवं निजामी= दिल्ली सुल्तनत, पृ.-38,
5- हबीब एवं निजामी: दिल्ली सुल्तनत, पृ.-38,

दोनों ही शासकों से उसे स्वीकारात्मक उत्तर मिला । मुईनुददीन ने यह समाचार सुनकर पीछे भागना शुरू किया और ख्वारज्मी सेना ने उसका पीछा कर लिया । हजार अस्थ नामक दुर्ग के निकट लड़ने के लिए मुईजुददीन बाध्य हुआ और बुरी तरह पराजित हुआ । आगे के युद्ध का वर्णन करते हुए मिनहाज लिखता है कि बल्ख के संघर्ष में सुल्तान मुईजुददीन ने विधर्मियों {कराखिताइयों} से धर्म युद्ध किया। विश्वसनीय साक्षियों का कथन है कि सुल्तान इतनी दृढ़ता से लड़ता रहा कि उसका शुभ छत्र बाणों से वैसे ही बिंध गया जैसे शाही की पीठ पर कांटे, किंतु उसने किसी भी परिस्थिति में मुख नहीं मोड़ा । अंत में ऐबक जोगी नामक दास ने उसके घोड़े की रास पकड़ ली और उसे अन्दखुद के दुर्ग की ओर खींच कर ले गया ।[1] खिताई सैनिकों ने उस दुर्ग को घेर लिया और विजय प्राप्त की । पर अभी भी भाग्य मुईजुददीन के साथ था । तथाकथित खिताई सेना में केवल दस हजार खिताई सैनिक थे, शेष सेना मुसलमान मलिकों की टुकड़ियों से बनी थी जिन्हें स्वयं की इस बात की चिंता थी कि व्यक्तिगत रूप से मुईजुददीन को कोई हानि न पहुँचे । खिताई सेनापति उस्मान हनीक् से यहसमझौता हो गया कि मुईजुददीन अपनी सारी सम्पत्ति उसे सौंपकर गजनी वापस चला जाएगा ।[2]

ख्वारज्म शाह भी कराखिताइयों से नाराज हो गया था । अतः उसने मुईजुददीन के पास गजनी में यह संदेश भेजा कि वह उसकी मित्रता का इच्छुक है ।[3] मुईजुददीन के प्रस्ताव स्वीकार कर लिया । उसने गोरखान से संघर्ष करने के लिए निश्चय किया और इसके लिए अपनी सेना को तैयार किया । परन्तु दुर्भाग्यवश 1206 ई. में वह सिंध के निकट दमयक नामक स्थान पर कुछ इस्माइलों लोगों द्वारा मार डाला गया । मुईजुददीन के मरते ही गजनी साम्राज्य भयंकर अराजकता का शिकार हो गया । इस अराजकता का लाभ उठाकर ख्वारिज्म शाह अलाउद्दीन ने धीरे-धीरे उन प्रदेशों को ख्वारिज्म साम्राज्य में मिलाना प्रारम्भ कर दिया ।

1- सिराज, मिनहाज: तबकाते नासिरी, पृ.-122-23,
2- हबीब एवं निजामी: दिल्ली सुल्तनत, पृ.-39,
3- हबीब एवं निजामी: दिल्ली सुल्तनत, पृ.-39,

गोर साम्राज्य-

गोर पहाड़ी घाटियों के मध्य स्थित एक छोटा सा राज्य था जिनका मध्य भाग आधुनिक अफगानिस्तान है । मिनहाज ने इसे पाँच विशाल पर्वत मालाओं से घिरा बताया है ।[1] ये पर्वतमालाएं जैसे-जैसे पूर्व में हिंदूकुश की ओर बढ़ती हैं वैसे-वैसे उनकी ऊँचाई बढ़ती जाती है । इन पहाड़ियों ने जहाँ गोर को अजेय बनाया वहीं इसे वाह्य जगत से उसके सांस्कृतिक तथा व्यापारिक सम्पर्क के मार्ग बिल्कुल बंद कर दिए । गोर मुख्यत: कृषि प्रधान क्षेत्र था । उसकी घाटियों के दोनों किनारों पर आज भी पतझड़ वाले जंगल हैं जो शहतूत, अखरोट, तथा अंगूर के पेड़ों और बेलों से ढके हैं । वहाँ कोई प्रमुख नगर नहीं था । केवल किसानों की बस्तियाँ थी और मैदानी प्रदेशों के विशिष्ट लक्षण थे अर्थात् दुर्ग तथा मीनारें थीं जिनमें एक दुष्ट प्रकृति वाले अनुशासनहीन और अज्ञानी मनुष्य स्वयं की रक्षा कर सकते थे ।[2] अश्व पालन मुख्य व्यवसाय था । हिरात तथा सीस्तान के बाजारों में गोर दासों की आपूर्ति के लिए प्रसिद्ध था ।[3]

गोर पहाड़ियाँ धातु उत्पादन के लिए विख्यात थीं । यहाँ लोहा प्रचुर मात्रा में पाया जाता था । इस कारण यहाँ के निवासी हथियारों और युद्धीय उपकरणों के उत्पादन के लिए प्रसिद्ध थे ।[4] ये लोग हथियारों का निर्यात, पड़ोसी देशों को किया करते थे । संभवत: लौह प्रचुरता के कारण ही गोर का मुख्य दुर्ग पुले आहनगरान ﴾लुहारों का पुल﴿ कहलाता था । इस प्रकार मध्य युगीन सामरिक प्रणाली के दो सर्वाधिक महत्वपूर्ण आवश्यकताएं अर्थात् घोड़े और हथियार गोर साम्राज्य में उपलब्ध थे । इस कारण गोर धीरे-धीरे अपनी प्रगति पर अग्रसर हो गए । उन्होंने अपने पहाड़ी बंधन काट डाले और वाह्य दुनियां से सम्पर्क स्थापित किया ।

1- सिराज, मिनहाज: तबकाते नासिरी, अनु. रैवर्टी, पृ.-318,

2- सेंट्रल एशियाटिक जर्नल, भाग-6 ﴾1961﴿, पृ. 118, सी.ई. वास्वर्थ का लेख- दि अर्ली इस्लामिक हिस्ट्री आफ गोर,

3- सेंट्रल एशियाटिक जर्नल, भाग-6 ﴾1961﴿, पृ. 118, सी.ई. वास्वर्थ का लेख- दि अर्ली इस्लामिक हिस्ट्री आफ गोर,

4- सेंट्रल एशियाटिक जर्नल, भाग-6 ﴾1961﴿, पृ. 118, सी.ई. वास्वर्थ का लेख- दि अर्ली इस्लामिक हिस्ट्री आफ गोर,

चूँकि गोर के शासकों के एक पूर्वज का नाम शन्सब था इसलिए इतिहासकार मिनहाज सिराज ने उन्हें शंसबानी नाम दिया है।[1] गोर के शासक पहले एक पहाड़ी किले के नगण्य सरदार थे। उन्होंने गजनवी वंश के शासक बहराम के शासनकाल में ख्याति प्राप्ति की। इससे गोरियों का मनोबल अधिक बढ़ गया और उन्होंने अपनी सत्ता के प्रमुख केन्द्र मियान देश के बाहर अपने प्रभाव का विस्तार प्रारम्भ किया। किंतु शीघ्र ही यहप्रगति अवरूद्ध हो गई। जब कुतबुद्दीन हसन एक विद्रोह का दमन कर रहा था, उसकी हत्या कर दी गयी।[2]

कुतबुद्दीन हसन की मृत्योपरान्त उसका पुत्र ईजुद्दीन हुसेन (1110-46ई.) गोर राज्य की गद्दी पर बैठा। इसका काल गोर इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है क्योंकि जहाँ एक ओर सल्जूकियों एवं गजनवियों के मध्य गोर राज्य की प्रभुता सुदृढ़ हुई, वहीं दूसरी ओर उसके पुत्र मध्य एशिया के इतिहास में "सातसितारे" के नाम से प्रसिद्ध हुए।[3] इस क्षेत्र की राजनीति में एक ऐसा महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुआ जिसके फलस्वरूप गोर की राजनीतिक स्थिति में विस्तार हुआ और गजनवी साम्राज्य संकुचित होकर दक्षिण-पूर्वी अफगानिस्तान और पंजाब तक सीमित रह गया।[4] गजनवी शासक इब्राहीम के बाद गजनी की प्रतिष्ठा कम हुई और सल्जूकियों की शक्ति में विस्तार हुआ। 1107-8 ई. में संजर ने गोर पर आक्रमण कर दिया और ईजुद्दीन बंदी बना लिया गया। इतने पर भी गोरियों ने सल्जूकियों से महत्त्वपूर्ण सम्बन्ध बनाये रखा और उन्हें अनेक प्रकार के बहुमूल्य उपहार भेजकर उनकी अधीनता स्वीकार की।[5]

ईजुद्दीन हुसेन की मृत्यु के साथ ही गोर साम्राज्य उसके सात पुत्रों में विभाजित हो गया। सैफुद्दीन को इस्तिया मिला। कुतबुद्दीन मुहम्मद को वर्शाद

1- सिराज, मिनहाज: तबकात-ए-नासिरी पर हबीबी की टीका, भाग-2, पृ.-299-305,
2- हबीब एवं निजामी: दिल्ली सुल्तनत, पृ.-132,
3- हबीब एवं निजामी: दिल्ली सुल्तनत, पृ.-132,
4- हबीब एवं निजामी: दिल्ली सुल्तनत, पृ.-132,
5- हबीब एवं निजामी: दिल्ली सुल्तनत, पृ.-132,

मिला यहाँ उसने फीरोजकोह नामक नगर बसाया । नासिरुद्दीन मुहम्मद को मदीन प्राप्त हुआ, अलाउद्दीन हुसैन को वजीरिस्तान मिला, बहाउद्दीन साम को सांगा प्राप्त हुआ, यह मियानदेश का मुख्य नगर था और फखरूउद्दीन मसूद को काशी मिला । विभाजन के शीघ्र बाद कुतबुद्दीन हसन ने विद्रोह कर दिया जो कि अपने हिस्से से संतुष्ट नहीं था । अतः नाराज होकर वह गजनवी शासक बहराम शाह के दरबार में चला गया । बहराम ने कूटनीतिक चाल चलते हुए कुतबुद्दीन से अपनी पुत्री का विवाह कर दिया ।[1] किंतु बहराम के दरबारियों के षड्यन्त्र के कारण यह सम्बन्ध अधिक दिनों तक स्थाई वह रह सकें । षड्यन्त्र कारियों ने बहराम को यह विश्वास दिलाया कि गोरी राजकुमार उसके हरम पर कुदृष्टि रखता है । इससे बहराम बहुत अधिक क्रोधित हुआ और कुतबुद्दीन को विष पिलवा कर उसकी हत्या करवा दी ।[2] इस घटना ने शंसबानी राज्य में एक मोड़ उत्पन्न किया और "भ्रातृप्रेम" का जागरण उसकी मुख्य विशेषता थी कुतबुद्दीन के भाई सैफुद्दीन सूरी ने बहराम से बदला लेने का निश्चय किया । एक विशाल सेना के साथ उसने गजनी पर आक्रमण किया और बहराम को नगर से मार भगाया ।[3] सैफुद्दीन ने स्वयं को सुल्तान घोषित कर गजनी का सिंहासन अधिकृत कर लिया । ऐसा प्रतीत होता है कि गजनी की जनता ने दिखावे के रूप में सैफउद्दीन के प्रति निष्ठा भी प्रदर्शित की । यह देखकर उसने अपने भाई बहा-उद्दीन साम के नेतृत्व में अपनी सेना गोर भेज दिया । जैसे ही शरद ऋतु का आरम्भ हुआ और गजनी तथा गोर के मध्य वर्षा के कारण संचार साधन कट गये वैसे ही 1148 में बहराम पुनः जनता के आमन्त्रण पर गजनी आया । जनता ने बहराम का साथ दिया । निःसहाय सैफुद्दीन गिरफ्तार कर लिया गया । उसका मुंह काला करके एक बूढ़ी गाय पर घुमाया गया, तत्पश्चात्,उसकी हत्या

1- हबीबुल्ला, ए०बी०एम०, भारत में मुस्लिम राज्य की बुनियाद,पृ॰ 22

2- वही, पृ॰ -22,
हबीब निजामी: दिल्ली सुल्तनतभाग-1, पृ॰ -132,

3- हबीबुल्ला, ए०बी०एम०, भारत में मुस्लिम राज्य की बुनियादपृ॰ 22

कर दी गई ।[1] उसका सिर काट कर संजर के पास भेज दिया गया ।[2]

अपने भाई के प्रति इस प्रकार के दुर्व्यवहार की सूचना पाकर बहाउद्दीन साम तत्काल ही गजनी की ओर रवाना हुआ । किंतु दुर्भाग्यवश 1149 ई० में गजनी पहुँचने के पूर्व ही मार्ग में एक फोड़े से त्रस्त होने के कारण मर गया । बहाउद्दीन के अधूरे कार्य को सबसे छोटे भाई अलाउद्दीन हुसैन ने पूर्ण करने का संकल्प लिया । उसने गजनी पर आक्रमण कर भयंकर बदला लिया । बहराम शाह भागकर भारत आया जहाँ शीघ्र ही उसकी मृत्यु हो गई । अलाउद्दीन ने शहर को लूटकर इमारतों में आग लगवा दी जो सात दिन तक जलती रही और उसने पूरी आबादी को कत्लेआम करवा दिया ।[3] इस अग्निकाण्ड से उसे "जहाँसोज" (विश्व भस्मक) का अवांछनीय उपनाम मिला ।[4] अब उसने "अस्सुल्तान अल मुअज्जम" अर्थात "महान सुल्तान" की उपाधि धारण की । उसके पूर्व समस्त शंसबानी शासक स्वयं को केवल मलिक या अमीर कहा करते थे । 1152 ई० में अलाउद्दीन ने सल्जूकियों को खिराज देना बन्द कर दिया । इतना ही नहीं जब संजर आत्सिज के विद्रोह दमन में लगा हुआ था तब अलाउद्दीन ने अकारण बल्ख और हेरात पर अपना अधिकार जमा लिया । इन तीनों बातों से संजर उस पर नाराज हुआ और आक्रमण करके बन्दी बना लिया ।[5] किंतु उसकी वाक्पटुता से प्रसन्न होकर संजर ने उसे मुक्त करके गोर वापस भेज दिया । कुछ समय बाद संजर गज्ज जाति द्वारा बन्दी बना लिया गया । इसका लाभ उठाते हुए अलाउद्दीन ने बमियान, तुखरिस्तान, जारूम और बुस्त के जिले तथा मुरगाब नदी की घाटी में बसे हुए गरीजिस्तान को जीत लिया । हेरात के निकट तुलक को जीतकर उसने खुरासान पर भी

1- हबीब निजामी, दिल्ली सुल्तनत भाग-1, पृ०-133,
2- हबीबुल्ला, ए०बी०एम०, भारत में मुस्लिम राज्य की बुनियाद, पृ० 22
3- मिनहाज, पृ० 55 अनु० रैवर्टी, पृ० 114,
4- हबीबुल्ला, ए०बी०एम०, भारत में मुस्लिम राज्य की बुनियाद, पृ० 22
5- निजाम उर्जी: चहार माकला, पृ० -29, अनुवाद-ब्राउन-पृ० 65,

आक्रमण किया ।[1] किंतु गज्ज लोगों ने इस प्रसार पर नियन्त्रण कायम किया उन्होंने आलउद्दीन से बल्ख और तुखरिस्तान ले लिया और ऐतगीन ने हेरात पर अधिकार कर लिया । गोरी साम्राज्य के विस्तार ने उसे तीन भागों में विभाजित करदिया ।[2] प्रमुख शाखा ने फीरोजकोह को अपनी राजधानी बनाई और वहाँ से गोर काप्रशासन संभाला । इस शाखा का मुख्य ध्येय खुरासान की ओर प्रसार था । 1173-74 में गजनी पर गोरियों की एक दूसरी शाखा स्थापित हुई । यह शाखा भारत में प्रसार की ओर बढ़ी । बामियान पर गोरियों की तीसरी शाखा स्थापित हुई, जिसका अधिपति फखरूद्दीन मसूद हुआ । इसने आक्सस नदी के तट तक तुखारिस्तान बदख्शां, एवं शुग्नान पर राज्य किया ।[3] 1161 ई. में अलाउद्दीन जहाँसोज मर गया ।

अलाउद्दीन के पश्चात् उसका पुत्र सैफ्द्दीन मुहम्मद गद्दी पर बैठा । प्रो0 हबीबुल्ला इसे अलाउद्दीन का भाई बताते हैं ।[4] इसने एक बार पुनः हेरात को विजित कर लिया और मुऐय्यदों के आक्रमण से उसकी रक्षा की । किंतु गुजो को बल्ख से भगाने के प्रयास में उसकी मृत्यु हो गई । गजनी से वापस आकर अलाउद्दीन ने बहाउद्दीन के पुत्रों को संजाह का प्रान्तपति बनाया था । किंतु इन होनहारों की महत्त्वाकांक्षा एवं सुव्यवस्थित शासन देखकर अलाउद्दीन ने उन्हें गर्जिस्तान के एक दुर्ग में कैद कर दिया । अलाउद्दीन की मृत्यु के बाद सैफुद्दीन मुहम्मद ने इन्हें मुक्त किया । सैफुंद्दीन के बाद गयासुद्दीन {1163-1203} गद्दी पर बैठा । इस समय इसका छोटा भाई शहाबुद्दीन {1173-1206} जिसने बाद में मुईजुद्दीन की उपाधि धारण की तकीनाबाद का प्रान्तपति नियुक्त हुआ शहाबुद्दीन को यह आदेश मिला कि वह गजनी पर आधिपत्य स्थापित करें जिसे गज्ज लोगों ने अधिकृत कर लिया था । 1173-74 ई. में गजनी पर शहाबुद्दीन का अधिकार हो गया ।[5] और यह प्रदेश उसी को सौंप दिया गया । प्रो. हबीब लिखते हैं कि

1- सिराज, मिनहाज: तबकात-ए-नासिरी, पृ.-62,
2- हबीब एवं निजामी: दिल्ली सुल्तनत्, पृ.-130,
3- इब्नुल असीर:कमीलुत तवारीख, x1, पृ. 121, अनु. ब्राउन, चहार माकला, पृ. 71
4- हबीबुल्ला, ए.बी.एम.:भारत में मुस्लिम राज्य की बुनियाद, पृ.23,
5- सिराज, मिनहाज:तबकात-ए-नासिरी, अनु. रेवर्टी, पृ.-374,

यद्यपि शहाबुद्दीन का गजनी का अधीनस्थ राज्य बढ़कर एक साम्राज्य में परिवर्तित हो गया किंतु उसने सदैव अपने बड़े भाई को अपना अधिपति माना । गयासुद्दीन जो आदेश देताथा उसकावह सदैव पालन करता था ।[1] वार्टहोल्ट के अनुसार शहाबुद्दीन एवं गयासुद्दीन के नेतृत्व में गोरी राज्य एक विश्व शक्ति के रूप में विश्व के नक्शे पर उभरा ।[2]

1- "दि मुस्लिम युनिवर्सिटी जर्नल" अंक-1 जनवरी 1930 में प्रकाशित लेख, "शहाबुद्दीन आफ गोर,"

2- वार्ट होल्ड: टर्किस्तान डाउन टू दि मंगोल इन्वेज़न," पृ.- 338,

मंगोल

(ख)

प्राचीन काल में यायावरों की एक जनजाति जेक्सार्टीज नदी के पूर्व से उत्तरी चीन तक फैले विशाल मरूभूमि में निवसित थी । प्रो० मोहम्मद हबीब ने इसस्थान को शोषस्थली कहा है ।[1] भौगोलिक दृष्टि से यह पथरीली पहाड़ियों और आदिम बर्फ के बोझ से बनी थी ।[2] यहाँ निवसित एक विशेष प्रजाति को ही मंगोल कहा गया । मंगोल "मंग-कू" शब्द की व्युत्पत्ति है, जो चीनी, शब्द है, इसका अर्थ है वीर व साहसी । तीसरी शताब्दी ई. से इसका प्रयोग मिलता है । मुसलमान इतिहासकारों ने इन्हें तुर्क, मुगल तथा चीनी आदि नाम दिया है, जबकि यूरोपीय इतिहासकारों ने मंगोल और तारतार नाम दिया है ।[3] मंगोलों का प्रारम्भिक इतिहास मध्य-एशिया के किसी भी अन्य जनजाति के इतिहास के समान अस्पष्ट है ।

मंगोलों को इतिहासकारों ने भयंकर रूप से घृणित बताया है । समकालीन एवं बाद के सभी ग्रंथों में इनका रूपरंग, रहन-सहन, निम्न स्तरीय ही बताया गया है । इब्नुल असीर, जुवेनी, रसीदुद्दीन, कार्पिनी एवं हावर्थ तथा प्रॉडिन आदि मंगोलों की विशेषताओं का यह कह कर उल्लेख करते हैं कि वे पीली चमड़ी, ऊँची कपोलास्थि, चौड़े समतल चेहरे, खड़े काले बालों, वक्र नेत्रों, छोटी ठोड़ी, चौड़े मांसल ओठ, चमकती आँखों, बड़े कान और गोल खोपड़ी वाले थे ।[4] अमीर खुसरो जो स्वयं एक बार मंगोलों की गिरफ्त में आ गया था, उनके विषय में लिखता है: उनके देश की गर्म जलवायु के कारण उनकी चमड़ी सूर्य से झुलस कर पीले रंग की हो गई थी और बनावटके कारण वे भयावह प्रतीत होते थे ।[5] हिन्दुस्तान

1- हबीब निजामी, दिल्ली सुल्तनत, भाग-1, पृ.-45,

2- हबीब एवं निजामी: दिल्ली सुल्तनत भाग-1, पृ.-45,

3- तारीख-ए-रशीदी, अनु० इलियस एण्ड रॉस, पृ.-88-89,

4- हॉवर्थ= "हिस्ट्री ऑफ द मंगोल्स," भाग-4, पृ. 42

5- खुसरो, अमीर: किरानुस्सादैन, पृ. 93-95, अनु० एस०ए०ए० रिजवी, आदि तुर्क कालीन भारत, पृ० 288

की कुछ पिछड़ी जनजातियों की भाँति वे समस्त जानवरों छछूंदर, चूहे, नेवले इत्यादि का मांस खाते थे। भक्षणीय एवं अभक्षणीय मांस का अंतर वे नहीं जानते थे। मानव मांस भी खाते थे।[1] ऐसा प्रतीत होता है कि भयंकर गर्मी के बावजूद भी वे स्नान नहीं करते थे, महिलाएँ तो कभी भी स्नान नहीं करती थीं। कपड़े इतने गंदे रहते थे कि उसमें चीलर भरी रहती थी। यही कारण है किवेसदैव शरीर खुजलाते रहते थे और खुजली उनका सामान्य रोग था।[2] उनकी जीविका का मुख्य साधन मवेशी पालना, घोड़े की नस्ल बढ़ाना, शिकार करना और मछली पकड़ना था। कृषि लगभग अज्ञात थी। यही कारण है कि उन्हें सदा भ्रमणशील रहना पड़ता था। स्काइन ने अपनी पुस्तक "चाइनीज टर्किस्टान" में लिखा है कि दो महिलाएं साथ-साथ कार्य करते हुए 4-5 मिनट में एक तंबू लगा सकती हैं और 15 मिनट में उसे समेट सकती हैं। एक संपूर्ण परिवार मर्द, औरतें और मवेशी एक तंबू में रहते थे जिसके ऊपर धुआँ निकलने के लिए एक छेद होता था।[3] संपूर्ण समाज इकाइयों अर्थात् उलूसों में विभाजित था, जिनका सैनिक स्वरूप था। गोबी रेगिस्तान के उत्तर में "दादा" नामक "उलूस" अथवा मूल मंगोल जाति, रहती थी जिनके स्वामी अपने वंश का मूल कुबलई, प्रथम खा कान (का-आन अर्थात् सम्राट) से जोड़ते थे। इनके पूर्व में तातार प्रजाति और तातारियों के पूर्व में मंचू।

मंगोल स्वस्थ, स्वावलम्बी और आत्मनिर्भर थे। सहन शीलता उनकी मुख्यविशेषता थी। सर्दी-गर्मी, भूख-प्यास आदि के संदर्भ में उनमें विशेष सम्मिश्रण था। यदि उन्हें छेड़ा न जाय तो वह असाधारण रूप से मंद था, किंतु आवश्यकता पड़ने पर वह वाणों के समान तीव्र था। खाने योग्य पदार्थ के मिलने की स्थिति में वह एक महान भक्षक था, किन्तु बिना भोजन के भी वह कई दिन व्यतीत कर

1- यूल: सेर मार्कोपोलो, पृ. 30
हॉवर्थ: "हिस्ट्री ऑफ द मंगोल्स, चतुर्थ, पृ.-53,

2- हावर्थ: हिस्ट्री ऑफ द मंगोल्स, चतुर्थ पृ.-52,

3- स्काइन: "चाइनीज टर्किस्टान" उद्धरित प्रो० मोहम्मद हबीब, हबीब निजामी: दिल्ली सल्तनत, पृ.-113.

सकता था । कार्पिनी जो मुगलों के साथ रहा था, लगातार भूख से पीड़ित रहा और उनकी मितव्ययिता से आश्चर्य चकित हो गया ।[1] मंगोल समाज आपस में संघर्षरत रहने के कारण सैन्य कला में अत्यधिक निपुण हो गया था ।[2] अश्वारोहण, द्रुतगति से कूच करना, पीछे भागना, घात लगाकर आक्रमण करने का नियोजन, रात्रि के समय नक्षत्रों का अध्ययन, पद चिन्हों का पीछा करना, गुप्तचर्या इत्यादि । इतना हो नहीं सैन्य क्षेत्र में उनकी मुख्य विशेषता बदली परिस्थितियों में स्वयं को ढाल लेना है और वह सब कुछ सीख लेना है जो एक शत्रु सिखा सकता है । यही कारण है जहाँ अपने मूल निवास स्थान में उन्हें दुर्गों का ज्ञान तक नहीं था, वहीं उन्होंने शत्रु देश में बड़े-बड़े दुर्गों का विनाश आसानी से कर दिया । हॉवर्थ लिखते हैं कि मंगोल स्त्रियाँ भी युद्ध में भाग लेती थीं, किंतु भारतीय इतिहासकार उनके युद्ध में भाग लेने का जिक्र नहीं करते ।[3]

चंगेज खाँ की जन्म तिथि के विषय में बड़ा विवाद है । प्रो० मोहम्मद हबीब का इस विषय में टिप्पणी उचित प्रतीत होती है: तुर्क और चीनी अपने वर्ष बारह वर्षीय चक्रों में निर्धारित करते हैं और प्रत्येक वर्ष का नाम किसी जानवर के नाम पर रखा जाता है, "रौजतुस्सफा" का कथन है कि चंगेज उसी वर्ष चक्र के वर्ष में मरा जिसमें उसका जन्म हुआ था अर्थात् वह उस आयु तक जीवित रहा जो 12 के ही गुणनफल के बराबर थी । मिनहाजुस्सिराज के अनुसार जिस समय उसने खुरासान पर आक्रमण किया उस समय वह 55 वर्ष का था । चंगेज की रमजान 624 हि०/अगस्त-सितम्बर, 1227 में मृत्यु एक विश्व विख्यात घटना थी । यदि हम उसके जन्म का वर्ष 1163 ई० निर्धारित करें तो ऊपर लिखी दोनों शर्तें पूरी हो जाती हैं । अतः स्पष्ट है कि हावर्थ ने उसका जन्म वर्ष 1155 ई० निर्धारित कर भूल की है ।[4] चंगेज का जन्म ओमन नदी के तट पर दिलुम बोलदाक में हुआ था ।

1- ग्रॅाडिनः "दि मंगोल एम्पायर, इट्स राइज एण्ड लीगेसी," पृ०-274

2- हावर्थः हिस्ट्री ऑफ द मंगोल्स, चतुर्थ, पृ०-44,

3- हॉवर्थः हिस्ट्री ऑफ द मंगोल्स, चतुर्थ, पृ०-44,

4- हबीब, मोहम्मदः दिल्ली सुल्तनत, संपादक हबीब निजामी, पृ०-113,

इसका प्रपितामह कुबलई खाकान समस्त "दादा" जाति का प्रथम शासक था । चंगेज ने ही असभ्य मंगोलों को एक युद्धरत राष्ट्र के रूप में परिवर्तित किया । उसने उन्हें "ड्रेकन की कठोरता" से प्रशिक्षित किया तथा यस्सक नामक एक विधि संहिता दी । परिणामतः मंगोलों में प्रचलित अनेक कुख्यात दोष-हत्या, लूट और परस्त्रीगमन पूर्णतः समाप्त हो गया और वे एक महान विजेता के रूप में संसार के सामने आये ।[1] मंगोलों का नाम ही पूर्व और पश्चिम में आतंक फैलाने लगा । विकराल बाढ़ के समान उनके असंख्य झुण्ड मध्य एशिया[2] में अपने पर्वतीय घरों से रूस, टर्की ईरान, अफगानिस्तान और भारत कीओर फैल गये ।

मंगोलों की असाधारण सफलता के पीछे उनका सैनिक संगठन एवं युद्ध कला की पराकाष्ठता थी चंगेज खाँ ने एक स्थान विशेष के निवासियों को उनके तम्बुओं की संख्या के अनुसार विभाजित किया । दस तम्बुओं का समूह "आउल्स" दस "आउल्स" का समूह "उलुस" या "ओतक्स" तथा दस "ओतक्स" का समूह "आबोग" या गोत्र कहलाता था । इसी प्रकार सैनिक संगठन था । दस घुड़सवारों की इकाई "उरबन" कहलाती थी । दस "उरबनो" से एक "दोह" बनता था, जिसमें एक सौ सैनिक होते थे । दस "दोहों" से एक "मिन्जन" बनता था और दस "मिन्जनों" से मिलकर एक तुमन बनता था जिसमें दस हजार घोड़ों का सैन्यदल होता था । प्रत्येक इकाई के अलग-अलग अधिकारी थे । "तुमन" का नेतृत्व शाही घराने का राजकुमार करता था ।[3] अतः इस बात में संदेह नहीं कि भारत में मुगल शासकों द्वारा विकसित "मंसबदारी प्रथा" के बीच चंगेज खाँ के सैन्य संगठन में निहित थे। घोड़े मंगोलों के सर्वोच्च सम्पत्ति होते थे । उनके शस्त्रों में भाला, धनुष-बाण एवं तलवार प्रमुख थे । एक अन्य अस्त्र जिसे आँकड़ा कहा जाता था, इसका प्रयोग शत्रु को उसके घोड़े से नीचे खींचने हेतु किया जाता था ।[4] प्राडिन ने मंगोलों की संघर्ष

1- जुवेनी: ब्लादिमित्सोव्ह में "दि लाइफ ऑफ चंगेज खाँ," पृ.-160

2- वेम्बरी: "हिस्ट्री ऑफ बोखारा" पृ.-119-139,

3- क्राएक्स: "दि हिस्ट्री ऑफ चंगेज खाँ," पृ.-81-82,

4- क्राएक्स: "दि हिस्ट्री ऑफ चंगेज खाँ," पृ.-82,

शीलता के विषय में लिखा है: चंगेज के समय से ही भाई, चचेरे भाई और मित्र कंधे से कंधा मिलाकर लड़ते तथा युद्धाभ्यास में भी पराजय को अपयश मानते थे ।[1] गतिशीलता मंगोल सेना की सर्व प्रमुख विशेषता थी । गतिशीलता को ही ध्यान में रखते हुए वे अपने साथ किसी प्रकार की अनावश्यक वस्तु नहीं रखते थे । वे ऊँट के ऊन से बने तंबुओं में रहते थे जो चिकने और गंदे होते थे और कबीले की स्त्रियाँ उन्हें किसी भी क्षण गिरा सकती थीं । किलों दीवारों व मार्गों का वहाँ कोई अवशेष नहीं रह सकता था ।"[2] कैप्टेन लिड्डिल हार्ट लिखते हैं कि: मंगोलों ने युद्ध कौशल की अनिवार्यताओं को समझ लिया था जबकि उनकी व्यूह रचना सम्बन्धी व्यवस्था पूर्ण थी कि व्यूह रचना की उससे ऊच्च अवधारणा व्यर्थ थी।"[3] अपनें आक्रमण एवं पलायन दोनों में वे अपने शत्रुओं को युद्ध शक्ति की अपेक्षा अपने हलचल से ही किंकर्तव्यविमूढ़ कर देते थे । उनका पीछा करना खतरनाक था, क्योंकि पलायन के समयभी वे सिर के ऊपर से पीछे को तीर चलाने में निपुण होते थे । वे कृतिम पलायन, घेरने और अचानक आक्रमण करने की कला से परिचित थे,[4] साथ ही विभिन्न देशों से हुए युद्ध ने उन्हें अनुभवी और अजेय बना दिया था ।[5] साइक्स ने भी हिस्ट्री ऑफ पर्शिया में ऐसी ही युद्ध पद्वति का वर्णन किया है ।

मंगोल विजय के उपरान्त लूट में विशेष विश्वास रखते थे । ट्रांसआक्सियाना के मुख्य शहरों का पूर्ण विनाश इन लूटेरों की अमानवीय नृशंसता प्रकट करता है । विलियम एर्सकाइन ने इनकी बर्बरता के विषय में लिखा है: उनकी एकमात्र योजना थी, नगरों को मरुभूमि में परिवर्तित करना और कोई भी मनुष्य जीवित न छोड़ना, जो उनके पीछे सिर उठा सके । अपने हत्याकाण्डों की, जिनमें आयु-लिंग एवं परिस्थितियों का कोई ध्यान नहीं रखा जाता था, बर्बरता द्वारा वे अपने आस

1- प्रॉडिन: "दि मंगोल इम्पायर," पृ.-44,

2- "तारीख-ए-रशीदी," तृतीय खण्ड, पृ.-59,

3- हार्ट, लिड्डिल, एन्सा० ब्रिटा, पन्द्रहवाँ, पृ.-705-70,

4- हावर्थ: "हिस्ट्री ऑफ दि मंगोल्स," चतुर्थ, पृ.-84-85,

5- साइक्स: "हिस्ट्री ऑफ पर्शीया द्वितीय, पृ.-85,

पास आतंक औरभय फैलादेते थे ।[1] एक बार उन्होंने एक मनुष्य के कान में पिघली हुई चाँदी टपका कर मार डाला और बोखारा, समरकन्द और बल्ख की लूट में उन्होंने ऐसे भयानक कुकृत्य किये कि उनकी कल्पना नहीं की जासकती । जुवेनी कहता है कि तिरमिज की लूट में एक बन्दी स्त्री ने अपनी हत्या के लिए उद्धृत व्यक्ति को एक मूल्यवान मोती जिसे उसने निगल लिया था, देने का वायदा करके दया की भीख माँगी । निर्दयी मंगोल ने उसकी देह को फाड़ डाला और चूँकि मोती वास्तव में उसके पेट में पाया गया अतः अन्य समस्त शरीर को भी खोलने और उनके निरीक्षण का आदेश दिया गया । रीढ़ की हड्डी तोड़कर किसी को मारना उनमें सामान्य प्रथा थी । यूरोपीय देशों में उनके आक्रमण का इतना भय उत्पन्न हो गया था कि पूर्वी यूरोप के कुछ गिरजाघरों में कुछ दिनों पहले तक प्रार्थना में यह भी कहा जाता था कि "तारतारों के कोप से ईश्वर हमें मुक्ति दें ।"[2] साइक्स ने ही आगे लिखा है कि इतिहास का कोई भी आक्रमण अपनी भयावहता या अपने सुदूरगामी परिणामों में मंगोलों के आक्रमण के सामने तुलना में नहीं ठहरता ।[3]

मंगोलों ने अपनी शक्ति का विस्तार करते हुए 14वीं शताब्दी तक काले सागर से चीन सागर तक और साइबेरिया सिंधु तथा सीस्तान तक अपनी शक्ति का विस्तार कर लिया था । ख्वारज्मशाह जलालुद्दीन मंगबरनी का पीछा करते हुए चंगेज खाँ के नेतृत्व में मंगोल सिंध नदी के किनारे आ धमके । इस प्रकार प्रथम बार मंगोलों ने भारत के लिए खतरा उत्पन्न कर दिया । इस समस्या का समाधान सुल्तान इल्तुतमिश नें बड़ी ही कूटनीतिक ढंग से समझौतावादी नीति अपनाते हुए, प्रस्तुत किया । इल्तुतमिश से लेकर जलालुद्दीन खल्जी के समय तक भारत के शासकों को उनसे मोर्चा लेने के लिए अपनी शक्ति केन्द्रीभूत करनी पड़ी थी । किन्तु यह

1- एर्सकाइन, विलियम: "हिस्ट्री ऑफ बाबर एण्ड हुमायूँ," खण्ड, प्रथम, पृ.-13,

2- साइक्स: "हिस्ट्री ऑफ पर्शिया," खण्ड द्वितीय, पृ.-71,

3- साइक्स: "हिस्ट्री ऑफ पर्शिया," भाग-2, पृ.-70,

प्रयास असफल रहा था । केवल अलाउद्दीन खल्जी ही ऐसा सुल्तान था जो इस देश पर कुछ विकराल मंगोल आक्रमणों को पीछे ढकेलने में सफल रहा और उनकी बर्बरता का जबाब बर्बरतासे दिया । अलाउद्दीन के अंतिम दिनों में मंगोल आपसी संघर्ष में उलझ गये और सल्तनत को मंगोलो के लगातार हो रहे धावे से मुक्ति मिल गयी । तुगलक एवं सैय्यद तथा लोदी काल में मंगोलों के छिटपुट संघर्ष मात्र लूट के लिए होते रहे ।

अध्याय - 3

मामलुक सुल्तानो की उत्तरी - पश्चिमी सीमा नीति ।

अध्याय-3

कुतबुद्दीन ऐबक की उत्तरी-पश्चिमी सीमा नीति

§सन् 1206-1210ई.§

मुहम्मद गोरी की मृत्यु के पश्चात् उसका भतीजा गयासुद्दीन महमूद गोर का सुल्तान हुआ, जो निर्बल और अयोग्य था। भारतीय साम्राज्य को संभालने में वह असमर्थ था, जिससे भारतीय तुर्की साम्राज्य के विखण्डित होने का खतरा उत्पन्न हो गया। इस विषम परिस्थिति में लाहौर के अमीरों ने कुतबुद्दीन ऐबक को भारतीय तुर्की साम्राज्य की संप्रभुता को अधिकृत करने का आमंत्रण दिया। कुतबुद्दीन ऐबक ने तुरन्त इन्द्रप्रस्थ से लाहौर की ओर प्रस्थान किया और मंगलवार 18 जीकाद 602 हि॰ §26 जून 1206 ई॰§में लाहौर के सिंहासन पर आरूढ़ हो गया,[1] जबकि उसका औपचारिक सिंहासनारोहण 17 मार्च 1200 ई॰ को ही हो गया था।[2] प्रारम्भ से ही उसे उत्तरी पश्चिमी सीमा की ओर की चुनौतियाँ का सामना करना पड़ा अन्यथा दिल्ली सल्तनत, जो अभी पूर्णतया डावांडोल स्थिति में थी गोर, गजनी, या ख्वारिज्म शाही राज्य के चंगुल में जा सकती थी, मुल्तान एवं उच्च के शासक के हाथों क्षतिग्रस्त हो सकती थी। राजपूतों की ओर से तथा बंगाल के विघटनकारी रूख की ओर से भी ऐबक को सतर्क रहना था। इनमें से कोई भी समस्या कम गम्भीर नहीं मानी जा सकती। किंतु उत्तरी-पश्चिमी सीमा की रक्षा प्राथमिक व प्रमुख थी।

मुहम्मद गोरी के भारतीय तुर्की क्षेत्र के दो अन्य दावेदार गजनी का शासक ताजुद्दीन यल्दौज और मुल्तान तथा उच्च का शासक नासिरूद्दीन कुबाचा थे। इनसे ऐबक को निपटना था यदि उसे दिल्ली सल्तनत को स्वतन्त्र राज्य के

1- मिनहाज-उस-सिराज: तबकात-ए-नासिरी, भाग-1, रेवर्टी पृ॰ 526,
शाह, मुबारक: तारीख-ए-फखरूद्दीन, पृ॰-31,
आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव ने सिंहासनारोहण की तिथि 24 जून 1206 ई॰ लिखा है- दिल्ली सल्तनत, पृ॰- 90

2- मिनहाज-उस-सिराज: तबकात-ए-नासिरी, अनु० रिजवी, आदि तुर्क कालीन भारत, पृ॰ 8

रूप में संरचना करनी थी । अस्तु इससे पूर्व की उसकी सत्ता सुदृढ़ आधार-शिला पर स्थापित हो, कुतबुद्दीन ने उनसे वैवाहिक संबंध जोड़कर किसी न किसी प्रकार का समझौता कर लिया। यद्यपि यल्दूज-ऐबक संबन्धों में इसका कोई खास प्रभाव नहीं पड़ा । अपनी बहन का विवाह मुल्तान और सिंध के शासक नासिरूद्दीन कुबाचा के साथ और अपना विवाह गजनी के शासक ताजुद्दीन यल्दौज की पुत्री के साथ किया ।[1]

मध्य एशिया का ख्वारिज्म का शाह भी कुतबुद्दीन ऐबक के लिए एक समस्या था । वह पूरे ईरान और मध्य एशिया को हड़प करने के पश्चात् गजनी पर लोलुप दृष्टि लगाए था । गजनी अधिकृत करने के बाद वह लाहौर और दिल्ली की ओर बढ़ता, क्योंकि मुहम्मद गोरी के साम्राज्य की राजधानी पर अधिकार प्राप्ति के कारण ताजुद्दीन यल्दौज अपने स्वामी के पूरे साम्राज्य का दावा करने लगा था, जिसमें दिल्ली का राज्य भी शामिल था ।[2]

ताजुद्दीन यल्दौज-

कुतबुद्दीन ऐबक का प्रथम औरशक्तिशाली प्रतिद्वन्दी ताजुद्दीन यल्दौज था । इसकी ओर से ऐबक को अपने साम्राज्य के लिए अधिक संकट और कठिनाइयों की आशंका थी । ऐबक की परिस्थिति उस समय और जटिल हो गई जब सुल्तान गयासुद्दीन महमूद ने यल्दौज के गजनी पर अधिकार का अनुमोदन कर दिया और उसे मुक्ति पत्र दे दिया ।[3] अब भारतवर्ष से सम्बन्धित यल्दौज की स्थिति और दृढ़ हो गई क्योंकि भारत वर्ष गजनवी साम्राज्य का भाग रह चुकाथा । अब वह मुहम्मद गोरी के भारतीय राज्य का वैध उत्तराधिकारी होने का दावा कर

1- मिनहाज-उस-सिराज: तबकात-ए-नासिरी उद्धृत हबीब एवं निजामी, दिल्ली सुल्तनत, पृ.-77,
श्रीवास्तव, ए0एल0 : दिल्ली सल्तनत, पृ.-91
2- हबीबुल्ला, ए0बी0एम0: भारत में मुस्लिम राज्य की बुनियाद,पृ.-77
3- मिनहाज-उस-सिराज: तबकात-ए-नासिरी, अनु0 रिजवी,आदि तुर्क कालीन भारत, पृ.-8,
हबीब निजामी: दिल्ली सुल्तनत, पृ.-177,

सकता था । यदि इस दावे का सबल विरोध न किया जाता तो एक तरफ तो दिल्ली की संप्रभुता शून्य हो जाती और दूसरी तरफ ख्वारिज्म शाह की भारत विजय की महत्वाकांक्षा में वृद्धि होती । इस प्रकार उत्तर-पश्चिम की परिस्थिति का ध्यान पूर्वक अवलोकन करना था और इस समस्या की तुलना में अन्य विषयों को गौड़ समझना था ।[1]

गजनी के भारतीय राज्य को और तुर्क सरदारों को अपने अधीन करने के लिए ताजुद्दीन यल्दौज ने एक बड़ी सेना लेकर गजनी से भारत की ओर 1208 ई॰ सन् में प्रस्थान किया ।[2] वह सिंध और मुल्तान के शासक नासिरूद्दीन कुबाचा से भी असंतुष्ट था । यल्दौज ने लाहौर पर अधिकार कर लिया और कुबाचा के विरूद्ध भी सेना भेजी । यल्दौज का सामना करने के लिए ऐबक एक दृढ़ सुसज्जित सेना लेकर लाहौर पहुँचा और आगे बढ़कर यल्दौज की सेना को परास्त करके उसे भारत के बाहर खदेड़ दिया । यल्दौज कोहिस्तान की ओर भाग गया ।[3] सफलता से प्रफुल्लित होकर ऐबक गजनी पहुँचा और उस पर अधिकार कर लिया । तत्पश्चात् वह अपनी विजय का समारोह मनाने के लिए रंगरेलियों में व्यस्त हो गया ।[4] वास्तव में यह ऐबक के लिए एक महत्वपूर्ण उपलब्धि थी, पर वह इसका लाभ न उठा सका । चालीस दिन के अन्दर वहाँ के नागरिक उसके शासन से घृणा

1- हबीबुल्ला, ए0बी0एम0: भारत में मुस्लिम राज्य की बुनियाद, पृ0-77-78,

2- फरिश्ता: तारीख-ए-फरिश्ता, भाग-1, पृ॰-63, ब्रिग्स-पृ॰-112, मिनहाज-उस-सिराज: तबकात-ए-नासिरी, पृ॰-130 अनु0 रैवर्टी, पृ॰-527,
श्रीवास्तव, ए0 एल0: दिल्ली सल्तनत, पृ॰-22,

3- फरिश्ता:तारीख-ए-फरिश्ता, भाग-1, पृ॰ 63, ब्रिग्स, पृ॰-112, मुहम्मद अजीज: पोलिटिकल हिस्ट्री एण्ड इन्स्टीट्यूशन्स-आफ अर्ली टर्किश इम्पायर आफ डेल्ही, पृ॰-146,

4- मिनहाज-उस-सिराज: तबकात-ए-नासिरी, पृ॰ 135, रैवर्टी पृ॰ 527

करने लगे क्योंकि कई वर्षों से उनके साथ उसका कोई प्रत्यक्ष सम्पर्क नहीं था और यल्दौज पुन: उनका स्नेह भाजन हो गया । गजनी के नागरिकों ने यल्दौज को पुन: आमंत्रित किया और अपना सुल्तान निर्वाचित कर लिया । उसके अकस्मात गजनी के निकट पहुँचने से ऐबक घबरा गया और तुरन्त संगेसुर्ख के मार्ग से भारतवर्ष भाग आया ।[1] ए० बी० एम० हबीबुल्ला लिखते हैं कि, ऐबक ने गजनी पर अधिकार की कार्रवाई जल्दी में की थी और सैनिक दृष्टि से असर्थित थी ।[2]

यल्दौज की ओर से खतरे का भय जो आरम्भ में समाप्त होता प्रतीत हो रहा था वह पुन: मंडराने लगा । अत: कुतबुद्दीन ऐबक ने लाहौर में रहना निश्चित किया और उसे अपने साम्राज्य की राजधानी बनाया ।[3] यह कहना कठिन है कि ऐबक जैसा योग्य एवं अनुभवी सुल्तान गजनी में रंगरेलियाँ मनाने में अपना दायित्व कैसे भूल गया । फिर भी जैसाकि मिनहाज का कथन है संघर्ष में कोई कटुता नहीं थी क्योंकि यल्दौज का जमाता था । यही कारण है कि जब कुतबुद्दीन ऐबक का स्थान इल्तुतमिश ने ले लिया तो स्थिति बिल्कुल बदल गई ।

नासिरूद्दीन कुबाचा-

मुहम्मद गोरी की मृत्यु के पश्चात् उच्च और मुल्तान के गवर्नर नासिरूद्दीन कुबाचा ने उन प्रदेशों पर अपना अधिकार कर लिया और स्वतन्त्र

1- मिनहाज-उस-सिराज: तबकात-ए-नासिरी, पृ• 136, रैवर्टी पृ• 527, इसामी इसे एक सकरादर्रा बताता है जिससे एक समय में एक घुड़सवार ही गुजर सकता था । हबीबी उसका नाम संगेसूराख ﴾अर्थात चट्टान या पहाड़ के बीच से जाने वाला मार्ग﴿ लिखता है,

2- हबीबुल्ला, ए०बी०एम०: भारत में मुस्लिम राज्य की बुनियाद, पृ• 75-76,

3- मिनहाज-उस-सिराज: तबकात-ए-नासिरी, पृ• 135, रैवर्टी, पृ• 527, फरिश्ता: तारीख-ए-फरिश्ता, भाग-1, पृ• -63, ब्रिग्स, पृ• -112-113, इसामी: फुतुहुस्सलातीन, अनु० महदी हुसैन, पृ• -99, श्रीवास्तव, ए०एल०: दिल्ली सल्तनत, पृ, 92,

शासक बन बैठा । वह बड़ा ही महत्वाकांक्षी व्यक्ति [illegible]ौर 120[illegible] उसने अपनी प्रतिष्ठा खूब बढ़ा ली थी । नव स्थापित सल्त[illegible] लिए [illegible]ा भी एक समस्या था, पर ऐबक और कुबाचा में सीधे टकराव नहीं हुआ । ताजुद्दीन यल्दौज दोनों का प्रतिद्वन्दी था और दोनों ही उसके विरूद्ध एक जुट थे । अतः ऐबक ने कुबाचा पर आक्रमण न कर उसके साथ बड़ी कुशलता से व्यवहार किया और स्थिति के अनुकूल शक्ति, नम्रता और अनुनय से काम लिया ।[1]

कुतबुद्दीन ऐबक का शासन बहुत ही अल्पकालीन था, इस दौरान न तो वह कोई महत्वपूर्ण विजय कर सका और न कोई ठोस प्रशासन व्यवस्था लागू कर सका। उसका प्रशासन पूर्णतया सैनिक बना रहा ।[2] उत्तर-पश्चिम की समस्या के समाधान में ही उसका शासन काल समाप्त हो गया । 607 हि0 (1210ई॰) में वह चौगान खेलते समय घोड़े से गिर पड़ा । घोड़ा भी उस पर गिर पड़ा । काठी का सामने का भाग उसके सीने में लगा गया । और उसकी मृत्यु हो गई ।[3] किंतु इतना अवश्य है कि कुतबुद्दीन ऐबक ने जहाँ एक ओर गोर एवं गजनी से भारत के तुर्की साम्राज्य विच्छेद कर सल्तनत की नींव डाली वहीं उसने यल्दौज एवं कुबाचा से इसकी रक्षा करने का भी महत्वपूर्ण कार्य किया ।

आरामशाह (1210-1211)

लाहौर में कुतबुद्दीन की आकस्मिक मृत्यु के बाद वहाँ के तुर्क सरदारों ने उसके पुत्र आराम[4] बक्श को आराम शाह की उपाधि के साथ उसका उत्तराधिकारी नियुक्त किया । कुछ विद्वानों का मत है कि कुतबुद्दीन के केवल तीन पुत्रियाँ हीं

1- हबीब एवं निजामी: दिल्ली सुल्तनत, पृ॰-179,
2- मिनहाज-उस-सिराज: तबकात-ए-नासिरी, पृ॰ 136, रैवर्टी, पृ॰ 527-28, फरिश्ता: तारीख-ए-फरिश्ता, भाग-1, पृ063, ब्रिग्स, पृ॰ 112-113,
3- मिनहाज-उस-सिराज: तबकात-ए-नासिरी, अनु0 रिजवी, आदि तुर्क कालीन भारत, पृ॰-8,
4- सरहिन्दी, यहया: तारीख-ए-मुबारकशाही, बसु, पृ॰ 16,
हबीबुल्ला, ए0बी0एम0: भारत में मुस्लिम राज्य की बुनियाद, पृ॰ 76,

थी, कोई पुत्र नहीं था । पर तुर्की सामन्तों ने सल्तनत को डाँवाडोल स्थिति से बचाने के लिए आराम शाह नामक व्यक्ति को सुल्तान बना दिया । पर वह अयोग्य और दुर्बल शासक था । दिल्ली के तुर्क सामन्तों और अधिकारियों को आरामशाह का सुल्तान होना समीचीननहीं प्रतीत हुआ । इन्हीं सामन्तों का प्रमुख था अली इस्माइल । उसने बदायूँ के गवर्नर इल्तुतमिश को दिल्ली आने और सुल्तान बनने के लिए आमंन्त्रित किया । जब इल्तुतमिश दिल्ली आ गया तो आरामशाह ने अपनी सेना सहित लाहौर से प्रस्थान कर इल्तुतमिश पर आक्रमण किया, पर जूद के रणक्षेत्र में इल्तुतमिश ने आसानी से पराजित कर दिया और मार डाला ।[1]

आरामशाह के समय में उत्तरी-पश्चिमी सीमा पूर्णतः अव्यवस्थित रही जिसका लाभ यल्दौज कुबाचा एवं खोखरों उठाया । कुबाचा ने लाहौर अधिकृत कर लिया और मंगोल खोखरों ने उत्तर पश्चिमी सीमा पर लूट मार की ।

सुल्तान शम्सुद्दीन इल्तुतमिश की उत्तरी-पश्चिमी सीमा नीति

(सन् 1211-1236ई.)

आराम शाह को पराजित करके इल्तुतमिश ने दिल्ली की गद्दी को बचाया पर उसकी स्थिति बहुत ही डाँवाडोल थी । गजनी में यल्दौज और मुल्तान व उच्च में कुबाचा शक्तिशाली अधिपति थे, जिनसे इल्तुतमिश को अपने सम्बन्ध निश्चित करने थे । कुबाचा ने अपने राज्य को बढ़ाकर उसमें भटिंडा कुहराम औरसरसुती को सम्मिलित कर लिया था । आराम शाह की मृत्यु हो

1- मिनहाज-उस-सिराजः तबकात-ए-नासिरी, पृ. 141, रैवटी पृ. 529, हसन निजामीः ताजुलम आसिर, पृ. 214, इलियट एवं डाउसन, भाग-2, पृ. 238,
मुहम्मद अजीजः अर्ली टर्किश इम्पायर, पृ.-144,

जाने पर उसने लाहौर पर भी अधिकार कर लिया ।[1] मध्य एशिया में तुर्क और मंगोल राज्यों में परस्पर संघर्ष चल रहाथा और अनेक मंगोल सामन्त और सेना नायक अपना प्रदेश छोड़कर अन्य प्रदेशों में, नवीन राज्य स्थापित करने के उद्देश्य से प्रस्थान कर रहे थे । अफगानिस्तान और भारत की ओर वे आक्रमण करने की दृष्टि से बढ़ रहे थे । इसके अतिरिक्त पंजाब के खोखर भी शांति व्यवस्था भंग कर रहे थे ।

ताजुद्दीन यल्दौज-

जब इल्तुतमिश ने अपने प्रतिद्वन्दी अमीरों का दमन कर दिया तो गजनी के शासक यल्दौज ने उसके पास राज चिन्ह-छतरी (CANOPY) और चोब[2] (MACE) भेजा । इन उपहारों का यह अर्थ था कि इल्तुतमिश एक मातहत शासक था, इल्तुतमिश यथार्थवादी शासक था अतः इन उपहारों से उसकी जो मातहत स्थिति स्पष्ट होती थी, उसे जानते हुए भी उसने अभी विरोध करना उचित नहीं समझा और अनुकूल अवसर की प्रतीक्षा करने लगा ।

अफगानिस्तान में जो घटनाएं घटीं उनसे इल्तुतमिश की स्थिति और भी खतरे में पड़ गई । जब ख्वारिज्मियों ने यल्दौज को गजनी से मार भगाया तो वह लाहौर आया और नासिरूद्दीन कुबाचा को वहाँ से खदेड़कर वहाँ अधिकार कर लिया ।[3] फरिश्ता के अनुसार वह पंजाब पर थानेश्वर तक अधिकार करने में सफल

1- मिनहाज-उस-सिराज: तबकात-ए-नासिरी, पृ.-143, रिजवी, आदि तुर्क कालीन भारत, पृ.-1, श्रीवास्तव, ए0एल0: दिल्ली सल्तनत, पृ.-96, हबीबुल्ला, ए0बी0एम0: भारत में मुस्लिम राज्य की बुनियाद, पृ.-77,

2- छत्र व दूरबाश राजचिन्ह या जिसे केवल सुल्तान ही प्रयोग कर सकता था। कभी-कभी वह अपने पुत्रों बड़े खानों या मलिकों को भी प्रदान कर दिया करता था-अशरफ, के0एम0, लाइफ एण्ड कन्डीशन्स आफ दि पीपुल ऑफ हिन्दुस्तान, पृ.-40-41,

3- हसन निजामी: ताजुल मआसिर, अनु0 इलियट एवं डाउसन, भाग-2, पृ.-239,

हो गया ।[1] इससे इल्तुतमिश अत्यधिक चिंतित हुआ क्योंकि यल्दौज के पंजाब पर अधिकार का अर्थ ख्वारिज्म शाह को प्रत्यक्ष आमंत्रण था जिसके द्वारा गजनी का अपने राज्य में मिला लेना केवल समय का प्रश्न था । यह उस समस्या की पुनरावृत्ति थी जिसके कारण ऐबक ने गजनी पर अपना अधिकार कर लिया था । किंतु वह नगर को अपने अधिकार में रखने में असफल हो गया था । यह उदाहरण इल्तुतमिश के सामने था । अतः उसने रक्षात्मक नीति का अनुसरण किया और उत्तम अवसर की प्रतीक्षा की[2] । वह शीघ्र ही उपलब्ध हुआ । इल्तुतमिश के लिए आक्रमण करने का यही सही समय था । इसलिए उसने यल्दौज की प्रगति रोकने के लिए कूच किया । यल्दौज ने इल्तुतमिश के पास एक संदेश भेजा जिसमें उसने यह कहा कि वह मुहम्मद गोरी का वास्तविक अधिकारी है और उसे भारतीय साम्राज्य पर अधिक अधिकार है । इल्तुतमिश ने उत्तर दिया :"समय बदल गया है अब एक नई व्यवस्था स्थापित हो गई है । गजनवियों एवं गोरियों की क्या दशा हुई है? वंशानुगत उत्तराधिकार का समय समाप्त हो गया है ।"[3]

उपर्युक्त उत्तर इल्तुतमिश के इस दृढ़ संकल्प का सूचक था कि वह यल्दौज के दिल्ली अधिकृत करने के किसी भी प्रयत्न का डटकर सामना करेगा । इतने पर भी इल्तुतमिश ने इस विषय पर समझौता करने का प्रस्ताव रखा बशर्ते दोनों अकेले बिना किसी अंगरक्षक के भेंट करने आएं । यल्दौज ने युद्ध का निश्चय किया ।

1- फरिश्ता: तारीख-ए-फरिश्ता, भाग-1, पृ. 65, ब्रिग्स, पृ0-113,

2- हबीबुल्ला, ए0बी0एम0: भारत में मुस्लिम राज्य की बुनियाद, पृ.-185,

3- इसामी: फुतूहुस्सलातीन, आगामेहदी हुसैन, भाग-2, पृ.-220-21,
रिजवी, एस0ए0ए0: आदि तुर्क कालीन भारत, पृ.-300,
हबीब निजामी: दिल्ली सुल्तनत, पृ.-183-84,

तरायन[1] के इतिहासिक मैदान में जो युद्ध हुआ उसमें यल्दौज पराजित हुआ । यह युद्ध 25 जनवरी 1216 ई.[2] सन् को हुआ । इसामी के अनुसार वह हांसी[3] भाग गया, किन्तु बन्दी बनाया गया और इल्तुतमिश के समक्ष लाया गया । पर यह सही नहीं प्रतीत होता क्योंकि हसन निजामी काकथन है कि यल्दौज युअय्यदुल मुल्क मुहम्मद जुनैदी द्वारा संधानित वाण से घायल हुआ और अपने अनेक सरदारों द्वारा बन्दी बनाया गया ।[4] दिल्ली की गलियों में घुमाने के पश्चात् उसे बदायूँ भेज दिया गया, जहाँ उसकी हत्या कर दी गयी ।[5]

यल्दौज पर इल्तुतमिश की विजय वास्तव में उसकी दोहरी विजय थी: उसकी सत्ता ललकारने वाले सबसे भयंकर शत्रु का विनाश और गजनी से अंतिम रूप से सम्बन्ध-विच्छेद, जिसके फलस्वरूप दिल्ली का स्वतन्त्र अस्तित्व निश्चित हो गया । और इल्तुतमिश की अंतिम बाधक शक्ति दूर हो गई ।[6]

नासिरूद्दीन कुबाचा:-

ऐसा प्रतीत होता है कि इल्तुतमिश ने प्रारम्भ में लाहौर और पंजाब के अन्य भागों पर अधिकार करने का प्रयत्न नहीं किया था । उसके तथा कुबाचा

1- मिनहाज-उस-सिराज: तबकात-ए-नासिरी, भाग-1, रैवर्टी, पृ. 608, परन्तु हसनन निजामी अपने ग्रंथ ताजुलमआसिर में युद्ध स्थान समाना के निकट लिखा है- इलियट एवं डाउसन, भाग-2, पृ.-239, बदायुनी: मुन्तखबुत्तवारीख, रैकिंग, भाग-1, पृ.-90,

2- ईश्वरी प्रसाद: भारतीय मध्य युग का इतिहास-यह घटना 1215 ई. में घटी थी ।

3- इसामी: फुतूहुस्सलातीन, पृ. 112, भाग-2, आगामहदीहुसैन, पृ.-221

4- हसन निजामी: ताजुलमआसिर, भाग-2, इलियट एण्ड डाउसन, पृ. 239,

5- मिनहाज ने उसकी "शहादत" की बात लिखी है, तबकात-ए-नासिरी पृ.-135, रैवर्टी, पृ.-608,

6- हबीब एवं निजामी: दिल्ली सुल्तनत, पृ.-214,

को कुछ समय के लिए लाहौर पर शासन करने का अधिकार दे दिया गया।[1] वास्तव में इससे इल्तुतमिश को दुहरा लाभ हुआ, प्रथम तो कुबाचा से मित्रता हो गई, दूसरे गजनी व दिल्ली के बीच "बफर स्टेट" स्थापित हो गया।[2] किंतु कुबाचा की महत्वाकांक्षा इतनी बढ़ रही थी कि इल्तुतमिश उन्हें सहन नहीं कर सकता था। फरिश्ता के अनुसार वह सरहिन्द पर भी अपना अधिकार स्थापित करना चाहता था।[3] इल्तुतमिश पंजाब को अपने अधिकार से जाने नहीं देना चाहता था, क्योंकि दिल्ली सुल्तनत् की सुरक्षा के लिए पंजाब का अधिग्रहण आवश्यक था। इसलिए उसने सितम्बर 1216 ई. में कुबाचा के विरूद्ध प्रस्थान किया। जैसे ही सुल्तान की सेनाओं ने ब्यास को पार किया, कुबाचा भाग खड़ा हुआ और उच्छ पहुँचा।[4] इल्तुतमिश ने उसका पीछा किया और चनाब पर स्थित मंसूरा[5] के निकट उसे युद्ध करने के लिए बाध्य किया गया, जिसमें कुबाचा बुरी तरह पराजित हुआ। इल्तुतमिश ने लाहौर पर अधिकार कर लिया और पहली बार वहाँ अपना सूबेदार अपने पुत्र नासिरूद्दीन महमूद की नियुक्ति की।[6] जलालुद्दीन मंगबरनी के भारत वर्ष आने के फलस्वरूप कुबाचा को इल्तुतमिश के आक्रमणों से कुछ समय के लिए छुटकारा मिल गया।

कुबाचा की पराजय के बावजूद इल्तुतमिश का पूरे पंजाब पर अधिकार नहीं हो सका क्योंकि चनाब और झेलम घाटी अभीभी गक्खरों के अधिकार में थी।

1- हसन निजामी: ताजुल मआसिर, रिजवी, आदि तुर्क कालीन भारत, पृ. 215, इलियट एवं डाउसन भाग-2, पृ.-240,

2- सरन् पी.: स्टडीज इन मेडिवल इण्डिया, पृ.-199,

3- फरिश्ता: तारीखे फरिश्ता, पृ.-135, ब्रिग्स, भाग-1, पृ. 117,

4- मिनहाज सिराज: तबकात-ए-नासिरी, पृ.-171, रैवर्टी, भाग-1, पृ. 608,
हसन निजामी: ताजुल मआसिर, इलियट एवं डाउसन, भाग-2, पृ. 240,

5- मिनहाज-उस-सिराज: तबकात-ए-नासिरी, इलियट एवं डाउसन, भाग-2, पृ.-303,

6- हसन निजामी: ताजुल मआसिर, इलियट एवं डाउसन, भाग-2, पृ.-241,

फिर भी पंजाब प्रांत के प्रशासन के लिए सेना के एक अनुभव प्राप्त जनरल नासिरूद्दीन महमूद को 1217ई०में पंजाब का गवर्नर नियुक्त किया गया ।[1]

ख्वारिज्मी व मंगोल खतरों का सामना

इल्तुतमिश की सिंध तक की क्रमिक प्रगति की प्रक्रिया मंगोल आक्रमण से उत्पन्न राजनीतिक क्रांतियों से अवरूद्ध हो गई । 1220 ई. सन् तक ख्वारिज्मी साम्राज्य का अंत हो चुका था । जक्सारटीज (JAXARTES) से लेकर कैस्पियन सागर तक और गजनी से लेकर ईराक तक चंगेज ने समृद्ध नगरों और सभ्यता संस्कृति के केन्द्रों को नष्ट कर दिया ।[2] ख्वारिज्म का शाह अलाउद्दीन मुहम्मद अपने उत्तरी प्रदेशों की सीमा के बाहर खदेड़ दिया गया और उसने कैस्पियन के एक द्वीप में शरण ली जहाँ अन्त में उसकीमृत्यु हो गई ।[3] उसका युवराज जलालुद्दीन मांगबरनी[4] खुरासान से निकाल दिया गया और वह दक्षिण की ओर गजनी भाग गया । रास्ते में उसने पीछा करने वाले मंगोलों पर "बरवान" (BARWAN) में शानदार विजय प्राप्त की किन्तु जब चंगेज खाँ स्वयं तत्काल से उसके विरूद्ध आगे बढ़ा तब उसने गजनी छोड़ दिया और भारतीय सीमा की ओर आगे बढ़ा ।[5] पर चंगेज खाँ भी उसका पीछा करते हुए सिंध नदी के किनारे आ गया, जिससे मांगबरनी लड़ने के लिए विवश हो गया । जुवैनी लिखता है कि " सुल्तान आग और पानी के बीच फंस गया । एक औरसिंध नदी थी और दूसरी ओर विनाशकारी

1- हसन निजामी: ताजुल मआसिर, इलियट एण्ड डाउसन, भाग-2, पृ. 240,
2- साइक्स: हिस्ट्री आफ पर्शिया, द्वि. पृ.- 70 ,
वेम्बरी, ए0: हिस्ट्री आफ बोखारा, पृ.-119-140,
3- बार्टोल्ड: तुर्किस्तान, पृ.-403-426,
4- मिनहाज-उस-सिराज: तबकात-ए-नासिरी, भाग-1, रेवर्टी पृ. 606-610,
5- श्रीवास्तव, ए0एल0: दिल्ली सल्तनत, पृ.-300,
हबीबुल्ला, ए0बी0एम0: भारत में मुस्लिम राज्य की बुनियाद, पृ.-171,

अग्नि के समान था बल्कि यह कहना चाहिए कि एक ओर उसका हृदय अग्नि से जल रहा था। फिर भी उसने धैर्य नहीं खोया और पुरुषों की भाँति कार्यरत होकर युद्ध की तैयारियाँ करने लगा।[1] उसने केवल 700 सैनिकों की सेना से चंगेज की सेना का विरोध किया। जो वास्तव में सैनिक दृष्टि से एक अनन्य कार्य था। किंतु सुरक्षात्मक प्रयत्नों में अंतिम क्षण उस समय आया जब वह भागने के लिए विवश हुआ। "डबडबाई आँखों और सूखे होठों" से उसने अपने परिवार से विदा ली और एक अन्य घोड़े पर सवार हुआ। मंगोल सेना पीछे ढकेल कर अपने घोड़े के एड लगाई "और लगभग दस या उससे अधिक एल की दूरी से घोड़े सहित पानी में छलांग लगाकर[2] वह नदी के दूसरे किनारे पर सुरक्षित पहुँच गया। अतामलिक जुवैनी लिखता है कि "चंगेज तथा समस्त मंगोलों ने आश्चर्यचकित होकर अपनी अंगुली मुंह में दबाई और यह करतब देखकर चंगेज खाँ ने अपने पुत्रों की ओर देखा और कहा: "किसी भी पिता को ऐसा ही पुत्र होना चाहिए।[3]

उस स्थान का ठीक-ठीक पता नहीं है जहाँ पर 1221 ई. सन् में मंगोलों ने प्रथम बार भारतीय भूमि पर पैर रखा था।[4] किन्तु यह निश्चित है कि वह नमक के पहाड़ (SALT- RANGE) से बहुत दूर नहीं हो सकता था जिसमें से होकर, अधिकतर प्रारम्भिक लेखकों के अनुसार, मांगबरनी ने सिंध सागर दोआब में प्रवेश किया था। दिल्ली के लिए यह सौभाग्य की बात थी कि चंगेज खाँ ने नदी के पार उसका पीछा करना आवश्यक नहीं समझा, बल्कि इगराकी (IGHRAKI) आदिवासी जातियों को पराजित करने में लगा गया। यह जाति उस प्रदेश में रहती थी जिसमें काबुल नदी का उत्तरी भाग स्थित था और जिन्होंने ख्वारिज्मी सेनाओं को सैन्यदल प्रदान किए थे।[5] उसके पुत्र तुल्नी और चगताई खुरासान,

---

1- जुवैनी-तारीखे जहाँकुशा, अनु0 ब्वायल, भाग-2, पृ. 409,

2- जुवैनी तारीखे जहाँकुशा, अनु0 ब्वायल, भाग-2, पृ. 410,
वह स्थान जहाँ से उसने अपने घोड़े सहित पानी में छलांग लगाई आज भी "चौले जलाली" कहलाता है। एक एल लगभग 45 इंच होता है।

3- जुवैनी: तारीखे जहाँकुशा, अनु0 ब्वायल, भाग-2-, पृ. 411,
जमीउत तवारीख, इलियट एवं डाउसन, भाग-2, पृ. 551-52,

4- रैवर्टी, एच0जी: नोट्स आन अफगानिस्तान, पृ. 338,
बार्टोल्ड: तुर्किस्तान, पृ. 445-46

5- मिनहाज-उस-सिराज: तबकात-ए-नासिरी, रैवर्टी, पृ.-1043.

करमान और गजनी को जीतने के लिए भेज दिए गए । चंगेज सिंध के निकट तीन माह तक रूका रहा और कहा जाता है, कि "लखनौटी और कामरूद" के मार्ग से और "करायल पर्वत से होता हुआ" कराकोरम वापस जाने का उसका इरादा था ।[1] यह भी कहा जाता है कि इसके लिए आवश्यक अनुमति लेने के लिए उसने इल्तुतमिश के पास राजदूत भी भेजे थे । यदि चंगेज ने इल्तुतमिश की कथित अस्वीकृति के बावजूद भारत में होकर जाने का निर्णय लिया होता तो यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि वह उसे रोकने में सफल होता । चंगेज दिल्ली की प्रभुसत्ता का सम्मान करता था और 1222ई के जाड़े में हिन्दूकुश से होता हुआ लौट गया ।[2] इससे पता चलता है कि वह बहुत संयमी था और अन्तर्राष्ट्रीय प्रथा का बहुत ईमानदारी से पालन करता था ।[3]

इस अवसर पर भारत चंगेज, परन्तु अब मंगबरनी के साथ सिंध के इस पार के प्रदेश पर आक्रमणों का एक क्रम आरम्भ हो गया । मांगबरनी ने अपने उन अनुचरों को एकत्र किया जो सिंध नहीं पार करने में सफल हुए थे और डाकुओं के एक निकटवर्ती दल पर रात को आक्रमण करके उनसे हथियार छीन लिए । तत्पश्चात् उसने नमक के पहाड़ के हिन्दू राजा द्वारा भेजे हुए पाँच हजार सैनिकों की एक सेना को पराजित किया[4] जब इस सफलता का समाचार चंगेज खाँ के पास पहुँचा तब उसने गजनी से उसका पीछा करने के लिए एक सेना भेजी, जब उसने सिंध नदी पार की तब उससे बचने के लिए मांग बरनी लाहौर की ओर दक्षिण घूम गया । संभवतः

1- मिनहाज-उस-सिराज: तबकात-ए-नासिरी, पृ.-335,
परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि मिनहाज उस सिराज को हिन्दुस्तान की भौगोलिक स्थिति का ज्ञान नहीं था । अतः उसने अज्ञान में उपर्युक्त विचार व्यक्त किये ।

2- जुवैनी: तारीखे जहाँकुशा, इलियट एवं डाउसन, भाग-2, पृ.-391,
इनके अनुसार चंगेज खाँ के शीघ्रता से वापस लौटने काकारण यह था कि उसे खीता एवं तंगूत में राजद्रोह होने के समाचार मिले थे ।

3- हबीबुल्ला, ए0बी0एम0: भारत में मुस्लिम राज्य की बुनियाद, पृ.-173,

4- मिनहाज-उस-सिराज: तबकात-ए-नासिरी, रेवर्टी, पृ.-537,

मंगोल दिल्ली से युद्ध नहीं करना चाहते थे, इसलिए उन्होंने पंजाब में उसका पीछा नहीं किया बल्कि नमक के पहाड़ के पास स्थित मलिकपुर नामक किले को लूट कर संतुष्ट हो गये ।[1]

चंगेज खाँ ने इल्तुतमिश के पास अपने दूत संभवतः इस उद्देश्य से भेजे कि मंगबरनी दिल्ली से कोई सहायता न पा सके । इस विषय में कुछ पता नहीं कि इल्तुतमिश ने मंगोल राजदूतों का कैसे स्वागत किया । किंतु उसकी नीति से इतना स्पष्ट है कि उसने यह ध्यान रखा कि मंगोलों को आपत्ति प्रकट करने का कोई अवसर न मिले । जब तक चंगेज जीवित रहा (उसकी मृत्यु 1227 ई. में हुई) इल्तुतमिश ने सिंधु घाटी में सत्ता प्रसार का कोई प्रयत्न नहीं किया ।[2]

सिंध सागर दोआब में अपनी स्थिति दृढ़ बनाने के पश्चात् मंगबरनी ने सियालकोट जिले के बसरौर[3] (पसरूर) स्थित दुर्ग पर अधिकार कर लिया । जब वह दिल्ली से दो या तीन दिन की यात्रा की दूरी पर था तो उसने आइनुलमुल्क नामक अपना राजदूत इल्तुतमिश के पास यहसंदेश देकर भेजा : "भाग्य की विडम्बना ने मुझे आपके पास आने के लिए विवश किया है और मेरे समान अतिथि बहुत कम आते है । यदि हम लाभ और हानि में एक दूसरे का साथ देने के लिए वचनबद्ध हो जावें तो हमारे सभी उद्देश्य और इच्छाएँ पूरी हो सकती हैं । जब हमारे शत्रु हमारे बीच हुई संधि जानेंगे तो उनके विरोध रूपी दांत कुंठित हो जाएंगे ।[4] इसके अतिरिक्त उसने इल्तुतमिश से यह भी प्रार्थना की कि वह उसे कोई स्थान प्रदान

1- मिनहाज सिराज: तबकात-ए-नासिरी, रैवर्टी, पृ.-537,
जुवैनी: तारीखे जहाँकुशा, ब्वायल, भाग-2, पृ.-413,
मुहम्मद अजीज: पोलिटिकल हिस्ट्री एण्ड इन्स्टीट्यूशन्स आफ अर्ली टर्किश-इम्पायर आफ डेल्ह्री, पृ, 166,

2- हबीब एवं निजामी: दिल्ली सुल्तनत,पृ. 186,

3- जुवैनी: तारीख-ए-जहाँकुशा, भाग-2, पृ.-145, ब्वायल पृ.-412,
कनिंघम की रिपोर्ट- XI . पृ.-46-47,

4- जुवैनी : तारीख-ए-जहाँकुशा, ब्वायल, भाग-2, पृ.-413,

करे जहाँ वह कुछ समय निवास कर सके । इल्तुतमिश ऐसे सत्याभासी संदेश के जाल में फंसने वाला व्यक्ति नहीं था । अतामलिक जुवैनी का कथन है कि उसने इस विषय पर कई दिन तक विचार किया और अंत में "यह कहकर कि उसके प्रदेश में उसके समान शासक के अनुकूल जलवायु वाला कोई स्थान नहीं है, खेद प्रकट किया ।[1] आइनुलमुल्क पर आक्रमण किया गया और उसकी हत्या कर दी गई ।[2] मिनहाज के अनुसार[3] इल्तुतमिश स्वयं एक सेना लेकर मांगबरनी के विरूद्ध चला किंतु मांगबरनी उससे बचकर "बलाला और निकाला" प्रदेश चला गया, जहाँ वह दस हजार सैनिकों की सेना संगठित करने में सफल हुआ ।[4] इस बीच में मंगोल लौट गए थे अतः मांग-बरनी ने खोकर राज्य लूटने के लिए एक सेना भेजी । अभियान बहुत सफल सिद्ध हुआ । खोकरों का राजा राय खोकर संकीन न केवल पराजित हुआ बल्कि उसने अपनी पुत्री का विवाह मांगबरनी के साथ कर दिया ।[5] इस वैवाहिक सम्बन्ध ने इल्तुतमिश के लिए बहुत चिंताजनक स्थिति उत्पन्न कर दी । उसने शांतिपूर्वक स्थिति का मूल्यांकन किया और निश्चय किया कि वह कोई गलत पग नहीं उठाएगा

खोकरों की मैत्री से जलालुद्दीन मांगबरनी की स्थिति काफी सुधर गई । अब उसने अपना ध्यान कुबाचा की ओर मोड़ा और इल्तुतमिश ने संतोष की सांस ली । कुबाचा का राज्य मियाँवली (MIANWALI) जिले तक विस्तृत था और जिसमें नन्दाना भी शामिल था ।[6] उसमें और खोकरों में बड़ी पुरानी शत्रुता थी । उससे लाभ उठाकर मांगबरनी ने उसके उत्तरी जिलों पर आक्रमण किया । उसने

1- जुवैनी: तारीख-ए-जहाँकुशा, ब्वायल, भाग-2 पृ.-413,
जमीउत तवारीख, इलियट एवं डाउसन, भाग-2, पृ.-553,

2- जुवैनी: तारीख-ए-जहाँकुशा, ब्वायल, भाग-2, पृ.-413,

3- मिनहाज-उस-सिराज: तबकात-ए-नासिरी, पृ. 171, रिजवी आदि तुर्क कालीन भारत, पृ.-26,

4- जुवैनी: तरीख जहाँकुशा, अनु0 ब्वायल, भाग-2, पृ.-414,

5- जुवैनी: तारीख जहाँकुशा, अनु0 ब्वायल, भाग-2-पृ.-
जमीउत तवारीख: इलियट एवं डाउसन, भाग-2, पृ. 553-54,

6- हबीबुल्ला, ए0बी0एम0: भारत में मुस्लिम राज्य की बुनियाद, पृ. 173

कलूरकोट (KALLURKOT) जीतकर और उसके निकटस्थ एक किले को नष्ट करके युद्ध आरम्भ किया । कुबाचा ने युद्ध की तैयारी की, परन्तु इसके पहले की वह लड़ाई शुरू करता ख्वारिज्मी सेनापति उजबेक पाइ (UZBEK-PAI) ने एक रात को उस पर आक्रमण कर दिया और उच में उसे पराजित कर दिया ।[1] कुबाचा सक्कर तथा भक्कर की ओर भागा[2] यहाँ से वह मुल्तान की ओर चला गया । जब मांगबरनी ने उससे क्षतिपूर्ति और अपनी स्त्री की वापसी की मांग की जिसने उसके दरबार में शरण ली थी तो वह तात्कालिक स्वीकृति देने के लिए बाध्य हो गया । किन्तु भारत में जलालुद्दीन मंगबरनी का निवास काल समाप्त हो रहा था । जब वह नमक के पहाड़ (SALT-RANGE) में गरमी बिताने की तैयारी कर रहा था तब उसे समाचार मिला कि उसका पीछा करने के लिए एक दूसरी मंगोल सेना आ रही है और वह दक्षिण की ओर जाने के लिए विवश हो गया ।[3] मुल्तान के पास से जाते हुए उसने आर्थिक योगदान की मांग की । परन्तु अब कुबाचा भगोड़े की कठिनाइयों से भिन्न था, इसलिए उसने उसकी मांग अस्वीकृत कर दी और युद्ध के लिए तैयार हो गया ।[4] चूँकि मंगोल मंगबरनी का पीछा कर रहे थे, इसलिए वह युद्ध करने की स्थिति में नहीं था और उच चला गया । वहाँ भी उसका वैसा ही शत्रुतापूर्ण स्वागत हुआ । तब उसने नगर में आग लगा दी और सहवान चला गया । वहाँ उसने कुबाचा के सूबेदार फखरूद्दीन सलारी को आत्म समर्पण करने और नगर सौंप देने के लिए बाध्य किया। सेहवान में एक महीना रहने के बाद वह देवल पर आक्रमण करने चला गया और वहाँ के राजा को

1- हबीबुल्ला, ए०वी०एम०: भारत में मुस्लिम राज्य कीबुनियाद, पृ.-174,
2- जुवैनी: तारीख-ए-जहाँकुशा, अनु० ब्वायल० पृ० 414,
संभवत: भक्कर स्थित दुर्ग से आशय है, इलियट एवं डाउसन, भाग-2, पृ. 554,
3- हबीबुल्ला, ए०वी०एम०: भारत में मुस्लिम साम्राज्य की बुनियाद, पृ. 174,
4- जुवैनी: तारीशे जहाँकुशा, अनु० ब्वायल, भाग-2, पृ. -415,

भगा दिया जिसका नाम चनीसर था । इसके बाद एक अभियान गुजरात (अन्हिलवाड़ा) भेजा गया जिससे लूट का कुछ माल प्राप्त हुआ ।[2] समाचार मिला कि मंगोल मुल्तान के निकट आ रहे थे । कुबाचा की शत्रुता ने उसको अपने खोकर मित्र से अलग कर दिया था। उसी समय समाचार मिला कि उसका भाई गियासुद्दीन अलोकप्रिय हो गया था और यह कि वहाँ की सेना और जनता मंगबरनी का शासन अधिक पसन्द करती थी । तब मांगबरनी ने यह निश्चित करने के लिए अपने अनुचरों की एक सभा की, कि क्या किया जाय । हसन कारलुग, उजबेक पाई और अन्य लोगों ने उसे सलाह दी कि भारत में ही रहिए और दिल्ली के सुल्तान के साथ मिलकर मुगल विरोधी एक मोरचे का संगठन कीजिए किन्तु ईराक में राज्य करने के प्रलोभन की धुन उसके ऊपर सवार हो गई ।[3] उसने अफगानिस्तान में हसन कारलुग को और सिंध में उजबेकपाइ को अपना प्रतिनिधि नियुक्त किया और स्वयं 1224 ई॰ सन् को मकरान के रास्ते से भारत को, अंतिम रूप से छोड़कर वहाँ चला गया ।[4]

पश्चिमी पंजाब और सिंध में मांगबरनी के तीन वर्ष तक निवास करने से दिल्ली की प्रशासनिक सीमा पर बहुत दबाव पड़ता था जिसके फलस्वरूप वह शनैः शनैः पीछे हटती जाती थी । भौगोलिक सीमा के रूप में सिन्धु नदी का अन्त हो गया क्योंकि उसके इस पार का भू-भाग भी अब गजनी राज्य का भाग हो गया था जिस पर बचे हुए ख्वारिज्मी अफसरों की खोज में मंगोल आक्रमण किया करते थे । दक्षिणी सिंध में मांगबरनी के प्रस्थान के पूर्व ही तुरताई के सेनापतित्व में मंगोल सेना वहाँ आ गई थी । संभवतः हसन कारलुग के एक अफसर से नन्दाना लेकर तुरताइ मुल्तान गया जहाँ हाल में कुबाचा ने शरण ली थी । नगर पर निकट

1- जुवेनी: तारीख-ए-जहाँकुशा, ब्वायल, भाग-2, पृ॰-416,
हबीबुल्ला, ए०बी०एम०: भारत में मुस्लिम राज्य की बुनियाद, पृ॰-174,

2- जुवेनी: तारीखे जहाँकुशा, भाग-2-ब्वायल, पृ॰-416,

3- हबीबुल्ला, ए०बी०एम०: भारत में मुस्लिम राज्य की बुनियाद, पृ॰-175,

4- हबीबुल्ला, ए०बी०एम०: भारत में मुस्लिम राज्य की बुनियाद, पृ॰-175,
जुवेनी: तारीख-ए-जहाँकुशा, ब्वायल, भाग-2-पृ॰-416,17,

से घेरा डाला गया और उसकी पराजय निकटथी जब उस स्थान की अत्यधिक गरमी ने घेरा डालने वालों को वापस जाने के लिए विवश कर दिया ।[1] जुवैनी ने इसे वियाह लिखा है इलियट जिसकी पहचान झेलम के पश्चिमी किनारे पर स्थित भेरा से करते हैं ।[2] अपनी वापसी यात्रा में उन्होंने लाहौर और मुल्तान के प्रदेशों को लूटा । प्रतीत होता है कि उन्होंने न तो स्थायी रूप से नन्दाना किले में रक्षक सेना रखी और न उस क्षेत्र में अपना अधिकार जमाया । 1226 ई0 में सेहवान के जिले पर खल्जी आदिवासियों की एक बड़ी सेना ने आक्रमण किया । वे लोग ख्वारिज्मी सेना के अवशेष थे और उनको मंगोल ने उनकी मातृभूमि गार्मसिर ﴾GARMSIR﴿ से निकाल दिया था । परन्तु कुबाचा ने उनको पराजित कर दिया ।[3]

इस प्रकार इन आवर्ती आक्रमणों के फलस्वरूप उत्तरी पश्चिमी सीमा प्रदेश की स्थिति बहुत अस्त व्यस्त थी । उत्तर में नमक के पहाड़ की जनजातियों में अपने शत्रुओं की शक्ति हीनता से लाभ उठाने के साहस का संचार हो गया था । उन्होंने केवल पूरे उत्तरी दोआब पर ही अधिकार नहीं जमाया बल्कि और पूर्व की ओर तथा व्यास[4] के पार तक भी फैल गए जिससे लाहौर को खतरा हो गया जिसको उन्होंने अवसर पाते ही अच्छी तरह लूटा । सिंध के पश्चिम का क्षेत्र जिसे समसामयिक लेखक बनियन के नाम से जानते थे,[5] (हसन कार्लुग के सिक्के बनियन एवं सिंध सागर दोआब से पाये गये) हसन कारलुग के प्रभुत्व में था जो अनिश्चित ढंग से अपने स्वामी गजनी के सुल्तान के अधीन राज्य के रूप में जिस किसी अंश पर

1- हबीबुल्ला, ए0वी0एम0: भारत में मुस्लिम राज्य की बुनियाद, पृ. 175,

2- इलियट एवं डाउसन : भाग-2, पृ.-392,

3- मिनहाज-उस-सिराज: तबकात-ए-नासिरी, पृ.-143,
हबीबुल्ला: भारत में मुस्लिम राज्य की बुनियाद, पृ.-175,

4- वही, पृ.-175,

5- हबीबुल्ला, ए0वी0एम0: भारत में मुस्लिम राज्य की बुनियाद, पृ. 175,

6- थामस क्रानिकल, पृ.-99,

संभव होता था शासन करता था । दक्षिण में कुबाचा का राज्य था जिसका प्रभाव सेहवान और देवल जैसे वाह्य जिलों पर बहुत शीघ्रता से कम हो रहा था । इन सबों के बीच में उजबेक पाइ था जो 1229 ई॰ सन् तक सिंध सागर दोआब और पंजाब में था और संभवतः मुल्तान भी उसके अधिकार में था ।[1]

कुबाचा के विरूद्ध अभियान-

माँगबरनी की समस्या के निदान के उपरान्त इल्तुतमिश को अपनी विजय एवं संगठन की योजनाएँ कार्यान्वित करने का अवसर मिल गया । किंतु उस समय भी वह सिंध और पंजाब की राजनीति में लापरवाही से कुछ नहीं कर सकताथा । जब तक चंगेज खाँ जीवित था इल्तुतमिश इन प्रदेशों की राजनीति में गंभीरता से कोई भाग नहीं ले सकताथा । जलालुद्दीन माँगबरनी के चले जाने के पश्चात सर्वप्रथम उसका ध्यान बंगाल की ओर गया । तत्पश्चात् उसने राजपूताने में सुदृढ़ व्यवस्था कर सिंध के अधिक प्रभावशाली अभियान के विषय में सोचा । किंतु उस क्षेत्र की ओर अपना ध्यान मोड़ने के पूर्व उसने भटिंडा (जिसे उस समय तबरहिंदा कहते थे), सरसुती और लाहौर पर अधिकार स्थापित किया । 1228 ई॰ सन् में इल्तुतमिश ने उच्छ तथा मुल्तान पर एक साथ आक्रमण करने का निश्चय किया ।[2] उसने स्वयं उच्छ की ओर कूच किया और लाहौर के राज्यपाल नासिरूद्दीन एंतमार को मुल्तान पर आक्रमण करने के आदेश दिए । कुबाचा ने अहरावट[3] के निकट अपना शिविर लगाया "और उसकी समस्त नौकाओं का बेड़ा जिस पर उसकी सम्पूर्ण साजसज्जा और अनुयायी सवार थे, नदी में उसके शिविर के सामने लाया गया ।[4] उच्छ में तीन मास[5]

1- हबीबुल्ला, ए०बी०एम०: भारत में मुस्लिम राज्य की बुनियाद, पृ॰-175,

2- मिनहाज-उस-सिराज: तबकात-ए-नासिरी, अनु० रिजवी, आदि तुर्क कालीन भारत, पृ॰-26,
श्रीवास्तव, ए०एल०: दिल्ली सल्तनत, पृ॰-98,

3- छपीहुई पुस्तक में अमरोत है, रिजवी, आदि तुर्क कालीन भारत, पृ॰26,

4- मिनहाज-उस-सिराज: तबकात-ए-नासिरी, पृ॰-72,
हबीब निजामी, दिल्ली सल्तनत, पृ॰- 189,

5- छपी हुई पुस्तक में एक मास है, रिजवी, आदि तुर्क कालीन भारत, पृ॰26,

तक समुचित सुरक्षात्मक विरोध हुआ किंतु 4 मई 1228 ई. को उसने हथियार डाल दिए । कुबाचा भागकर भक्कर चला गया और अपने मंत्री आइनुलमुल्क हुसैन अशअरी को यह निर्देश दिए कि वह उसका कोष वहाँ पहुँचा दे[1] । किंतु इल्तुतमिश के सैनिक दबाव के फलस्वरूप उसने भक्कर में भी स्वयं को सुरक्षित न पाया । उसने अपने पुत्र मलिक अलाउद्दीन बहराम को इल्तुतमिश के पास संधि करने के लिए भेजा । इल्तुतमिश ने बिनाशर्त आत्मसमर्पण की माँग की किंतु कुबाचा ने सिंध नदी में डूब मरना अधिक उत्तम समझा[2] । अब इल्तुतमिश ने सिंध और पंजाब में अपनी सत्ता संगठित की । मुल्तान और उच्छ में राज्यपाल नियुक्त किए गए । लगभग 12 सामरिक महत्त्व के दुर्गों पर अधिकार कर लिया गया और दिल्ली के सुल्तान की सत्ता मकरान तक स्थापित हो गई । मलिक सिनानुद्दीन हब्श ने जो देवल और सिंध का शासक था, उसकी अधीनता स्वीकार कर ली ।

नासिरूद्दीन कुबाचा की मृत्यु के बाद मुल्तान और उच्छ दिल्ली सल्तनत में मिला लिए गए तथा इन प्रान्तों में मुक्ता नियुक्त किए गए । पर ऐसा प्रतीत होता है कि इल्तुतमिश ने ऊपरी सिंध सागर दोआब में तत्काल कोई बड़ी कार्यवाही नहीं की । नमक की पहाड़ियों की दुर्दमनीय जातियों द्वारा अधिकृत क्षेत्रों के अलावा मांगबरनी द्वारा अधिकृत पंजाब का एक भाग अब उसके गवर्नर सैफुद्दीन हसन कार्लुग के अधीन था, जोकि अपने स्वामी के लिए किसी भी शर्त पर जीतना चाहता था। जलालुद्दीन की गक्खरों के साथ संधि हो जाने के पश्चात् कारलुग का प्रभाव व्यापक हो गया, फिर भी उत्तरी पंजाब में इल्तुतमिश ने अपना प्रभाव क्षेत्र सियालकोट

1- मिनहाज-उस-सिराज: तबकात-ए-नासिरी, रेवर्टी भाग-1, पृ.-611-13,

2- जमीउल हिकायत: इलियट एवं डाउसन, भाग-2, पृ.-202,

और जानेर (हजनेर) तक बढ़ाया, संभवतः उसमें जालंधर भी था ।[1]

नवविजित प्रदेशों को इल्तुतमिश ने दिल्ली के उत्तर-पश्चिम में तीन प्रान्तों में संगठित किया, उदाहरणार्थ लाहौर, मुल्तान और सिंध के प्रान्त । इन प्रान्तों के मुक्तों को यह आदेश दिया गया था कि वे पूरे पंजाब को अपने में सम्मिलित कर ले । इन निर्देशों के परिणामस्वरूप लाहौर और मुल्तान के मुक्तों ने नन्दना का किला जो कि गक्खरों की राजधानी थी और कुंजाह (KUNJAH) जो कि ऐतिमोन[2] के अधीन था को अधिकृत कर लिया । इन चौकियों के स्थापित हो जाने से इल्तुतमिश के लिए तीन तरफ से सुरक्षा हो गयी, केन्द्र, उत्तरपूर्व और पश्चिमी पंजाब ।

किंतु इल्तुतमिश की उपर्युक्त कार्यवाही ने दिल्ली सल्तनत को मंगोलों के प्रत्यक्ष सम्पर्क में ला दिया । जब गोर से अन्तिम ख्वारिज्मी अधिकारी कुतबुद्दीन हसन निकाल दिया गया, तब सिंध घाटी पर और अधिक दबाव पड़ने लगा । हसन कुतलुग को भी 1230ई॰में शत्रु के प्रति सामूहिक आत्मसमर्पण करके अपने अस्तित्व की रक्षा करनी पड़ी ।[3] सिंध में उजबेक पार का जो अस्तित्त्व बना हुआ था वहाँ अपनी सैनिक कार्यवाही विस्तृत करने के लिए मंगोलों को स्थाई आमंत्रण था ।. 1229 ई॰ सन् के कुछ समय उपरान्त इल्तुतमिश और उसके प्राक्तन सहयोगी हसन कारलुग के संयुक्त प्रयास से उसके निष्कासन से भी जान पड़ता है कि परिस्थिति में कुछ सुधार नहीं हुआ, क्योंकि उच्छ और मुल्तान के अधिग्रहण से इल्तुतमिश मंगोलों

1- हसन निजामी: ताजुल मआसिर, इलियट एण्ड डाउसन, भाग-2, पृ॰242,

2- मिनहाज-उस-सिराज: तबकात-ए-नासिरी, पृ॰ 179, 253, 176,
निज्जर, बी॰एस॰: पंजाब अण्डर दि सुल्तान्स, पृ॰ 37,

3- मिनहाज-उस-सिराज: तबकाते नासिरी, पृ॰-377,
हबीबुल्ला, ए॰बी॰एम॰: भारत में मुस्लिम राज्य की बुनियाद, पृ॰-176,

का पड़ोसी हो गया ।

सन् 1229 ई. में उक्ताई खाँ के अभिषेक के लिए आयोजित मंगोल कुरिल्ताई ने खुरासान और अफगानिस्तान की पुनर्विजय और आंशिक सम्मिलन का निर्णय किया ।[2] इसके परिणाम स्वरूप दिल्ली सीमा पर संलग्न राज्यों पर अनेक नए आक्रमण हुए । 1235-36ई.में पश्चिमी अफगानिस्तान में स्थित सीस्तान का राज्य मंगोलों की अधीनता स्वीकार करने के लिए बाध्य किया गया ।[3] हेल्मंड {HALMAND} के पार बिलोचिस्तान के मार्ग से आकर मंगोल अश्वारोही डेराजात घाटी में सक्रिय हो गए, जहाँ से उत्तरी सिंध का मार्ग है । उसी समय एक मंगोल सेना उत्तरी अफगानिस्तान से होती हुई आगे बढ़ी और सिंध नदी के उत्तरी भाग के तटस्थ प्रदेश में सैनिक कार्यवाही आरम्भ की । 1236 ई. सन् में इल्तुतमिश ने बनियन की ओर प्रस्थान किया जो जलालुद्दीन मांगबरनी के एक अधिकारी सैफुद्दीन हसन कारलिग के अधिकार में था । मंगोल जलालुद्दीन को पराजित नहीं कर सके थे और वह गजनी तथा सिंध के बीच के प्रदेश में बड़े संकट किंतु दृढ़ता से समय व्यतीत कर रहा था । इस अभियान में इल्तुतमिश बीमार पड़ा और शाबान् {2=अप्रैल} को "ज्योतिषियों द्वारा निश्चित समय पर" पालकी में बैठकर वह राजधानी लौट आया । 30 अप्रैल 1236ई.को उसका देहांत हो गया ।[4]

1- हबीबुल्ला, ए0बी0एम0: भारतमें मुस्लिम राज्य की बुनियाद, पृ. 176,

2- हावर्थ: मंगोल्स, पृ.-126, 127,

3- हबीबुल्ला, ए0बी0एम0: भारत में मुस्लिम राज्य की बुनियाद पृ. 176,

4- मिनहाज-उस-सिराज: तबकाते नासिरी, रैवर्टी, भाग-1,पृ.-30,
श्रीवास्तव, ए0एल0: दिल्ली सल्तनत, पृ.-101,

इल्तुतमिश के उत्तराधिकारियों के समय उत्तरी-पश्चिमी सीमा की समस्याएं

§1§ सुल्तान रूकनुद्दीन फीरोजशाह §1236-ई.§

इल्तुतमिश का ज्येष्ठ पुत्र नासिरूद्दीन महमूद जो बड़ा योग्य और प्रतिभा शाली था, उसके जीवन काल में ही मर चुका था ।[1] अतः 29 अप्रैल 1236 ई. को जब इल्तुतमिश की मृत्यु हो गई तो उसका द्वितीय पुत्र रूकनुद्दीन फिरोज 30 अप्रैल 1236 ई. को गद्दी पर बैठा । उसने रूकनुद्दीन की उपाधि धारण की । रूकनुद्दीन अत्यधिक आलसी, विलासी औरअयोग्य शासक हुआ । शासन सत्ता उसकी माँ शाह तुर्कान के हाथ थी, जो मदान्ध, विवेक शून्य और निर्दयी रानी थी । रूकनुद्दीन की अयोग्यता और विलासिता तथा शाह तुर्कान की निर्दयता और अपमानजनक व्यवहार से दरबार में षडयन्त्रों का प्रादुर्भाव होने लगा । उत्तरी-पश्चिमी सीमा वर्ती क्षेत्रों के मुक्ती विद्रोह की योजना बनाने लगे और जलालुद्दीन मंगबरनी के अफगानिस्तान में नियुक्त प्रतिनिधि हसन कारलुग की भी सिंध की ओर लोलुप दृष्टि पड़ने लगी ।

मुल्तान के इक्तादार मलिक सैफुद्दीन कूची तथा लाहौर के इक्तादार मलिक अलाउद्दीन जानी तथा कुछ अन्य प्रांतो के गवर्नरों ने आपस में मिलकर षडयंन्त्र किया और विद्रोह कर दिया ।[2] साम्राज्य के कुछ प्रभावशाली मलिकों का वह दुर्जेय समूह था । फीरोज ने उनका दमन करने के लिए एक विशाल सेना के साथ राजधानी दिल्ली से कूच किया ।[3] पर राजकीय अधिकारी या तो

1- मिनहाज-उस-सिराज: तबकात-ए-नासिरी, रिजवी, आदि तुर्ककालीन भारत, पृ.-31,

2- मिनहार-उस-सिराज: तबकात-ए-नासिरी, रिजवी, आदि तुर्ककालीन भारत, पृ. 31,

3- श्रीवास्तव, ए०एल०: दिल्ली सल्तनत, पृ.-104,

विद्रोहियों की शक्ति से डरते थे या वे सुल्तान के प्रति निष्ठावान नहीं थे । प्रधान मंत्री निजामुलमुल्क जुनैदी किलोगढ़ी के निकट सेना से पृथक होकर कोयल भाग गया । और वहाँ से मलिक ईजुद्दीन सालारी से मिलने चला गया । तत्पश्चात् जुनैदी और सालारी मलिक जानी और कूची की सेनाओं से मिल गए ।[1] 1236ई में लाहौर के मलिकों ने सुल्तान को अपदस्थ करने के लिए एक संगठन बनाया ।[2] पंजाब में विद्रोह के महत्त्व को ध्यान में रखकर सुल्तान ने अपनी सेना को कुहराम की ओर भेजा । उधर मलिकों[3] की सभी संयुक्त सेनाएं मंसूर पुर[4] पहुँची । सुल्तान भी उनका सामना करने के लिए कुहराम से बाहर आया लेकिन उसके सैनिक अधिकारियों ने रास्ते में उसका साथ छोड़ दिया । राजमाता शाह तुर्कान को जेल में डाल दिया गया और मार डाला गया । तुर्की अमीर, शाही परिवार के लोग तथा रक्षकों ने रजिया का साथ दिया और उसे गद्दी पर बिठाया ।[5] इस प्रकार इल्तुतमिश के देहावसान के उपरान्त रूकनुद्दीन ने मात्र छः मास 28 दिन तक शासन किया ।[6]

फीरोज के काल में एक वाह्य समस्या भी उत्पन्न हो गयी । मंगोलों के नवीन दबाव से बनियन में हसन की स्थिति आक्षणीय हो गयी । इसलिए उसने सिंध नदी के पूर्व के क्षेत्रों में अपने लिए एक राज्य बनाने की योजना बनायी । हि॰634/1236ई में फीरोज के शासन काल में जब चारों ओर अशांति और अव्यवस्था फैली हुई थी तब उसने दक्षिणी सिंध में प्रथम प्रयास किया और उच पर आक्रमण

1- हबीब एवं निजामी: दिल्ली सुल्तनत, पृ॰-201,
2- इसामी: फुतूहुस्सलातीन, मेंहदी हुसेन, पृ॰ 126,
निज्जर, बी॰एस॰: पंजाब अण्डर दि सुल्तान्स, पृ॰ 38,
3- सरहिन्दी, यहया: तारीख-ए-मुबारकशाही, बसु, पृ॰-22,
4- निज्जर, बी॰एस॰: पंजाब अण्डर दि सुल्तानस, पृ॰ 38,
5- इब्न बतूता: रेहला, इलियट एण्ड डाउसन, भाग-2, पृ॰ 592,
मिनहाज-उस-सिराज: तबकाते नासिरी, रैवर्टी, पृ॰ 632-33,
6- मिनहाज-उस-सिराज: तबकाते नासिरी, रैवर्टी पृ॰ 187,

किया परन्तु वहाँ से भगा दिया गया और उसे अत्यधिक हानि उठानी पड़ी ।[1] इस प्रकार अव्यवस्था के क्षणों में भी हसन कारलुग कोई विशेष लाभ न उठा सका ।

{2} रजिया {वर्ष 1236-1240 ई॰}

रजिया के सिंहासनारूढ़ होते ही राज्य के प्रमुख अमीरों और मुल्तान, हांसी तथा लाहौर के प्रान्तपतियों ने रजिया के विरूद्ध विद्रोह का झण्डा खड़ा कर दिया ।[2] वे रजिया को शासिका व सुल्ताना के रूप में देखना नहीं चाहते थे । शासन के प्रारम्भ में ही वजीर मुहम्मद जुनैदी लाहौर का इक्तादार मलिक ईजुद्दीन कबीर खाँ अयाज, अलाउद्दीन शेर खानी, इत्यादि के विद्रोह का दमन करने के पश्चात रजिया ने शासन को पुनर्संगठित किया । मुल्तान के गर्वनर मलिक ईजुद्दीन कबीर खाँ अयाज को जो सर्वप्रथम विद्रोही गुट से पृथक हुआ था, को लाहौर और मुल्तान का गवर्नर बना दिया ।[3] अमीरों तथा सुल्तान के बीच सर्व शक्ति सम्पन्नता के लिए इस समय तीव्र होड़ चल रही थी । इस कारण सल्तनत की समस्याएं उग्र होती जा रही थीं । रजिया एक योग्य शासिका थी, अस्तु कुछ समय तक उसने जब तक कि उसकी हत्या नहीं हो गई । समस्याओं को काबू में रखने की कोशिश की ।

रजिया की विजय ने उसकी छवि को उज्जवल बना दिया और स्थिति को सुदृढ़ कर दिया । लेकिन शीघ्र ही यही सफलता उसके पतन का मुख्य कारण बनी । तुर्की अमीर जिन्होंने अपने को एक सैन्य भ्रातृत्व में संगठित कर लिया था और कुतबुद्दीन ऐबक के समय से सभी शक्तियों का प्रयोग कर रहे थे, इस

1- मिनहाज-उस-सिराज: तबकात-ए-नासिरी, रैवर्टी, पृ॰-635,

2- श्रीवास्तव, ए०एल०: दिल्ली सल्तनत, पृ॰-104,

3- फरिश्ता: तारीख-ए-फरिश्ता, भाग-1, अनु० ब्रिग्स, पृ॰-218-19,
रैवर्टी, एच०जी०: नोट्स आन अफगानिस्तान, पृ॰-640-41,
मिनहाज-उस-सिराज: तबकाते नासिरी, अनु॰ रिजवी, आदि तुर्क कालीन-भारत, पृ॰-35,

तानाशाह सुल्ताना को अधिक दिन तक सहन नहीं कर सके । अतः वे रजिया के विरूद्ध षडयन्त्र में संलग्न हो गये ।[1] कबीर खाँ ने जिसके स्वभाव में महत्वाकांक्षा और विश्वासघात कूट-कूट कर भरी हुई थी, अन्य दास अधिकारियों के विद्रोह का पूर्वाभास कर उनसे आगे निकल जाने का निश्चय किया । ऐसा प्रतीत होता है कि वह दिल्ली के षडयन्त्रकारियों से पृथक था, क्योंकि जब रजिया ने 636हि०/1238-39ई०में उसके विरूद्ध कूच किया तो वह रावी नदी पार कर सोदरा की ओर भाग गया । चूँकि रजिया ने उसका पीछा करने का निश्चय किया था और सोदरा के उस पार का प्रदेश मंगोलों के अधिकार में था । इस लिए उसके पास आत्मसमर्पण के अतिरिक्त और कोई विकल्प न रह गया ।[2] लाहौर की "इक्ता" उससे छीन ली गई किंतु मुल्तान की "इक्ता" जो पहले उसके अधिकार में थी और जिसे इल्तुतमिश ने इख्तियारूद्दीन कराकुश खाँ ऐतिगीन को दी थी उससे हस्तान्तरित कर कबीर खाँ को दे दी गई ।

जिस समय रजिया लाहौरके अभियान पर गई थी उस समय इख्तियारूद्दीन ऐतिगीन एवं इख्तियारूद्दीन अल्तूनिया ने उसके विरूद्ध षडयन्त्र की योजना बनाई । मिनहाज कहता है: जब सुल्ताना रजिया ने जमालुद्दीन याकूत हब्शी को अपना विश्वास पात्र बना लिया और शम्सी दास, तुर्क अमीर तथा मलिक सुल्तान से अप्रसन्न हो गए तो मलिक इख्तियारूद्दीन ऐतिगीन अमीर हाजिब को, जो मलिक इख्तियारूद्दीन अल्तूनिया ताबरहिन्दा के राज्यपाल का मित्र तथा सहायक था, इस परिवर्तन की सूचना दे दी । इख्तियारूद्दीन अल्तूनिया ने गुप्त रूप से ताबरहिन्दा के दुर्ग में विद्रोह की तैयारी आरम्भ कर दी और सुल्तान के प्रति स्वामिभक्ति त्याग दी ।

1- फरिश्ता: तारीख-ए-फरिश्ता, भाग-1, उद्धृत वी. एस. निज्जर, पृ. 39, इसामी: फुतूहुस्सलातीन, मेंहदी हसन, पृ. 128-29, मिनहाज-उस-सिराज: तबकात-ए-नासिरी, अनु. रिजवी, आदि तुर्क कालीन भारत, पृ. -35,

2- मिनहाज-उस-सिराज: तबकात-ए-नासिरी, अनु. रिजवी, आदि तुर्क कालीन भारत, पृ. 35,

कबीर खाँ की समस्या का समाधान करने के पश्चात् रजिया 9 रमजान 637 हि./3 अप्रैल 1240 को दिल्ली वापस आई । वापस आने पर उसे अल्तूनिया के विद्रोह की सूचना मिली । दिल्ली के अमीर भी गुप्त रूप से अल्तूनिया के साथ थे ।[1] 13 अप्रैल को रजिया ने ताबरहिन्दा की ओर कूच किया । जब रजिया की सेना ताबरहिन्दा दुर्ग के सामने पहुँची तो तुर्क अमीरों ने विद्रोह कर याकूत की हत्या कर दी और रजिया को बंदी बनाकर ताबरहिन्दा दुर्ग में भेज दिया।[2] दिल्ली स्थित तुर्क अमीरों ने जो रजिया के इस दशा की प्रतीक्षा कर रहे थे, यह सूचना पाते ही तुरन्त मुईज़ुद्दीन बहराम शाह को सिंहासनारूढ़ कर दिया ।[3]

यह समझकर कि रजिया अल्तूनिया के अधिकार में सुरक्षित है, दिल्ली के प्रभावशालीअमीरों ने दरबार के बड़े-बड़े पद और "इक्ताए" आपस में बाँट ली और अल्तूनिया के अधिकारों की उपेक्षा की । ऐतिगीन "नायब-ए-ममलिकत" नियुक्त किया और उससे यह आशा की गई कि इस नवनिर्मित पद के आधार पर वह समस्त शासन पर नियन्त्रण रखेगा । किंतु नये सुल्तान ने एतिगीन की एक दो मास के भीतर कपट हत्या करवा दी और अल्तूनिया के अपने विद्रोह करने के पुरस्कार प्राप्त करने की आशा न रही ।

रजिया ने उपर्युक्त स्थिति का लाभ उठाया और अल्तूनिया से विवाह कर लिया ।[4] क्योंकि यह सम्बन्ध दोनों ने ही लाभकर समझा । इस वैवाहिक

1- मिनहाज-उस-सिराज: तबकात-ए-नासिरी, रिजवी, आदि, तुर्ककालीन-भारत, पृ.-36,

2- मिनहाज-उस-सिराज: तबकात-ए-नासिरी, रिजवी, आदि,तुर्ककालीन-भारत,पृ.-36,

3- मिनहाज-उस-सिराज: तबकात-ए-नासिरी, रिजवी, आदि,तुर्ककालीन-भारत,पृ.-36,
श्रीवास्तव, ए0एल,:दिल्ली सल्तनत, पृ.-106,

4- मिनहाज-उस-सिराज: तबकात-ए-नासिरी,रिजवी,आदि तुर्ककालीन, भारत, पृ.-36,
यहया सरहिन्दी के अनुसार यह विवाह सफर 638 हि./सितम्बर 1240 ई. में सम्पन्न हुआ, तारीख-ए-मुबारकशाही,पृ.-29
हबीब निजामी: दिल्ली सुल्तनत, पृ.-206,

सम्बन्ध से रजिया यह आशा करती थी कि उसे स्वतन्त्रता एवं सिंहासन दोनों ही मिल जाएगा और अल्तूनिया ने इससे अपनी उन्नति की कल्पना की । अल्तूनिया ने खोखरों जाटों और राजपूतों[1] की सेना एकत्रित की और कुछ असंतुष्ट तुर्क अमीर जैसे मलिक कराकुश तथा मलिक सालारी को भी अपनी ओर मिला लिए और रजिया सहित दिल्ली की ओर कूच किया । उनके अन्त का विवरण मिनहाज इस प्रकार देता है: रबीउल अव्वाल 638 हि./सितम्बर-अक्टूबर 1240ई. में मुईजुद्दीन बहराम ने एक सेना सहित उनके विरूद्ध कूच किया और रजिया तथा अल्तूनिया पराजित कर खदेड़ दिए गए । जब वे कैथल[2] के निकट पहुँचे तो सैनिकों ने उनका साथ छोड़ दिया । रजिया और अल्तूनिया हिन्दू डकैतों द्वारा बन्दी बना लिए गए और उनकी हत्या करदी गई ।[3]

मंगोल-समस्या-

रजिया के समय में मंगोल समस्या ने भी अप्रत्यक्ष रूप से उत्तरी-पश्चिमी सीमा को प्रभावित किया । 1238 ई. में मंगोलों ने अंतिम रूप से हसन कारलुग के राज्य को अपने राज्य में मिलालिया जिससे वह शरण के लिए पंजाब की ओर भाग आया । इस पर इल्तुतमिश के साथ उसका जो मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध था उसके नवीनीकरण का उसने प्रयास किया और उसे पूर्ण मंगोल विरोधी संधि में परिणत करने की चेष्टा की । उसका पुत्र रजिया के दरबार में गया, जिसने कि उसका हर प्रकार से आदर सत्कार तो किया परन्तु मंगोलों की शत्रुता मोल लेने से

1- इसामी: फुतुहुस्सलातीन, पृ. 132-37, परइसामी का विवरण थोड़ा भ्रामक है, हबीब निजामी, दिल्ली सुल्तनत, पृ. 206,

2- हेग, डब्लू: कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया, भाग-3 पृ.-60,

3- फरिश्ता: तारीख-ए-फरिश्ता, भाग-1, पृ.-73-74,
निज्जर, बी0एस0: पंजाब अण्डर दि सुल्तान्स, पृ.-42,

शिष्टतापूर्वक इंकार कर दिया । रजिया ने उसके खर्च के लिए उसे बारन §BARAN§ दे दिया और अनुमानतः उसे वहीं नजरबन्द भी कर दिया ।[1] परन्तु निराश कारलुग शासक वहाँ से भाग गया और अपने पिता से जा मिला जिसने अपने भूतपूर्व स्वामी के खोकर मित्रों के यहाँ अल्पकालिक आश्रय प्राप्त कर लिया था ।[2] जान पड़ता है कि रजिया के कार्य से मंगोल प्रसन्न हो गए और चूंकि उसका पिता ख्वारिज्म शाह के साथ चंगेज के युद्ध में तटस्थ था, संभवतः इसलिए उन्होंने उसकी सीमा का सम्मान किया और विद्रोही कबीर खाँ को सहायता नहीं दी। कबीर खाँ की प्रगति के विवरण से जो अपने पश्चिमाभिमुख पलायन में रूकने के लिए बाध्य हो गया था, जान पड़ता है कि यह सीमा सोधारा §SODHARAH§ §चनाब§ थी जिसके आगे जाने से मंगोलों ने उसे रोक दिया था ।[3]

§3§ मुइज्जुद्दीन बहरामशाह §1240-1242 ई.§

बहराम शाह के समय उत्तरी-पश्चिमी सीमा और अधिक संकटपूर्ण हो गई । रजिया की राज्यच्युति का मंगोल यह अर्थ लगाते थे कि दिल्ली के साथ उनकी अनाक्रमण संधि समाप्त हो गई । इसलिए उन्होंने यह निर्णय किया कि भारत को भी अपनी विजय योजना में सम्मिलित किया जाय ।[4] मंगोल सेना अध्यक्ष बहादुर तामर ने 1239-40 ई. में अचानक सैफुद्दीन कर्लिग पर आक्रमण कर दिया । सैफुद्दीन पराजित हुआ और गजनी, किरमान तथा बनियन मंगोल

1- हबीबुल्ला: ए०बी०एम०: भारत में मुस्लिम राज्य की बुनियाद, पृ. 177,

2- मिनहाज-उस-सिराज: तबकात-ए-नासिरी, पृ.-392,
हबीबुल्ला: भारत में मुस्लिम राज्य की बुनियाद पृ.-177,

3- हबीबुल्ला, ए०बी०एम०: भारत में मुस्लिम राज्य की बुनियाद, पृ.-177,
श्रीवास्तव, ए०एल०: दिल्ली सल्तनत, पृ.-302,

4- हबीबुल्ला, एबी.एम०: भारत में मुस्लिम राज्य की बुनियाद पृ.-177,

राजदूतों के अधिकार में छोड़ मुल्तान और सिंध की ओर भाग गया ।

मिनहाज का उल्लेख है कि 12 जुलाई, 1241-42 में यह निश्चय किया गया कि मंगोल सेनाएं लाहौर की ओर कूच करें । उस समय मुईज्जुद्दीन बहराम दिल्ली का शासक था, कबीर खाँ अयाज मुल्तान का मुक्ती था और मलिक इख्तियारूद्दीन कराकश लाहौर का मुक्ती था । जब तायर बहादुर जो हिरात और बदगीज का स्वामी था तथा अन्य "नोयान" जो"गोर; गजनी, गर्मसीर और तुखारिस्तान के अधिकारी थे, सिंध नदी के किनारे पहुँचे तो,कबीरखाँ ने अपनी प्रतिष्ठा बनाये रखने के उद्देश्य से छत्र धारण कर लिया और अपने सैनिक एकत्रित कर (एक स्वतन्त्र शासक की भाँति) धर्मयुद्ध की तैयारी करने लगा । जब यह समाचार मंगोलों के शिविर में पहुँचा तो उन्होंने लाहौरपर आक्रमण करने का निर्णय लिया और नगर के द्वार पर पहुँच गए ।[2]

लाहौर में न तो खाद्य सामग्री थी और न हथियार । वहाँ के नागरिकों में एकता भी नहीं थी । अधिकांश निवासी व्यापारी थे जिन्होंने मंगोलों के शासन काल में उत्तरी प्रदेशों जैसे खुरासान एवं तुर्किस्तान की यात्रा की थी और भविष्य में अपनी सुरक्षा ध्यान में रखते हुए प्रत्येक ने मंगोल अधिकारियों से सुरक्षापत्र (पायजा) प्राप्त कर लिए थे । सुरक्षा के इस निराधार विश्वास के फलस्वरूप उन्होंने दुर्ग की चारदीवारी की रक्षा करने अथवा मंगोलों से युद्ध करने में मलिक कराकुश की सहायता न की । चूंकि तुर्क और गोरी अमीर बहराम शाह से डरते थे इसलिए वे एक साथ एकत्रित न हो सके । दिल्ली के अत्यावश्यक सहायता के लिए निवेदन किया गया किन्तु वजीर की दुरभिसंधि ने कुमक को दूसरे काम में

1- मिनहाज-उस-सिराज: तबकात-ए-नासिरी,अनुवाद-
रिजवी: आदि तुर्क कालीन भारत, पृ.-39,

2- मिनहाज सिराज, तबकात-ए-नासिरी,रैवर्टी,भाग-2,पृ.-1132-33,
सरन. पी0, स्टडीज इन मेडिवल इण्डिया, पृ.-203,

लगा दिया।[1] फिर भी कराकुश अपनी शक्ति भर युद्ध करता रहा किन्तु वह नागरिकों की परस्पर फूट जानता था और काजी तथा अन्य प्रतिष्ठित व्यक्ति जिन्हें उसने बुर्ज की रक्षा हेतु नियुक्त किया था पूर्णरूपेण लापरवाही के दोषी थे। कराकुश इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि नगर की रक्षा करना उसकी शक्ति के बाहर है इसलिए रात्रि में आक्रमण करने के बहाने वह नगर से बाहर निकल कर आया और दिल्ली की ओर कूच किया।[2] मंगोलों ने उसका पीछा किया पर वह अपने परिवार से बिछुड़ने के बावजूद सुरक्षित दिल्ली भाग गया।[3]

दूसरे दिन जब लाहौर के नागरिकों और शेष सैनिकों को कराकुश के भागने का समाचार मिला तो वह बिल्कुल हताश हो गए, फिर भी मिनहाज की सूचना के अनुसार दो दलों ने मंगोलों से संघर्ष जारी रखा।[4] एक ने कोतवाल अक्सुनकर और दूसरे ने दीनदार मुहम्मद, "अमीरे आखुर" के नेतृत्व में मंगोलों से तब तक युद्ध किया जब तक उनके शरीर में जान रही। अक्सुनकर लड़ता हुआ तायर बहादुर के सामने आया, घोर संघर्ष में दोनों ही मारे गये। यद्यपि मंगोलों को भयंकर क्षति उठानी पड़ी, फिर भी 22 दिसम्बर 1241 ई॰ को मुगलों ने लाहौर पर अधिकार कर लिया और उन्होंने लाहौर को बुरी तरह लूटा तथा बहुत से

1- मिनहाज-उस-सिराज: तबकात-ए-नासिरी, भाग-1, पृ॰ 656-60,
हबीबुल्ला, ए०बी०एम०: भारत में मुस्लिम राज्य की बुनियाद॰ पृ॰ 177,

2- सरहिन्दी, यहया: तारीख-ए-मुबारकशाही, बसु, पृ॰-27,
मिनहाज-उस-सिराज तबकात-ए-नासिरी, अनु० रिजवी, आदि तुर्क कालीन, भारत, पृ॰-39,

3- मिनहाज-उस-सिराज: तबकात-ए-नासिरी, अनु० रिजवी, आदि तुर्क कालीन भारत, पृ॰-39,

4- मिनहाज-उस-सिराज: तबकात-ए-नासिरी, अनु० रैवर्टी, भाग-2, पृ॰ 1133,

लोगों को गिरफ्तार कर लिया ।[1] सरहिन्दी लिखता है कि विश्वासघाती मंगोलों ने शहर पर अधिकार कर लिया, मुसलमानों की हत्या कर दी और इनके आश्रितों को गुलाम बना लिया ।[2]

लाहौर नष्ट भ्रष्ट करने के पश्चात् मंगोल भाग गए । तत्पश्चात् खोखर तथा अन्य जनजातियाँ नगर में आईं और जो वस्तु लूट से बच गई थी उसे लूटा किंतु उन्हें कराकुश ने जो लौट आया था, मार डाला । मंगोलों के इस पलायन का कारण मंगोल अधिपति ओगताई की मृत्यु की सूचाना थी ।[3]

कबीर खाँ अयाज ने दिल्ली के प्रति निष्ठा से मुख मोड़ लिया था किंतु वह लाहौर के विनाश के पश्चात 1241-42 ई. में मर गया । उसका पुत्र ताजुद्दीन अबू बक्र अयाज उसका उत्तराधिकारी बना । ताजुद्दीन एक वीर योद्वा था । उसने मुल्तान के द्वार पर कार्लिगों को अनेक बार पराजित किया । कहते हैं कि उसने समस्त सिंध पर अधिकार कर लिया । किंतु वह युवावस्था में ही मर गया ।[4]

सुल्तान ने मंगोलों को आगे बढ़ने से रोकने और उत्तरी-पश्चिमी सीमा की रक्षा करने के लिए मलिक कुत्बुद्दीन सहन गोरी और ख्वाजा मुहज्ज-बुद्दीन को अन्य अमीरों सहित भेजा । पर तुर्की अमीर सुल्तान में अपने विश्वास को खो चुके थे । अतः जब सेना व्यास नदी पर पहुँची तो वे लाहौर की ओर बढ़ने के बजाय सुल्तान के विरूद्व युद्व करने की योजना बनाने लगे । इसी बीच मंगोल भी व्यास के किनारे-किनारे बढ़ रहे थे । उधर ख्वाजा मुहज्जबुद्दीन

1- मिनहाज-उस-सिराज: तबकात-ए-नासिरी, पृ. 195, अनु0 रिजवी, आदि तुर्क कालीन भारत, पृ.-39,
फरिश्ता: तारीख-ए-फरिश्ता, भाग-1, पृ.-69,
निज्जर, बी0एस0: पंजाब अण्डर दि सुल्तान्स, पृ.-40,

2- सरहिन्दी, यहया: तारीख-ए-मुबारकशाही, अनु0 बसु,पृ.-69,

3- मिनहाज-उस-सिराज: तबकात-ए-नासिरी, पृ.-235-36,अनु0 रैवर्टी, भाग-,पृ.-1134-36,

4- हबीब निजामी: दिल्ली सुल्तनत पृ.-211,

ने सुल्तान के पास एक गुप्त संदेश भेजा जो वास्तव में एक चाल थी । यह गुप्त संदेश था कि तुर्क और अमीर कभी निष्ठावान नहीं हो सकते, यह उचित होगा कि आप मेरे और कुतबुद्दीन के लिए यह आदेश भेजें कि शीघ्र उपलब्ध उपायों से इन अमीरों एवं तुर्कों को मार डाला जाए ताकि देश उनसे रिक्त हो जाए ।"

इस प्रार्थना पत्र के पहुँचने पर उस अनुभव हीन सुल्तान ने जल्दी में बिना सोचे समझें फरमान लिखवाकर भिजवा दिया । जब वह फरमान सेना के शिविर में पहुँचा तो उसने उसेअमीरों तथा तुर्कों को दिखा दिया कि बादशाह ने तुम्हारे विषय में इस प्रकार का फरमान भेजा है । सभी सुल्तान के विरोधी बन गये और ख्वाजा मुहज्जब के कहने पर सुल्तान को निकालने तथा राज सिंहासन से वंचित करने पर सहमत हो गये ।

जिस समय अमीरों तथा सेना के समाचार देहली पहुँचे तो सुल्तान ने शेखुल इस्लाम सैय्यद कुत्बुद्दीन को उस विद्रोह को शांत करने के लिए मलिकों के पास भेजा । उसने वहाँ पहुँचकर उस विद्रोह को और भी बढ़ा दिया और वहाँ से लौट गया । सेना भी उसके पीछे शहर देहली के द्वार पर पहुँची और युद्ध प्रारम्भ हो गया । मिनहाज सिराज तथा शहर के बड़े-बड़े इमामों ने विद्रोह को शांत करने का विशेष प्रयत्न किया किंतु वे सफल न हो सके । तुर्क अमीरों ने किले पर अधिकार जमा लिया सुल्तान बंदी बनाया गया और उसकी हत्या कर दी गई ।[1]

1- सरहिन्दी, यहया: तारीख-ए-मुबारकशाही, अनु. बसु, पृ.-30,
फरिश्ता: तारीख-ए-फरिश्ता, भाग-1, पृ.-70,
निज्जर, बी0एस0: पंजाब अण्डर दि सुल्तान्स, पृ.-40

§4§ सुल्तान अलाउद्दीन मसऊदशाह-§1242-1246 ई.§

बहराम के समय आन्तरिक ईर्ष्या और अव्यवस्था के कारण देश विखण्डित हो चुका था।[1] मुल्तान और उच के गवर्नरों ने अपनी स्वतंन्त्रता की घोषणा कर दी थी। सिंध में भी मंगोलों के आक्रमण की प्रतिक्रिया ने दिल्ली के प्रभाव को खतरे में डाल दिया। अब हसन कारलुग को एक सुरक्षित आश्रय की आवश्यकता थी, अतएवं उसने मुल्तान पर हमला करना शुरू कर दिया। यह नगर कबीर खाँ के अधिकार में था जिसने हाल में मसऊद के विरूद्ध विद्रोह किया था और उच पर भी जबरदस्ती कब्जा कर लिया था।[2] कड़े प्रयासों के पश्चात् 1245 ई. में हसन मुल्तान पर अधिकार करने में सफल हुआ।[3] इस प्रकार विद्रोही कबीर खाँ के हाथ में उच के भी आ जाने से पूरा सिंध दिल्ली के अधिकार से निकल गया। परन्तु अगले वर्ष के आरम्भ में मुगलों का एक आक्रमण हुआ जिससे अप्रत्याशित रूप से मसऊद की सरकार सिंध प्रदेश पर फिर अधिक अधिकार प्राप्त कर सकी।[4] बहादुरतायर के बाद मंगुताह §MANGUTAH§ अफगानिस्तान कमान का अधिकारी नियुक्त हुआ। उसने हसन कारलुग को सिंध से निकाल भगाने के लिए सिंध नदी को पार किया। कारलुग ने जल्दी से मुल्तान छोड़ दिया और पंजनद से होता हुआ सेहवान भागा और फिर वहाँ से दक्षिणी सिंध में भाग गया।[5] तब नमक के पहाड़ के राजा जसपाल सिंह §JASPAL-SIHRA§ के मार्ग दर्शन से मंगोलों ने उच की ओर प्रयाण किया जो कबीर खाँ द्वारा खाली कर दिया

1- मुहम्मद अजीज: अर्ली तुर्किश इम्पायर आफ डेलही, पृ.-70,
2- मिनहाज-उस-सिराज: तबकात-ए-नासिरी, पृ.-339,
   हबीबुल्ला, ए0वी0एम0: भारत में मुस्लिम राज्य की बुनियाद, पृ.-177,
3- मिनहाज-उस-सिराज: तबकात-ए-नासिरी, पृ.-235 एवं 287,
4- हबीबुल्ला, ए0वी, एम0: भारत में मुस्लिम राज्य की बुनियाद, पृ.-177,
   यह मंगू खाँ नहीं, मंगूखाँ चंगेज के पुत्र तूली का पुत्र था। मंगूता चंगेज का एक विश्वासपात्र था-आदि तुर्क कालीन भारत, रिजवी, पृ.42,
5- मिनहाज-उस-सिराज: तबकात-ए-नासिरी, रैवर्टी, पृ.-1155,

गया था । नागरिकों ने वीरता पूर्वक प्रतिरक्षा की और घेरा डालने वालों को कई बार पराजित भी किया[1] परन्तु अन्त में उन्होंने देखा कि अकेले प्रतिरोध करना कठिन है, इसलिए उन्होंने दिल्ली से सहायता के लिए निवेदन किया । नायब उलूग खाँ (बल्बन) ने तुरन्त इस अवसर का लाभ उठाया और उनकी सहायता के लिए स्वयं एक शक्तिशाली सेना लेकर प्रस्थान किया ।[2] व्यास के उत्तरी तट पर पार्श्विक गति से उसने अपरी सिंध सागर दोआब से होकर मंगोलों का जो वापस जाने का मार्ग था उसको जोखिम में डाल दिया ।[3] जब मंगोलों ने इस खतरे को महसूस किया और जब उन्हें दिल्ली की विशाल सेना की सूचना मिली, तब उन्होंने घेरा उठा लिया और अनेक कैदियों को पीछे छोड़कर वेसिंध नदी के पार चले गये । निजामी के अनुसार बलबन की नीति मंगूता से युद्ध करने की नहीं थी । अतः उसने ऐसी स्थिति उत्पन्न की कि मंगूता बिना युद्ध के ही भाग जाय ।[4]

उच और अरक्षित मुल्तान पर भी उलूग खाँ ने निर्विरोध अधिकार कर लिया । उसने इन दोनों नगरों को किश्लू खाँ के प्रभार में छोड़ दिया और स्वयं अपनी सेना लेकर उत्तर की ओर प्रस्थान किया क्योंकि वह उन पर्वतीय जनजातियों को दंड देना चाहता था जिन्होंने हाल में लाहौर में लूटमार की थी और मंगोलों को सहायता भी दी थी । परन्तु इस सैनिक अभियान को स्थगित करना पड़ा क्यों कि मसउद को गद्दी से हटाने के लिए दिल्ली में षड्यन्त्र चल रहा था ।

1- मिनहाज-उस-सिराज: तबकात-ए-नासिरी, रैवर्टी, पृ.-1153-56, हबीबुल्ला, ए0बी0एम0: भारत में मुस्लिम राज्य की बुनियाद, पृ. 177-78

2- मिनहाज-उस-सिराज: तबकात-ए-नासिरी, अनु. रैवर्टी, भाग-2 पृ. 810-11

3- मिनहाज-उस-सिराज: तबकात-ए-नासिरी, अनु. रैवर्टी, भाग-2 पृ. 811-13,

4- हबीब निजामी: दिल्ली सुल्तनत, पृ.-255

अतः उलुग खाँ के लिए दिल्ली वापस लौटना आवश्यक था । 10 जून 1246 ई० को सुल्तान अलाउद्दीन मसूद बंदी बना लिया गया और उसी बंदी गृह में उसकी मृत्यु हो गयी ।[1]

§5§ नासिरूद्दीन महमूद-§1246-1265 ई०§

उत्तरी-पश्चिमी सीमा समस्या नासिरूद्दीन को विरासत के रूप में मिली थी । लाहौर मुल्तान और उच्छ पर दिल्ली सुल्तानों का स्थायी अधिपत्य नहीं रहा था । मंगोल आक्रमणों के कारण सिंध और पंजाब की स्थिति अशांत और असन्तोषजनक हो गयी थी । पंजाब के कुछ क्षेत्र पर मंगोलों का अधिकार हो गया था ।

नासिरूद्दीन महमूद ने बलबन के परामर्श से अपने शासन के प्रथम वर्ष में ही मंगल सूचक पताकाओं के साथ सेना लेकर सिन्ध नदी तथा मुल्तान की ओर एवं चीन के काफिरों[2] के विनाश के लिए रवाना हुआ ।[3] यह सैनिक प्रस्थान पश्चिमोत्तर सीमा पर सैन्य प्रदर्शन के उद्देश्य से था । वहाँ किसी शत्रु से युद्ध नहीं करना था किंतु खोखरों के सरदार ने मंगोलों का मार्गदर्शन किया था । चनाब तक पहुँचने के बाद वह पहाड़ियों में घुसा , यहाँ उसने आदिवासियों को अत्यधिक क्षति पहुँचाई और नन्दाना के निकटवर्ती प्रदेशों तक लूटमार की । यद्यपि यह माना जाता है कि दिल्ली की सेना इस अवसर पर सिंध नदी तक पहुँच गई थी तथापि स्पष्टतः उसकी सैनिक कार्यवाही झेलम के पूर्वी और सन्निकट

1- मिनहाज-उस-सिराज: तबकात-ए-नासिरी, रिजवी, आदि तुर्क कालीन भारत पृ.-43 तथा रेवर्टी, भाग-1, पृ०-669,

2- मुगलों, रिजवी; आदि तुर्क कालीन भारत-पृ०-46,

3- मिनहाज-उस-सिराज: तबकात-ए-नासिरी, रिजवी, आदि तुर्क कालीन भारत, पृ०-46,

प्रदेशों तक ही सीमित थी । उसके आगे मंगोल थे जिन्होंने "झेलम के नौकाघाटों से उलूगखाँ के सेनापतित्व में लड़ने वाले मुसलमान सैनिकों को देखा और उनके हृदय भय से परिपूर्ण हो गए ।[1]

1247ई० में उत्तर-पश्चिम की तरफ से नूइन सलीबहादुर के नेतृत्व में भारत पर मंगोलों का आक्रमण हुआ और एक बार पुन: सिंध से दिल्ली का अधिपत्य समाप्त हो गया । मंगोल आक्रमण कर मुल्तान पहुँचे और घेरा डालकर उन्होंने मुल्तान के नायब सूबेदार चंगीजखाँ को संधि वार्ता आरम्भ करने के लिए बाध्य किया । संत बहाउद्दीन जकारिया को मंगोलों के साथ आये हुए हेरात के अधीनस्थ शासक कुर्त के इस आशय से भेजा कि वह मुल्तान के नागरिकों की ओर से मंगोलों से प्रार्थना करें । इसके साथ ही मंगोलों को 1,05000 दीनार हर्जानादेने का प्रस्ताव भी भेजा गया ।[2] इसके बाद सलीबहादुर लाहौर पहुँचा । यहाँ के मुक्ता ने भी हर्जाना देना एवं अधीनता स्वीकार किया ।[3]

1249 ई० के कुछ समय बाद ही हसन कारलुग फिर मुल्तान की दीवारों के समक्ष उपस्थित हुआ । उसके प्रतिरोध के लिए उच से किश्लू खाँ शीघ्रतापूर्वक उसकी प्रतिरक्षा के लिए गया । घिरा के युद्ध में कारलुग सरदार की मृत्यु हो गई । किंतु उसकी सेना नगर पर अधिकार करने में सफल हो गई ।[4] मुल्तान कारलुगों के अधिकार में बना रहा । किश्लूखाँ ने उस पर पुन: अधिकार करने के

1- मिनहाज-उस-सिराज: तबकात-ए-नासिरी, पृ०-290, अनु० रिजवी, आदि तुर्क कालीन भारत, पृ०-46,

2- हबीबुल्ला, ए, बी०एम, भारत में मुस्लिम राज्य की बुनियाद, पृ० 178,

3- हबीबुल्ला, ए०बी०एम० भारत में मुस्लिम राज्य की बुनियाद, पृ० 178,

4- मिनहाज-उस-सिराज: तबकात-ए-नासिरी, पृ०-27, अनु०रिजवी, पृ०-44 रेवर्टी, भाग-2, पृ०-781-82,

लिए बहुत से निष्फल प्रयास किए। अन्त में संभवतः दिल्ली के निर्देश से, भटिंडा के मुक्ता शेर खाँ ने उस पर पुर्नविजय प्राप्त की ।[1] बाद में उस पर फिर विजय प्राप्त करने के प्रयास में किश्लू पराजित कर दिया गया और 1250ई०में उससे शेर खाँ ने उच भी छीन लिया ।[2] तत्पश्चात दिल्ली का अधिकार इन प्रान्तों पर ही मुक्त रहा ।[3]

किश्लू खाँ को बदायूँ का मुक्ता नियुक्त कर क्षति पूर्ति की गई किन्तु उसके मन में द्वेष ने जगह बना ली थी और उसने गुप्त रूप से बलबनकेविरोधी दल से मित्रता कर ली । बल्बन की पदच्युति के लिए पहला कदम उसने यह उठाया कि रेहान और कुतलुग के साथ मिलकर शेर खाँ को अधिकार च्युत करने केलिए उसने महमूद को राजी कर लिया । ऐसा प्रतीत होता है कि 1252ई०में "उच और मुल्तान" की तरफ जो अभियान ले जाया गया था इसकायही उद्देश्य था । इसमे अपनी सेनाओं के साथ उपस्थित होने के लिए गुट के प्रमुख सदस्यों को विशेष निर्देश दिया गया था ।[4] 1253 ई० के आरम्भ में व्यास नदी के तट पर स्थित शिविर से बल्बन की औपचारिक पद-च्युति कर दी गई । अपने शत्रुओं को सत्तारूढ़ देख कर शरेखाँ सिन्ध छोड़कर तुर्किस्तान चला गया, उच मुल्तान और भटिंडा के प्रदेश उसके परिचरों से ले लिए गए और कुछ समय के लिए अर्सलान खाँ[5] को सौंप दिये, गये, जो बाद में कुतलुग के दल में सम्मिलित हो गया था ।[6] रेहान की अन्तिम

1- फरिश्ता:तारीख-ए-फरिश्ता, भाग-1,पृ०-125,
हबीबुल्ला: भारत में मुस्लिम राज्य की बुनियाद, पृ०-180,

2- मिनहाज-उस-सिराज: तबकात-ए-नासिरी, रैवर्टी,भाग-1,पृ० 687, भाग-2, पृ०-782-83,

3- श्रीवास्तव, ए०एल०: दिल्ली सल्तनत,पृ०-303,

4- मिनहाज-उस-सिराज: तबकात-ए-नासिरी, रैवर्टी,भाग-1,पृ०-690,

5- मिनहाज-उस-सिराज: तबकात-ए-नासिरी, रैवर्टी,भाग-1-पृ०-690-91

6- मिनहाज-उस-सिराज: तबकात-ए-नासिरी, रैवर्टी,भाग-1-पृ०-690-91,

पदच्युति और उसके अवध में स्थानान्तरण के बाद 1255ई.के थोड़े समय बाद किश्लू खाँ को उसके पुराने प्रदेश मुल्तान और उच वापस दे दिए गए ।[1]

जब मुल्तान और उच में किश्लू खाँ की स्थिति सुदृढ़ हो गयी तो उसने राज्य भक्ति का आवरण उतारफेंका और ईरान के नवनियुक्त वाइसराय हलार की अधीनता स्वीकार कर ली और उसके यहाँ एक मंगोल प्रतिनिधि भी आ गया ।[2] इस कपट आचरण द्वारा उसने पूरे सिन्ध को मंगोलों को उपहार रूप में समर्पित कर दिया । इस समय महमूद की सरकार ऐसी स्थिति में नहीं थी कि वह सिन्ध पर पुनः अधिकार स्थापित कर सकती क्योंकि भयानक मंगोलों से प्रत्यक्ष शत्रुता करना उसकी सामर्थ्य से बाहर था ।

मंगोलों के संरक्षण में इस प्रकार सुरक्षित हो जाने पर उसे बल्बन के विरूद्ध अपनी पुरानी शत्रुता का स्मरण हुआ और उसने उससे बदला लेने की योजना बनाई । 1257 ई. के आरम्भ में वह अपनी सेना के साथ व्यास नदी के तट पर होता हुआ हिमालय की परवर्ती श्रेणियों में पहुँचा । जिससे उसके पुराने मित्र और सहायक कुतलुग खाँ से उसका मिलन हो सके । कुतलुग बल्बन के भय से सिरमूर की पहाड़ियों में चला गया था । दोनों की मुलाकात हुई और उनकी संयुक्त सेना ने दिल्ली की ओर प्रस्थान किया ।[3] दिल्ली के लिए यह महान संकट था और उसका सामना करने के लिए अत्यधिक कुशलता की आवश्यकता थी । बल्बन ने एक बड़ी सेना सुसज्जित की और समाना के निकट उनका मुकाबिला करने चला जब दोनों सेनाएं युद्ध की तैयारी कर रही थीं तब दिल्ली के मुल्लाओं के एक दल ने किश्लू खाँ के पास गुप्त आमंत्रण भेजा[4] जिसमें उन्होंने नगर को उसके हाथों में सौंप देने का वादा किया । किसी प्रकार यह भेद खुल गया और इसका समाचार बल्बन

1- मिनहाज-उस-सिराज: तबकात-ए-नासिरी,अनु. रैवर्टी,भाग-2,पृ. 783-84,
2- मिनहाज-उस-सिराज: तबकात-ए-नासिरी,अनु. रैवर्टी,भाग-2,पृ. 784,
3- मिनहाज-उस-सिराज: तबकात-ए-नासिरी,पृ. 272,अनुवाद,
एस0ए0ए0 रिजवी: आदि तुर्क कालीन भारत,पृ. 53,
श्रीवास्तव,ए0एल0, दिल्ली सल्तनत,पृ.-112,
4- मिनहाज-उस-सिराज: तबकाते-नासिरी,पृ.272,अनु.,
रिजवी, आदि तुर्क कालीन भारत, पृ.-53,

को मिल गया । उसने तुरन्त दिल्ली में सुल्तान के पास निर्देश भेजा कि सभी षडयंन्त्रकारी राजधानी से निकाल दिए जाँय । किश्लू खाँ घटनाओं के इस मोड़ से अनभिज्ञ था । उसे आशा थी कि वह सरलतापूर्वक दिल्ली में प्रवेश कर सकेगा । इसलिए उसने बल्लबन की सेना से युद्ध नहीं किया बल्कि उससे बचकर दिल्ली पहुँच गया । वहाँ उसे ज्ञात हुआ कि उसेक सहायक राजधानी से निकाल दिए गए हैं और नागरिक अपनी प्रतिरक्षा के लिए कृत संकल्प है । यह स्पष्ट नहीं है कि कुतलुग का क्या हुआ, क्योंकि मिनहाज ने आगे उसका उल्लेख नहीं किया है । किश्लू के विषय में उसने लिखा है कि उसने अपनी योजना को त्याग दी और उच चला गया ।[1] इसके थोड़े ही समय उपरान्त उसने ईरान में हलाकू से मुलाकात की ।[2] संभवत: इसका उद्देश्य यह था कि हलाकू दिल्ली पर अधिकार करने में उसकी सैनिक सहायता करे । 1257ई०के अंतिम समय में सली बहादुर के नेतृत्व में एक मंगोल सेना आकर सिंध में ठहरी ।[3] किंतु मंगोलों ने दिल्ली राज्य पर आक्रमण नहीं किया । अस्तु 1258 के प्रारम्भ में बल्बन ने जो तैयारियाँ आरम्भ की थी उनका समापन नगर के बाहर केवल सैनिक प्रदर्शन में हुआ ।

मिनहाज का वर्णन आगे न होने से यह स्पष्ट नहीं हो सका कि किश्लू खाँ के विद्रोह का कब और कैसे अन्त हुआ । इसामी का कथन है कि 1258ई०के कुछ वर्ष पश्चात बल्बन किश्लू खाँ के विरूद्ध जिसका उपनाम बल्बने जर था एक अभियान मुल्तान ले गया जो इस समस्या पर कुछ प्रकाश डालता है । दिल्ली की सेना के निकट आने पर किश्लू ने अपने पुत्र मुहम्मद को मुल्तान में छोड़ दिया और पंजाब को अपने अधिकार में लाने के लिए स्वयं वहाँ चला गया । मुल्तान के लोगों ने बल्बन के प्रति आत्मसमर्पण कर दिया । तब मुहम्मद भागकर अपने पिता से जा

1- मिनहाज-उस-सिराज: तबकात-ए-नासिरी, पृ० 307-310
अनुवाद-एस०ए०ए० रिजवी: आदि तुर्क कालीन भारत, पृ.-54,
2- मिनहाज-उस-सिराज: तबकात-ए-नासिरी, पृ० 307-310
अनुवाद-एस०ए०ए० रिजवी: आदि तुर्क कालीन भारत, पृ.-54,
3- मिनहाज-उस-सिराज: तबकात-ए-नासिरी, पृ० 307-310
अनुवाद-एस०ए०ए० रिजवी: आदि तुर्क कालीन भारत, पृ.-54,

मिला । किश्लू को अपनी शक्ति हीनता का अनुभव हुआ औरवह पंजाब से निकलकर बनियन में ठहर गया । वहाँ से मंगोलों की सहायता से मुल्तान पर फिर अधिकार करने के लिए उसने दो प्रयास किए ।[1] सिंध में सली बहादुर की कार्यवाहियाँ उतनी ही अज्ञात है ।

दिल्ली और मंगोलों की सहिष्णुता से पता चलता है कि उनमें एक दूसरे के क्षेत्रीय अधिराज्य का सम्मान करने के लिए किसी प्रकार का समझौता था । जो कुछ हो दिल्ली ने पूरे सिंध और पश्चिमी पंजाब के मंगोलों के अधिकार में हस्तांतरित करने को चुपचाप मान लिया ।[2] बल्बन को कठोर आदेश दिया गया कि वह उनके करड शासकों से किसी प्रकार की शत्रुता न करे । जब से भटिंडा में शेर खाँ की पुनर्नियुक्ति हुई थी तभी से वह मुल्तान और उच को फिर लेना चाहता था और वह किश्लू खाँ के विरूद्ध शत्रुतापूर्ण कार्यवाहियाँ करता हुआ पाया गयाथा । चूँकि उसके ऐसा करने से दिल्ली को मंगोलों के साथ युद्ध करना पड़ता, इसलिए "सीमा पर युद्ध से बचने के लिए" 1258 ई॰में उलुग खाँ ने उसको कोल, ग्वालियर और पूर्व की ओर के सन्निकट प्रदेशों में स्थानान्तरित करा दिया । मलिक नुसरत खाँ की बुद्धिमानी पर दिल्ली सरकार को भरोसा था और"भटिंडा, सुनाम, समाना, भटनेर और लखवाल तथा ब्यास नदी के नौकाघाटों तक की सीमाएं उसके प्रभार में दे दी गई ।[3] उसी वर्ष उलूग खाँ के पुत्र के विवाह काप्रस्ताव हसन कारलुग के पुत्र नासिरूद्दीन की पुत्री के साथ हुआ,§ जो मंगोल जागीरदार की तरह अंतिम रूप से बनियन में बस गया था§ । उलूग खाँ की विवाह स्वीकृति ले जाने वाला उसका दूत किश्लू खाँ के राज्य से होकर जा रहा था । तो वह मंगोल

1- इसामी, फुतूहुस्सलातीन: पृ॰ 147-150,
हबीबुल्ला, ए०बी०एम०; भारत में मुस्लिम राज्य की बुनियाद, पृ॰ 118,

2- मिनहाज-उस-सिराज: तबकात-ए-नासिरी, पृ॰-278, अनुवाद एस०ए०ए०, रिजवी: आदि तुर्क कालीन भारत, पृ॰-55,

3- मिनहाज-उस-सिराज: तबकात-ए-नासिरी पृ॰ 274, अनुवाद एस०ए०ए०, रिजवी: आदि तुर्क कालीन भारत, पृ॰-54, रैवर्टी, भाग-2, पृ॰-788,

अफसरों द्वारा रोक दिया गया । उसने मांग की कि मुझे खुरासान में हलाकू के पास भेज दिया जाय । वहाँ जाने पर उसने दिल्ली सरकार का एक मैत्रीपूर्ण पत्र प्रस्तुत किया जिसमें अनुमानतः अनाक्रमण का आश्वासन था ।[1] हलाकू ने इसे बहुत पसन्द किया और मिनहाज ने लिखा है कि अगले वर्ष 1259 ई. में दिल्ली में हलाकू के राजदूत आए जिनका बड़े सम्मान और तड़क भड़क के साथ स्वागत हुआ ।[2] तथापि इसके विरूद्ध होने वाला समझौता लिपिबद्ध नहीं है, फिर भी यह अनुमान किया जाता है कि इस अवसर पर हलाकू ने अपने सेनापति के नाम दिल्ली की सीमा का सम्मान करने के लिए कठोर आदेश जारी किए थे ।

अतएवं मिनहाज के विवरण के अन्त में महमूद की सरकार ने सिन्ध और व्यास के पार पंजाब के अधिकतर भाग की हानि को स्वीकार कर लिया था । किश्लू खाँ के विषय में फिर कुछ नहीं ज्ञात होता । इस बात का केवल अनुमान लगाया जाता है कि मुल्तान और उच पर फिर किस प्रकार विजय प्राप्त की गई जिससे वे बरनी के विवरण में बल्बन के राज्य के भाग के रूप में दिखाए गए हैं । इस पुनर्विजय के पूर्व अनेक अभियान हुए होंगे,जिसका इसामी ने संकेत किया है । यह भी असंभव्य नहीं हो सकता कि दिल्ली ने हलाकू के सम्मुख मैंत्री पूर्ण प्रस्ताव रखे हों जिनके फलस्वरूप सिंध में मंगोल सेनाएं हटा ली गई होंगी । सिंध का पुर्नगठन, जिसकी बल्बन ने अपने राज्यारोहण के कुछ वर्ष बाद अपने ज्येष्ठ पुत्र के प्रभार में दे दिया था, उसका प्रारंभिक सफल प्रयत्न रहा होगा ।[3]

1- मिनहाज-उस-सिराजः तबकात-ए-नासिरी, पृ.-320-323, रिजवी, आदि तुर्क कालीन भारत, पृ.-97, हबीबुल्ला, ए०बी०एम०: भारत में मुस्लिम राज्य की बुनियाद पृ. 182-83,

2- मिनहाज-उस-सिराजः तबकात-ए-नासिरी, अनु. रिजवी, रिजवी, आदि तुर्क कालीन भारत, पृ. 96, तथा रैवर्टी, भाग-2, पृ. 856-863,

3- हबीबुल्ला, ए०बी०एम०: भारत में मुस्लिम राज्य की बुनियाद, पृ. 184,

सुल्तान गयासुद्दीन बल्बन-{1266-1286}

सिंहासनारूढ़ होने के पूर्व बल्बन प्रशासन के क्षेत्र में अत्याधिक अनुभव प्राप्त कर चुकाथा । वह इल्तुतमिश का दास था और उसके समय से लेकर नासिरूद्दीन महमूद के समय तक क्रमशः ऊँचे पदों पर ही आसीन हुआ था । नासिरूद्दीन महमूद का प्रधान मंत्री बनकर उसने 20 वर्ष तक शासन की समस्त बागडोर अपने ही हाथों में रखीं । इन वर्षों में उसे राजनीति एवं प्रशासन का अच्छा अनुभव हो गया था । इसलिए उसने सल्तनत् के विस्तार की जगह उसके सुदृढ़ीकरण पर विशेष बल दिया ।[1] दिल्ली सल्तनत की पश्चिमोत्तर सीमा असुरक्षित थी । मंगोल आक्रमणकारी प्रतिवर्ष भारत पर आक्रमण करते थे । पंजाब और सिंध उनके अधिकार क्षेत्र में आ गये थे । मंगोलों ने सिंध तथा पश्चिमी पंजाब में अपने शासक नियुक्त कर रखे थे । मध्य एशिया में मंगोल आक्रमणों और नृशंसता से अपनी रक्षा करके भागे हुए अनेक मुसलमान विद्वान, राजनीतिज्ञ, सामंत आदि दिल्ली सुल्तान की राजसभा में शरण पाये हुए थे । यह राजसभा मध्य एशिया के मुसलमानों की शरण स्थली बन गयी थी । मंगोल नेता इससे चिढ़ गये थे और वे इस शरण स्थल को विध्वंस कर दिल्ली सल्तनत को अपने मंगोल राज्य में आत्मसात करने को दृढ़ संकल्प थे ।

{664 हि0-1266 ई.[2]} में सुल्तान गयासुद्दीन बल्बन, जो शम्सी[3] दासों में एक था और चेहलगानी[4] तुर्क दासों की श्रेणी से मुक्त हो चुका था, दिल्ली के सिंहासन पर विराजमान हुआ ।

1- ईश्वरी प्रसाद: भारतीय मध्य युग का इतिहास, पृ.-175,

2- बरनी ने 662 हि0 {1263-64 ई.} लिखा है, रिजवी, आदि तुर्क कालीन भारत, पृ.-141,

3- सुल्तान शम्सुद्दीन के, रिजवी, आदि तुर्क कालीन भारत, पृ.-141,

4- "चेहलगानी" प्रायः इसका अनुवाद "चालीस तुर्कों का संघ" किया जाता है । किन्तु वे लोग किसी भी समय संगठित न हुए। अतःउनके लिए केवल "चालीस" कहना ही उचित होगा, रिजवी, आदि तुर्क कालीन भारत, पृ.-142,

सुल्तान के ख्वाजाताशों में से आदिल खाँ, तिमुर खाँ और अन्य प्राचीन शम्सी दासों ने अनेक बार निवेदन किया कि, "क्या कारण है कि बादशाह, सुल्तान ऐबक और सुल्तान शम्सुद्दीन की भाँति, जो कि हमारे स्वामी थे, झायन, मालवा, उज्जैन, गुजरात और दूर-दूर के स्थानों की विजय नहीं करता । अन्नदाता किस कारण राज्य के बाहर नहीं निकलते और अन्य राज्यों पर आक्रमण नहीं करते ।" सुल्तान बल्बन ने उत्तर दिया कि, "आक्रमण तथा विजय के विषय में जो तुम लोग निवेदन करते हो, मेरी हार्दिक आकांक्षा उससे कहीं अधिक है, परन्तु क्या तुमने नहीं सुना कि चंगेज खाँ मुगल के तुमन[1] मेरे राज्य के स्त्री बच्चों, सम्पत्ति और अन्य वस्तुओं पर हाथ साफ करने का प्रयत्न किया करते हैं । उन्होंने गजनी, त्रिमिज और मावाउन्नहर में अपने अड्डे स्थापित कर लिए हैं । चंगेज खाँ के पोते हलाकू ने अपने मुगल तुमनों की सहायता से एराक पर अपना अधिकार जमा लिया है और बगदाद में विराजमान है । उन दुष्टों ने हिन्दुस्तान की अत्यधिक धन सम्पत्ति और माल आदि का हाल सुन रखा है । हिन्दुस्तान को तहस नहस कर देने की इनकी बड़ी अभिलाषा है । मेरे देश की सीमा पर छापे मार मारकर लाहौर को नष्ट-भ्रष्ट करते रहते हैं । कोई साल ऐसा व्यतीत नहीं होता है कि हमारे राज्य पर आक्रमण कर उसे तहस-नहस न कर देते हों ।[2]

वे यह सुनने की प्रतीक्षा कर रहे हैं कि मैंने सेना लेकर किसी दूर के स्थान पर आक्रमण किया और दूसरे देश अथवा स्थान की ओर ध्यान दिया । यह सुनते ही वे मेरे नगरों पर चढ़ आयेंगे, समस्त दोआब को तहस-नहस कर देंगे और दिल्ली की बरबादी की भी सामग्री एकत्र हो जायेगी । मैं अपने

1- दस हजार सैनिकों का दल तुमन कहलाता है, एस.ए.ए. रिजवी: आदि तुर्क कालीन भारत, पृ.-159,

2- बरनी, तारीखे फीरोजशाही: पृ.-50, अनुवाद एस.ए.ए. रिजवी: आदि तुर्क कालीन भारत, पृ.-159,

राज्य के समस्त अधीन भागों की आय सेना पर व्यय करता हूँ, सेना को तैयार तथा सुव्यवस्थित रखता हूँ और उन लोगों के आक्रमण की प्रतीक्षा किया करता हूँ । अपने राज्य से बाहर नहीं निकलता और कहीं दूर नहीं जाता । मेरे राज्य काल के पहले, मेरे पूर्वगामी सुल्तान, मुगलों की रोक टोक न करते थे । वे निश्चिंत हो अपनी सेना लेकर चढ़ आते थे । हिन्द के राज्य तथा समस्त भागों को विध्वंश कर देते थे । यहाँ की सम्पत्ति और सेना लूट ले जाते थे । इस बात का प्रयत्न किया करते थे कि साल में या दूसरे साल राजधानी पर भी धावा बोल दें ।[1]

यदि मुझे मुसलमानों और मुसलमानों के नगरों की रक्षा के विषय में उपर्युक्त चिंता नहोती तो मैं एक दिन भी राजधानी में अथवा उसके पास न रहता । दूसरे स्थानों पर आक्रमण करता । यदि मैं दूसरे देशों को जीतने तथा उन पर अपना अधिकार जमाने का प्रयत्न करूँ तो मेरे राज्य कोभी हानि पहुँचने का भय है ।[2]

सिंहासनारूढ़ होने के पश्चात बल्बन ने सीमान्त प्रदेशों में, तुर्क सामंतो द्वारा शक्ति को एकाधिकृत करने के भय को समाप्त करने के लिए एक निश्चित नीति अपनायी, यद्यपि यह नीति भारत वर्ष में तुर्क शासक वर्ग के व्यापक हितों के लिए बड़ी घातक सिद्ध हुई ।[3] उसने इस नीति के अन्तर्गत निम्नलिखित कार्य किए ।

उसने इल्तुतमिश के परिवार के सभी सदस्यों को बड़ी निर्दयता से मार डाला[4] । योग्य तुर्क सामन्तों को जो उसके उत्तराधिकारियों को चुनौती दे सकते

1- तारीखे फीरोजशाही: बरनी, अनुवाद एस.ए.ए. रिजवं,आदि तुर्क कालीन भारत, पृ.-160,

2- तारीखे फीरोजशाही: बरनी, अनुवाद एस.ए.ए. रिजवं,आदि तुर्क कालीन भारत, पृ-160,

3- हबीब निजामी: दिल्ली सुल्तनत पृ.-239,

4- श्रीवास्तव, ए.एल., दिल्ली सल्तनत, पृ.-115,

थे, मार्ग से हटाने के लिए विष और कटार का मुक्त प्रयोग किया । उसने चालीस के दल पर जिसका वह स्वयं सदस्य था घातक प्रहार किया और उसके प्रमुख सदस्यों की हत्या कर उसके सामूहिक जीवन का अन्त कर दिया जो पारस्परिक विरोध और वैमनस्य होते हुए भी गैर तुर्क तत्वों से संघर्ष के समय सफलता पूर्वक उपयोग में लाया जा सकता था । उसने अपने चचेरे भाई शेर खाँ तक की केवल ईष्यावश हत्या करवा दी । बरनी लिखता है कि, मैंने कुछ विश्वसनीय लोगों से सुना है कि बल्बन ने शेर खाँ के फुक्काई[1] के द्वारा उसे फुक्का में विष दिलवा दिया ।[2] शेर खाँ एक ऐसा उत्साही गवर्नर था जिसने पंजाब पर सतलज के पार तक शासन किया और अत्यन्त दृढ़ता और योग्यता के साथ मुगलों को रोके रखा । यद्यपि बरनी शेर खाँ की बहुत अधिक प्रशंसा करते हुए वास्तविकता से हट जाता है और निरा बकवास रूप में यह कहता है कि शेर खाँ ने नासिरूद्दीन के नाम का खुत्बा गजनी में पढ़वा दिया था ।[3] शेर खाँ ने दिल्ली सल्तनत से गद्दारी भी की थी । वह मंगोल शासक मंगू-का आन के पास चला गया था । मंगोलों ने उसे कोई तात्कालिक सहायता नहीं दी किंतु लोग यह स्वाभाविक संदेह करते थे कि वह मंगोलों के हाथ बिक गया है । बल्बन जो उस समय "नायबे ममलिकत" थाने ठीक ही निश्चय किया कि उच्छ तथा मुल्तान जैसे सीमान्त प्रदेशों की रक्षा के लिए शेर खाँ पर निर्भर नहीं रहा जा सकता और उसने उसके बदले दिल्ली के निकट विशाल प्रदेश दिया । बल्बन के राज्यारोहण के समय तथा अगले 4-5 वर्षों तक शेर खाँ दिल्ली नहीं आया । तत्पश्चात् बल्बन ने उसे विष दिलवाकर मार डाला ।[4]

1- फुक्का भोजन के पश्चात् पीने का एक प्रकार का पदार्थ । इसका प्रबन्धक-फुक्काई कहलाता था । रिजवी; आदि तुर्क कालीन भारत, पृ.-168,

2- बरनी, तारीखे फीरोजशाही: पृ.-65, अनुवाद एस.ए.ए. रिजवी, आदि तुर्क कालीन भारत, पृ.-169,

3- बरनी, तारीखे फीरोजशाही: अनुवाद एस.ए.ए., रिजवी:आदि तुर्क कालीन भारत, पृ.- 170,

4- बरनी, तारीखे फीरोजशाही: अनुवाद एस.ए.ए. रिजवी :आदि तुर्क कालीन भारत, पृ.-170,
निजामुद्दीन अहमद, तबकाते अकबरी अनुवाद डे.वी., भाग-,1, पृ.-101,

बल्बन अपने नायब काल में यह स्पष्ट देख चुका था कि सीमान्त क्षेत्र के रक्षक किश्लू खाँ और शेर खाँ दोनों ही मुगलों से कुमक लेने गये थे।[1] इसलिए उसने यह प्रांत अपने दो पुत्रों में विभाजित कर दिया, जिसकी निष्ठा पर वह विश्वास कर सकता था तथा जिसकी योग्यता के विषय में निश्चिन्त था। उसने मुलतान, सिंध तथा लाहौर के प्रशासन व सुरक्षा के लिए मुलतान में अपने प्रिय तथा ज्येष्ठ पुत्र मुहम्मद को तथा समाना में बुगरा खाँ को नियुक्त किया। इस अवसर पर बल्बन ने मुहम्मद को छत्र प्रदान किया तथा उसे अपना "वलीअहद" ‡उत्तराधिकारी‡ घोषित किया तथा उसे बहुत से अमीरों, प्रतिष्ठित व्यक्तियों तथा विशाल सेना के साथ मुल्तान की ओर भेजा।[2] सुल्तान मुहम्मद स्वयं एक प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति था, साहित्य में उसे विशेष अभिरूचि थी तथा फारसी और अरबी भाषा का अच्छा विद्वान था। अमीर खुसरो और ख्वाजा हसन उसके दरबारी कवि थे। उसकी इन्हीं योग्यताओं ने उसे बल्बन के लिए सर्वाधिक प्रिय बना दिया था। बलबन ने बुगरा खाँ को समाना भेजते हुए यह निर्देश दिया कि "समाना पहुँचकर अपनी पुरानी सेना एवं कर्मचारियों का वेतन बढ़ा दे। जितनी पुरानी सेना तथा कर्मचारी हैं उनसे दुगुनी नई सेना तथा कर्मचारी नियुक्त करे। अपने राज्य के हितैषियों को उचित अमीरी और सरदारी प्रदान कर, उन्हें अक्तायें दे। समाना की सेना को अनुभवी, तथा समय के शीतोष्ण का आस्वादन किये हुए लोगों के अधीन बनाकर सुव्यवस्थित और तैयार रखे। मुगलों का मुकाबला करने को तैयार रहे।"[3]

1- फरिश्ता: तारीख-ए-फरिश्ता, भाग-1, पृ.-73-74,
निज्जर, वी.एस.: पंजाब अण्डर दि सुल्तान्स,पृ.-42,
2- बरनी: तारीख-ए-फीरोजशाही, अनु. रिजवी,आदि तुर्ककालीन भारत,पृ.-179,
इलियट एवं डाउसन, भाग-3,पृ.-109-10,
3- बरनी: तारीख-ए-फीरोजशाही, अनु. रिजवी,आदि तुर्क कालीन भारत, पृ.-180,
इलियट एवं डाउसन, भाग-3, पृ.-111,

उत्तर-पश्चिम सीमा प्रान्त में बल्बन ने न केवल विश्वसनीय प्रान्तपतियों की हीं नियुक्ति की बल्कि उसकी सुरक्षा के लिए सुदृढ़ कदम भी उठाया। उसने लाहौर, मुल्तान, दियालपुर, समाना, सुनाम, कुहराम, जालंधर और सिंध में विशाल सैनिक छावनियाँ स्थापित की तथा उनमें अनुभवी सैनिक अधिकारी नियुक्त किए। सीमान्त क्षेत्र के दुर्गों का जीर्णोद्धार किया गया और नये दुर्गों का निर्माण हुआ।[1] मलिक बेकतर्स के अधीन दिल्ली में जो सेना थी उसके भी तीस सहस्र सैनिक सीमान्त सुरक्षा के लिए तैयार रहते थे। बरनी के इतिहास का निम्नांकित अनुच्छेद इस तथ्य को भली भाँति स्पष्ट कर देगा, "उन दिनों मंगोल अश्वारोही व्यास को पार करके {दिल्ली के} राज्य में प्रवेश किया करते थे। {उनसे लड़ने के लिए} बल्बन बुगरा को समाना से, खाने शहीद {राजकुमार मुहम्मद} को मुल्तान से, और मलिक बेकतर्स को दिल्ली से भेजा करता था। तब वे व्यास नदी तक जाकर मंगोलों को बाहर निकालते थे। इस प्रकार उन्होंने अनेक विजएं प्राप्त की और फलस्वरूप मंगोल नदी के निकट आने का साहस नहीं करते थे।[2]

मंगोलों से देश की रक्षा हेतु बल्बन ने सेना का भी पुर्नसंगठन किया। राजनीतिक अनुभव से उसने सीखा था कि सेना शासन का मूल स्तम्भ है। इसलिए अन्य किसी विभाग के पूर्व उसका संगठन आवश्यक था।[3]

{1} बल्बन ने सेना की संख्या में वृद्धि की और सेना के केन्द्रीय दल {कल्बे वाला} में सहस्रों निष्ठावान और अनुभवी अधिकारी नियुक्त किए। उनका वेतन बढ़ा दिया गया और वेतन के बदले उनके लिए गाँव निश्चित किए गए।[4]

1- बरनी: तारीख-ए-फीरोजशाही, रिजवी, आदि तुर्क कालीन भारत, पृ.-182

2- हबीबुल्ला, ए. बी. एम.: भारत में मुस्लिम राज्य की बुनियाद, पृ.-185, सरन, पी.: स्टडीज इन मेडिवल इण्डिया, पृ.-208, श्रीवास्तव, ए. एल.: दिल्ली सल्तनत, पृ.-304,

3- बरनी: तारीख-ए-फीरोजशाही, अनु. इलियट एवं डाउसन, पृ.-105, ईश्वरी प्रसाद: भारतीय मध्य युग का इतिहास, पृ.-181,

4- बरनी: तारीख-ए-फीरोजशाहीं, अनु. इलियट एवं डाउसन. पृ. 105-6,

§2§ सैनिकों के वेतनों में वृद्धि और उन्हें सुखी और संतुष्ट रखना बल्बन की सामरिक नीति का आवश्यक अंग था । उसने अपने पुत्र बुगरा खाँ को यह परामर्श दिया: "सेना के लिए कितना भी धन व्यय करना अधिक न समझो और अपने "आरिज" §सैनिक भर्ती करने वाला अधिकारी§ को पुराने सैनिकों की व्यवस्था करने और नवीन की भर्ती करने में व्यस्त रहने दो । उसे अपने विभाग में प्रत्येक व्यय के विषय में सूचना होनी चाहिए ।[1]

§3§ सेना को सदैव सतर्क और फुर्तीला बनाए रखने के लिए वह बार-बार सैनिक अभ्यास पर बल देता था । प्रत्येक शरद ऋतु में प्रातः काल वह रेवादी की ओर शिकार खेलने के बहाने जाया करता था और अपने साथ एक हजार अश्वारोही तथा एक हजारे पैदल बाण चलाने वालों को ले जाता था और बहुत रात गए वापस आता था ।[2]

§4§ बल्बन समस्त अभियानों के उद्देश्य गुप्त रखता था और कोई उसकी गतिविधि या लक्ष्यों का पूर्वाभास नहीं कर पाता था । कूच करने के दिन की पूर्व रात्रि को ही वह प्रमुख मलिकों को बुलाता था और उन्हें अपने उद्देश्य बतलाता था ।[3]

दोआब में इक्ताओं का पुनर्ग्रहण-

सेना पुनर्गठित करने के कार्यक्रम का एक अंग यह भी था कि बल्बन ने सैनिकों को दी गई "इक्ताओं" की अवधि के विषय में भी जाँच करवाया है ।[4]

1- बरनी: तारीख-ए-फीरोज़शाही; पृ.-101-2, अनु० रिजवी, आदि तुर्क कालीन भारत, पृ.-195-96,
हबीब निजामी: दिल्ली सुल्तनत, पृ.-239,

2- बरनी: तारीख-ए-फीरोजशाही; अनु. रिजवी, आदि तुर्क कालीन, भारत, पृ.-162-63,

3- बरनी: तारीख-ए-फीरोजशाही; अनु. रिजवी, आदि तुर्क कालीन, भारत, पृ-166,

4- बरनी: तारीख-ए-फीरोजशाही; अनु. इलियट एवं डाउसन, भाग-3, पृ.-105-110,

बल्बन ने इक्ताओं की जांच के पश्चात् उन इक्ताओं के कारकों को जो अब सैन्य सेवा में नहीं है, कुछ मुआवजा देकर पुनर्ग्रहण किए जाने के आदेश दे दिए ।[1] वृद्ध तथा दुर्बल सैनिकों के लिए उसने 20 से 30 टंके पेंशन निश्चित की और जो युवा और स्वस्थ थे स्थाई सेना में भर्ती कर लिए गए । उनके लिए नकद वेतन निश्चित किया गया ।[2] यह स्वाभाविक था कि यह आदेश अनुदान प्राप्त कर्त्ताओं में हलचल उत्पन्न करता । कुछ तुर्क सरदार दिल्ली के प्रसिद्ध कोतवाल मलिक फखरूद्दीन के पास इस उद्देश्य से पहुँचे कि यह राजकीय आदेश वापस ले लिया जाए । वे फखरूद्दीन के लिए उपहार लाए थे किंतु उसने यह कहकर अस्वीकार कर दिया कि, यदि मैं तुमसे रिश्वत ले लूँगा तो मेरे शब्दों का कोई प्रभाव न होगा । दरबार में पहुँचकर वह गंभीर और उदास मुद्रा में अपने स्थान पर खड़ा हो गया । जब सुल्तान ने उसकी चिंता का कारण पूछा तो उसने कहा "मैंने सुना है कि सुरक्षा मंत्रालय से लोग सेवा निवृत्त किये जा रहे हैं । प्रलयकाल के अंतिम दिन का ध्यान कर मैं अपने भाग्य के विषय में दुखी हो रहा हूँ कि क्या वृद्ध लोग ईश्वर की अनुकम्पा से वंचित हो जाएंगे ।" सुल्तान फखरूद्दीन

1- बरनी तारीखे फीरोजशाही: पृ.-62, अनुवाद इलियट एवं डाउसन, भाग-3, पृ.-105,

2- श्रीवास्तव, ए.एल.; दिल्ली सल्तनत्, पृ.-118

का आशय समझ गया उसकी आँखों से आँसू निकल पड़े और उसने सम्पूर्ण आदेश वापस ले लिया ।[1]

मंगोल आक्रमण:-

1279 ई. में मंगोल आक्रमणकारी व्यास नदी पार करके सल्तनत की पश्चिमोत्तर सीमा में प्रवेश किए । इनके दमन के लिए बल्बन ने बुगरा खाँ को समाना से, मुहम्मद को मुल्तान से और मलिक बेकतर्स को दिल्ली से भेजा । इनकी सम्मिलित सेना के समक्ष मंगोल टिक न सके और उन्होंने पुन: व्यास के पश्चिम में शरण ली ।[2]

1- प्रो0 ए0बी0एम0 हबीबुल्ला का कथन है कि केवल वृद्ध इक्तादारों से संबन्धित आदेश ही रद्द किया गया । शेष पर संभवत: कार्रवाई की गई, "फाउंडेशन," नवी संस्करण, पृ.- 166,

इलियट-डाउसन ने अपने तारीखे फीरोजशाही के अनुवाद में लिखा है कि बहुत से जागीरों को अधिकृत कर लिया गया और बचे हुए अनुदान को तीन श्रेणी में विभाजित कर दिया गया । प्रथम श्रेणी में बुड्ढे और अक्षम लोग थे जिन्हें उसने 40 से 50 टंका पेंशन देकर उनकी जमीन ले ली । दूसरी श्रेणी में नवयुवक लोग आते थे उन्हें सेवा के बदले में आनुपातिक भत्ता प्रदान किया गया और उनके गाँव को उनसे नहीं लिया गया लेकिन राजस्व सरकारी राजस्व अधिकारियों द्वारा एकत्रित किये जाने का निर्णय लिया गया । तीसरी श्रेणी में अनाथ एवं विधवाएं थीं जिन्होंने गाँवों पर अधिकार किया था और अपने सहायकों को सैनिक सेवा के लिए भेज दिया था उनसे यह अनुदान छीन लिया गया लेकिन उनके खाने पीने तथा रहने के लिए उपयुक्त भत्ता दिया गया,। तारीखे फीरोजशाही: बरनी, अनुवाद,इलियट-डाउसन भाग-3, पृ.-107-108,

2- बरनी, तारीखे फीरोजशाही; अनु0रिजवी,आदि तुर्क कालीन भारत, पृ.-180-181,

तमर खाँ का आक्रमण:-

बल्बन के शासन काल के अन्तिम भाग में सूमरा-जनजातियों ने विद्रोह कर दिया था । इनके दमनार्थ 1285 में राजकुमार मुहम्मद जतराल पहुँच गया और उसने वहाँ अपना शिविर लगाया । इस समय अकस्मात अफगानिस्तान सेना के नये अध्यक्ष तमर खाँ के नेतृत्व में मंगोल द्रुतगति से बढ़कर मुहम्मद के शिविर से मात्र 5 "फर्सग" की दूरी तक आ गए । उत्तर में उन्होंने सिन्ध सागर दोआब में प्रवेश किया और लाहौर तथा दीपालपुर भू-भाग लूटने के बाद मुल्तान से तीन फर्सग के अन्दर तक आ गए ।[2] उन्होंने दीपालपुर और लाहौर के आस-पास के क्षेत्रों को बुरी तरह लूटा । अफगानों का निर्दयता पूर्वक वध कर दिया गया । मुल्तान भटिंडा और लाहौर का मुक्ता मुहम्मद मुल्तान से लाहौर की ओर बढ़ कर रावी नदी के तटपर आ गया । घमासान युद्ध में प्रारम्भ में मुगल पराजित हुए किन्तु उनका पीछा करते हुए सुल्तान मुहम्मद मारा गया । इस युद्ध का वर्णन अमीर खुसरो ने अपने प्रसिद्ध शोकगीतों में किया है ।[3] बहुत अधिक संख्या में मुसलमान मार डाले गये । अमीर खुसरो स्वयं गिरफ्तार हुआ पर किसी तरह बच निकला ।[4] यद्यपि यह बहुत बड़ी विपत्ति थी फिर यह केवल स्थानीय पराजय थी, क्योंकि विजय के पश्चात मंगोलों ने उस क्षेत्र पर अपना अधिकार नहीं जमाया । मुल्तान पर दिल्ली का अधिपत्य अप्रभावित रहा और अब कुखुसरों को मुहम्मद के स्थान

1- हेग, डब्लू, केम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया, भाग-3, पृ.-84,
हबीब एवं निजामी, दिल्ली सुल्तनत, पृ.-299,

2- बरनी: तारीख-ए-फीरोजशाही, पृ.-109, अनु. रिजवी, आदि तुर्क-कालीन भारत, पृ.-200,
फरिश्ता: तारीख-ए-फरिश्ता, पृ.-82,
हबीबुल्ला: भारत में मुस्लिम राज्य की बुनियाद, पृ.-185,
हबीब निजामी: दिल्ली सुल्तनत, पृ.-229,
हेग: कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया, भाग-3, पृ.-84,
ईश्वरी प्रसाद ने मंगोल नेता का नाम समर लिखा है, भारतीय मध्य-युग का इतिहास, पृ.-186,

3- मिर्जा: दि लाइफ एण्ड वर्क्स आफ अमीर खुसरो, पृ.-63,

4- यहिया: तारीख-ए-मुबारकशाही, अनुवाद बसु के.के., पृ.-45-47,

पर मुल्तान का मुक्ता बनाया गया ।

इस प्रकार बल्बन के शासन के अन्त में पंजाब में दिल्ली राज्य की सीमा रावी और व्यास की जल विभाजक रेखा थी ।[2]

कैकुबाद के समय मंगोल आक्रमण

दिल्ली के कोतवाल फखरूद्दीन के नेतृत्व में मलिकों ने पंजाब के गवर्नर कैखुसरो को उत्तराधिकार से वंचित कर दिया और उसके स्थान पर बुगराखान के पुत्र कैकुबार को गद्दी पर बिठाया । इस समय कैकुबार मात्र 17 वर्ष का था । इसकी अयोग्यता और परिणामिक सावधानी-शिथिलता के बावजूद प्रतिरक्षा प्रणाली ज्यो कि त्यों बनी रही और आक्रमणकारी और अधिक लाभ न उठा सके ।[3] फरिश्ता दो ऐसे आधार ग्रंथों से उद्घृत करते हुए, जो अब वर्तमान नहीं हैं, कहता है कि गद्दी से जबरदस्ती हटाये जाने के बाद कैखुसरो ने मंगोल सेनापति तमर खाँ से पत्राचार करना आरम्भ किया और सैनिक सहायता प्राप्त करने की आशा में गजनी में उससे मिलने भी गया । तमर खाँ बल्बन की सीमा सेना की शक्ति से परिचित था, इसलिए उसने इस प्रस्ताव पर कोई उत्साह नहीं दिखाया और राजकुमार को निराश लौटना पड़ा । अमीर खुसरो[4] के अनुसार, कैकुबाद के राज्यारोहण के छः महीने के अन्दर ही मुल्तान में कैखुसरों के उत्तरवर्ती मुक्ता ने मंगोलों पर विजय प्राप्त करने की सूचना दी । जब सुल्तान अवध में अपने पिता से मिलने के लिए जाने वाला था उसके ठीक पहले एक दूसरे मंगोल आक्रमण की सूचना मिली । तमर खाँ ने फिर मुल्तान से लाहौर तक के क्षेत्र पर आक्रमण किया था और समाना तक पूरे देश को

1- बरनी:तारीख-ए-फीरोजशाही,अनु. रिजवी,आदि तुर्क कालीन भारत,पृ. 201,

2- हबीबुल्ला,ए.बी.एम. : भारत में मुस्लिम राज्य की बुनियाद, पृ.-185,

3- फरिश्ता:तारीखे फरिश्ता, पृ.-84,
हबीबुल्ला,ए.बी.एम,भारत में मुस्लिम राज्य की बुनियाद पृ.-185,

4- अमीर खुसरो:केरानुस्सादैन,पृ. 84,अनु. रिजवी,आदि तुर्क कालीन-भारत, पृ.-288,

उजाड़ दिया था । मलिक बेकतर्स 30,000 सैनिकों के साथ तत्काल भेजा गया। उसने रावी के किनारे पर मंगोलों को पराजित किया और बहुत से मनुष्यों को कैद कर लिया । यह भी कहा जाता है कि उसने नमक के पहाड़ तक मंगोलों का पीछा किया ।[2]

इस प्रकार मामलुक सुल्तानों ने बड़ी ही सूझ-बूझ से उत्तरी-पश्चिमी सीमा समस्या का समाधान किया । इल्तुतमिश ने मध्य एशियाकी राजनीति से अपने को पृथक किया । इसके लिए उसने जलालुद्दीन मंगबरनी को शरण देने से विनम्रता पूर्वक मना कर दिया और सल्तनत को मंगोलों की शत्रुता से बचा लिया । डा॰ हबीबुल्ला लिखते हैं कि इल्तुतमिश विदेशी मामलों में बहुत यथार्थ-वादी था । वह धीरता, दृढ़ता एवं दूरदर्शिता से काम लेता था । आगे वह लिखते हैं कि मध्य युगीन भारत पर उसका बहुत बड़ा आभार है, क्योंकि उसने मंगोलों के उस प्रकोप से उसे बचा लिया, जिसने उससे कहीं अधिक शक्तिशाली एवं पुराने साम्राज्यों को नष्ट कर दिया था ।[3]

इल्तुतमिश के उत्तराधिकारियों ने उत्तर-पश्चिम सीमा की ओर से भारत पर आक्रमण करने वाले मंगोल आक्रमणकारियों के प्रति शान्ति प्रियता की नीति अपनाई । जिसके परिणाम स्वरूप उनके काल में बर्बर मंगोलों का सिंध व पंजाब के अधिकांश भागों पर अधिकार हो गया ।

1- अमीर खुसरो: केरानुस्सादैन, पृ॰-84, अनुवाद रिजवी: आदि तुर्क कालीन भारत, पृ॰-289,

2- हबीबुल्ला, ए०बी०एम०, भारत में मुस्लिम राज्य की बुनियाद, पृ॰-185,

3- हबीबुल्ला, ए०बी०एम०, भारत में मुस्लिम राज्य की बुनियाद, पृ॰-87,

मामलूक सुल्तानों में बलबन ही एक ऐसा शासक था, जिसने पश्चिमोत्तर सीमा समस्या को गहराई से समझा । उसने सीमा सुरक्षा हेतु यथोचित और यथा शक्ति प्रबन्ध भी किया । उत्तर-पश्चिम सीमा सुरक्षा को बलबन ने अपने शासन का प्रथम लक्ष्य बनाया, जिसके लिए उसे अपने बड़े पुत्र मुहम्मद की भी बलि चढ़ा देनी पड़ी । वास्तव में उसकी नीति प्रतिरोधात्मक थी ।

मामलूक सुल्तानों की पश्चिमोत्तर सीमानीति पर टिप्पणी करते हुए प्रो॰ के० ए० निजामी लिखते हैं कि,इनकी नीति के तीन विभिन्न स्वरूप थे । कुतबुद्दीन ऐबक एवं इल्तुतमिश ने पृथकीकरण, इनके उत्तराधिकारियों ने तुष्टीकरण एवं बलबन ने प्रतिरोधात्मक नीति अपनाई ।[1]

1- निजामी, के० ए०; सम आस्पेक्ट्स आफ रिलिजन एवं पालिटिक्स इन इण्डिया ड्यूरिंग दि थर्टीन्थ सेंचुरी, पृ॰-330,

अध्याय - 4

खल्जी सुल्तानो की उत्तरी - पश्चिमी सीमा नीति ।

अध्याय-4

खल्जी सुल्तानों की उत्तरी-पश्चिमी सीमा नीति

मामलुक सुल्तानों के बाद दिल्ली सल्तनत खल्जी सुल्तानों के हाथ आयी और खल्जियों के अधीन दिल्ली सल्तनत् का विस्तार हुआ। पच्चीस वर्ष पूर्व बलबन के राज्यारोहण के प्रतिकूल यह एक युग का अंत था क्योंकि मामलुक वंश के साथ-साथ वह जातिवाद भी समाप्त हो गया जिससे कुत्बुद्दीन, इल्तुतमिश और उनके उत्तराधिकारियों का राजनीतिक दृष्टिकोण प्रभावित था।[1] खल्जियों की नसों में शाही रक्त नहीं बहता था। वे सर्वहारा वर्ग के थे और उनके राज्यारोहण ने इस मिथ्या को समाप्त कर दिया कि प्रभुसत्ता विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग का ही एकाधिकार नहीं है।[2]

खल्जियों के शासन काल की सर्वाधिक महत्त्व की दो बाते हैं। प्रथम तो यह कि अभूतपूर्व विजयों की अनवरत श्रंखला। सर्व प्रथम खल्जी ही देश के सुदूरतम् कोनों में मुस्लिम सेनाएं ले गये। उन्होंने देश के भीतर स्वतन्त्र राजाओं के अधीन किया। राजपूताना, गुजरात और दक्षिण को पदाक्रांत किया। द्वितीय यह कि वाह्य आक्रमणों से देश की रक्षा की। इस समय तक मंगोलों के धावे का उद्देश्य केवल पंजाब प्रांत को लूटना ही नहीं, बल्कि दिल्ली को अधिकृत करना हो गया था। मामलुक वंश के अन्त में पंजाब के अधिकांश भाग तथा सिंधु नदी के दक्षिणी भाग के पश्चिमी तट पर मंगोलों का अधिकार हो गया था जिसके कारण खल्जी काल में दिल्ली तक पहुँचना उनके लिए सुगम हो गया था।[3] ऐसे में यदि खल्जी सुल्तानों ने त्वरित और कठोर सैनिक उपयों का सहारा न लिया होता तो भारत दो शताब्दी पूर्व ही मुगलों के हाथ चला जाता।[4]

1- हबीब एवं निजामी: दिल्ली सुल्तनत, पृ.-272,
2- लाल, के0एस0: खल्जी वंश का इतिहास, पृ.-13,
3- हबीबुल्ला, ए0वी0एम0: भारत में मुस्लिम राज्य की बुनियाद, पृ.-186,
4- लाल, के0एस0: खल्जी वंश का इतिहास, पृ.-14,

जलालुद्दीन फीरोज खल्जी

जलालुद्दीन फीरोज ने सुल्तान नासिरूद्दीन महमूद शाह अथवा सुल्तान बल्बन के शासन काल में शाही शासकीय क्षेत्र में प्रवेश किया और सेना में भरती हो गया । बल्बन के शासन काल में वह उत्तरी-पश्चिमी सीमा की सुरक्षा करने वाली सेना में पदाधिकारी था । बल्बन द्वारा नियुक्त सीमावर्ती प्रदेशों की मंगोलों के आक्रमणों से रक्षा करने वाले सेनापतियों में उसका महत्त्वपूर्ण स्थान बन गया था । बल्बन ने जिन सेनापतियों को सीमान्त क्षेत्र की सुरक्षा के लिए नियुक्त किया था, उनमें जलालुद्दीन भी था । सुल्तान कैकुबाद के शासन काल में वह सुल्तान के अंगरक्षकों का प्रमुख अधिकारी (सरजानदार) नियुक्त किया गया था । इसके पश्चात् वह सीमान्त क्षेत्र में समाना का मुक्ता नियुक्त किया गया । अब उसने वहाँ एक शासक और सैनिक के रूप में मंगोल आक्रमणकारियों का सफलतापूर्वक सामना करने में प्रतिष्ठा अर्जित की । सुल्तान कैकुबाद के शासन काल में उसे "शाइस्ताखाँ"[1] की उपाधि से विभूषित किया और उसे युद्ध मंत्री नियुक्त किया । अब उसके सम्मुख उन्नति करने और शक्ति प्राप्त करने का मार्ग प्रशस्त हो गया । वह खिलजी कबीले का नेतृत्व भी करता था । इससे समस्त खिल्जी सरदार, कुछ असंतुष्ट और अवसरवादी तुर्क सरदार, बहुसंख्यक तुर्केतर मुसलमान अमीर, सरदार, पदाधिकारी आदि उसके समर्थक हो गए । अनेक महत्त्वाकांक्षी खल्जी नवयुवकों ने जलालुद्दीन को राजसत्ता हस्तगत करने के लिए प्रोत्साहित किया । शासन सत्ता अधिकृत करने का यह स्वर्ण अवसर भी था । सुल्तान कैकुबाद को लकवा[2] मार गया था और साम्राज्य की शासन व्यवस्था शिथिल हो गई थी।

1- केवल बरनी ही सियासतखान लिखता है । अन्य सभी इतिहासकार अमर लिखी पदवी ही देते हैं- लाल, के० एस०, खल्जी वंश का- इतिहास, पृ.- 5,

2- बरनी, जियाउद्दीन: तारीख-ए-फीरोजशाही, पृ.-170, अनु. रिजवी, आदि तुर्क कालीन भारत, पृ.-241-42,

जलालुद्दीन ने इस अवसर का लाभ उठाया । तुर्की सरदारों ने खिल्जियों की बढ़ती हुई शक्ति का अन्त करने और जलालुद्दीन और उसके साथियों व समर्थकों का वध करने के लिए एक गुप्त षडयन्त्र[1] रचा और कैकुबाद के अल्पवयस्क पुत्र को सुल्तान बनाकर राजसत्ता अपने हाथ में कर ली । जलालुद्दीन को इस षडयन्त्र का पता लग गया था । इसलिए उसने तुर्कों के नेता एतमार कच्छन को मरवा-डाला[2] और राजमहल को अपने अधिकार में करके वह बालक सुल्तान का संरक्षक बन गया । इस समय सुल्तान कैकुबाद विलासिता पूर्ण निकम्मे जीवन का दुष्प-रिणाम लकवे की भयंकर बीमारी के रूप में भोग रहा था और वह अत्यन्त ही शक्तिहीन और प्रभावहीन हो गया था । ऐसी परिस्थितियों और शोचनीय राजनीतिक दशा से तथा अपने समर्थकों की प्रेरणा व प्रोत्साहन से बाध्य होकर जलालुद्दीन ने कैकुबाद की हत्या करवा दी[3] और उसके उत्तराधिकारी अवयस्क पुत्र का भी अन्त करवा दिया और स्वयं सुल्तान बन गया ।

जलालुद्दीन 13 जून सन् 1290 (3 जमादी-उससानी) 689 हि.[4]) को सिंहासनासीन हुआ और उसने सुल्तान जलालुद्दीन फीरोजशाह खल्जी की पदवी धारण की । राजहंता होने के कारण जलालुद्दीन तुर्की अमीरों के डर से

1- बरनी, जियाउद्दीन: तारीख-ए-फीरोजशाही, अनु. रिजवी, आदि तुर्क कालीन भारत, पृ.-242-43,
सरहिन्दी, यहया: तारीख-ए-मुबारकशाही, अनु. रिजवी, आदि तुर्क कालीन भारत, पृ.-242,

2- इसामी: फुतूहुस्सलातीन, पृ.-198, अनु0 रिजवी, आदि तुर्ककालीन, भारत, पृ.-306,

3- मुइजुद्दीन ने तीन वर्ष और कुछ माह तक शासन किया रिजवी, एस. ए.ए., खल्जी कालीन भारत, पृ.-219,

4- खुसरो, अमीर: मिफ्तहुल फुतूह: अनु. इलियट एण्ड 513, सनुभाग-3-पृ.-536,
शम्सुद्दीन कैकाउस के 689 हि. के सिक्के अभी तक वर्तमान है इस प्रकार-अमीर खुसरो की लिखी हुई तारीख की पुष्टि सिक्कों द्वारा भी-होती है । अतः अमीर खुसरो की ही तिथि मान्य है-
रिजवी, खल्जी कालीन भारत, पृ.-151,

दिल्ली नहीं गया, अपितु दिल्ली के समीप ही किलोभड़ी के राजभवन में उसने अपना राज्याभिषेक करवाया और वह कुछ समय तक वहीं रहा । यह राजमहल सुल्तान कैकुबाद ने निर्मित कराया था । यह अपूर्ण रह गया था । इसलिए जलालुद्दीन ने इसे पूर्ण कराने के आदेश पारित किये । उसनें यह निर्णय किया कि वह दिल्ली के स्थान पर किलूभड़ी कोअपनी राजधानी बनाकर वहीं निवास करेगा । जमुना के किनारे एक सुन्दर उद्यान लगाया गया, बाजार खोले गये और सुल्तान ने यह भी चाहा कि दिल्ली नगर के लोग अपने विशाल भवन वहाँ निर्मित करायें ।[2] किलोगढ़ी का नाम शहरे नव (नवीन नगर)[3] रखा गया ।

विरोधियों को अपने पक्ष में करने के बाद और उदारता से पद और उपाधि वितरण करने के बाद सुल्तान जलालुद्दीन ने कोतवाल फखरूद्दीन के निमंत्र पर दिल्ली में प्रवेश किया और राजभवन में पहुँचकर राजसिंहासन पर बैठा और उपस्थित दरबारियों के सम्मुख इसके लिए ईश्वर के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट की और विनम्रता पूर्वक सिंहासनासीनहुआ ।

सुल्तान जलालुद्दीन ने उत्तरी-पश्चिमी सीमा के सामरिक महत्व का आकलन करते हुए वहाँ अपने मझले पुत्र को अर्कली खाँ की उपाधि देकर नियुक्त किया । किंतु 1291-92 ई.[4] के मंगोल आक्रमण ने पुनः सीमा को झकझोर दिया ।

1- बरनी किलोखड़ी लिखता है । तारीख-ए-फीरोजशाही अनु. रिजवी, खलजी कालीन भारत, पृ.-2,

2- बरनी, जियाउद्दीन: तारीख-ए-फीरोजशाही, अनु. रिजवी, खलजी-कालीन भारत, पृ-2,
लाल, के0एस0: खलजी वंश का इतिहास, पृ.-16,

3- तबकाते नासिरी में 658 हि. के हाल में शहरेनव किलोखड़ी का-उल्लेख हुआ है । इससे ज्ञात होता है कि किलोखड़ी शहरेनव के नाम-से पहले से प्रसिद्ध था-रिजवी, खलजी कालीन भारत, पृ.-2,

4- बरनी, जियाउद्दीन: तारीख-ए-फीरोजशाही, अनु. रिजवी, खलजी-कालीन भारत, पृ.-27,
फरिश्ता: तारीख-ए-फरिश्ता, भाग-1, ब्रिग्स, पृ.-302,

इस समय ईरान के हलाकू खाँ का पौत्र अब्दुल्ला ने पन्द्रह तुमानों[1] के साथ भारत पर आक्रमण किया और सुनाम तक बढ़ आया । इधर सुल्तान भी आक्रमण का समाचार सुनते ही मंगोलों का सामना करने के लिए, राजधानी से निकलकर तेजी से यात्रा करते हुए सुनाम के नजदीक पहुँच गया । बरनी इस स्थान को "बरराम," फरिश्ता "हराम" और हाजी उद्दबीर बरनी के अनुकरण में बरराम लिखता है । पर के. एस. लाल[2] का मत है कि संभव है कि यह उत्तरी-पश्चिमी सीमान्त पर सुनाम हो । इसामी भी इस स्थान को बरराम लिखता है और कहता है कि युद्ध सिन्ध नदी के किनारे हुआ था ।[3] दोनों सेनाओं के मध्य सिन्ध नदी थी और सुल्तान ने पूर्वी तट पर पड़ाव डालकर मंगोलों का मार्ग अवरूद्ध कर दिया । पहले कुछ छुट-पुट युद्ध हुए जिनमें शत्रु की पराजय हुई ।[4] एक दिन जब मंगोलों का एक बड़ा दल नदी पार करने में समर्थ हो गया तो बरनी के अनुसार सुल्तान ने भीषण युद्ध कर मंगोलों को पूर्णतः पराजित किया और उनमें से अनेकों मार डाले गये । किंतु शीघ्र ही दोनों पक्षों में संधि के लिए समझौता

1- बरनी, जियाउद्दीन: तारीख-ए-फीरोजशाही में 10 से 15 तुमन लिखता है, रिजवी, खल्जी कालीन भारत, पृ.-27,
फरिश्ता: तारीख-ए-फरिश्ता में 10 तुमन लिखता है, ब्रिग्स, पृ. 302,
एक तुमन में 10,000 घोड़े होते थे-लाल, के0एस0, खल्जी वंश का इतिहास पृ.-30,
ईश्वरी प्रसाद तथा आर्शीवादी लाल श्रीवास्तव ने सैनिकों की संख्या-1,50,000 लिखा है,
ईश्वरी प्रसाद: भारतीय मध्य युग का इतिहास, पृ.-205,
श्रीवास्तव, ए0एल0: दिल्ली सल्तनत्, पृ.-143,

2- लाल, के.एस. : खल्जी वंश का इतिहास, पृ.-30

3- इसामी: फुतूहुस्सलातीन, अनु. रिजवी, खल्जी कालीनभारत, पृ.-195,
आगा मेंहदी हुसैन, भाग-2, पृ.-372,

4- बरनी: तारीख-ए-फीरोजशाही, अनु. रिजवी, खल्जी कालीन भारत-पृ.-28,

हो गया । वे सद्भावना पूर्वक मिले और परस्पर भेंटें प्रस्तुत की गयीं ।[1] अब्दुल्ला अपनी मातृभूमि को वापस लौट गया, किन्तु चंगेज खाँ का एक पौत्र अलगू या उलुग खाँ अपने अमीरों और सैनिकों के साथ भारत में ही ठहर गया । बरनी के अनुसार "ये लोग कलमा पढ़कर मुसलमान हो गए और सुल्तान ने अपनी एक पुत्री का विवाह उलुग खाँ से कर दिया । जो मुगल {मंगोल} उलुग खाँ के अनुयायी थे, वे अपनी स्त्रियों एवं बच्चों के साथ नगर में आ गए । उनके निर्वाह और निवास का कीलूगढ़ी, गयासपुर, इन्द्रप्रस्थ तथा तालुका में प्रबन्ध कर दिया गया । नगर के जिस हिस्से में वे रहते थे, वह मुगल पुरा कहलाता था । सुल्तान एक या दो वर्ष तक उनको वृत्तियाँ देता रहा, परन्तु नगर के मकान और वहाँ की जलवायु उनको अनुकूल नहीं हुई । इसलिए सपरिवार वे स्वदेश लौट गये । उनके कुछ मुखिया लोग भारत में रह गये । उनको वृत्तियाँ और गाँव प्राप्त हो गए । वे यहाँ के मुसलमानों से घुल-मिल गए और उन्हीं से उनके वैवाहिक सम्बन्ध हो गए । वे लोग "नवमुसलमान" कहलाए ।[2] डा. के.एस. लाल[3] का मत है कि ये सब नगर जमुना के पश्चिमी तट पर दिल्ली से लगे हुए ही थे । इन्दरपत {इन्द्रप्रस्थ} उत्तर में, किलूगढ़ी मध्य में और गयासपुर दक्षिण में थे । गयासपुर में शेख निजामुद्दीन औलिया का मकबरा है । मुगलपुरा अब भी दिल्ली के निकट का एक ग्राम है । बदायूनी[4] के अनुसार गयासपुर और मुगलपुरा पर्यायवाची हैं ।

1- लाल, के.एस.: खलजी वंश का इतिहास, पृ.-31,
इसामी किसी प्रकार के समझौते का जिक्र नहीं करता-फुतूहुस्सलातीन, आगा मेंहदी हुसैन, भाग-2, पृ.-372-79,

2- बरनी, जियाउद्दीन: तारीख-ए-फीरोजशाही, अनु. इलियट एवं-डाउसन, भाग-3, पृ.-102 तथा रिजवी, खलजी कालीन भारत-पृ.-28,
श्रीवास्तव, ए0एल0, दिल्ली सल्तनत, पृ.-143,

3- लाल, के0एस0: खलजी वंश का इतिहास , पृ.-32,

4- बदायूँनी: मुन्तखबुत्त वारीख, अनु. रैकिंग, पृ. पृ.-236,
लाल, के 0एस0: खलजी वंश का इतिहास, पृ.-32,

बरनी के उपर्युक्त वर्णन से ऐसा प्रतीत होता है कि मंगोल सुल्तान कीसेना से बुरी तरह पराजित हुए और सुल्तान ने उनसे एक संधि कर ली । पर वास्तविकता यह है कि जलालुद्दीन मंगोलों की 1,50,000 की एक विशाल सेना से युद्ध करने का साहस नहीं कर सका था और उसने समझौता करने में शीघ्रता की । इस संधि में मंगोलों को अनुकूल शर्तें दी गयीं । यह सत्य है कि सुल्तान ने पहले मंगोलों को कई बार पराजित किया था । किन्तु वृद्धावस्था में वह सारा जोश और बल पौरूष खो चुका था तथा अपने अंतिम सात वर्षों में अत्यधिक शांतिवादी राह पर चल पड़ा था ।[1]

मंगोल खतरे को समाप्त करने के पश्चात जलालुद्दीन ने अपना ध्यान उत्तरी-पश्चिमी सीमा प्रांत के सुदृढ़ीकरण की ओर दिया । अर्कली खान को लाहौर का अधिनायकत्व दिया । अब वह सिंध मुल्तान एवं लाहौर तीनों का मुक्ता बन गया । मुगलों को रोकने के लिए सुल्तान ने दिपालपुर, सुल्तानपुर, सुनाम एवं समाना के सीमा प्रांत की सभी सैनिक छावनियों को मजबूत किया । उसमें अनुभवी और सशक्त सैनिकदल नियुक्त किये गये । अर्कली खान ने बड़ी ही कुशलता से पंजाब की सरकार का शासन चलाया । उसने मुगल आक्रान्ताओं के खतरे को 1296 ई. तक रोके रखा । लेकिन 1296ईमें जलालुद्दीन की मृत्यु के बाद पंजाब में पुन: अराजकता फैल गयी ।[2] सुल्तान जलालुद्दीन मंगोलों से युद्ध करना अत्यन्त गर्व की बात समझता था । इसीलिए उसने "अलमुजाहिद फ़ीसबी-लिल्लाह" की उपाधि धारण की ।[3] इसका अर्थ है भगवान के लिए युद्ध करने वाला । किन्तु यू.एन.डे एवं परमात्मासरन का मत है कि जलालुद्दीननेउत्तरी-पश्चिमी सीमा समस्या को ठीक से नहीं समझा और उसकी उपेक्षा की । उसने

1- लाल, के.एस. : खल्जी वंश का इतिहास, पृ.-32,
निज्जर, बी.एस. :पंजाब अण्डर दि सुल्तान्स, पृ.-47,

2- बरनी, जियाउद्दीन: तारीख-ए-फीरोजशाही,पृ.-223,अनु.-रिजवी, खल्जी कालीन भारत, पृ.-28,
फरिश्ता: तारीख-ए-फरिश्ता, भाग-1, ब्रिग्स, पृ.-303,

3- बरनी, जियाउद्दीन: तारीख-ए-फीरोजशाही, अनु. रिजवी, खल्जी कालीन भारत, पृ.-14,

इस बात पर भी कभी ध्यान नहीं दिया कि खोखर व अन्य सीमान्त जातियों को अपने अधिकार में कर लिया जाय, जिससे मंगोल आक्रमणकारी उनकी सहायता न प्राप्त कर सकते ।[1]

अलाउद्दीन खल्जी-§1296-1316§

अलाउद्दीन जो कि जलालुद्दीन का भतीजा तथा और दामाद था और कड़ा का गर्वनर था, अत्यन्त महत्त्वाकांक्षी था । उसने षडयन्त्रपूर्ण तरीके से जलालुद्दीन का सिर उड़ा[2] दिया और तत्काल स्वयं को सुल्तान घोषित कर दिया ।[3] सुल्तान का कटा हुआ सिर कड़ा की सड़कों पर घुमाया गया । नवीन सुल्तान अलाउद्दीन ने औपचारिक कार्यवाहियों में अधिक समय नष्ट न कर दिल्ली पर अधिकार के लिए तुरन्त ही जोरदार तैयारियाँ आरम्भ कर दीं । अलाउद्दीन को सबसे बड़ा डर मृत सुल्तान के पुत्र अर्कली खाँ से था जो उस समय मुल्तान का मुक्ता था । अर्कली खाँ को "उस युग का रूस्तम" कहा जाता था और उसकी अद्वितीय सैनिक प्रतिभा की अलाउद्दीन पर गहरी छाप थी । लेकिन जब उसे पता चला कि पारिवारिक अनबन के कारण अर्कली खाँ दिल्ली नहीं आ रहा है तो उसकी प्रसन्नता का ठिकाना न रहा । वास्तव में हुआ यह कि ही मलिक अहमद चप ने राजधानी लौटकर सुल्तान जलालुद्दीन की हत्या का समाचार सुनाया, मलिका-ए-जहाँ ने भारी संयम और साहस से काम लेते हुए अपने सबसे छोटे पुत्र कद्र खाँ को सुल्तान रूकनुद्दीन इब्राहीम की पदवी से विभूषित कर सुल्तान घोषित कर दिया ।[4] राजमाता और उसके पुत्र

1- डे, यू०एन०: समऐस्पेक्ट्स आफ मेडिवल इण्डियन हिस्ट्री, पृ.-46,

2- सरन् पी०: स्टडीजइन मेडिवल इण्डिया, पृ.-211-12,

3- सरन् पी०: स्टडीज इन मेडिवल इण्डिया, पृ-212,
श्रीवास्तव, ए०एल०: दिल्ली सल्तनत, पृ.-148,

4- श्रीवास्तव, ए०एल०: दिल्ली सल्तनत, पृ.-148,

सुल्तान रूकनुद्दीन ने कीलूगढ़ी त्याग दी और वह कुश्क-ए-सब्ज (हरा महल) में रहने लगा।[1] गद्दी का दावेदार तो पुत्र अर्कली खाँ था, लेकिन सुल्तान जलालुद्दीन के जीवन काल में ही उसकी माँ से उसकी नहीं बनती थी, अतः जलालुद्दीन के बध पर राजमाता ने छोटे पुत्र को सुल्तान बनाया। अर्कली खाँ ने कोई प्रतिकारात्मक कदम नहीं उठाया। वह मुल्तान में ही रहा। अर्कली खाँ का मुल्तान में बने रहना अलाउद्दीन के लिए सौभाग्य सूचक बात थी।

भारी वर्षा के कारण अलाउद्दीन दिल्ली पर तुरन्त आक्रमण नहीं कर सका। उसे कड़ा से दिल्ली पहुँचने में कुछ समय लग गया, पर वह नए सैनिक भर्ती करता हुआ, धन लुटाकर लोगों को अपने पक्ष में लाता हुआ दिल्ली की ओर बढ़ता रहा। बरनी ने लिखा है कि दिल्ली की ओर बढ़ते हुए उसने एक हल्का एवं चल मंजनीक[2] बनवाया। प्रत्येक मंजिल पार करने पर इसमें पाँच मन सोने के टंके रख दिए जाते थे औरशाही डेरे के सामने दर्शकों में उछाल दिए जाते थे। लोग सब ओर से इनको उठाने के लिए झपटते थे।[3] वर्षा के बावजूद बदायूँ पहुँचते-पहुँचते अलाउद्दीन की सेना की संख्या 56,000 घुड़सवार और 60,000 पैदल हो गई।[4] जब अलाउद्दीन बरन (बुलन्दशहर) पहुँचा तो उसने जफर खाँ को एक सेना देकर आदेश दिया कि वह कोल (आधुनिक अलीगढ़) के रास्ते से दिल्ली की ओर बढ़े। अलाउद्दीन स्वयं मुख्य सेना को लेकर बदायूँ और बरन के मार्ग से आगे बढ़ा। योजना यह थी कि दोनों सेनाएँ एक समय में दिल्ली में मिलें।

1- लाल, के०एस०: खलजी वंश का इतिहास, पृ.-57,

2- एक सामरिक यन्त्र था पत्थर फैकने या भार उठाने का यन्त्र,

3- बरनी, जियाउद्दीन: तारीख-ए-फीरोजशाही, अनु.,इलियट एवं डाउसन, भाग-3, पृ.-110,

4- लाल, के.एस.: खलजी वंश का इतिहास, पृ.-58,
श्रीवास्तव, ए०एल०: दिल्ली सल्तनत, पृ.-149,

सोना लुटाता हुआ और अधिकाधिक लोगों को अपने साथ मिलाता हुआ अलाउद्दीन जमुना नदी पर पहुँचा जहाँ उसने स्वर्गीय सुल्तान के और भी अमीरों को सोना देकर अपनी ओर मिला लिया। नदी की बाढ़ उतरते ही अलाउद्दीन जमुना पार करके तट पर शिविर गाड़ दिये[1]। बरनी इस स्थान को "जूदाह का मैदान" लिखता है। इस समस्या का समाधान करते हुए डा॰ के॰ एस॰ लाल[2] लिखते हैं कि "जूदाह" और कुछ नहीं बल्कि जूद है, जो गल्ती से "शिकस्त" में "जून" के बदले पढ़ लिया गया है। फारसी इतिहासों में बहुधा इसका उल्लेख किया गया है और ताजुलमआसिर में "जून" ठीक लिखा है। जून जमुना नदी के लिए प्रयुक्त हुआ है। नदी की ओर खुलने वाला नगर का द्वार जून दरवाजा कहा जाता था और जून का मैदान वह भूमिखण्ड था जो नदी और जून के दरवाजे के मध्य था। रुकनुद्दीन इब्राहीम ने अपने चचेरे भाई अलाउद्दीन से टक्कर लेने की तैयारी की, लेकिन मध्यरात्रि में उसकी सेना का एक बड़ा भाग शत्रुपक्ष से जा मिला। रुकनुद्दीन ने अपना जीवन संकट में देखकर कोष से कुछ सोने के टंको की थैलियाँ लीं, तबेले से कुछ घोड़े लिए और मलिकाए जहाँ, स्त्रियों अहमदचप आदि हितचिन्तकों को साथ लेकर गजनी दरवाजे से राजधानी से भाग गया[3] और मुल्तान का रास्ता लिया।

21 अक्टूबर सन् 1296 ई॰[4] को विजयी अलाउद्दीन ने एक विशाल सेना के साथ बड़े ठाट-बाट से दिल्ली में प्रवेश किया। वह दौलतखाना-ए-जुलूस में गद्दी पर बैठा तथा उसने अबुल मुजफ्फर सुल्तान अलाउद्दुनिया-वा-दीन मुहम्मद शाह खिल्जी की पदवी धारण की और कुश्क-ए-लाल (लाल महल) को जहाँ पहले बल्बन रहता था अपना निवास स्थान बनाया। तत्कालीन प्रथा

1- लाल, के०एस०: खलजी वंश का इतिहास, पृ॰-60,
2- लाल, के०एस०: खलजी वंश का इतिहास, पृ॰-60,
3- बदायूँनी: मन्तखबुत्तवरीख, अनु० रैकिंग, पृ॰-245,
4- खुसरो, अमीर: खजाइनुल फुतूह: अनु, रिजवी, खलजी, कालीन-भारत, पृ॰-155,
बरनी ठीक तिथि नहीं देता मात्र यह कहता है कि अलाउद्दीन ने-695 हि॰ वर्ष के अन्त में राजमुकुट धारण किया-बरनी, तारीख-ए-फीरोजशाही, अनु॰ रिजवी, खलजी कालीन भारत-पृ॰-44

के अनुसार अलाउद्दीन का नाम खुत्बा में पढ़ा गया और सोने के सिक्के ढाले गये । जनसाधारण को उदारता पूर्वक उपहार दिये और कुछ समय के लिए चारो ओर आनन्द का आलम छा गया ।[1]

जिस समय अलाउद्दीन गद्दी पर आसीन हुआ समस्त देश विशेषकर उत्तरी-पश्चिमी सीमान्त प्रदेश एक संक्रात्मक काल से गुजर रहे थे । पंजाब में अराजकता व्याप्त थी । उत्तर-पश्चिम में मंगोल प्रतिवर्ष अभियान दल भेजकर दिल्ली सल्तनत् को चुनौती दे रहे थे । अतः इन अभियानों के विरूद्ध सीमा प्रांतो की रक्षा करना अत्यधिक महत्त्वपूर्ण बन गया था । दूसरे दुर्दमनीय तत्त्व गक्खर थे जिनका सल्तनत के प्रति सदैव विरोधी दृष्टिकोण रहा । ये लोग दिल्ली सुल्तानों को विदेशी मानते थे और उन्होंने कभी भी उनकी अधीनता नहीं स्वीकार की । मंगोलों के आक्रमण के समय ये सदैव मंगोलों का साथ देते थे और उनका पथ-प्रदर्शन करते थे ।[2] मुल्तान और सिन्ध में दिवंगत सुल्तान के योग्य पुत्र अर्कली खाँ ने अपना स्वतन्त्र शासन स्थापित कर लिया था ।[3] दूसरे अक्तादारों की भी राजनीतिक स्थिति पूर्णरूपेण विखण्डित हो चुकी थी और इस प्रदेश के प्रत्येक कोने में कानून और व्यवस्था की स्थिति खराब हो चुकी थी।

पूर्ण रूप से दिल्ली में जम जाने के बाद अलाउद्दीन ने सबसे अपना ध्यान मुल्तान की ओर ही केन्द्रित किया, क्योंकि इधर से आन्तरिक एवं वाह्य दोनों ही खतरे उत्पन्न हो सकते थे । गद्दी के दावेदार जलालुद्दीन के जीवित पुत्र भी यहीं एकत्रित थे । अर्कली खाँ और रूकनुद्दीन इब्राहीम सुदूर मुल्तान प्रांत में स्वतंत्र थे और गद्दी के दावेदार बनकर किसी भी दिन अलाउद्दीन के लिए

1- बरनी, जियाउद्दीन : तारीख-ए-फीरोजशाही, अनु. रिजवी, खल्जी-कालीन भारत, पृ.-223,

2- निज्जर, बी०एस०: पंजाब अण्डर दि सुल्तान्स, पृ.-48,
हबीब एवं निजामी: दिल्ली सुल्तनत्, पृ.-286,

3- लाल, के० एस०: खल्जी वंश का इतिहास, पृ.-54,

भयानकसंकट पैदा कर सकते थे । अलाउद्दीन ने दो विश्वस्त सेनानायक उलुग खाँ और जफर खाँ को 30-40 हजार शक्तिशाली सैनिकों के साथ नवम्बर 1296 ई.[1] में मुल्तान की ओर रवाना किया । अर्कली खाँ को संकट का पूर्व ज्ञान था, अतः उसने मुकाबले के लिए उचित तैयारी भी कर ली थी । लेकिन कुछ माह के घेरे के बाद शहर के कोतवाल ने अन्य स्थानीय कुलीनों के साथ अर्कली खाँ का साथ छोड़ दिया । अब अर्कली खाँ ने सफलता की आशा छोड़ कर मुल्तान के शेख से मध्यस्थता करने की प्रार्थना की । शेख ने दोनों दलों में समझौते की शर्तें निर्धारित की और दोनों शाहजादे उलुग खाँ के शिविर में पहुँच गए जहाँ उनके साथ सम्मान जनक व्यवहार किया गया । इसके बाद दोनों बन्दी शाहजादों,जलाल के परिवार के अन्य सदस्यों और जलाली सरदारोंको बन्दी बनाकर विजयी सेनानायक दिल्ली की ओर रवाना हुए । किन्तु अबूहार[2] में उनकी भेंट नुसरत खाँ से हुई, जिसके पास सुल्तान अलाउद्दीन के आदेश थे कि विभिन्न बन्दियों को क्या सजा देनी है । दोनों ही शाहजादों, मलिक अहमद चप तथा जलालुद्दीन के दामाद मलिक अलगू को निर्दयता पूर्वक अन्धा करवा दिया ।[3] उनको अपने परिवारों से पृथक कर दिया गया और उनकी सम्पत्ति व दासों को अधिकृत कर लिया गया तत्पश्चात में दोनों शाहजादों और अर्कली खाँ के दोनों पुत्रों को हाँसी के कोतवाल को सौंप दिया गया जिसने उन्हें मौत के घाट उतार दिया ।[4] जलालुद्दीन की पत्नी मलिका-ए-जहाँ और दिवंगत

1- मुहर्रम 696 हि0 । बदायूँनी: मुन्तखबुत्तवारीख; अनु. रैकिंग,प्र,पृ. 247,

2- अबूहार हाँसी के निकट है । हाँसी अब हिसार जिले में एक तहसील- है । यह मुस्लिम काल के प्रारम्भ में एक महत्त्वपूर्ण सैनिक केन्द्र था । "एपि ग्रा0 इण्डो-मोस्लेमिका" 1817-1818,पृ.-8,
सरहिन्दी, यहया: तारीख-ए-मुबारकशाही, अनु. रिजवी,खलजीकालीन-भारत, पृ.-222,

3- सरहिन्दी, यहया: तारीख-ए-मुबारकशाही, अनु.,रिजवी,खलजीकालीन-भारत, पृ.-222,

4- बदायूँनी: मुन्तखबुत्तवारीख, अनु. रैकिंग, प्र,पृ.-248,

सुल्तान की अन्य पत्नियों को तथा मलिक अहमद चप और मलिक अलगू को दिल्ली में ही बन्दी बनाकर रखा गया । इन अभागे बन्दियों का क्या अंत हुआ, इसका उल्लेख इतिहास में नहीं है, लेकिन सहज ही इसका अनुमान किया जा सकता है ।[1] मुल्तान की सामरिक गतिविधि को देखते हुए उसका प्रशासन अलग खाँ को सौंप दिया गया ।[2] इससे मुल्तान पुनः दिल्ली सल्तनत के अधीन हो गया और अब अलाउद्दीन को भारत में चुनौती देने वाला कोई भी शेष न रहा ।

मंगोल आक्रमण

उत्तर-पश्चिम से होने वाले मंगोल आक्रमणों से अलाउद्दीन का शासन काल अत्यधिक उत्पीड़ित रहा और उसकी महत्वाकांक्षी सैनिक कार्यवाहियों में प्रायः बाधा पड़ती रही । मंगोलों ने पंजाब, मुल्तान और सिन्ध को ही नहीं बल्कि दिल्ली तथा गंगा-जमुना के उपजाऊ प्रदेशों तक के लिए संकट उत्पन्न कर दिया ।[3] सल्तनत की सीमाओं पर निरन्तर होने वाले मंगोल आक्रमणों के फलस्वरूप ही बल्बन भी सुदूर भागों की विजयों की नीति का अनुसरण नहीं कर पाया था, किन्तु अलाउद्दीन बल्बन से कहीं अधिक योग्य और साहसी सुल्तान था जिसने एक ओर मंगोल आक्रान्ताओं से निरन्तर लोहा लिया और दूसरी ओर पड़ोसी हिन्दी नरेशों को जीतने के साथ ही दक्षिण तथा सुदूर दक्षिण में भी अपनी युद्ध नीति जारी रखी । बल्बन तथा जलाउद्दीन के शासन काल में जिन मंगोलों के आक्रमण हुए उनके नेता फारस से आये थे, क्योंकि फारस में मंगोलों ने अपनी सत्ता स्थापित कर ली थी । अलाउद्दीन के शासन काल में मध्य एशिया में ट्रांस आक्सियाना के मंगोल शासक दाऊद खाँ की महत्वाकांक्षा थी कि वह फारस के मंगोलों

1- लाल, के0 एस0: खलजी वंश का इतिहास, पृ.-65,
2- सरहिन्दी, यहया: तारीख-ए-मुबारकशाही, अनु. रिजवी, खलजीकालीन-भारत, पृ.-222,
3- श्रीवास्तव, ए0एल0: दिल्ली सल्तनत, पृ.-165-66,

को नष्ट करके वहाँ अपना साम्राज्य स्थापित कर ले । इसलिए उसने फारस के अधीन अफगानिस्तान में गजनी पर आक्रमण किया और उसे जीत कर अपने राज्य में सम्मिलित कर लिया । गजनी से भारत पर आक्रमण करना सरल था । इसलिए दाऊदखाँ ने भारत-विजय की योजना बनाई । इसने छत्तीस वर्ष तक शासन किया और जब तक जीवित रहा भारत को आक्रान्त करने के लिए सेनाएँ भेजता रहा[1] । सुल्तान जलालुद्दीन के शासन काल तक होने वाले मंगोल आक्रमणों का उद्देश्य था भारत में नृशंसतापूर्वक लूट-पाट करना । वे प्रायः सीमांत क्षेत्र सिंध और पंजाब पर ही आक्रमण करते रहे । परन्तु अलाउद्दीन के शासन काल में मंगोलों ने अपनी आक्रामक नीति में परिवर्तन कर दिया । अब उन्होंने सीमांत क्षेत्र पर आक्रमण करने की अपेक्षा सीधे दिल्ली पर आक्रमण करने और उस पर अधिकार करने की नीति अपनाई । इस अभिप्राय से मंगोलों ने 1297 ई. से 1308 ई. के मध्य अनेक आक्रमण किए ।

मंगोलों का प्रथम आक्रमण अलाउद्दीन के सिंहासनारोहण के कुछ ही समय पश्चात् 1297-98 ई. में हुआ[2] । बरनी के अनुसार यह आक्रमण 1296 ई.(696 हिजरी) ई. में हुआ । फरिश्ता भी 696 हिजरी लिखता है । अमीर खुसरो के अनुसार दोनों सेनाओं में संघर्ष 22 रबीउल आखिर 697 हि० (9 फरवरी, सन् 1298 ई.) को हुआ । बरनी के वर्णन से यह स्पष्ट निष्कर्ष निकलता है कि यह आक्रमण मुल्तान की विजय के कुछ समय पश्चात हुआ । डा. के. एस. लाल भी मंगोलों

1- लाल, के० एस०: खलजी वंश का इतिहास, पृ.-127,

2- बरनी: तारीख-ए-फीरोजशाही, अनु. रिजवी: खलजी कालीन भारत, पृ.-46,
फरिश्ता: तारीख-ए-फरिश्ता, अनु. ब्रिग्स, भाग-1, पृ.-183,
खुसरो, अमीर: खजाइनुलफुतूह, अनु. रिजवी, खलजी कालीन भारत, पृ.-158,
लाल, के० एस०: खलजी वंश का इतिहास , पृ.-127,
हबीब निजामी: दिल्ली सुल्तनत, पृ.-303,
श्रीवास्तव, ए० एल०: दिल्ली सल्तनत, पृ.-166,

के प्रथम आक्रमण का समय 1297-98ई॰मानते हैं । डॉ॰ ईश्वरी प्रसाद[1] के अनुसार भी शासन के दूसरे वर्ष में ट्रांसआक्सियाना का शासक अमीर दाऊद एक लाख मंगोलों को लेकर मुल्तान, पंजाब और सिंध को विजय करने के विचार से यद् आया, परन्तु उलुग खाँ ने उसे भारी क्षति पहुँचा कर पीछे खदेड़ दिया । डॉ॰ के॰ एस॰ लाल[2] का मत है कि मवर-उन-नहर के शासक के शासक दावा ने कदर[3] के अन्तर्गत एक लाख सैनिकों की सेना भेजी । आक्रमणकारी उत्तर-पश्चिम से देश में घुसपड़े, गक्खरों के गाँवों को उन्होंने जला डाला । इसके पश्चात् वे पंजाब के मैदान में आ गये और लाहौर के आस-पास के प्रदेशों को ध्वस्त करने लगे । सम्पूर्ण उत्तरी-पश्चिमी सीमा पर आतंक व्याप्त हो गया । आक्रमणकारी झेलम, चेनाब, रावी तथा व्यास को पार करते हुए जलंधर तक आ पहुँचे । अलाउद्दीन ने आक्रमण का समाचार सुनते ही अपने सेनानायकों उलुग खाँ और जफरखाँ के नेतृत्व में एक विशाल सेना भेजी । बरनी[4] के अनुसार दोनों सेनाओं का आमना-सामना जलंधर के निकट हुआ और सतलज तथा व्यास के मध्य किसी स्थान पर संघर्ष हुआ । फरिश्ता[5] युद्ध का स्थान लाहौर के निकट बताता है संभवतः इसका तात्पर्य जलंधर से हो सकता है। अमीर खुसरो[6] युद्ध के स्थान का नाम जरन मंजूर लिखता है और आगे लिखता है कि युद्ध सतलज नदी के तट के निकट लड़ा गया था॥

1- ईश्वरी प्रसाद: मध्य कालीन भारत, पृ॰-97,

2- लाल, के0 एस0: खलजी वंश का इतिहास, पृ॰-127,

3- बरनी इस अभियान के सेनापति का नाम नहीं देता । इसामी तो इस अभियान का उल्लेख भी नहीं करता ।

4- बरनी, जियाउद्दीन: तारीख-ए-फीरोजशाही, अनु॰ रिजवी, खलजी-कालीन भारत, पृ॰-46,

5- फरिश्ता: तारीख-ए-फरिश्ता: ब्रिग्स, भाग-1, पृ॰-184,

6- खुसरो, अमीर: खजाइनुलफुतूह, अनु॰ रिजवी, खलजी कालीन भारत-पृ॰-158,

प्रो० होडीवाला[1] का मत है कि वह स्थान लुधियाना से सत्ताईस मील पूर्व में स्थित मच्छीवारा है । पर बरनी के स्पष्ट उल्लेख से असहमत होना उचित नहीं है ।

मंगोल आक्रमणकारी पराजित हुए । उनके लगभग 20,000[2] सैनिक हताहत हुए और अधिक संख्या में मंगोल बन्दी बना लिए गए । फरिश्ता[3] मारे जाने वालों की संख्या मात्र 12,000 लिखता है । बंदियों का अत्यन्त नृशंसता पूर्वक वध कर दिया गया । स्त्री एवं बच्चों के साथ भी कोई भद्र व्यवहार न हुआ ।[4] इस प्रकार राज्यारोहण के प्रारम्भिक दिनों में ही उत्पन्न भयंकर आपत्ति का कुशलतापूर्वक सामना कर लेने से अलाउद्दीन की प्रतिष्ठा अत्यधिक बढ़ गई और सिंहासन पर उसकी स्थिति सुदृढ़ हो गई ।

मंगोलों को पराजित करने के बाद सुल्तान ने मुल्तान एवं लाहौर के उन अमीरों को दंड दिया जिनकी राजभक्ति उसने धन से खरीदी थी । क्योंकि वह सोचता था कि ऐसे लोग किसी भी समय पांसा बदल सकते हैं । कुछ लोगों को मृत्यु दंड दिया गया , कुछ को अंधा किया गया तथा शेष को आजीवन कारावास दिया गया । इस प्रकार वहाँ पूर्ण शांति की एवं राजभक्ति की व्यवस्था की गई ।[5]

सल्दी का आक्रमण:-

पूर्व पराभव की चिंता किए बिना मंगोल सन् 1299 में उत्तरी-पश्चिमी सीमा पर आ धमके । इस आक्रमण का वर्णन बरनी, इसामी और फरिश्ता ने किया

1- होडीवाला, एस०एच०: स्टडीज इन इण्डो मुस्लिम हिस्ट्री, पृ. 246-47,
2- खुसरो, अमीर: खजाइनुलफुतूह, अनु. एम हबीब, कैम्पेन्स आफ अलाउद्दीन खिलजी, पृ.-24,
3- फरिश्ता: तारीख-ए-फरिश्ता, ब्रिग्स, भाग-1, पृ.-102,
4- फरिश्ता: तारीख-ए-फरिश्ता, ब्रिग्स, भाग-1, पृ.-102,
5- निज्जर, बी०एस०: पंजाब अण्डर दि सुल्तान्स, पृ.-49,

है पर आश्चर्य की बात है कि अमीर खुसरों इसका जिक्र भी नहीं करते । इस आक्रमण के समय उलुग खाँ और नुसरत खाँ गुजरात की विजय में व्यस्त थे अतः सुल्तान अलाउद्दीन ने जफर खाँ[1] को मंगोलों के अवरोध के लिए भेजा । मीर मासूम भूल वश यह लिखता है कि नुसरत खाँ, जो अर्कली खाँ की पराजय के बाद सिंध का मुक्ता नियुक्त हुआथा, मंगोलों के विरूद्ध भेजा गया और उसने उन्हें बुरी तरह पराजित किया । बरनी के अनुसार सल्दी औरउसके भाई ने सिविस्तान[2] पर अधिकार करलिया । जफर खाँ ने मंगोलो को घेर लिया और बुरी तरह पराजित किया । युद्ध में मंगरवियों, मंजनीकों और अरोंदा तथा सवात् पाशाब और गरगच का प्रयोग नहीं किया गया । मंगोलों ने बाणों की ऐसी वर्षा की कि पक्षी तक नहीं उड़ सके, किंतु फिर भी जफर खाँ ने कुल्हाड़ियों और तलवारों की सहायता से दुर्ग को जीत लिया । सल्दी उसका भाई और सारे मंगोल तथा उनकी स्त्रियाँ तथा बच्चे बन्दी बना लिए गए और बेड़ियों पहना कर दिल्ली भेज दिए गए ।[3]

सल्दी के आक्रमण के विषय में फरिश्ता लिखता है कि मवर-उन-नहर का शासक दावाखाँ और उसके भाई चल्दी {सल्दी} ने सिविस्तान को विजित कर लिया । पर यह संभव नहीं प्रतीत होता कि दावा खाँ सिविस्तान जैसे छोटे अभियान में आया हो । इसके अतिरिक्त यदि दावा खाँ आया होता तो युद्ध मात्र नाममात्र का न होता, क्योंकि वह बिना घमासान युद्ध के समर्पण करने वाला व्यक्ति नहीं था । साथ ही दावा खाँ सदैव मध्येशियायी राजनीति में

1- मासूम, मीरः तारीख-ए-मासूमी, हिस्ट्री आफ सिंध, पृ.-43-49,

2- सिंध का उत्तरी भाग जिसका नाम सेहवान है ।
हेग एवं सरन ने सीवी लिखा है ।
हेग, डब्लूः केम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया, भाग-3, पृ.-101,
सरन, पी.: स्टडीज इन मेडिवल इण्डिया, पृ.-214,

3- बरनी, जियाउद्दीनः तारीख-ए-फीरोजशाही, अनु. रिजवी, खलजी-कालीन भारत, पृ.-48,

ही व्यस्त रहा ।

दिल्ली लाए गए बन्दियों का क्या हुआ यह किसी इतिहासकार ने नहीं लिखा है । पर यदि अलाउद्दीन द्वारा बन्दियों को दिया गया दण्ड ध्यान में रखा जाय तो यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि उन्हें मृत्यु दंड दिया गया होगा । किन्तु दावा खाँ सन् 1306ईतक ट्रांस-आक्सियाना में जीवित था । अतः फरिश्ता का कथन कि सल्दी के साथ उसका भाई दावा खाँ था सत्य नहीं है । इसके अतिरिक्त यह तथ्य इससे भी प्रमाणित है कि यदि सल्दी के साथ दावाखाँ होता तो दावाखाँ का नाम सल्दी से अधिक प्रसिद्ध होता ।[2]

जफर खाँ की अद्भुत वीरता से एक ओर तो सुल्तान अलाउद्दीन उसके प्रति संशंकित हो गया और दूसरी ओर मंगोल भयभीत हो गए । अलाउद्दीन इस वीर सेनानायक के साहस और बहादुरी के कारण उससे ईर्ष्या रखने लगा[3] कारण कि उसे हिन्दुस्तान का रूस्तम समझा जाने लगा था । सुल्तान के भाई उलुग खाँ के हृदय में भी जफर खाँ के विरूद्ध ईर्ष्या उत्पन्न हो गई थी क्योंकि जफर की इस सफलता ने उलुग खाँ की मुल्तान और गुजरात की सफलता को पीछे छोड़ दिया था । इस समय जफर खाँ के अन्तर्गत समाना की रक्षा का भार था । चूंकि उत्तर-पश्चिम में मुगल एक स्थायी संकट थे अतः जफर खाँ अक्सर समाना में ही रहता था । अतः अलाउद्दीन ने दो उपायों में से एक करने का विचार किया । या तो उस पर कृपादृष्टि दिखाकर उसे कुछ हजार सवार देकर लखनौती[4] की ओर भेज दिया जाय जिससे वह लखनौती पर अधिकार जमा कर वहीं निवास

1- लाल, के0एस0: खलजी वंश का इतिहास, पृ.-129,

2- बरनी, जियाउद्दीन: तारीख-ए-फीरोजशाही, अनु. रिजवी, खलजी-कालीन भारत, पृ.-48-49,
फरिश्ता: तारीख-ए-फरिश्ता, ब्रिग्स, पृ.-103,
इसामी: फुतुहुस्सलातीन, अनु. रिजवी खलजी कालीन भारत, पृ. 198-99,

3- बरनी, जियाउद्दीन: तारीख-ए-फीरोजशाही, अनु. रिजवी, खलजीकालीन-भारत, पृ.-49, तथा इलियट एवं डाउसन, भाग-3, पृ.-165,

4- संभवतः लखनौती सल्तनत काल में भी दंड देने का प्रान्त था जैसा कि-मुगलों के समय था ।

आरम्भ कर दे और उसी स्थान से हाथी तथा उपहार {कर} उसके पास भेजता रहे, या किसी उपाय से उसे विष दे दिया जाय या उसकी आँखों में सलाई फिरा कर अपने पास से पृथक कर दिया जाय ।[1]

कुतलुग ख्वाजा का आक्रमण: कीली का युद्ध

दावा ने सल्दी की पराजय का बदला लेने के लिए अपने पुत्र[2] कुतलुग ख्वाजा को बीस तुमान {2,00,000 सैनिक} की सेना देकर दिल्ली पर विजय प्राप्त करने के लिए भेजा । चूँकि अमीर खुसरो ने खजाइनुलफुतूह में केवल अलाउद्दीन की विजयों का उल्लेख किया है, इसलिए उसने कीली युद्ध का वर्णन नहीं किया है, किन्तु उसने देवलरानी व खिज्र खाँ नामक मसनवी में इसका सामान्य उल्लेख किया है[3] तथा उसने उलुग खाँ व जफर खाँ दोनों ही सेनानायकों की भूमिका काउल्लेख किया है । बरनी[4] व इसामी[5] दोनों ही उसे युद्ध का विस्तृत विवरण देते हैं । बरनी कहता है कि मंगोलों ने अलाउद्दीन के शासन काल के तीसरे वर्ष आक्रमण किया । अस्तु हम उचित रूप से भारत वर्ष पर यह आक्रमण 1299-1300[6] ई. की शरद ऋतु में होना कह सकते हैं । इस बार मंगोल पूरी तैयारी से आये थे और भारत की विजय के लिए कटिबद्ध थे । इस बार मंगोलों ने सिंध नदी पार की और मुल्तान तथा समाना जैसी सीमान्त चौकियों के सेनानायकों द्वारा बाधा

1- बरनी, जियाउद्दीन: तारीख-ए-फीरोजशाही, किंतु अनु. रिजवी, खलजी कालीन भारत, पृ.-49,

2- अबुल फजल उसका वंश क्रम इस प्रकार देता है: चंगेज खाँ का पुत्र चगताई-का पुत्र मवतखान का पुत्र विसुतवा का पुत्र बरक खाँ का पुत्र दावा खाँ-रिजवी, एस0ए0ए0, खलजी कालीन भारत, पृ.-49,

3- खुसरो, अमीर: देवलरानी खिज्र खाँ, पृ.-61,

4- बरनी, जियाउद्दीन: तारीख-ए-फीरोजशाही, रिजवी, खलजी कालीन-भारत, पृ.-52-53,

5- इसामी: फुतूहुस्सलातीन, अनु. रिजवी, खलजी कालीन भारत-पृ. 198-99

6- डॉ. पी0 सरन इस अभियान को 1300 ई. में बताते हैं-स्टडीज इन-मेडिवल इण्डिया, पृ.-214,
हबीब एवं निजामी: दिल्ली सल्तनत, पृ.-337,

पहुँचाए जाने पर भी, मार्ग में पड़ने वाले प्रदेशों को बिना लूटे और उजाड़े हुए, तेजी से दिल्ली के समीप तक आ पहुँचे । जफर खाँ ने जो कुहराम में था, कुतलुग ख्वाजा को युद्ध करने के लिए आमंत्रित किया किंतु उसने उसकी ओर कोई ध्यान नहीं दिया । जफर खाँ के दूत को उसने उत्तर दिया : "राजा सदा राजाओं से लड़ते हैं" और उसने जफर खाँ को अपने स्वामी की पताका लेकर दिल्ली के पास युद्ध करने के लिए आमंत्रित किया । इसका स्पष्ट कारण यही था कि इस बार मंगोल अपनी शक्ति को दिल्ली के अंतिम युद्ध के लिए संचित रखना चाहते थे ।[1]

दिल्ली विजय मंगोलों का उद्देश्य बिन्दु था यह जानकर जनता अत्यधिक आतंकित हो गई और भाग-भाग कर लोग दिल्ली आने लगे । दिल्ली भागकर आये शरणार्थियों से भर गई और वहाँ मसजिदों, दुकानों यहाँ तक कि मार्गों पर भी उनके रहने के लिए पर्याप्त स्थान न रहा । बंजारों के दल न आ सके और वस्तुओं का मूल्य बहुत बढ़ गया ।[2] अंत में मंगोलों ने दिल्ली से छः मील दूर कीली में अपने शिविर लगाए ।

इसामी हमें बताता है कि अलाउद्दीन को केवल एक या दो सप्ताह का समय मिला । इसलिए संभवतः मंगोलों की सूचना उसे तभी मिली जब वे सिंध नदी पार कर चुके थे वह कुश्क-ए-लाल के बाहर निकलकर आया और सीरी में उसने यमुना नदी के किनारे अपने शिविर लगवाए[3]। तथा राजधानी के लिए कुमुक भेजने के लिए प्रान्तपतियों को आवश्यक अनुदेश दिए । समस्या पर विचार विमर्श किए बिना ही मंगोलों से टक्कर लेने के लिए तेजी से तैयारियाँ आरम्भ कर दी गई ।[4]

1- लाल, के0एस0: खलजी वंश का इतिहास, पृ.-130,
2- बरनी, जियाउद्दीन: तारीख-ए-फीरोजशाही, अनु. रिजवी, खलजी-कालीन भारत, पृ.-52, तथा इलियट एवं डाउसन, भाग-3, पृ.-166,
3- हबीब एवं निजामी: दिल्ली सुल्तनत, पृ.-292,
4- लाल, के0एस0: खल्जी वंश का इतिहास, पृ.-130,

पर वह बड़ी संकट कालीन घड़ी थी अतः दिल्ली के कोतवाल अलाउलमुल्क ने, जिसे मंगोलो के विस्तृत साधनों और उनके उद्देश्य का पूरा-पूरा ज्ञान था, सुल्तान को जल्द बाजी करने से रोका उसने कहा," प्राचीन शासक ऐसे संकटपूर्ण संघर्षों से सदैव दूर रहे हैं जिनमें यह कहना कठिन है कि विजय श्री किस ओर जाएगी । बराबरी की शक्ति वाले शासकों के मध्य संघर्ष में,जब एक ही दाँव में राज्य की बाजी लग जाती है, शासकों ने अपनी सूझ-बूझ से काम लिया है और जहाँ तक हो सका है, वे घटना को टालते रहे हैं । फिर आपको जानबूझकर और स्वेच्छा से, बिना कोई ध्यान दिए एक आपदा जनक संकट में क्यों हाथ डालना चाहिए आप इन मंगोलों से मुकाबला करने में विलम्ब कर सकते हैं । हमारी सेना में मुख्यतः हिन्दुस्तान के ही सैनिक हैं, जिन्होंने केवल हिन्दुओं से युद्ध करने में अपना जीवन बिताया है और मंगोलों से कभी युद्ध नहीं किया, इसलिए वे उनकी कपटपूर्ण चालबाजियों, उनके झपट्टों, उनके छुपने और अन्य युद्ध कौशलों से अनभिज्ञ हैं ।[1] आगे अलाउलमुल्क ने कहा शत्रु से तब तक मुठभेड़ न किया जाय, जब तक कि शत्रु के पास खाद्य-सामग्री की कमी न हो जाय और तब उसका पीछा किया जाय जब वह अनाज और चारे की खोज में निकले ।

अलाउलमुल्क की उपर्युक्त सलाह अलाउद्दीन को संतुष्ट न कर सकी । उसने सेना के सारे उच्चाधिकारियों को बुलाया और उनकी उपस्थिति में उसने अलाउलमुल्क को सम्बोधित किया,"वह वजीर बनने योग्य है किंतु मैंने केवल दिल्ली का कोतवाल बनाया है क्योंकि वह शारीरिक मोटापे से मजबूर है ।" इसके पश्चात् अलाउद्दीन ने अपने निर्णय की घोषणा की[2] कहावत[3] प्रसिद्ध है कि

1- बरनी, जियाउद्दीन: तारीख-ए-फीरोजशाही, पृ.-255-57,अनु. रिजवी, खलजी कालीन भारत, पृ.-49-50,

2- बरनी, जियाउद्दीन: तारीख-ए-फीरोजशाही, पृ.-257,अनु. रिजवी, खलजी कालीन भारत, पृ.-50,
इसामी न तो अलाउलमुल्क के सुझावों का वर्णन करता है और न- अलाउद्दीन के उत्तर का ही,

3- ऊँट की पीठ या कूबड़ के पीछे छिपने का अर्थ युद्ध को टालना है ।

"तुम ऊँट की चोरी करने के बाद यह आशा नहीं कर सकते कि अनदेखे ही गायब हो जाओ या ऊँट की पीठ के पीछे छिप जाओ ।" इसी प्रकार तुम दिल्ली के साम्राज्य पर बिना उसकी चुनौतियों का सामना किए शासन नहीं कर सकते । शत्रु दो हजार कोस की यात्रा कर कुतुबमीनार के पास युद्ध में मुझे ललकारने आया है । यदि इस अवसरपर मैं कोई दुर्बलता प्रकट करता है तो न तो देश की जनता और न साहसी सैनिकों के मन में ही मेरे लिए कोई सम्मान रह जाएगा । इसके अतिरिक्त भविष्य में आने वाली पीढ़ियाँ मेरी पीढ़ी पर हँसेंगी । नहीं, चाहे जो हो जाए मैं कल सीरी से कली की ओर कूच कर कुतलुग ख्वाजा से युद्ध करूँगा और देखूँगा कि ईश्वर किसे विजय प्रदान करता है । फ़तवाए जहाँदारी में बरनी सुल्तान के रूख की प्रशंसा और अपने चाचा अलाउलमुल्क की सलाह की निंदा करता है, यद्यपि वह नाम का उल्लेख नहीं करता ।[1]

दिल्ली नगर एवं राजमहल की जिम्मेदारी अलाउलमुल्क को देते हुए उसने आज्ञा दी कि वह कुंजिओं को चूमे और हम दोनों में से जो कोई भी-चाहे वह या मैं विजयी हो, तुम द्वारों और कोषागारों की कुंजियों को उसके चरणों पर रख देना और उसके आज्ञाकारी सेवक हो जाना ।[2] अपने पतन के साथ वह दिल्ली और देश नहीं डुबोना चाहता था । अलाउद्दीन के चले जाने पर अलाउलमुल्क ने बदायूँ द्वार के अतिरिक्त, जिसे वह आवश्यकता पड़ने पर दोआब की ओर भागने के लिए खुला रखना चाहता था, दिल्ली के समस्त द्वार बन्द कर दिए ।[3]

1- बरनी, जियाउद्दीन: फ़तवा-ए-जहाँदारी, पृ.-76-77,
हबीब एवं निजामी: दिल्ली सुल्तनत, पृ.-293,

2- बरनी, जियाउद्दीन: तारीख-ए-फीरोजशाही, अनु.-रिजवी खल्जी-कालीन भारत,पृ.-53,

3- हबीब एवं निजामी: दिल्ली सुल्तनत, पृ.-293,

कीली के मैदान में दोनों सेनाएं मध्ययुगीन औपचारिक परम्पराओं के अनुसार खड़ी हुईं । भारतीय सेना कीली में बहुत सुरक्षित स्थिति में थी । वह शत्रु के आक्रमण से एक ओर यमुना द्वारा सुरक्षित थी और दूसरी ओर काँटों और झाड़ियों की एक पंक्ति द्वारा ।[1] अलाउद्दीन के सेना की सजावट इस प्रकार थी । समाना, पंजाब और मुल्तान के प्रान्तपति जफर खाँ को दाहिने पार्श्व का नेतृत्व सौंपा गया और उसके साथ हिन्दुस्तान के कुछ राजा, जो अनुभवी योद्धा थे, कर दिये गये । उलुग खाँ को वाम पार्श्व का भार इस आदेश के साथ सौंपा गया कि युद्ध के समय जो भी पार्श्व निर्बलता का परिचय दे, उसकी सहायता के लिए वह जा पहुँचे । सुल्तान नुसरत खाँ और 12,000 सैनिकों के साथ मध्य भाग का नेतृत्व कर रहा था ।[2] शत्रु के भयानक आघात के विरूद्ध रोक के रूप में प्रत्येक भाग के सम्मुख बाईस हाथी रखे गये थे । अपने सैनिकों को इस प्रकार सुनियोजित करके सुल्तान ने स्वयं सारीसेना का निरीक्षण किया और आदेश दिया कि कोई भी व्यक्ति अपने स्थान से बिना उसके आदेश के न हिले ।[3] दूसरी ओर कुतलुग ने भी अपनी सेना इस प्रकार व्यवस्थित की । स्वयं कुतलुग मध्य में था, हजलक और तमार बुगा क्रमशः वाम और दक्षिण पार्श्व का नेतृत्व कर रहे थे एक अन्य मंगोल सेनानायक तरगी एक बृहत सैनिक टुकड़ी का नेतृत्व कर हा था । इसाकील्बा, कीज्या और उला भी मंगोल सेना में महत्त्वपूर्ण स्थानों पर थे ।[4] इसामी के अनुसार अलाउद्दीन के पास कुतलुग ख्वाजा के चार राजदूत यह संदेश लेकर आए कि "किसी को भी यह याद नहीं है कि हिदुस्तान में भी ऐसा सम्राट और सेना थी । मेरी प्रार्थना है कि मेरे राजदूतों को आपके शिविर में घूमकर

1- इसामी: फुतूहुस्सलातीन, पृ.-249, अनु. रिजवी, खल्जी कालीन भारत, पृ.-199,

2- इसामी: फुतूहुस्सलातीन: पृ.-250, अनु. रिजवी. खल्जी कालीन भारत- पृ.-199,

3- फरिश्ता के अनुसार दिल्ली की सेना में 3,00,000 घोड़े और 2,700- हाथी थे, पर यह संख्या विश्वसनीय नहीं है, क्योंकि यदि सुल्तान के पास विशाल सेना होती तो वह आक्रमण को लेकर इतना चिंतित न होता,

4- इसामी: फुतूहुस्सलातीन, पृ.-249, अनु. रिजवी, खल्जी कालीन भारत, पृ.-198-199,

उसके मुख्य अधिकारियों को जानने की अनुमति दी जाय।" यह अलाउद्दीन के हित में था कि वह अनुमति दे दे और तदनुसार राजदूतों ने कुतलुग ख्वाजा के पास आकर सूचित किया।[1]

यद्यपि दोनों सेनाओं की व्यूह रचना हो चुकी थी, फिर भी अलाउद्दीन युद्ध की जल्दी में नहीं था। वह स्थिति का पूर्ण अवलोकन कर लेना चाहता था। अभी पूर्व से उसके पास अधिकाधिक अधिकारी और सैनिक आने वाले थे। यदि मंगोलों ने दिल्ली पर अधिकार करने के लिए कोई अचानक हमला किया तो वह उनसे युद्ध के लिए तैयार था किंतु विलम्ब करना निश्चित रूप से उसके अनुकूल था। वह यह सिद्ध कर देगा कि उनके लिए अत्यन्त समझदारी का रास्ता यह है कि वे ऐसे देश से वापस चले जाएं जहाँ उन्हें कोई नहीं चाहता।[2] पर इसी समय उसके सबसे महान सेनानी जफर खाँ ने अलाउद्दीन की योजना पर पानी फेर दिया। जफरखाँ मंगोलों से युद्ध के लिए उतावला था। सुल्तान की स्वीकृति प्राप्त किए बिना उसने अपने सैनिकों और अधिकारियों को मंगोलों के वामपार्श्व पर आघात करने का आदेश देकर युद्ध प्रारम्भ करने का आदेश दे दिया।[3] हजलक की सेना और जफर खाँ की सेना में भयंकर युद्ध हुआ। जफर खाँ के पुत्र दिलेर खाँ ने मंगोलों पर भयंकर आक्रमण किया और उनमें आतंक उत्पन्न कर दिया हजलक इस आक्रमण के सामने न टिक सका और पीछे हट गया। ध्वस्त और पराजित मंगोल सेना का शाही सेना ने बुरी तरह पीछा किया, किन्तु तमार बुगा के सैनिक पीछा करने वालों पर पीछे तीरों की बौछार करते रहे-वास्तव में उस कार्य में मंगोल अत्यधिक निपुण थे। दिल्ली की सेना के मध्य भाग का संचालन सुल्तान स्वयं कर रहा था।

1- हबीब निजामी: दिल्ली सुल्तनत, पृ.-294,

2- हबीब निजामी: दिल्ली सुल्तनत, पृ.-294,

3- हबीब निजामी: दिल्ली सुल्तनत, पृ.-294,
लाल, के0 एस0: खल्जी वंश का इतिहास पृ.-133,

उसने प्रत्येक मंगोल का सिर लाने पर एक टंका देने का वायदा किया ।[1] इस जोश में अनेक मंगोल मार डाले गये और उन्हें पीछे धकेल दिया गया ।

हजलक पुनः वापस लौट आया और उसने अपना ध्यान जफर खाँ पर केंद्रित किया । जफर बुरी तरह से फंस गया, न तो उसे सुल्तान से कोई कुमुक प्राप्त हो रही थी और न ही उसे पीछे हटने का कोई आदेश ही प्राप्त हुआ था । उसके अतिरिक्त उलुग खाँ भी जफर खाँ से वैमनष्यता रखने के कारण उसके सहायतार्थ आगे नहीं बढ़ा ।[2] अन्त में जफर खाँ ने अपने भरोसे पर ही शत्रु पर जोरदार आक्रमण करने के लिए अपने सैनिकों को आदेश दिया । हजलक इस आक्रमण के सामने न ठहर सका और एक बार पुनः घबड़ा कर पीछे भागा । जफर खाँ ने उसका पीछा 18 कोस[3] तक किया और विशाल संख्या में मंगोलों को मार गिराया। किन्तु पराजित सेना का पीछा करना दुर्भाग्यपूर्ण सिद्ध हुआ । पलायन के समय लगभग 10,000 मंगोल तरगी के नेतृत्व में छुप गये थे । और वे पीछा करके लौटते हुए शाही सैनिकों को मार गिराने के लिए तैयार हो गय । अतः जैसे ही उन्होंने जफर खाँ को लौटते हुए देखा वे युद्ध के लिए जफर पर टूट पड़े । जफर खाँ कुछ क्षण के लिए हतप्रभ हो गया । उसके पास मात्र लगभग एक हजार घुड़सवार थे ।[4] उसने असमान, अखुरवेग और राणा-ए-पील अलीशाह जैसे अपने कुछ अधिकारियों से तुरंत परामर्श किया । यह सोचकर कि युद्ध से मुखमोड़कर यदि वे मंगोलों से बच निकले तो भी इस कायरता के लिए सुल्तान द्वारा अवश्य दण्डित किये जाएंगे । अतः अंतिम घोर संघर्ष का निर्णय लिया गया।दोनों सेनाओं में घमासान युद्ध प्रारम्भ हो गया । मंगोलों ने शाही सेना घेर लियाऔर उन पर प्राण घातक प्रहार किए,

---

1- अमीर खुसरो: देवलरानी, पृ.-61,
लाल, के0 एस0: खल्जी वंश का इतिहास, पृ.-133-34,
2- लाल,के0एस0: खल्जी वंश का इतिहास, पृ.-134,
3- यह दूरी बेजर फुलर की पाण्डुलिपि में दी गई है । किंतु बरनी की बिब्लि0 इण्डि0 मूल प्रति में नहीं है ।
लाल.के0एस0: खल्जी वंश का इतिहास,पृ.-134,
4- लाल,के0एस0: खल्जीवंश का इतिहास, पृ.-134,

तथापि जफर खाँ घेरा तोड़ने में सफल हुआ । युद्ध की भयंकरता के विषय में इसामी लिखता है कि जब शुत्रु दल के 5000 सैनिक मारे गये थे, जफर खाँ के केवल 800 आदमी खेत रहे । शेष 200 घुड़सवारों के साथ जफर खाँ अंतिम साँस तक लड़ता रहा और जब उसका घोड़ा मार डाला गया तो वह भागने की जगह पैदल ही युद्ध में कूद पड़ा । बरनी इस प्रसंग का अत्यन्त रोचक वर्णन करता है कि, "उसका घोड़ा उसके सामने ही मर गया और वह ख्यातनामा और अनुपमेय योद्धा पैदल ही युद्ध करने लगा । अपने सम्मुख अपनी तलवार के प्रहारों की वर्षा करके उसने अत्यन्त प्रबलता से आक्रमण किया । उसका प्रत्येक प्रहार एक मंगोल घुड़सवार को नीचे लाता था ।[1]

जफर खाँ के अप्रतिम साहस एवं वीरता से प्रभावित होकर कुतलुग ख्वाजा ने जफर के पास यह संदेश भिजवाया कि "मेरे पक्ष में आ जाओ । मैं तुम्हें अपने पिता के पास ले चलूँगा जो तुम्हारे साथ दिल्ली के सुल्तान की अपेक्षा अधिक सम्मान से व्यवहार करेगा ।"[2] पर जफर खाँ ने इस आमन्त्रण को ठुकरा दिया और संघर्षरत रहा । जब मंगोलों को यह आभास हो गया कि जफर को जीवित बन्दी बनाना असंभव है तो मंगोलों ने चारों ओर से उस पर दबाव डाला और एक निकट संघर्ष में उसे मार डाला ।[3] इस प्रकार सल्तनत के एक अभूतपूर्व प्रहरी की जीवन लीला समाप्त हो गई ।[4]

दूसरे दिन जब सेनाएं सुसज्जित होकर आमने सामने आईं तो अलाउद्दीन के अधिकारी यह सुझाव लेकर उसके पास आए कि वह सुरक्षा के लिए दिल्ली के दुर्ग में चला जाए और वहाँ से शत्रु से युद्ध करे । किंतु अलाउद्दीन ने यहस्वीकार नहीं

1- बरनी: जियाउद्दीन: तारीख-ए-फीरोजशाही, रिजवी, खलजी कालीन-भारत, पृ.-52,

2- बरनी/ जियाउद्दीन: तारीख-ए-फीरोजशाही, रिजवी, खलजी कालीन-भारत, पृ.-52, अनुवाद, इलियट एवं डाउसन, भाग-3, पृ.-167,

3- बरनी: तारीख-ए-फीरोजशाही, अनु. रिजवी, खल्जी, कालीन भारत, पृ.-53,
श्रीवास्तव, ए०एल०: दिल्ली सल्तनत, पृ.-166,

4- लाल, के० एस०: हिस्ट्री आफ खल्जीज, पृ.-161,

किया । उसने उत्तर दिया कि "यदि कल सेना का एक भाग हार गया क्योंकि उसने जल्दबाजी में मेरे आदेशों का पालन नहीं किया तो उसी घटना कोयाद नहीं रखा जा सकता । मेरे चारों ओर जो खतरे है मैं उनसे अनभिज्ञ नहीं हूँ लेकिन यदि मुझे अपने स्थान से हटना पड़ा तो मैं आगे ही बढ़ूँगा ।" फिर भी उसने हमले का आदेश नहीं दिया और चूँकि कुतलुग भी उतना ही अनिच्छुक था इसलिए सेनाएं आमने-सामने खड़ी हुईं किन्तु रात आते ही मंगोल सेनाएं दस मील पीछे लौट गईं । अलाउद्दीन ने सबसे सर्वाधिक बुद्धिमत्ता यह दिखाई है कि उसने मंगोलों का पीछा न कर उन्हें शांतिसेस्वदेश लौट जाने दिया[1] । वह स्वयं दिल्ली वापस आ गया ।[2] इसामी का मत है कि मंगोलों के वापस जाने की सूचना सुनकर सारा नगर खुशी से झूम उठा और किसी ने मारे गये व्यक्तियों की चिंता तक नहीं की । ट्रांस आक्सियान जाते समय मार्ग में कुतलुग ख्वाजा की मृत्यु हो गयी ।[3] यह सत्य इसलिए भी प्रतीत होता है कि सन् 1306ई॰में दावा की मृत्यु के बाद क्रमश: कुमुक, कुबक, और तलिकु ट्रांस आक्सियाना के सिंहासन पर बैठे। जबकि सिंहासन पर अधिकार जताने के लिए इस योद्धा के पुत्र के नाम का उल्लेख नहीं किया गया है ।

डा0 के0एस0 लाल[4] का मत है कि मंगोलों के वापस लौट जाने का कारण जफर खाँ से हुए युद्ध का आतंक है । आतंक इतना गहरा था कि "जब उनके जानवर पानी न पीते तो वे कहते; ऐ । क्या तुमने जफर खाँ को देखा है जो तुम पानी नहीं पीते ।"[5] इससे स्पष्ट है कि मंगोल भारतीय शक्ति का लोहा मानने लग थे ।

1- हबीब एवं निजामी: दिल्ली सुल्तनत्, पृ॰-295,
2- लाल, के0 एस0: खल्जी वंश का इतिहास , पृ॰-136,
3- खुसरों, अमीर: देवलरानी व खिज्र खाँ, पृ॰-61,
इसामी: फुतुहस्सलातीन, अनु॰ रिजवी, खल्जी कालीन भारत, पृ॰-199,
4- लाल, के0 एस0: खल्जी वंश का इतिहास, पृ॰-136,
5- बरनी, जियाउद्दीन: तारीख-ए-फीरोजशाही, रिजवी, खल्जी कालीन भारत, पृ॰-53 तथा इलियट एवं डाउसन, भाग=3, पृ॰-168,
फरिश्ता: तारीख-ए-फरिश्ता, अनु॰ ब्रिग्स, भाग-1, पृ॰-187,
अहमद, निजामुद्दीन: तबकात-ए-अकबरी, अनु॰ डे0बी0, भाग-1, पृ॰ 160,

किया । उसने उत्तर दिया कि "यदि कल सेना का एक भाग हार गया क्योंकि उसने जल्दबाजी में मेरे आदेशों का पालन नहीं किया तो उसी घटना कोयाद नहीं रखा जा सकता । मेरे चारों ओर जो खतरे है मैं उनसे अनभिज्ञ नहीं हूँ लेकिन यदि मुझे अपने स्थान से हटना पड़ा तो मैं आगे ही बढूँगा ।" फिर भी उसने हमले का आदेश नहीं दिया और चूँकि कुतलुग भी उतना ही अनिच्छुक था इसलिए सेनाएं आमने-सामने खड़ी हुई किन्तु रात आते ही मंगोल सेनाएं दस मील पीछे लौट गईं । अलाउद्दीन ने सबसे सर्वाधिक बुद्धिमत्ता यह दिखाई है कि उसने मंगोलों का पीछा न कर उन्हें शांतिसेस्वदेश लौट जाने दिया[1] । वह स्वयं दिल्ली वापस आ गया ।[2] इसामी का मत है कि मंगोलों के वापस जाने की सूचना सुनकर सारा नगर खुशी से झूम उठा और किसी ने मारे गये व्यक्तियों की चिंता तक नहीं की । ट्रांस आक्सियान जाते समय मार्ग में कुतलुग ख्वाजा की मृत्यु हो गयी ।[3] यह सत्य इसलिए भी प्रतीत होता है कि सन् 1306ई.में दावा की मृत्यु के बाद क्रमशः कुमुक, कुबक, और तलिकु ट्रांस आक्सियाना के सिंहासन पर बैठे। जबकि सिंहासन पर अधिकार जताने के लिए इस योद्धा के पुत्र के नाम का उल्लेख नहीं किया गया है ।

डा0 के0एस0 लाल[4] का मत है कि मंगोलों के वापस लौट जाने का कारण जफर खाँ से हुए युद्ध का आतंक है । आतंक इतना गहरा था कि "जब उनके जानवर पानी न पीते तो वे कहते; ऐ । क्या तुमने जफर खाँ को देखा है जो तुम पानी नहीं पीते ।"[5] इससे स्पष्ट है कि मंगोल भारतीय शक्ति का लोहा मानने लग थे ।

1- हबीब एवं निजामी: दिल्ली सल्तनत, पृ.-295,
2- लाल, के0 एस0: खल्जी वंश का इतिहास , पृ.-136,
3- खुसरों, अमीर: देवलरानी व खिज्र खाँ, पृ.-61,
इसामी: फुतूहुस्सलातीन, अनु. रिजवी,खल्जी कालीन भारत,पृ.-199,
4- लाल, के0 एस0: खल्जी वंश का इतिहास, पृ.-136,
5- बरनी, जियाउद्दीन: तारीख-ए-फीरोजशाही, रिजवी, खल्जी कालीन भारत, पृ.-53 तथा इलियट एवं डाउसन, भाग=3, पृ.-168,
फरिश्ता: तारीख-ए-फरिश्ता, अनु. ब्रिग्स,भाग-1,पृ.-187,
अहमद, निजामुद्दीन: तबकात-ए-अकबरी,अनु. डे0बी0,भाग-1,पृ. 160,

कुतलुग के बाद 1303 ई. तक मंगोल वापस भारत नहीं आए । इसका एक प्रमुख कारण तो यह था कि वे स्वयं इस समय मध्य एशिया में व्यस्त थे । केदू और दावा कुबलाई खाँ और उसके उत्तराधिकारियों से युद्धरत थे । कुतलुग के हिन्दुस्तान अभियान के पश्चात् दावा और केदू मंगोल खाकान से युद्ध करने चले गये, किन्तु वे पराजित हुए । केदू अपनी पराजय के पश्चात अधिक समय तक जीवित न रह पाया और सन् 1302 ई. में मर गया ।[1] दूसरा कारण यह था कि मंगोल भारतीय सैनिकों की शक्ति का अनुमान लगा चुके थे अत: वे पूरी तैयारी के बिना नहीं आना चाहते थे । इस समय का लाभ अलाउद्दीन ने उठाया और उसने अपना विजय अभियान रणथम्भौर, बंगाल और चित्तौड़ ले गया । वह अभी चितौड़ में ही था कि मंगोल पुन: आ धमके ।

तरगी का आक्रमण

मावराउन्नहर में जब मंगोलों को इस बात की सूचना मिली कि दिल्ली के सुल्तान ने दिल्ली और उत्तर भारत की सेना दो दूरस्थ स्थानों पर भेजकर उन्हें सुरक्षा से वंचित कर दिया है, तब वे तरगी के नेतृत्व में तेजी से चलकर, रास्ते में पड़ने वाले प्रदेशों को बिना छेड़े दिल्ली के समीप पहुँच गये । बरनी[2] एवं फरिश्ता[3] का मत है कि इस समय मंगोलों की सेना में 1,20,000 घुड़सवार थे । इसामी[4] घुड़सवारों की संख्या 2,00,000 बताता है । राजधानी की स्थिति उस समय वास्तव

1- बरनी, जियाउद्दीन: तारीख-ए-फीरोजशाही, पृ. 300, अनु. रिजवी, खल्जी कालीन भारत, पृ.-76,

2- बरनी: तारीख-ए-फीरोजशाही, अनु. रिजवी, खल्जी कालीन भारत, पृ. 76, बरनी संख्या को 30-40 हजार लिखता है जो निश्चिततः गलत है, क्योंकि- इस अभियान का उद्देश्य भी दिल्ली विजय था । अत: इतनी कम सेना- से दिल्ली विजय संभव न थी ।

के०एस० लाल का मत है कि 30-40 हजार सेना अलाउद्दीन को इतना- व्यग्र नहीं कर सकती थी जितना वह तरगी के इस अभियान में हुआ- खलजी वंश का इतिहास, पृ.-136,

3- फरिश्ता: तारीख-ए-फरिश्ता, अनु. ब्रिग्स, भाग-1, पृ.-201,

4- इसामी: फुतूहस्सलातीन, अनु. रिजवी, खल्जीकालीन भारत पृ.-201-तथा आगा मेंहदी हुसेन, भाग-2, पृ.-460,

में बहुत अधिक खराब थी । चित्तौड़ के घेरे में शाही सेना को अपारक्षति हुई थी और जो कुछ भी थोड़ा भण्डार और सामग्री युद्ध में शेष बच रही थी, दिल्ली लौटते समय रास्ते में ही नष्ट हो गयी थी । पूर्व की ओर भेजी गयी सेना अभी तक वापस नहीं लौटी थी । फिर भी अलाउद्दीन ने हिम्मत नहीं हारी । उसने पूर्व और पश्चिम के प्रान्तपतियों को कुमुक भेजने के त्वरित आदेश दिए और मंगोल आक्रान्ता से युद्ध करने के लिए तत्पर हो गया ।[1] उसने राजधानी में जितनी सेना थी एकत्रित की और सीरी के मैदान में सेना व्यवस्थित की । इतनी अल्प और सज्जाहीन सेना के साथ मंगोलों से खुले संघर्ष में युद्ध करना असम्भव था । इसलिए सुल्तान ने अपनी सुरक्षा व्यवस्था दृढ़ करके मंगोलों का धैर्य समाप्त करने का दृढ़ संकल्प किया ।[2] सीरी के पूर्व में यमुना नदी थी और दक्षिण पश्चिम में दिल्ली का पुराना किला था । दक्षिण में पुरानी दिल्ली का घना जंगल था । अतः एक मात्र शेष पार्श्व उत्तर का था, जहाँ मंगोलों ने अपने शिविर गाड़ रखे थे । सुल्तान ने अपने शिविर के चारों ओर विशाल खाइयाँ खोद जाने का आदेश दिया और उनके आस पास लकड़ी के तख्तों की दीवार निर्मित करके उन्हें और मजबूत कर दिया । उस काल में जबकि तोपखाना और घेरे में काम करने वाले अन्य उपकरण प्रचलित नहीं थे, खंभों की पंक्तियाँ, खाईयाँ एवं बुर्जियाँ सुरक्षा का कार्य अच्छी तरह सम्पन्न करती थीं । प्रत्येक खाई के पीछे "कवच से ठके" पाँच विशालकाय हाथी, घुड़सवारों का एक सैन्यदल और अनवरत रूप से पहरा देने के लिए एक रक्षक दल नियुक्त थे ।[3] इन उपायों के कारण मंगोल शाही शिविर में प्रवेश न कर सके ।[4]

1- लाल, के० एस०: खलजी वंश का इतिहास, पृ.-137,
2- लाल, के० एस०: खलजी वंश का इतिहास, पृ.-137,
3- बरनी, जियाउद्दीन: तारीख-ए-फीरोजशाही, पृ.-301, अनु. रिजवी, खल्जी कालीन भारत, पृ.-77 तथा इलियट एवं डाउसन, भाग-3, पृ. 190, हबीब एवं निजामी: दिल्ली सुल्तनत, पृ.-314,
4- लाल, के० एस०: खलजी वंश का इतिहास, पृ.-137,

मंगोलों ने शाही सेना पर अचानक टूट पड़ने के कई धावे किए पर सभी असफल रहे । अन्ततः उन्होंने दिल्ली से लगे क्षेत्र पर धावे मारना प्रारम्भ किया । उन्होंने राजधानी को इतनी पूर्णता से घेर लिया था कि उसमें पानी-चारा ईधंन एवं जीवनोपयोगी अन्य आवश्यक्ता की वस्तुओं का आना बन्द हो गयाथा औरशहर में अनाज की कमी महशूस होने लगी थी । मंगोल सैनिक ऐसे में सुभानी, सोरी, हुथी के चबूतरों और हौज-ए-अलाई तक समूहों में चढ़ आते थे और बाजार के अनाज और अन्य भण्डारों पर हाथ साफ कर जाते थे । कभी-कभी तो उन्होंने दिल्ली पर भी धावे किए और यहाँ के शाही अनाज भण्डारण को लूटा । इन धावों के दौरान कई बार मामूली झड़पें हुई और किसी पक्ष को उल्लेखनीय विजय नहीं मिली । तरगी जो हर कीमत पर विजय का उद्देश्य बनाकर आया था, पूर्णतः धैर्य खो बैठा और इसामी[1] के अनुसार मात्र 40 दिन ठहरने के बाद स्वदेश वापस लौट गया ।[2] यह कथा कि शेख निजामुद्दीन औलिया की प्रार्थनाओं के फलस्वरूप तरगी भयभीत होकरवापस चला गया बाद की मनगढ़न्त बात है ।[3] मंगोलों के पलायन के संदर्भ में बरनी लिखता है ।"यह अवसर जिसमें इस्लाम की सेनाओं को मंगोल सेना से कोई क्षति नहीं पहुँची थी और दिल्ली नगर सुरक्षित बच गया था, सब बुद्धिमान लोगों को युग का एक चमत्कार मालूम पड़ा, क्योंकि मंगोल मौसम के प्रारम्भ में ही प्रबलता से आ पहुँचे थे और कुमुक या खाद्य सामग्री आने के मार्गों को उन्होंने अवरुद्ध कर रखा था और शाही सेना

1- इसामी: फुतूहुस्सलातीन, पृ.-277, रिजवी:खल्जी कालीन भारत- पृ.-202,
आगा, मेंहदी हुसैन: भाग-2, पृ.-461,

2- बरनी: तारीखे फीरोजशाही, पृ.-302, रिजवी: खल्जी कालीन भारत- पृ.-77, यहाँ बरनी तरंगी के ठहरने की अवधि दो माह लिखता है ।
हबीब निजामी: दिल्ली सल्तनत, पृ.-314,
लाल, के0 एस0: खल्जी वंश का इतिहास, पृ.-138,

3- हबीब निजामी: दिल्ली सल्तनत, पृ.-314,
बरनी: तारीखे फीरोजशाही, रिजवी खल्जी कालीन भारत,पृ.-77, में तरंगी के भागने का श्रेय शेख को देता है ।

सुसज्जित साज सज्जा के अभाव में ग्रस्त थी, जबकि वे (मंगोल) अत्यन्त प्रचुरता और उत्साह की स्थिति में थे ।[1]

मंगोलों के इस अवसर पर त्वरित पलायन के विषय में डा॰ के० एस० लाल[2] ने दो कारण बताये हैं । सर्वप्रथम तो वे इसका श्रेय सुल्तान की तुरन्त कार्यवाही को देते हैं । वह शत्रु के सम्मुख किसी दशा में मुह की खाने वाला नहीं था और उसने ऐसे सुरक्षात्मक उपाय काम में लाए जिन्होंने मंगोल नेता तरगी को भी विस्मय में डाल दिया। दूसरे, मंगोल मध्य एशिया में इतना अधिक व्यस्त थे कि वे हिन्दुस्तान में अधिक समय तक नहीं ठहर सकते थे । शत्रु के देश में और अधिक ठहरने से उसकी समस्त सेना का विनाश हो जाता ।[3] इस अवसर का वर्णन करते हुए धर्म पाल ने लिखा है कि अलाउद्दीन खिलजी के आत्म सन्तों को गहरा आघात लगा और उसके विश्व-विजय के स्वप्न चकनाचूर हो गये । उसने अपना ध्यान मंगोल आक्रमण कारियों को रोकने की तरफ केन्द्रित किया ।[4]

अलीबेग, तरताक और तरगी का आक्रमण

मंगोल अपनी पूर्व पराजय से हताश नहीं होते थे, बल्कि उनके दिल में बदले की आग औरतेज हो जाती थी । यदि इसामी[5] में विश्वास किया जाय तो तरंगी ने 1303-5ई के मध्य एक अन्य आक्रमण किया था जिसका अन्य इतिहास कार उल्लेख नहीं करते (सन् 1305ई में अलीबेग, तरताक तथा तरगी ने अपनी नंगी

1- बरनी, जियाउद्दीन: तारीखे-फीरोजशाही, पृ॰-302, रिजवी: खल्जी-कालीन भारत, पृ॰-77,
2- लाल, के० एस०: खल्जी वंश का इतिहास, पृ॰-139,
3- हबीब निजामी: दिल्ली सुल्तनत, पृ॰-314,
4- धर्मपाल, अलाउद्दीन खल्जीज मंगोल पालिसी, इस्लामिक कल्चर जुलाई-1987-पृ॰-260,
5- इसामी: फुतूहुस्सलातीन, पृ॰-283-84 आभा, मेंहदी हुसैन भाग-2, पृ॰-466-67,

तलवारें लेकर तुर्किस्तान से सिंध नदी की ओर कूच किया और शीघ्र ही झेलम पर कर लिया । अमीर खुसरो के अनुसार मंगोलों के दोआब में प्रवेश के पूर्व ही एक युद्ध में तरगी जो विजेताओं के आक्रमणों से एक या दो बार भाग चुका था अन्ततः एक तीर से घायल हो गया ।[1] औरमारा गया[2] । पर प्रो० हबीब लिखते है कि तरगी जो इस देश में पहले दो बार आ चुका था डरता था कि उसका सर काटकर भाले पर घुमाया जाएगा और ऐसा लगता है कि वापस चला गया ।[3] तरंगी के बाद अलीबेग ने नेतृत्व संभाला । इतिहासकारों के मध्य तरतक को लेकर विवाद है। बरनी और इसामी उसे तरतक जबकि अमीर खुसरो और बदायूँनी तरलाक कहते हैं । फरिश्ता ख्वाजा तरपाल लिखता है जिसे ब्रिग्स ख्वाजा ताश में परिवर्तित कर देते हैं ।

अलीबेग जो सर्वोच्च सेनाध्यक्ष था और तरताक ने अपने पचास हजार अश्वारोहियों सहित आगे कूच करने का निश्चय किया । उनकी सामरिक नीति बहुत स्पष्ट नहीं है । पर इतना तो स्पष्ट है कि इस बार उन्होंने दिल्ली की जगह अपना लक्ष्य दोआब प्रान्त को बनाया । उन्होंने शिवालिक अर्थात् पहाड़ों के तलहटी प्रदेश को लूटा और आगे बढ़े, जहाँ से भी निकले उन्होंने वहाँ पाशविक क्रूरता का व्यवहार किया । दुखी जनता गंगा नदी के पिछले हिस्सों की ओर भाग गई और हिन्दुस्तान के नगरों से धुआँ उठने लगा, लोगों ने निःसहाय पाकर अपने को उसमें, झोंक दिया[4] । अलाउद्दीन के लिए यह उत्तम ही था कि मंगोलों ने दिल्ली की जगह दोआब को लक्ष्य बनाया क्योंकि यहाँ वे स्वयं ही चंगुल में

1- खुसरो अमीर: खजाइन, हबीब, कैम्पेन्स ऑफ अलाउद्दीन खिल्जी, पृ.-26,

2- लाल, के० एस०: खल्जीवंश का इतिहास, पृ.-140,

3- हबीब निजामी: दिल्ली सल्तनत पृ.-330,
अमीर खुसरो के अनुसार तरंगी दोआब में प्रवेश के पूर्व ही मार डाला गया था,
लाल, के० एस०: हिस्ट्री ऑफ खल्जीज, पृ.-168,

4- खुसरो,अमीर: खजाइन, हबीब: कैम्पेन्स ऑफ अलाउद्दीन खिल्जी,पृ.26,

आ फंसे थे ।[1] सुल्तान ने अश्वाधिपति (अखुरबेग-ए-मैसरा) मलिक नायक को जो कि अमीर खुसरो के अनुसार एक हिन्दू अधिकारी था,[2] को 30-40 हजार अश्वारोहियों के साथ भेजकर यह आदेश दिया कि मंगोलों को पूरी तरह नष्ट कर देना है । हिन्दू सेनापति ने बड़ी सराहनीय क्षमता से अपना कर्त्तव्य पूरा किया । अमीर खुसरो हमें बताता है कि सेना ने, "ऐसी दूरी जो एक बेकार व्यक्ति के दिन के समान लम्बी थी एक व्यस्त व्यक्ति के समान शीघ्रता से पार की । शाही सेना की मंगोलों से अमरोहा के निकट मुठभेड़ हुई और उसने शत्रुओं को, गुरूवार 30 दिसम्बर, सन् 1305ई.(12 जमादुस्सानी, 705 हिजरी)[3] को बुरी तरह पराजित किया । मंगोल सेना का अधिकांश भाग मौत के घाट उतार दिया गया, तितर-बितर कर दिया गया और भगा दिया गया । मंगोलों की लाशों से रणभूमि पट गई ।[4] मंगोलों के 20 हजार घोड़े विजेताओं द्वारा अधिकृत कर लिए गए । दोनों मंगोल सेनानायक अलीबेग और तरतक को जीवित बन्दी बनाकर दिल्ली दरबार में भेज दिया गया ।[5]

अलाउद्दीन ने मलिक नायक और उसके अधिकारियों और बंदियों का स्वागत करने के लिए एक शानदार दरबार का आयोजन किया । "चौतरा-ए-सुभानी, पर सिंहासन रखा गयाऔर शाही सेना वहाँ से इन्द्र प्रस्थ तक दो पंक्तियों में खड़ी की गई । दृश्य देखने के लिए विशाल जनसमूह एकत्रित हो गया

1- हबीब निजामी: दिल्ली सुल्तनत, पृ.-330,
2- खुसरो,अमीर: देवलरानी, पृ.-61,
हबीब निजामी: दिल्ली सुल्तनत, पृ.-330,
3- फरिश्ता इस तिथि को 704 हिजरी लिखता है,
फरिश्ता: तारीख-ए-फरिश्ता, अनु. ब्रिग्स,भाग-2,पृ.-205,
खुसरो,अमीर: खजाइनुलफुतूह, हबीब, कैम्पेन्स आफ अलाउद्दीन-खिल्जी, पृ.-27,
हबीब एवं निजामी: दिल्ली सुल्तनत,पृ.-393,
4- बरनी: तारीख-ए-फीरोजशाही, पृ.-320,रिजवी,खल्जी कालीन-भारत, पृ.-88,
5- बरनी:तारीख-ए-फीरोजशाही, रिजवी,खल्जी कालीन भारत,पृ. 88,

और एक सुराही पानी का मूल्य बीस जीतल और आधा टंका तक बढ़ गया ।[1] मंगोल बंदियों को इस रास्ते से लाया गया और उन्हें सिंहासन के समक्ष प्रस्तुत किया गया । ऊँट पर बिठाकर सारे नगर में घुमाया गया । बरनी के अनुसार अलाउद्दीन ने तुरन्त ही सभी बंदियों को हाथी के पैरों के नीचे कुचलकर मारने के आदेश दे दिया ।[2] किन्तु फरिश्ता के अनुसार मंगोलों के सिर धड़ से अलग कर दियागया और उनके 8000 सिर सीरी की मीनारों के निर्माण हेतु काम आई ।" अमीर खुसरो भी इसकी पुष्टि करता है" उन्होंने (मंगोलों ने) नई इमारतों को रक्त दिया ।[3]

अलीबेग और तरतक का क्या हुआ इस विषय पर विद्वानों के अलग-अलग मत हैं । बरनी के अनुसार सारे बन्दी अपने सरदारों के साथ हाथियों के पैरों के नीचे कुचल दिए गए ।[4] पर अमीर खुसरो लिखता है कि दोनों सरदारोंको क्षमा कर दिया गया । वह आगे कहता है कि,कालान्तर में उनमें से एक बिना किसी हानि का शिकार हुए परलोक सिधार गया और दूसरा बचा रह गया । इसामी भी लगभग इन्हीं तथ्यों पर प्रकाश डालता है, वह लिखता है कि अलाउद्दीन ने अलीबेग और तरतक को क्षमादान दे दिया, उन्हें खिलअतें दी और उनके लिए जीवन की सारी सुविधाएँ उपलब्ध कर दीं ।[5] किंतु शीघ्र ही कुछ समय उपरान्त शराब के नशे में तरतक को अपने मुकुट, कवच और, सेना के सम्बन्ध में पूछताछ करते सुना गया । जब सुल्तान ने इसके बारे में सुना तो उसने तुरन्त उसका सिर धड़ से

1- बरनी :तारीख-ए-फीरोजशाही, रिजवी,खलजी कालीन भारत,पृ.88,
2- बरनी: तारीख-ए-फीरोजशाही, रिजवी, खलजी कालीन भारत,पृ.88,
3- खुसरो, अमीर: खजाइनुलफुतूह, हबीब,कैम्पेन्स आफ अलाउद्दीन खिलजी, पृ.-41,
4- बरनी,जियाउद्दीन: तारीख-ए-फीरोजशाही, रिजवी,खलजी कालीन-भारत,पृ.-88,
5- इसामी: फुतूहुस्सलातीन, अनु.रिजवी,खलजी कालीन भारत,पृ.-204, खुसरो,अमीर: खजाइनुलफुतूह:, रिजवी,हबीब,कैम्पेन्सआफ अलाउद्दीन-खिलजी-पृ.28,

अलग करने का आदेश दिया । एक दोवर्ष उपरान्त अलीबेग की भी यही दशा हुई ।[1]

कुबक, इकबालमन्द और मुदाबिर ताइबू का आक्रमण

1306 ई॰ में ही पुनः दावा खाँ ने कुबक[2] को मंगोलों की पूर्व पराजय का बदला लेने के लिए भेजा । किंतु इस बार एक सामूहिक सेना के बजाय वे तीन दलों में तीन सेनाध्यक्षों के नेतृत्व में आए । प्रथम का नेतृत्व कुबक कर रहा था । और इकबाल तथा ताइबू उसके पीछे-पीछे आ रहे थे । कुबक ने एक विशाल सेना सहित सिंधु नदी पार की और मार्ग में शहरों को जलाते हत्या करते और वह लूटमार करते हुए रावी की ओर बढ़ा । इक्बालमन्द की सैनिक टुकड़ी दक्षिण की ओर बढ़ी और नागौर के निकट जा पहुँची । अलाउददीन ने मंगोलों का सामना करने के लिए मलिक नायब काफूर को नियुक्त किया । इसकी सहायता के लिए मलिक तुगलक और मलिक आलम जैसे अनुभवी सेनानायक को भेजा गया । उसने समस्त सेना को प्रोत्साहन दिया और उन्हें एक वर्ष का वेतन पारितोषिक रूप में देने का वायदा किया ।[3] इस प्रकार अलाउददीन ने अपनी सेना को विभाजित न कर बुद्धिमत्ता का परिचय दिया ।[4] सुल्तान ने आदेश दिया कि सेना शीघ्रता पूर्वक कूच करे और तीनों मंगोल दलों को एक-एक करके पराजित करे । दिल्ली की सेना ने सबेरे और शा म की परवाह किए बिना वास्तव में बड़ी तीव्रगति से कूच किया । मलिक तुगलक ने मंगोलों को रावी के आस-पास मँड़राते देखा तो उसने

1- इसामी: फुतूहुस्सलातीन, रिजवी, खल्जी कालीन भारत, पृ॰-204,

2- इस अभियान के अध्यक्ष कुबक से तात्पर्य दावा के पुत्र कुबक को नहीं-समझना चाहिए । क्योंकि भारत पर आक्रमण करने वाला कुबक बंदी-बनाया गया था और मार डाला गया, जबकि दावा का पुत्र कुबक-1307-8ई॰में ट्रांस आक्सियाना की गद्दी पर बैठा था, के॰एस॰लाल, पृ॰-142,

3- इसामी: फुतूहुस्सलातीन, अनु॰ रिजवी. खल्जी कालीन भारत,पृ॰-205,

4- हबीब एवं निजामी: दिल्ली सल्तनत, पृ॰-332,

काफूर के साथ रावी नदी पर अपनी मोर्चाबन्दी कर ली । बरनी[1] इस स्थान का नाम खेकर, इसामी[2] "हिन्द-ए-अली" तथा फरिश्ता निलख लिखता है । सर्वप्रथम आक्रमण मंगोलों ने ही किया[3] । कुबक ने शाही सेना के मध्य भाग पर जिसका नेतृत्व मलिक नायब काफूर कर रहा था, आघात किया और उसे तितर-बितर कर दिया । पर शीघ्र ही मलिक काफूर ने अपने सैनिकों के साथ कुबक पर तीव्र प्रहार किया औरउसे बन्दी बना लिया । अन्य युद्ध बन्दियों के साथ कुबक को भी दिल्ली दरबार भेज दिया गया ।[4]

कुबक को बन्दी बना लेने के साथ ही मलिक तुगलक और मलिक नायब इकबालमन्द की ओर बढ़े जो नागौर तक चढ़ आया था । इस समय शाही सेना मंगोलों पर एकाएक टूट पड़ी संभवत: कुबक की पराजय का समाचार सुनकर के और दक्षिण पार्श्व पर भारतीय सेना का आक्रमण हो जाने से मंगोल पीछे हट गए और उसी मार्ग से उत्तर की ओर सिंध पार भाग गए । शाही सेना ने उनका पीछा किया और मामूली संघर्ष में धर दबाया और बन्दी बनाकर दिल्ली ले आये । फरिश्ता[5] लिखता है कि यह एक विचित्र घटना थी, क्योंकि पचास या साठ हजार मंगोलों में से तीन या चार हजार से अधिक जीवित न रहे । अलाउद्दीन ने इस समय मंगोलों के साथ अत्यधिक क्रूरता का व्यवहार किया । उन्हें हाथियों के पैर के नीचे कुचले जाने और बदायूँ दरवाजे के सामने उनकी खोपड़ियों की एक मीनार बनाये जाने का आदेश दिया[6] । उनके स्त्री और बच्चे हिन्दुस्तान के अन्य हिस्सों में बेंच दिए गए ।

1- बरनी, जियाउद्दीन: तारीख-ए-फीरोजशाही, अनु॰ रिजवी, खलजी-कालीन भारत, पृ॰-88,
2- इसामी: फुतूहुस्सलातीन, अनु॰ रिजवी, खलजी कालीन भारत, पृ॰-205,
3- इसामी: फुतूहुस्सलातीन, अनु॰ रिजवी, खलजी कालीन भारत, पृ॰-205,
4- बरनी, जियाउद्दीन: तारीख-ए-फीरोजशाही, अनु॰ रिजवी, खलजी-कालीन भारत, -पृ॰-88,
5- फरिश्ता: तारीखे फरिश्ता पृ॰-109,
6- बरनी: तारीखे फीरोजशाही, रिजवी: खल्जी कालीन भारत, पृ॰-89,

हिन्दुस्तान के महान शत्रु दावाखाँ, जिसने 1272ई.में ट्रांस आक्सियाना के सिंहासन पर आरूढ़ होने के पश्चात् भारत पर आक्रमण करने के लिए अनेक बार अभियान भेजे थे, का निधन सन् 1306ई.के अंतिम महीनों में हुआ ।[1] अब ट्रांस आक्सियाना में राजनीतिक उथल-पुथल प्रारम्भ हुई और तीन वर्ष के भीतर सिंहासन पर क्रमशः तीन खान आसीन हुए । वहाँ की परिस्थिति इतनी डावाँ-डोल हो गयी कि देव पालपुर के सैनिक पड़ाव के अध्यक्ष गाजी मलिक ने करबुल और गजनी तक भी अभियान किए तथा उन स्थानों को निर्ममता से लूटा और उजाड़ा ।[2] इस प्रकार कुबक के आक्रमण के साथ ही मंगोल आक्रमण बन्द हो गया । मुगल, इस्लामी लश्कर से इतना भयभीत हो गये कि उनके हृदय में हिन्दुस्तान पर आक्रमण करने का विचार पूर्णतया निकल गया । कुतबी राज्य के अन्त तक फिर मुगल हिन्दुस्तान पर आक्रमण करने का नाम भी न ले सके औरहिन्दुस्तान की सीमा तक न पहुँच सके ।[3] न केवल मंगोलों ने हिन्दुस्तान पर अपने आक्रमण बन्द कर दिए बल्कि फरिश्ता एवं बरनी के अनुसार गाजी तुगलक, जो अपने पहले के अधिकारी शेर खाँ[4] के समान देवपालपुर में एक शक्तिशाली सेना के साथ नियुक्त किया गया था, प्रतिवर्ष कबुल, गजनी, कन्दहार और गर्मशीर से अभियान ले जाता, उन प्रदेशों को लूटता औरउजाड़ता था तथा वहाँ के नागरिकों से कर वसूल करता था । मंगोलों में इतना साहस नहीं था कि वे उससे अपने सीमान्तों की रक्षा कर सकें ।[5] इब्न-बतूता का भी मत लगभग ऐसा ही हो, वह कहता है कि उसने मुल्तान की जामा मस्जिद में गाजी मलिक का एक अरबी शिलालेख देखा था, जिसमें लिखा था, मैंने तारतारों से उन्तीस बार टक्कर ली है और उन्हें पराजित किया है और इसलिए मुझे गाजी मलिक कहा जाता है ।[6]

1- लाल, के0एस0: खल्जी वंश का इतिहास, पृ.-146,
2- बरनी:तारीखे फीरोजशाही, रिजवी: खल्जी कालीन भारत,पृ.-89,
3- बरनी:तारीखे फीरोजशाही, रिजवी: खल्जी कालीन भारत,पृ.-89,
4- शेर खाँ ने सुल्तान नासिरूद्दीन का खुतबा गजनी में पढ़वाया । रिजवी,एस0ए0ए0: खल्जी कालीन भारत,पृ.-89,
5- बरनी: तारीखे फीरोजशाही, रिजवी:खल्जी कालीन भारत,पृ.-89,
6- इब्नबतूता रेहला-पृ.-202

जलालुद्दीन के शासन काल में रावी नदी मंगोलों और सल्तनत के मध्य की लगभग सीमा रेखा थी । उसका पुत्र अर्कली खाँ सतलज के किनारे लाहौर और मुल्तान का प्रान्तपति था, जबकि मंगोलों के अधिकार में रावी पार प्रदेश था । किंतु अपने दृढ़ संकल्प और अपनी महान सेनाद्वारा अलाउद्दीन ने उन्हें सिंधु पार खदेड़ दिया । इतना नहीं चूँकि पश्चिम से भावी घुसपैठ के भय को रोकने के लिए काबुल और गजनी मुट्ठी में होना आवश्यक था, अतः सुल्तान ने सामरिक महत्त्व में इन दोनों स्थानों पर अपना आधिपत्य स्थापित करके भारत में मंगोल आक्रमणों का अन्त करने में सफलता प्राप्त की[1] ।

सुरक्षा व्यवस्था-

अलाउद्दीन ने मंगोल समस्या का अत्यधिक सावधानी एवं सतत अध्ययन के बाद स्थाई समाधान के लिए पग उठाए । उसने मंगोलों के प्रति बलबन की नीति को अपनाना श्रेयस्कर समझा और उसने अपनी मंगोल नीति का आधार बल्बन की मंगोल नीति बनाया । फिर भी दोनों की नीतियों में भेद है । बल्बन ने दिल्ली सल्तनत की सीमाओं का विस्तार करने की नीति की अपेक्षा सल्तनत को तथा उसकी प्रजा को खूँखार प्रलयकारी मंगोलों की नृशंसता से रक्षा करना अधिक श्रेयस्कर समझा । उसने मंगोलों के अनवरत् आक्रमणों को रोकने की नीति को प्राथमिकता दी और साम्राज्य विस्तार के कार्य को त्याग दिया ।[2] परन्तु अलाउद्दीन मंगोलों को इतना भयंकर नहीं समझता था कि उन्हें रोकने और परास्त करने के लिए वह साम्राज्य विस्तार की नीति ही त्याग दे । मंगोलों के विरूद्ध आत्मरक्षा, साम्राज्य सुरक्षा और युद्ध करने के लिए वह बल्बन की भाँति दिल्ली में बैठे रहना नहीं चाहता था ।[3] अपितु उत्तरी भारत व दक्षिण भारत

1- लाल, के0 एस0: खल्जी वंश का इतिहास, पृ-147,
2- बरनी: तारीखे फीरोजशाही-पृ.-50-51,
रिजवी: आदि तुर्क कालीन भारत, पृ.-161,
हबीब निजामी: दिल्ली सुल्तनत, पृ.-235-38
3- लाल, के0 एस0: खल्जी वंश का इतिहास, पृ.-277-78,

की विजय भी करना चाहता था । बल्बन ने मंगोलों के आक्रमण के भय के कारण रक्षात्मक नीति का आश्रय लिया और आक्रमणात्मक नीति को तिलांजलि दे दी। किन्तु अलाउद्दीन ही एक ऐसा सुल्तान था जिसने सुरक्षात्मक और आक्रमणात्मक दोनों नीतियों को साथ-साथ अपनाया और उसमें सफलता की ।[1] अलाउद्दीन दिल्ली सल्तनत काप्रथम शासक था जिसने मंगोलों को प्रत्येक बार परास्त किया और विजय व आक्रमणात्मक नीति को बनाये रखा तथा प्रशासकीय व्यवस्था में भी सुधार किया । उसके सैनिक सुधार बाजार नियन्त्रण, दुर्ग निर्माण, युद्ध विराम आदि अनेक कार्यों का उद्देश्य सीमान्त क्षेत्र की सुरक्षा थी ।

तरग़ी के नेतृत्व में मंगोलों के आक्रमण ने सुल्तान के मस्तिष्क में कुशल सेना के निर्माण की अतीव आवश्यकता की बात बिठा दी, और उसने सैनिक प्रशासन के पुनर्गठन की ओर अपना पूरा ध्यान दिया ।[2]

दुर्ग वास्तव में सेना का प्राचीर होता है । वे सैनिक चौकियों का काम करते थे, मुगल आक्रान्ताओं के विरूद्ध समाज की रक्षा करते और सैनिकों के लिए निवास स्थान का काम देते थे । बरनी बताता है कि बल्बन ने दुर्गों के निर्माण की ओर विशेष ध्यान दिया । उत्तर-पश्चिम सीमान्त पर अनेक दुर्ग स्थापित करने के अतिरिक्त उसने कम्पिल, पटियाली और भोजपुर जैसे स्थानों में भी कुछ शक्तिशाली दुर्ग निर्मित किए । सन् 1303ई०में तरग़ी के आक्रमण के पश्चात अलाउद्दीन दुर्ग निर्माण कार्य पर ध्यान देने की आवश्यकता के प्रति चैतन्य हुआ । उसने पुराने दुर्गों की मरम्मत और सामरिक महत्त्व के स्थानों पर नये दुर्गों के निर्माण का आदेश दिया ।[3] इन दुर्गों में अनुभवी और विवेकशली सेनानायक नियुक्त किए गए, जो

1- लाल, के० एस०: खल्जी वंश का इतिहास-पृ.-277-78,

2- लाल, के० एस०: खलजी वंश का इतिहास-पृ.-188,

3- बरनी, जियाउद्दीन: तारीख-ए-फीरोजशाही, पृ.-302-3

कोतवाल कहे जाते थे । सभी दुर्गों में मंजनीक और अर्टाक्ष यन्त्रों के निर्माण के लिए कुशल यान्त्रिकों की नियुक्तियाँ की गईं उन दुर्गों में शस्त्रों की पूर्ति के लिए और अनाज तथा चारे का भण्डार रखने के लिए आदेश दिए गए ।[1]

समाना, दिपालपुर, मुलतान आदि प्रदेशों को सीमांत क्षेत्र घोषित कर दिया गया और वहाँ सुदृढ़ सैनिक छावनियाँ निर्मित की गईं । इन छावनियों का शासन प्रबन्ध और सीमान्त क्षेत्र की सुरक्षा का कार्यभार गाजी मलिक जैसे शक्ति शाली, अनुभवी सेनानायक को सौंप दिया गया । इसके साथ ही कुछ स्वतन्त्र प्रभार में भी रखे मुल्तान और सिविस्तान-ताजुलमुल्क काफूर के अन्तर्गत, समाना और सुन्नम अखखेय तातक के अन्तर्गत, देवयाल पुर गाजी मलिक के अर्न्तगत रखे गये ।[2]

सीमान्त क्षेत्र में संदेश वाहन की भी समुचित व्यवस्था की गयी और गुप्तचरों का जाल-सा बिछा दिया गया । इन्होंने मंगोल आक्रमण के समय उसकी गतिविधियों और सैनिक शिविरों व घेरों से अलाउद्दीन को अवगत रखा । इन्होंने शत्रु की शक्ति का और हलचलों का पता लगाया । ये सुल्तान के पक्ष में मंगोलो के मार्ग में अनेकानेक अफवाहें भी उड़ा देते थे । इससे मंगोलों के विरूद्ध अलाउद्दीन की सफलता प्राप्त करने में बड़ी सहायता प्राप्त हुई ।[3]

अलाउद्दीन ने मंगोलों के प्रति नृशंसता और बर्बर दमन की तथा प्रति हिंसा की नीति अपनाई । युद्ध में बन्दी मंगोलों को उसने निर्ममतापूर्वक मौत के घाट उतार दिया । उसने उनके सिरों को कटवाकर मीनार बनवा दी ।[4]

1- बरनी, जियाउद्दीनः तारीख-ए-फीरोजशाही, पृ.-302-3,
श्रीवास्तव, ए0 एल0: दिल्ली सल्तनत, पृ.-305 ,
2- लाल, के0 एस0: खलजी वंश काइतिहास, पृ.-70,
3- लाल, के0 एस0: खलजी वंश का इतिहास, पृ.-163,
4- बरनी, जियाउद्दीनः तारीख-ए-फीरोजशाही, अनु. रिजवी, खलजी कालीन भारत, पृ.-89,

उसने जफर खाँ, उलुग खाँ, गाजी मलिक, मलिक नायक, मलिक काफूर आदि सेनापतियों को भी मंगोलों के प्रति ऐसा ही निर्गम दमन और नृशंसता की नीति अपनाने के आदेश दे दिये थे। अलाउद्दीन और उसके सेनापतियों के भीषण नरसंहार से मंगोल अत्यधिक आतंकित हो गये थे।[1] जब मंगोलों के घोड़े पानी नहीं पीते थे, तब वे कहते थे "क्या तूने जफर खाँ का मुह देख लिया।"

पर उपर्युक्त सुरक्षा व्यवस्था के बावजूद मंगोलों की समस्या का अलाउद्दीन संतोष जनक हल न निकाल सका था। बार-बार परास्त होने पर भी मंगोलों ने अपने आक्रमण बन्द करने की अपेक्षा उन्हें बनाये रखा और वे भारत पर सैनिक अभियान करते रहे। निःसन्देह अलाउद्दीन ने पंजाब पर मंगोलों के पैर नहीं जमने दिये और उन्हें सिन्धु नदी के पार भगा दिया। परन्तु अलाउद्दीन की सुरक्षा नीति इतनी दुर्बल थी कि मंगोल मध्य एशिया से कूच करते हुए दिल्ली पर दो बार चढ़ आये। वे राजस्था में नागौर तक प्रविष्ट हो गये तथा दिल्ली को अत्यन्त ही संकटापन्न स्थिति में ला दिया। अतः हमें मंगोलों के पराजय एवं भारत में पुनः न आने का कारण मंगोलों के इतिहास में ही प्राप्त होता।[2] अपने प्रारम्भिक उत्कर्ष के समय मंगोलों ने अपने सम्मुख विश्व विजय का उद्देश्य रखा था और उनमें विशाल मंगोल साम्राज्य स्थापित करने की बड़ी महत्वाकांक्षा थी। विश्व विजेता व विश्व शक्ति होने की यह महत्वाकांक्षा इतनी अधिक प्रबल हो गयी थी कि वे शत्रुओं का डटकर सामना करते थे। भारत पर होने वाले मंगोल आक्रमण मध्य एशिया में ट्रांस आक्सियाना व फारस के मंगोल शासकों अथवा उनके सेनापतियों ने किये थे। परन्तु धीरे-धीरे वे मध्य एशिया की गन्दी दूषित राजनीति में इतने उलझ गये थे कि उन्हें भारतीय प्रदेशों को सम्पूर्ण विजयकर अपने राज्य में सम्मिलित करने का अवसर ही नहीं मिला।[3]

1- बरनी, जियाउद्दीन: तारीख-ए-फीरोजशाही, अनु. रिजवी, खलजीकालीन, भारत, पृ.-89,
लाल, के0एस0: खलजी वंश का इतिहास, पृ.-146-147,

2- लाल, के0एस0: खलजी वंश का इतिहास, पृ.-147,

3- अमीर खुसरो: खजाइनुल फुतूह, हबीब, कैम्पेन्स ऑफ अलाउद्दीन खिल्जी, पृ.-25,

साथ ही चंगेज खाँ की मृत्यु के कुछ वर्षों बाद ही मध्य एशियामें मंगोलों में गृह युद्ध छिड़ गया था, मंगोलों की विभिन्न शाखाओं में परास्परिक युत्र होने लगे तथा मध्य एशिया की समस्याएँ सुलझाने में अधिक व्यस्त रहने लगे । प्रो० हबीब के कथनानुसार मंगोलों के पारस्परिक द्वेष और विनाशकारी युद्धों ने दिल्ली सल्तनत की रक्षा की जो मंगोलों के संयुक्त आक्रमण के सामने न ठहर सकती थी ।[1]

धीरे-धीरे मंगोलों के सैनिक स्तर का ह्रास हो गया था । वे स्त्री, बच्चों और वृद्धों सहित रण अभियान करते थे । ऐसी दशा में उन्हें युद्ध सामग्री, खाद्यान्न जुटाने, सैनिक शिविर लगाने, उखाड़ने आदि में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था और मंगोल स्त्री व बच्चे समस्या बन जाते थे । इससे मंगोलों की सैनिक शक्ति बहुत अधिक प्रभावित हुई और उनकी सैनिक कुशलता व दक्षता कम हो गई थी ।[2] इसके अतिरिक्त अनेक साहसिक, विशेषतः अफगान और खोकर आदि लूट के लोभ के कारण आक्रान्ताओं के साथ हो लेते थे । वे केवल अपने तुरन्त के लाभ में ही रूचि रखते थे । साथ ही भारत पर आक्रमण करने वाली मंगोल सेना की संख्या भी अतिशयोक्तिपूर्ण बतायी गयी हैं ।[3]

मंगोल सैनिकों में धीरे-धीरे सामरिक गुण कम होने लगे थे । उनमें पहिले जैसी प्रतिभा, रणकौशल, शौर्य, साहस, वीरता, फुर्ती, गतिशीलता, धैर्य और सहनशीलता नहीं रही थी । इससे उनकी सैनिक शक्ति निर्जीव, अवलम्बरहित तथा निष्प्रभ बन गयी थी । उनमें परिश्रमशीलता, धीरज का अभाव हो गया था । 1300 ई. से 1303 ई. में दिल्ली के दो घेरों के समय अलाउद्दीन ने उनका धैर्य समाप्त कर दिया और वे एक साम्राज्य की विजय के लिए आवश्यक कोई प्रबल युद्ध लड़े बिना ही लौट गए । इस तरह उनकी एक प्रमुख सैन्य प्रतिभा का ह्रास हो चुका था ।[4]

1- खुसरो, अमीर: खजाइनुलफुतूह, हबीब, कैम्पेन्स आफ अलाउद्दीन खिलजी, पृ.-25

2- लाल, के०एस०: खलजी वंश का इतिहास, पृ.-148,

3- लाल, के०एस०: खलजी वंश का इतिहास, पृ.-148,

4- लाल, के०एस०: खलजी वंश का इतिहास, पृ.-148,

मंगोल शासक दावा खाँ दीर्घकाल तक मंगोलों को भारत पर आक्रमण करने के लिए प्रेरित करता रहा । क्योंकि वह भारत में मंगोल साम्राज्य स्थापित करने का महत्वाकांक्षी था । परन्तु उसके देहावसान के बाद मंगोलों की शक्ति मध्य एशिया में धीरे-धीरे क्षीर्ण हो गयी । उसके उत्तराधिकारी इतने प्रबल और शक्ति शाली नहीं थे कि वे उसकी साम्राज्यवादी व विस्तारवादी नीति को कार्यान्वित करते । फलतः मध्य एशिया की राजनीति में अनेक समस्याओं का उत्कर्ष हुआ और मंगोल साम्राज्य में अस्तव्यस्तता व्याप्त हो गई । इससे मंगोल अपनी सम्पूर्ण राजनैतिक और सैनिक शक्ति सहित भारत पर आक्रमण करने में असमर्थ रहे । धीरे-धीरे मंगोल मध्य एशिया और फारस की राजनीति में इतना उलझ गये कि वे भारत पर आक्रमण करने की नीति के प्रति उपेक्षा की दृष्टि से देखने लगे और उन्हें आक्रमण करने के अवसर भी कम मिलने लगे ।[1]

किन्तु मंगोलों की पराजय के लिए हम जितना उनकी तत्कालीन राजनीतिक परिस्थिति को उत्तरदायी मानते हैं उससे कम श्रेय अलाउद्दीन को नहीं दिया जा सकता है : एक कुशल सैनिक और राजनीतिज्ञ के समान अलाउद्दीन ने यह अनुभव कर लिया कि जब तक वह मंगोलों के आधार स्थलों पर ही चोट नहीं करेगा, वह उनकी घुसपैठों को पूर्णतः रोकने में सफल नहीं हो सकेगा । इसलिए उसने सुरक्षा की सर्वोत्तम नीति के रूप में आक्रमण की नीति अपनायी और जब उसने स्थिति अनुकूल देखी, उसने काबुल, गजनी और कन्दहार जैसे शत्रु के आधार स्थलों पर आक्रमण करने के लिए पर्वत के दर्रों के पार अपनी सेनाएँ भेजी । इस उपाय ने मंगोलों को पूर्णतः अप्रभावी कर दिया ।[2]

1- लाल, के०एस०: खल्जी वंश का इतिहास पृ.-148,

2- लाल, के०एस०: खल्जी वंश का इतिहास पृ.-148,

अन्ततः मंगोलों की पराजय का मुख्य कारण[1] यह था कि मंगोल एक ऐसे शासक के विरूद्ध लड़ रहे थे जो स्वयं भी कुशल युद्धज्ञाता एवं रणनीति का मर्मज्ञ था । अलाउद्दीन का धैर्य, संकल्प और सैन्य कौशल और उसका साहस तथा लगन, मलिक अलाउलमुल्क जिसने उसे कुतलुग ख्वाजा से युद्ध करने से विमुख करने का प्रयत्न किया था, के साथ उसकी बातों से स्पष्ट प्रकट होते हैं । अलाउद्दीन ने विदेशी आक्रमणों के विरूद्ध देश की रक्षा करना अपना अनिवार्य कर्त्तव्य समझा और उसने उसकी रक्षा अपने अधीन समग्र साधनों से की । उसने अनेक सुधार किए, एक विशाल सेना संगठित की और दृढ़ निश्चय के साथ मंगोल आक्रमणों को तब तक पीछे ढकेला जब तक वे पूर्णतः समाप्त नहीं हो गए ।[2] डॉ0 अवध बिहारी पाण्डेय[3] ने लिखा है कि मंगोलों की पराजय का एक कारण यह भी था कि अलाउद्दीन का भाग्य सूर्य उसके पक्ष में था और इसीलिए अनेक संकटों के समय कुछ न कुछ ऐसी बात हो जाती थी जो उसकी सफलता में सहायक होती थी ।

कुतबुद्दीन मुबारकशाह

14 अप्रैल 1316ई0को (20 मुहर्रम 710 हि0)[4] को 17 या 18 वर्ष की अल्प आयु में मुबारक शाह कुतबुद्दीन मुबारक शाह की उपाधि से दिल्ली की गद्दी पर बैठा ।[5] इसके सम्पूर्ण शासन काल में गाजी खान तुगलक दिपालपुर मुख्यालय के साथ लाहौर और मुल्तान का गवर्नर बना रहा । इस प्रकार एक योग्य गवर्नर के हाथ उत्तरी-पश्चिमी सीमा होने के कारण स्थिति संतोष जनक और शांत रही।

1- प्रो0 हबीब इसे मुख्य कारण नहीं मानते, वे मुख्य कारण के रूप में मंगोलों की मध्य एशिया में व्यस्तता को ही मानते है । कैम्पेन्स आफ अलाउद्दीन खिल्जी, पृ.-25,

2- लाल,के0एस0: खल्जी वंश का इतिहास पृ.-148,

3- डॉ0 अवध बिहारी पाण्डेय: पूर्व मध्य कालीन भारत,पृ.-168-69,

4- लाल, के0 एस0: खल्जी वंश का इतिहास, पृ.-285,

5- लाल, के0एस0: खल्जी वंश का इतिहास, पृ.-285,
श्रीवास्तव, ए0एल0: दिल्ली सल्तनत, पृ.-171,

किंतु मुबारकशाह का शासन काल लम्बे समय तक न चल सका, क्योंकि उसने अपने को विलासिता से सम्बद्ध कर लिया था । वास्तव में वह जन्मजात विकृत यौन का शिकार था, वह समलिंगकामी और इतरलिंग कामी दोनों था ।[1] डॉ॰ ईश्वरी प्रसाद के शब्दों में," मनुष्य को चारित्रक पतन की चरम सीमापर पहुँचा देने वाले घृणित आचरण उसके दैनिक जीवन में प्रमुख स्थान पाने लगे । बहुधा वह स्त्रियों की वेशभूषा धारण कर तथाशरीर को चमक दमक वाले गहनों से सजाकर वेश्याओं के साथ नगर में निकल पड़ता ।[2] इस प्रकार राजकार्य पर सरदारों काप्रभाव बढ़ता गया । सर्वाधिक प्रभाव खुसरों खाँ का बढ़ा और वह सुल्तान की हत्या कर गद्दी हड़पने का षडयंन्त्र रचने लगा । तरह-तरह के बहाने बनाकर उसने सुल्तान के चारों ओर अपने विश्वसनीय एवं सजातीय लोगों को नियुक्त करवा दिया । काजी जियाउद्दीन ने सुल्तान को खुसरों की ओर से सावधान किया, पर उसने अपने वृद्ध शिक्षक के उपदेश पर कोई ध्यान न दिया । खुसरों का षडयन्त्र पूरा हुआ और 26 अप्रैल 1320ई॰की रात्रि को उसका बध कर दिया गया ।[3]

नासिरूद्दीन खुसरोशाह

खुसरोशाह हिन्दू धर्म से परिवर्तित[4] मुसलमान था । इसे गुजराती हिंदू सैनिकों का पूरा समर्थन प्राप्त था । गद्दी पर बैठने के पश्चात उसने शाही हरम और अमीरों तथा सरदारों की स्वामिभक्ति पानी चाही । खुसरोंशाह ने हिन्दू प्रभुत्व की स्थापना करनी चाही । अतः उसने अपने सजातीयों को ऊँचे पद दिए ।[5]

1- हबीब निजामी: दिल्ली सुल्तनत, पृ॰-357,
2- डॉ॰ ईश्वरी प्रसादः मध्य कालीन भारत,पृ॰-249-50,
3- फरिश्ता:तारीखे फरिश्ता, ब्रिग्स, पृ॰-395,
4- बरनी तारीखे फीरोजशाहीमें उसे नीचकुलोत्पन्न एवं इसी आशय के कई शब्दों का प्रयोग करता है ।
5- बरनी:तारीखे फीरोजशाही, पृ॰-411,
लाल, के०एस०: खल्जी वंश का इतिहास, पृ॰-311,

इस्लाम के प्रति घृणापूर्ण व्यवहार किया । बरनी कहता है कि महल के भीतर मूर्तिपूजा आरम्भ कर दी गई । अतः स्वभावतः मुस्लिम राज्य में खुसरों के विरोधियों की संख्या बढ़ने लगी । तुर्क अमीरों और भारतीय मुसलमानों का लम्बे समय से चला आ रहा संघर्ष उग्र हो गया । अलाई अमीरों को लम्बे समय तक नियन्त्रण में रखना असंभव था, क्योंकि वे सभी कालीन जाति के थे और विजेता खुसरों तथा बरवारियों के नीच कुलोत्पन्न होने के कारण उनसे घृणा करते थे ।[1] गाजी मलिक ने, जो दीपालपुर का मुक्ता और सीमा रक्षक था, इस स्थिति का लाभ उठाना चाहा । किंतु वह खुला विद्रोह नहीं कर सकता था, जब तक उसका पुत्र मलिक जूना राजधानी में था । मलिक जूना अपने पिता को दिल्ली की स्थिति के सम्बन्ध में लिखता रहता था । गाजी तुगलक के दूत ने जूना को संदेश दिया कि वह उच्छ के मुक्ता बहराम आएबा के पुत्र सहित शीघ्रता शीघ्र दीपालपुर चला आए । बरनी के अनुसार एक दिन दोपहर के समय वह और आएबा का पुत्र कुछ घोड़ों दासों और नौकरों सहित दीपालपुर की ओर निकल भागे । खुसरोंशाह ने पीछा करने का आदेश दिया पर वे सुरक्षित रूप से सिरसुती (आधुनिक सरसा) पहुँच गये जहाँ पर गाजी मलिक की सेना ने उनका स्वागत किया ।[2]

गाजी मलिक ने अपने मित्रों की संख्या बढ़ाने का हर संभव प्रयास किया। उसने विभिन्न प्रान्तों के प्रान्तपतियों को इस आग्रह के साथ पत्र भेजे कि वे खुसरों को उखाड़ फेंकने में उसकी सहायता करें क्यों कि वह नास्तिक है और अपने संरक्षक के प्रति कृतघ्न होने का अपराधी है । अब धर्म के लिए प्रतिशोध का नारा, जो

1- निगम एस0वी0पी0: नोबिल्टी आण्डर द सुल्तान्स ऑफ डेल्ही, 1206-1308 ई० पृ0-72,

2- लाल, के0 एस0: खल्जी वंश का इतिहास पृ.-314,
हबीब निजामी: दिल्ली सुल्तनत, पृ.-372,

बहुत साधारण किन्तु मुस्लिमों के इतिहास में बहुत प्रभावकारी था, प्रारम्भ किया गया ।[1] दीपालपुर का अमीर अली अलकौस और उच्छ का मुक्ता रहराम आएवा गाजी मलिक के साथ हो किए । किंतु मुल्तान के मुक्ता मलिक मगलती ने उसका साथ देने से इंकार कर दिया । कूटनीतिज्ञ गाजी ने मुल्तान की जनता को अपने गवर्नर के विरूद्ध विद्रोह करने के लिए उकसाया और मगलती को उसके आदमियों ने ही मार डाला ।[2] सिविस्तान का अमीर मुहम्मदशाह अपने ही अमीरों द्वारा बन्दी बना लिया गया था, किन्तु गाजी मलिक का पत्र उसकी मुक्ति का साधन बन गया । वह मुक्त होकर गाजीमलिक के हित के लिए लग गया ।[3] इसामी के अनुसार गुलचन्दर एवं सहजशय नामक खोखर सरदार भी तुगलकों के झण्डे के नीचे आ गये ।[4]

अब गाजी मलिक सिंहासन के लिए अंतिम युद्ध करने को तैयार हो गया । दिल्ली की घटनाओं ने भी एक नया मोड़ ले लिया । यद्यपि खुसरो ने दक्कन में अनेक युद्ध लड़े थे तो भी वह अनुभवी योद्धा गाजी मलिक की तुलना में कुछ नहीं था, जिसने मंगोल आक्रान्ताओं के हृदयों में आतंक पैदा कर दिया था । खुसरो शाह ने सूफी खाँ को अपनी सेना का नेतृत्व सौंपा । खुसरो शाह की 40,000 सैनिकों की सेना उसके भाई खान-ए-खाना के अन्तर्गत गाजी मलिक को आगे बढ़ने से रोकने के लिए बढ़ी । यह सेना सिरसुती की ओर बढ़ी,[5] किंतु

1- त्रिपाठी, आर॰पी॰ : सम आस्पेक्ट्स ऑफ मुस्लिम एडमिनिस्ट्रेशन- पृ॰-56,

2- अमीर खुसरो: तुगलकनामा, पृ॰-63, रिजवी: खलजी कालीन भारत पृ॰-187,

3- खुसरो,अमीर: तुगलकनामा, अनु॰ रिजवी,खलजी कालीन भारत,पृ. 187,

4- इसामी: फुतूहुस्सलातीन,पृ॰-369-375,रिजवी:खल्जी कालीन भारत, पृ॰-211,

5- फरिश्ता: तारीख-ए-फरिश्ता, भाग-1, ब्रिग्स, पृ॰-398,

उसे अधिकृत करने में असफल रही । इसके उपरान्त के गाजी मलिक का सामना करने के लिए देवपालपुर की ओर बढ़े । सरसावा का दुर्ग अधिकृत कर लिया गया । तदुपरान्त दोनों सेनाएं सिरसुती और देवपालपुर के मध्य दमाली नामक ग्राम में युद्ध के लिए आमने सामने खड़ी हो गईं । छिटपुट संघर्ष में ही शाही सेना के पैर उखड़ गये । इस भयंकर सूचना ने सुल्तान का साहस तोड़ दिया । इधर गाजी मलिक जिसे लूट का बहुत अधिक धन प्राप्त हुआ था और जिसकी सेना में उत्तरी पश्चिमी सीमा के वीर योद्धा थे अपने को खुसरों से अंतिम युद्ध के लिए तैयार किया ।[1] उसकी सेना का दाहिना पार्श्व उसके भान्जे बहाउद्दीन के अन्तर्गत था और इस युवक सेनानायक की सहायतार्थ उच्छ के बहराम ऐबा को नियुक्त किया गया था । वाम पार्श्व का नेतृत्व मलिक जूना कर रहा था । और उसके साथ दो अन्य प्रतिष्ठित योद्धा शिहाब गौरी और मीर शादी कर दिए गए थे । मध्य भाग का नेतृत्व स्वयं गाजी मलिक ने संभाला ।[2] इस प्रकार गाजी मलिक सेना को सुसज्जित एवं सुनियोजित कर तेजी से दिल्ली की ओर बढ़ा और इन्दरपत आ पहुँचा और यही रजिया के मकबरे के निकट अपनी मोर्चेबंदी की ।[3]

इधर खुसरो खाँ भी अंतिम युद्ध के लिए तैयार हो गया और उसके सैनिकों में अत्यधिक धन बाँटा, जिससे उनमें असन्तोष न फैल सके । किन्तु दिल्ली की शाही सेना गाजी मलिक से भयभीत हो चुकी थी अतः बहुतों ने संघर्ष का विचार त्याग दिया । वस्तुतः वास्तविकता भी यही थी कि दिल्ली की हतोत्साहित सेना उन शक्ति शाली सैनिकों के सामने कुछ नहीं थी, जो गाजी मलिक के साथ थे । ईश्वरी प्रसाद के अनुसार गाजी मलिक के सिपाहियों के लिए यह युद्ध जिहाद से कम नहीं था ।[4] फिरभी खुसरोशाह ने युद्ध का निर्णय

1- लाल, के०एस०: खल्जी वंश का इतिहास, पृ.-317,
2- इसामी :फुतुहुस्सलातीन: रिजवी, खल्जी कालीन भारत, पृ.-211,
3- लाल, के०एस०: खल्जी वंश का इतिहास, पृ.-317,
4- ईश्वरी प्रसाद: करौना टर्कस,प्पृ.- 13,

लिया और यह निश्चित किया कि अन्त तक युद्ध जारी रहेगा, या विजय होगी या मौत । सुल्तान ने अपने अमीरों और अनुचरों के साथ सीरी की ओर प्रस्थान किया और हौज-ए-अलाई के समीप पड़ाव डाला । इसामी[1] के अनुसार सुल्तान, खान-ए-खाना और चित्तौड़ का राजा[2] मध्य में हो गए । सुम्बल, जिसे हातिम खाँ की पदवी और अमीर-ए-हाजिब का पद मिला था, दाहिने पार्श्व का नेतृत्व कर रहा था और उसकी सहायता के लिए सूफी खाँ था । वाम पार्श्व के नायक शायस्ता खाँ, तलबगा नागोरी और रन्धोल थे ।[3] इस प्रकार अपनी सेनाएं संगठित करके नासिरूद्दीन एक ऐसे सामरिक महत्त्व के स्थान पर जम गया जो इन्दरपत से, जहाँगाजी ने अपने शिविर लगाएं थे, अधिक दूर नहीं था । सुल्तान की सेना के ठीक पीछे दिल्ली का विशाल दुर्ग था जिसमें रसद एवं अस्त्र-शस्त्र के भण्डार थे । किंतु इसी बीच ऐनुलमुल्क ने विश्वासघात किया, जिससे एक बार पुनः सुल्तान का हृदय निराशा में घिर गया ।

अगले दिन प्रातः ही खुसरो खाँ ने गाजीमलिक शिविर पर आक्रमण किया । गाजी मलिक अभी युद्ध के लिए तैयार नहीं था, फिर भी विवशतः उसे युद्ध के लिए तैयार होना पड़ा ।[4] भीषण युद्ध प्रारम्भ हुआ । गाजी मलिक की सेना बिखर गई ।[5] पर इस संघर्ष में सुल्तान के एक अभिन्न समर्थक मलिक तलबगा नागोरी खेत रहा, और किरत की मार का पुत्र शायस्ता खाँ युद्ध भूमि से भाग खड़ा हुआ । इस क्षति के बावजूद सुल्तान युद्ध के लिए डटा रहा । दूसरी ओर

1- इसामी: फुतूहुस्सलातीन; रिजवी, खल्जी कालीन भारत, पृ.-211,

2- इसामी चित्तौड़ के राजा का नाम नहीं लिखता पर के०एस० लाल- इस राजा का नाम मालदेव लिखता है:
लाल, के०एस०: खल्जी वंश का इतिहास, पृ.-317,

3- इसामी: फुतूहुस्सलातीन, रिजवी, खल्जी कालीन भारत, पृ.-211,

4- हबीब निजामी: दिल्ली सुल्तनत, पृ.-376,

5- इसामी: फुतूहुस्सलातीन, रिजवी, खल्जी कालीन भारत पृ.-212,

गाजी मलिक भी अपने सैनिकों को पूरी शक्ति लगाकर लड़ने के लिए प्रेरित करता रहा । इस प्रोत्साहन का परिणाम गाजी मलिक के लिए बहुत ही लाभप्रद रहा। इस आक्रमण की तीव्रता ने खुसरो की सेना को छिन्न-भिन्न कर दिया । खुसरो शाहभी रणक्षेत्र से भाग खड़ा हुआ । अपने पुराने संरक्षक मलिक शादी के यहाँ वह रात्रिभर छिपा रहा, पर सुबह होते ही पकड़ा गया और उसका सिर धड़ से पृथक कर दिया गया ।[1] इब्न बतूता बरनी एव खुसरो से थोड़ा अलग वर्णन करता है । वह लिखता है कि खुसरो ने सफलता पूर्वक स्वयं को मलिक शादी के उद्यान में छुपा लिया, किन्तु जब वह क्षुधा की पीड़ा न सहन कर सका तो उसने कुछ भोजन लाने के लिए माली को अपनी अंगूठी दी । अंगूठी ने अपने स्वामी का भेद खोल दिया और वह पकड़ा गया । गाजी मलिक ने पहले खुसरो से दया पूर्वक वर्ताव किया, किन्तु बाद में उसने उसका सिर उसी स्थान पर काटे जाने की आज्ञा दे दी जहाँ उसने कुतुबुद्दीन की हत्या करायी थी । इतना ही नहीं उसका शव महल के प्रांगण में उसी प्रकार फेंक दिए जाने का आदेश दिया, जिस प्रकार उसने मुबारकशाह का शव फेंका था । अमीर खुसरो[2] नासिरुद्दीन की हत्या की तिथि 6 सितम्बर सन् 1320ई॰। शाबान, 720 हि0। लिखता है । इस प्रकार दिल्ली का यह सुल्तान सिंहासन की रक्षा करता हुआ मारा जाने के कारण सल्तनत् के इतिहास में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। चूँकि उत्तरी-पश्चिमीसीमा पर कुतबुद्दीन मुबारक शाह व खुसरो शाह के समय कोई वाह्य आक्रमण नहीं हुए इसलिए गाजी मलिक की आक्रामक नीति के कारण यह प्रदेश सुरक्षित रहे ।

1- खुसरो, अमीर: तुगलकनामा, रिजवी, खलजी कालीन भारत, पृ.-192
बरनी: तारीख-ए-फीरोजशाही, रिजवी, खलजी कालीन भारत, पृ. 147,
लाल, के0एस0: खलजी वंश का इतिहास, पृ.-319,

2- खुसरो, अमीर: तुगलकनामा: अनु. रिजवी, खलजी कालीन भारत, पृ. 192,
लाल, के0एस0: खलजी वंश का इतिहास, पृ.-319,

अध्याय - 5

तुगलक सुल्तानो की उत्तरी - पश्चिमी सीमा नीति

अध्याय-5

तुगलक सुल्तानों की उत्तरी-पश्चिमी सीमा नीति

(1320-1414ई.)

खुसरो खाँ का बध करके गाजी मलिक 9 सितम्बर 1320ई.को[1] गयासुद्दीन तुगलक शाह की उपाधि से दिल्ली सल्तनत् की गद्दी पर बैठा, और उसने तुगलक साम्राज्य की नीव डाली ।[2] यह साम्राज्य 1414 ई. में सैय्यद वंश की स्थापना तक चलता रहा । इस वंश में साम्राज्य की सीमा दक्षिण तक विस्तृत हो गई थी जिससे विद्रोहों का सिलसिला प्रारम्भ हो गया । उत्तरी-पश्चिमी सीमा प्रान्त अत्यधिक विस्फोटक हो गया । यह विद्रोहियों की शरण स्थली बन गया । वाह्य आक्रमण भी छिटपुट रूप में होते रहे । 1398 ई. के तैमूर आक्रमण ने न केवल तुगलक साम्राज्य को बल्कि सल्तनत को भी बुरी तरह लड़खड़ा दिया ।

विद्वानों ने तुगलक वंश की उत्पत्ति के विषय में विभिन्न मत प्रकट किये हैं । इनकी उत्पत्ति के विषय में तीन मत मिलते हैं- प्रथम तुगलक मंगोल थे, द्वितीय तुर्क थे और तृतीय वे मिश्रित जाति के थे । तुगलक मंगोल थे, इस मत के प्रवर्त्तक मिर्जा हैदर हैं ।[3] इन्होंने अपने ग्रंथ "तारीख-ए-रशदी" में तुगलकों को चगताई मंगोल बताया है । उन्होंने यह स्पष्ट किया कि मंगोल दो प्रमुख श्रेणियों में विभक्त थे, प्रथम मंगोल, द्वितीय चगताई मंगोल । दोनों में परस्पर वैमनस्य था और संघर्ष चलता रहता था । दोनों ही एक दूसरे को हेय समझते थे, इसलिए घृणा भी करते थे । इसी भावना के कारण मंगोल श्रेणी के लोग चगताई मंगोलों को "करावना" कहते थे और चगताई मंगोल अन्य मंगोलों को "जाटव" कहते थे । "करावना" और "करौना" में समता है । "करावना" शब्द ही परिवर्तित होकर करौना बन गया । तुगलक वंश जिस कबीले से था, उसका नाम करौना था । इसलिए तुगलक "करावना,"

1- अमीर खुसरो: तुगलकनामा,पृ.-132-134,अनु. रिजवी-खल्जी कालीन भारत, पृ. 192,

2- हबीब-निजामी: दिल्ली सल्तनत् पृ.-400,
ईश्वरी प्रसाद: हिस्ट्री आफ द करौना टर्कस इन इण्डिया,पृ.-17-18,

3- मिर्जा हैदर: तारीख-ए-रशीदी,पृ.-76

"करौना" व चगताई मंगोल जाति के हैं ।[1] मार्कोपोलो भी तुगलकों को करौना जाति का मानता है ।[2]

परन्तु प्रश्न यह उठता है कि यदि तुगलक मंगोल थे तो गयासुद्दीन अपने को मंगोल विजेता होने का गर्व क्यों करता है । इन्हीं विजयों के परिणाम स्वरूप उसे "अल-मलिक-अल-गाजी" की उपाधि से विभूषित किया गया था ।[3] यदि वह स्वयं मंगोल होता तो, मंगोलों के विरूद्ध नहीं अपितु उनके पक्ष में युद्ध करता । उस युग में युद्ध में अनेक मंगोल स्त्रिया, बच्चे और पुरूष बन्दी बना लिये जाते थे और संभव है कि इनमें से कुछ तुगलकों के परिवार करौना कबीले में सम्मिलित हो गये हों और करौना व मंगोलों में रक्त का सम्मिश्रण हो गया हो ।

अफ्रीकी यात्री इब्न बतूता का मत है कि तुगलक करौना तुर्क जाति के थे ।[4] शेख रूकनुद्दीन मुल्तानी ने भी, जो सुहरावर्दी संत थे तुगलकों को तुर्क माना है ।[5] यह शेख तुगलक सुल्तान के अत्यधिक निकट रहता था अतः उसके सानिध्य से उसका कथन अधिक प्रामाणिक प्रतीत होता है । फरिश्ता[6] का भी कथन है कि गयासुद्दीन तुगलक का पिता तुर्क था ।

1- मिर्जा हैदर: तारीख-ए-रशीदी, पृ०-77

2- यूल: मार्कोपोलो, पृ०-98-99,

3- निज्जर, बी०एस: पंजाब अण्डर द सुल्तान्स,पृ०-54,

4- इब्नबतूता: रेहला,भाग-2,पृ०-31,

5- हबीब-निजामी: दिल्ली सुल्तनत,पृ०-400,

6- फरिश्ता:तारीख-ए-फरिश्ता-भाग-1,अनु,ब्रिग्स-पृ०-130,

अधिकाधिक विद्वान तुगलकों को मिश्रित जाति का मानते हैं । डॉ॰ ईश्वरी प्रसाद[1] "ए हिस्ट्री ऑफ करौना टर्क्स" में इसी मत की पुष्टि करते हैं । उनके अनुसार इस समय के निवासी विदेशी तुर्क सैनिक और अमीर भारतीय स्त्रियों से विवाह करते थे । गयासुद्दीन के भाई रजब ने भी जो सुल्तान फिरोजशाह का पिता था, पंजाब की एक भाटी राजपूत स्त्री से विवाह किया था । उस समय अनेक विदेशी तुर्क जाति के सैनिक जो भारत में युद्ध करने, धन प्राप्त करने और इस्लाम का प्रचार करने के लिए आये थे, कालांतर में सीमान्त क्षेत्र और पंजाब में स्थायी रूप से बस गये और दिल्ली सुल्तान की सेनाओं में पदाधिकारी बन गये । इनमें से कुछ तुर्क "करौना" कबीले के थे । इन्होंने भारतीय जाटों एवं राजपूतों से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर लिए थे । इससे करौना तुर्क कबीले की सन्तानें मिश्रित जाती की हो गई । इनमें तुर्की रक्त की प्रधानता थी संभव है कालान्तर में इन तुर्कों और मंगोलों में परस्पर वैवाहिक सम्बन्ध हो गये हों और मंगोल रक्त काभी उनमें सम्मिश्रण हो गया हो । एम्जिक[2] का मत है मत हैं कि "करौना" संस्कृत शब्द "कर्ण" से सम्बन्धित है जिसका अर्थ मिश्रित जाति है और उस व्यक्ति के लिए प्रयुक्त होता है जिसका पिता क्षत्रिय और माता शुद्र होती है । फरिश्ता[3] के अनुसार गयासुद्दीन का पिता मलिक तुगलुक बल्बन का एक तुर्कदास था और उसकी माता स्थानीय जाट परिवार की स्त्री थी ।

फिर भी सुल्तान गयासुद्दीन का करौना होना अत्यधिक संदिग्ध है । जैसा कि अमीर खुसरो के "तुगलकनामा"[4] नामक, समकालीन आधार ग्रंथ में उल्लिखित है, राज्यारोहण के पूर्व अपने वक्तव्य में गयासुद्दीन स्पष्ट स्वीकार करता है कि जैसा कि सभी श्रोतागण जानते हैं कि वह आरम्भ में एक साधारण व्यक्ति था । यदि सुल्तान ने ऐसा कुछ न कहा होता तो कवि यह सत्य उसके भाषण का आधार बनाने

1- प्रसाद, ईश्वरी : ए हिस्ट्री ऑफ करौना टर्क्स, पृ॰-1,

2- एम्जिक: "द राइज ऑफ अरबर्स इब्न बतूता टुर्ये इंडियन एण्ड चाइना," पृ. 97

3- फरिश्ता: तारीख-ए-फरिश्ता, अनु॰ ब्रिग्स भाग-1, पृ.-130,

4- खुसरो, अमीर: तुगलुकनामा, अनु॰ रिजवी: खल्जी कालीन भारत-पृ.-194,

का साहस नहीं कर सकता था । इन विभिन्न मतों को ध्यान में रखते हुए यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि, भारत, मध्येशिया तथा फ्रांस में "करौना" शब्द मिश्रित जाति के लिए अर्थात मंगोल या तुर्क पिताओं और अतुर्कमाताओं के वंशजों के लिए प्रयुक्त होता था ।

तुगलकनामा[1] के एक पद से स्पष्ट है कि तुग्लुक सुल्तान का व्यक्तिगत नाम था, जातीय नहीं । मुद्राशास्त्रीय तथा शिलालेखीय प्रमाण भी अमीर खुसरो के कथन की पुष्टि करते हैं । सुल्तान मुहम्मद स्वयं को तुगलुकशाह का पुत्र कहा करता था परन्तु फीरोजशाह तथा उसके उत्तराधिकारियों ने कभी तुगलुक उपनाम का प्रयोग नहीं किया । फिर भी यह नितान्त गलत होते हुए भी अधिक सुविधा जनक है कि सम्पूर्ण वंश को तुगलुक नाम दिया जाय ।[2]

गयासुद्दीन तुगलक- (1320-25)

गयासुद्दीन की जातीय उत्पत्ति की ही तरह उसका भारत आगमन भी विवादास्पद है । जो कुछ भी हो उसने अलाउद्दीन खिल्जी के समय रणथम्भौर दुर्ग के घेरे में अपूर्व वीरता व साहस का प्रदर्शन किया था ।[3] इन्ही गुणों के कारण वह सेना में भरती होने पर पदोन्नति करते -करते अलाउद्दीन के समय में उत्तरी-पश्चिमी सीमान्त क्षेत्र में दिपालपुर की सैनिक चौकी का संरक्षक बन गया । सीमारक्षक का पद जिस पर उसे नियुक्त किया गया था, साम्राज्य के अत्यन्त कठिन एवं सम्माननीय पदों में से एक था ।[4] गाजी मलिक ने मुल्तान और बाद में दिपालपुर के मुक्ता के

1- खुसरो, अमीर: तुगलुकनामा, अनु॰ रिजवी, खलजी कालीन भारत, पृ॰-138,
2- हबीब-निजामी: दिल्ली सुल्तनत, पृ॰-400
3- अमीर-खुसरो, तुगलुकनामा: अनु॰ रिजवी, खलजी कालीन भारत, पृ॰-192,
4- हबीब-निजामी: दिल्ली सुल्तनत, पृ॰-401,
श्रीवास्तव, ए०एल०: दिल्ली सल्तनत, पृ॰-179,

रूप में सल्तनत की प्रशंसनीय सेवाएँ की । उसने सफलतापूर्वक देश पर मंगोल आक्रमण रोके और सीमान्त नगरों में सेना को प्रभावशाली ढंग से बनाये रखा । इब्नबतूता[1] ने एक शिलालेख का जिक्र किया है जिसे उसने मुल्तान की जामा मस्जिद में देखा जिसमें तातारियों के विरूद्ध उसकी इक्कीस विजयों का उल्लेख था । इस विषय में विवाद है । संभवतः युद्धों की संख्याओं के विषय में इब्नबतूता की स्मरण शक्ति ने उसे धोखा दिया क्योंकि अमीर[2] खुसरो ने केवल अठारह ऐसी विजयों का उल्लेख किया है । बरनी[3] लिखता है कि गयासुद्दीन ने मुगलों के विरूद्ध बीस लड़ाइयाँ जीती । किसी भी इतिहासकार ने इन युद्धों की सूची नहीं दी है । परन्तु स्पष्टतः उनमें से कुछ निश्चय ही पश्चिमी सीमा की रक्षा के लिए भारतीय सीमाओं पर तैनात सैनिक तथा मंगोलों के बीच केवल साधारण लड़ाइयाँ ही रही होंगी ।[4] अलाउद्दीन के शासन के अंतिम समय में तो गाजी मलिक ने मंगोलों के राज्य में प्रवेश कर उसकी सेनाओं को परास्त किया ।[5] मुबारकशाह के समय भी पंजाब क्षेत्र की शासन व्यवस्था का भार गाजी मलिक को ही प्राप्त था ।

यद्यपि खुसरो खाँ के विरूद्ध आंदोलन का संगठन करने और उसे गद्दी से उतारने में गाजी मलिक की भूमिका महत्त्वपूर्ण रही, किन्तु उसने प्रारम्भ में ताज स्वीकार करने में अनिच्छा व्यक्त की ।[6] अफ्रीकी यात्री इब्नबतूता लिखता है कि पहले गाजी मलिक ताज पहनने का इच्छुक नहीं था और आएवा किशलू खाँ से कहा कि वह उसे स्वीकार करे । परन्तु उसने यह प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया और कहा

1- इब्नबतूता: रेहला, अनु॰ आगा मेंहदी हुसैन, कमेंट्री, पृ॰-29,
2- अमीर खुसरो: तुगलुकनामा, पृ॰-138, अनु॰ रिजवी, खलजी कालीन भारत- पृ॰-192,
3- बरनी, जियाउद्दीन: तारीखे फीरोजशाही, पृ॰-416, अनु॰ रिजवी, खलजी कालीन भारत, पृ॰-144,
4- हबीब-निजामी: दिल्ली सुल्तनत, पृ॰-401,
5- लाल, के0एस0: खल्जी वंश का इतिहास, पृ॰-148-49,
6- श्रीवास्तव, ए0एल0: दिल्ली सल्तनत, पृ॰-179,

कि, "यदि आप ताज धारण करना स्वीकार नहीं करेंगे तो हम आप के पुत्र को अपना सुल्तान बनाएगें ।" इस पर गयासुद्दीन ने तत्काल ही ताज धारण करना स्वीकार कर लिया ।[1] अमीर खुसरों कुछ भिन्न विवरण देता है । "अमीरों के अधिक आग्रह पर तुग्लुक ने उत्तर दिया कि, "मैं कोई बालक नहीं जो आप लोगों के कहने से राज्य के लोभ में पड़ जाऊँ । दूसरे यदि मैंने राज्य स्वीकार कर लिया तो लोग कहेंगे कि मैंने राज्य ही के लिए युद्ध किया था, जबकि मैंने केवल तीन बातों के लिए युद्ध किया[2] था कि §1§ मैं इस्लाम के लिए जिहाद करूँगा, §2§ मैं राज्य को इस तुच्छ हिन्दू §खुसरो खाँ§ से मुक्त करा दूँगा और उन शाहजादों को जो सिंहासन के योग्य होंगे सिंहासनारूढ़ कराऊँगा । §3§ जिन काफिरों ने शाही वंश का विनाश किया है, उन्हें दण्ड दूँगा । इस पर सरदारों ने कहा कि, "यदि तेरे अतिरिक्त कोई अन्य सिंहासनारूढ़ हुआ तो वह सर्वदा तुझसे भयभीत रहेगा और तेरा विरोध करता रहेगा ।" तुगलक यह बात सुनकर सोच में पड़ गया । वह इसी असमंजस में था कि उसे तीन चत्र दिखाई पड़े । उस समय उसे अपना स्वप्न याद आया और उसने सिंहासनारूढ़ होना स्वीकार कर लिया ।[3] ऐसा प्रतीत होता है कि तुग्लुक के लिए अब अधीनस्थ अधिकारी बने रहना असंभव हो गया था । अतः उसने सरदारों के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया ।[4] गाजी खान तुगलक 8 सितम्बर 1320[5] को गयासुद्दीन तुगलक शाह गाजी की उपाधि से गद्दी पर बैठा ।[6]

1- इब्नबतूता: रेहला, भाग-2, अनु॰ आगा मेंहदी हुसैन, कमेंट्री, पृ॰-30,

2- अमीर खुसरो: तुगलुकनामा, अनु॰ रिजवी, खल्जी कालीन भारत-पृ॰ 193

3- अमीर खुसरो: तुगलुकनामा, अनु॰ रिजवी, खल्जी कालीन भारत-पृ॰ 193

4- अमीर खुसरो: तुगलकनामा, अनु॰ रिजवी, खल्जी कालीन भारत:पृ॰ 193

5- प्रथम शाबान, 720 हि0 खुसरो, अमीर: तुगलकनामा, अनु॰ रिजवी, खलजी कालीन भारत, पृ॰-193,

6- गयासुद्दीन प्रथम दिल्ली सुल्तान था जिसने अपने नाम के साथ गाजी की उपाधि जोड़ी ।

निज्जर, बी0एस0: पंजाब अण्डर द सुल्तान्स, पृ॰-54,

समस्याएं:-

गयासुद्दीन को गद्दी पर बैठते ही अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ा । सिंध ने गुजरात, बंगाल एवं दक्षिण के राज्यों की भाँति स्वतन्त्रता घोषित कर दी और वार्षिक कर देना बन्द कर दिया । यहाँ के शासक अमर ने केन्द्र की अशांति का लाभ उठाते हुए थट्टा और निचले सिंध पर अधिकार कर लिया था । पंजाब की युद्धप्रिय खोकर जाति ने भी केन्द्र की अशांति का लाभ उठाया और उपद्रव आरम्भ कर दिया । दूसरी ओर मंगोलों के आक्रमण का भय भी था क्योंकि अलाउद्दीन के दुर्बल उत्तराधिकारियों के काल में पुनः प्रतिवर्ष वे सीमाक्षेत्र पर आक्रमण कर पंजाब में घुसने लगे थे ।[1]

गयासुद्दीन ने स्थिति को सुदृढ़ करने के अनेकप्रयास किए । सर्व प्रथम तो उसने खिलजी वंश के सम्बन्धियों एवं तुर्क सरदारों के साथ उदारता का व्यवहार किया और उन्हें ऊँचे पदों पर नियुक्त किया ।[2] इस प्रकार उसने सरदारों की ओर से अपनी स्थिति सुदृढ़ बना ली । उत्तरी-पश्चिमी सीमा को सुरक्षित रखने के लिए उसने बहराम आएबा को किश्लू खाँ की उपाधि देकर सिन्धु नदी के किनारे के सभी राज्यों का मुक्ता बना दिया ।[3] उसे "सुल्तान का भाई" कहलाए जाने का अद्वितीय सम्मान भी दिया । उत्तरी-पश्चिमी सीमा को सुदृढ़ करने के लिए यहाँ मजबूत किलों का निर्माण कराया तथा अलग से रच्छक सेना नियुक्त किया ।[4]

सुल्तान गयासुद्दीन तुगलकशाह को सैनिकों के विषय में, जिन पर राज्य व्यवस्था का आधार है, माता पिता से अधिक अनुकम्पा थी ।[5] उसने सिंहासना-

---

1- ईश्वरी प्रसाद, हिस्ट्री आफ द करौना टर्कस, पृ.-19,
2- बरनी: तारीखे फीरोजशाही, रिजवी: तुगलुक कालीन भारत भाग-1 पृ.-5-6,
3- बरनी, जियाउद्दीन:तारीख-ए-फीरोजशाही, पृ.-428, रिजवी: तुगलक कालीन भारत, भाग-1, पृ.-6,
4- फरिश्ता: तारीख-ए-फरिश्ता, अनु. ब्रिग्स, भाग-,1, पृ.-403,
5- बरनी:तारीख-ए-फीरोजशाही, अनु. रिजवी:तुगलक कालीन भारत, भाग-1, पृ.-16,

रूढ़ होते ही सैन्य सुधार प्रारम्भ कर दिया । उसने सिराजुल-मुल्क ख्वाजाहाजी को नायब अर्जे ममालिक नियुक्त किया और दीवाने अर्जे ममालिक का प्रबन्ध, व्यवस्था एवं उत्तरदायित्व उसको सौंपा । जिस प्रकार अलाई राज्यकाल[1] में हुलिये[2] के विषय में, जिस पर सेना की दृढ़ता आधारित है, धनुष-विद्या की परीक्षा, घोड़ों के दाग तथा मूल्य के सम्बन्ध में आदेश दिये गये थे, उसी प्रकार उसने भी आदेश दिये । उसने यह आदेश दिया कि जो सैनिक टालमटोल करे और सेना के साथ न जाय उसे कठोर दंड दिये जाँय । सैनिकों ने खुसरो खाँ से जो धन प्राप्त किया था, उसमें से एक साल के वेतन के बराबर उसने उनके वेतन से कटवा लिया । इससे अधिक जो लोगों को प्राप्त हो गया था उसके विषय में उसने आदेश दिया कि वह उनसे तुरन्त न वसूल किया जाय किंतु वह पंजिकाओं में पेशगी के रूप में लिख दिया जाय, और भविष्य में धीरे-धीरे उनके वेतनों से वसूल किया जाय जिससे सेना को हानि न पहुँचे ।[3] वह धन-सम्पत्ति जो लूट में प्राप्त हुई थी तथा वह धन सम्पत्ति जो सैन्य विभाग के अधिकारियों के पास रह गई थी और वितरित न हुई थी उसे वापस ले लेने का आदेश दे दिया ।

सुल्तान गयासुद्दीन तुगलकशाह ने अपने शासन काल के चार पाँच वर्षों में सेना को अपने सम्मुख नकद धन[4] प्रदान किया और वह सेना के वासिलात के विषय में बड़ी पूछ ताछ करता रहता था । वह उनके निश्चित वेतन में से कोई कमी न होने देता था । सेना को इस प्रकार ठीक कर लेने के उपरान्त वह उसे सर्वदा तैयार तथा सुव्यवस्थित रखता था ।[5] उसने अमीरों के वेतन तथा इनाम निश्चित करने में बड़े सन्तुलित रूप से कार्य किया और उसके राज्य में प्राचीन

1- बरनी: तारीख-ए-फीरोजशाही, रिजवी: खल्जी कालीन भारत, पृ.-87,
2- सैनिकों का पूर्ण विवरण,
3- बरनी, जियाउद्दीन: तारीख-ए-फीरोजशाही, रिजवी: तुगलुक कालीन भारत भाग-1, पृ.-14,
4- रिजवी ने नकद धन से तात्पर्य वेतन तथा इनाम आदि से लिया है, बरनी, जियाउद्दीन तारीख-ए-फीरोजशाही, रिजवी: तुगलुककालीन भारत भाग-1, पृ.-15,
5- बरनी: जियाद्दीन, तारीख-ए-फीरोजशाही, रिजवी: तुगलुक कालीन भारत-भाग-1, पृ.-15,

अमीर और भी संतुष्ट हो गये । नये अमीरों को शक्ति प्राप्त हो गई और वे वैभवशाली तथा धन-धान्य सम्पन्न हो गये । जो इनाम इदरार, वजीफे, गाँव तथा भूमि अलाई राज्यकाल में लोगों को प्रदान किये गये थे, उन्हें सुल्तान तुगलक शाह ने बिना किसी पूँछ ताछ एवं संकोच के स्थाई कर दिया ।[1] परन्तु जिनके विषय में यह ज्ञात हुआ कि वे बिना किसी अधिकार के प्रदान कर दी गई थी तथा पक्षपात एवं अनुचित दान के आधार पर प्रदान हुई थीं उन्हें उसने वापस ले लिया ।[2] सुल्तान की सैन्य व्यवस्था की दृढ़ता के संदर्भ में बरनी लिखता है कि विश्व विनाश की क्षमता रखने वाली तुगलकशाह की तलवार की धाक काफिरों तथा कृतघ्नों पर इस सीमा तक जम चुकी थी कि किसी मंगोल के हृदय में कभी भी उसके राज्य की सीमा को पार करने का विचार नहीं हुआ और न कभी हिन्दुओं के हृदय में विद्रोह या षडयन्त्र का विचार ही उत्पन्न हुआ ।[3]

मंगोल आक्रमण:-

गयासुद्दीन के काल में मंगोल आक्रमण का बरनी[4] ने बहुत ही संक्षिप्त वर्णन किया है, जबकि इसामी[5] ने इसका विस्तृत विवरण दिया है । दक्षिण में सैनिक कार्यवाही कठिनता से पूरी ही हुई थी कि पश्चिमी सीमा पर आकस्मिक हलचल सुल्तान की चिंता का कारण बनी । गुरशास्प ने जो समाना का अधिकारी था, शाह के पास दूत भेजकर सूचना भेजी की मुगलों की दो सेनाएँ सिन्धु नदी पार करके हिन्दुस्तान में प्रविष्ट हो गयीहैं ।[6] उसने आगे अनुरोध किया कि यदि

1- बरनी:जियाउद्दीन:तारीख-ए-फीरोजशाही, रिजवी: तुगलक कालीन भारत भाग-1, पृ.-15,

2- बरनी:जियाउद्दीन: तारीख-ए-फीरोजशाही, रिजवी:तुगलक कालीन-भारत, भाग-1, पृ.-15,

3- बरनी:तारीख-ए-फीरोजशाही,अनु0रिजवी:तुगलक कालीन भारत भाग-1, पृ.-16-17,

4- बरनी:तारीख-ए-फीरोजशाही,अनु0रिजवी:तुगलक कालीन भारत भाग-1, पृ.-23,

5- इसामी:फुतूहुस्सलातीन,पृ.404, रिजवी:तुगलक कालीनभारत,भाग-1,पृ. 87-88,

6- इसामी:फुतूहुस्सलातीन, रिजवी:तुगलक कालीन भारत=भाग-1,पृ.-87, हबीब निजामी:दिल्ली सुल्तनत,पृ.-403,

सहायतार्थ कोई सेना इस ओर भेज दी जाय तो मैं उन्हें पराजित कर दूँगा। सुल्तान ने तत्काल एक सेना तैयार कराई। उसमें वीर शादी दादर तथा शादी सतलिया थे।[1] इस सेना ने समाना की ओर प्रस्थान किया। दूसरी ओर गुर-शास्प को सूचना भेजी गई कि वह शीघ्र समाना से सेना लेकर प्रस्थान करे और मुगल सेना के विरूद्ध इस प्रकार प्रयत्नशील हो कि सभी का विनाश हो जाय।

मुंगोल सेना दो टुकड़ी में आगे बढ़ रही थी। जकरिया, हिन्दुये बूरी तथा अरश प्रथम टुकड़ी के सरदार थे।[2] दूसरी टुकड़ी का सरदार शेर नामक मंगोल था।[3] प्रथम टुकड़ी ने अपना पड़ाव दोआब में जबकि द्वितीय ने पर्वत के आँचल में शिविर लगा दिये थे। गुरशास्प ने सर्वप्रथम पर्वत के आँचल की ओर प्रस्थान किया और उन लोगों पर अचानक टूट पड़ा। मंगोलों के सरदार शेर के पास युद्ध के अतिरिक्त कोई उपाय न रह गया। दोनों सेनाओं में संघर्ष छिड़ गया। शाही सेना को विजय प्राप्त हुई और मंगोल सेना भाग खड़ी हुई। बहुत बड़ी संख्या में मंगोल मार डाले गये और बहुत से बन्दी बना लिए गए।[4] सरदार शेर भाले से घायल होकर जमीन पर गिरा, शाही सेना ने तत्काल ही उसके सिर को धड़ से विच्छेद कर दिया।[5] मंगोलों के शिविरों पर भी अधिकार जमा लिया।

सरदार शेर द्वारा नियन्त्रित मंगोलों की टुकड़ी पर अधिकार कर लेने के उपरान्त शाही सेना ने दूसरी टुकड़ी के काफिरों के संहार हेतु प्रस्थान किया और व्यास नदी के निकट घात लगाकर बैठ गये। सेना को नियन्त्रित कर शाही

1- इसामी: फुतूहुस्सलातीन, रिजवी: तुगलक कालीन भारत भाग-1, पृ. 87,
2- इसामी: फुतूहुस्सलातीन, रिजवी: तुगलक कालीन भारत भाग-1, पृ. 87,
3- इसामी: फुतूहुस्सलातीन, रिजवी: तुगलक कालीन भारत भाग-1, पृ. 87,
4- इसामी: फुतूहुस्सलातीन, रिजवी: तुगलक कालीन भारत भाग-1, पृ.-87,
5- बरनी: तारीख-ए-फीरोजशाही, रिजवी, तुगलक कालीन भारत, भाग-1, पृ.-23,

सरदार आगे बढ़ने लगे । वीर शाही नायब वजीर आगे-आगे था ।[1] उसके साथ प्रसिद्ध शाही सतलिया था ।[2] महमूद सरबत्ता भी एक विशाल सेना के साथ था । गुरशास्प अपनी सेना का नेतृत्व कर रहा था, युसुफ शहनये-पील दाहिनी ओर था ।[3] बाई ओर का नेतृत्व अहमद चप के अधीन था ।[4] दूसरी ओर जकरिया आगे था उसके पीछे हिन्दू बूरी था । अरश स्वयं मध्य में था ।[5] इस प्रकार दोनों ओर अपार सेना थी । जब शाही एवं गुरशास्प की सेना मंगोलों की ओर बढ़ी तो घमासान युद्ध की जगह छिटपुट युद्ध ही हुआ । संभवत: इसका कारण यह था कि मंगोल सरदार शेर की हत्या से पहले ही हताश थे । अत: शीघ्र ही वे पराजित हो गये । जकरिया घोड़े से गिर गया और बन्दी हुआ ।[6] बहुत से मुगल जीवित बंदी बना लिए गए और उनके घोड़ो की बहुत बड़ी संख्या शाही सेना के हाथ लगी । दूसरी ओर अरश एवं हिन्दुये गुरशास्प के हाथों पराजित हो स्वदेश भाग गये ।[7] हिन्दुस्तानी सेना ने इस विजय के उपरान्त मंगोल सरदार शेर के शीश एवं जकरिया को बन्दी बनाकर दिल्ली सुल्तान के समक्ष प्रस्तुत किया ।[8] इस प्रकार एक महान संकट समाप्त हो गया ।

1- इसामी: फुतूहुस्सलातीन, रिजवी, तुगलक कालीन भारत, भाग-1, पृ. 88,

2- इसामी: फुतूहुस्सलातीन, रिजवी, तुगलक कालीन भारत, भाग-1, पृ. 88,

3- इसामी: फुतूहुस्सलातीन, रिजवी, तुगलक कालीन भारत, भाग-1, पृ. 88,

4- इसामी: फुतूहुस्सलातीन, रिजवी, तुगलक कालीन भारत, भाग-1, पृ.-88,

5- इसामी: फुतूहुस्सलातीन, रिजवी, तुगलक कालीन भारत, भाग-1, पृ.-88,

6- इसामी: फुतूहुस्सलातीन, रिजवी, तुगलक कालीन भारत, भाग-1, पृ.-88,
बरनी: तारीख-ए-फीरोजशाही, रिजवी: तुगलक कालीन भारत, भाग-1, पृ. 23,

7- इसामी: फुतूहुस्सलातीन, रिजवी, तुगलक कालीन भारत, भाग-1, पृ.-88,

8- इसामी: फुतूहुस्सलातीन, रिजवी, तुगलक कालीन भारत, भाग-1, पृ.-88,
बरनी: तारीखे-फीरोजशाही, रिजवी, तुगलक कालीन भारत, भाग-1, पृ. 23,

गयासुद्दीन तुगलक ने अपने 5 वर्ष के शासन काल की अल्प अवधि में प्रशासन में महान योग्यता दिखाई । प्रान्तों को मुगलों की धमकियों से सुरक्षित रखा । उसने मंगोलों के आक्रमण के द्वार बन्द कर दिए थे ।[1] उसके शासन काल में उसकी विजयी तलवार के आतंक से कोई मंगोल उसके राज्य की उत्तरी सीमा तथा सिंध नदी[2] को पार करने का साहस न कर सकता था । इतना ही नहीं उत्तरी-पश्चिमी सीमा प्रान्त के विद्रोहियों एवं किसी भी हिन्दुस्तानी सरदार के हृदय में उसके प्रति विद्रोह एवं षडयंत्र का विचार कभी भी उत्पन्न नहीं हुआ ।[3]

सुल्तान मुहम्मद बिन तुगलक-(1325-1351)

उलुग खान (राजकुमार जूना खान) अपने पिता गयासुद्दीन तुगलक की मृत्यु के बाद 725 हि॰ (फरवरी-1325 ई॰) में मुहम्मद बिन तुगलक की उपाधि से गद्दी पर बैठा ।[4] उसका सिंहासनारोहण लोगों द्वारा स्वीकार कर लिया गया और किसीप्रकार का विद्रोह नहीं हुआ ।[5] अपने पिता की मृत्यु में मुहम्मद तुगलक का कोई हाथ रहा हो या नहीं, परन्तु उसके सिंहासन पर बैठने का किसी

1- बरनी:तारीखे-फीरोजशाही,पृ.-रिजवी:खल्जी कालीन भारत, पृ॰ 144, खुसरो,अमीर: तुगलकनामा,पृ॰-138,रिजवी,तुगलक कालीन भारत,भाग-1, पृ॰-192,

2- बरनी,जियाउद्दीन:तारीख-ए-फीरोजशाही,अनु॰ रिजवी,तुगलक कालीन-भारत,भाग-1, पृ॰-16,
रिजवी ने लिखा है कि नदी से तात्पर्य सिन्ध नदी से है,तुगलुक कालीन-भारत, भाग-1,पृ॰ 16,

3- बरनी:तारीखे-फीरोजशाही,अनु॰ रिजवी,तुगलुक कालीन भारत,भाग-1,पृ॰17

4- बरनी: तारीखे-फीरोजशाही,अनु॰ रिजवी,तुगलुक कालीन भारत,भाग-1, पृ॰-29,
प्रसाद,ईश्वरी:हिस्ट्री आफ न करौना टर्कस,पृ॰-56,
किंतु इसामी सिंहासनारोहण तिथि 724 हि॰ (1324 ई॰) लिखता है ।
इसामी:फुतूहुस्सलातीन,अनु॰ रिजवी,तुगलुक कालीन भारत,भाग-1,पृ॰ 91,

5- फरिश्ता:तरीख-ए-फरिश्ता,अनु॰ ब्रिग्स,भाग-1,पृ॰-133,
प्रसाद,ईश्वरी: हिस्ट्री आफ द करौना टर्कस, पृ॰-56,

ने विरोध नहीं किया । निर्विरोध गद्दी पर बैठना एक महत्वपूर्ण बात थी, क्योंकि सुल्तान के चार और भाई थे मुबारक खाँ, नुसरत खाँ, मसूद खाँ और महमूद खाँ । महमूद खाँ तो सुल्तान गयासुद्दीन के साथ ही अफगान पुर में छत के नीचे दब कर मर गया था, लेकिन शेष तीनों जीवित भाइयों ने विरोध क्यों नहीं किया, इस प्रश्न का उत्तर इस बात की ओर संकेत करता है कि मुहम्मद तुगलक सब भाइयों से अधिक योग्य तथा सैनिक एवं प्रशासकीय क्षेत्रों में सर्वाधिक अनुभवी था ।[1] मुहम्मद तुगलक अपने समय के प्रकाण्ड विद्वानों में एक था । उसमें समझ-बूझ योग्यता, बुद्धिमत्ता, दानशीलता औरअनेक उच्चकोटि के गुण विद्यमान थे । उसके गुणों की विविधता के विषय में बरनी लिखता है- "ईश्वर ने सुल्तान मुहम्मद को एक अद्भुत जीव बनाया था । उसके व्यक्तित्व के विरोधाभासों और योग्यताओं को समझना आलिमों और बुद्धिमानों के लिए भी संभव नहीं है । उसे देखकर बुद्धि चकरा जाती है और उसके गुणों का अवलोकन कर चकित तथा स्तब्ध रह जाना पड़ता है ।[2]

सुल्तान मुहम्मद महत्वाकांक्षी था और उसमें राज्य व्यवस्था सम्बन्धित तथा प्रशासनिक विशेषताएं स्वाभाविक रूप से पायी जाती थी । बरनी लिखता है कि उसकी हार्दिक आकांक्षा यह थी कि वह समस्त जिन्नातों[3] तथा मानव जाति पर राज्य करे । बचपन से ही उसके हृदय में सुलेमानी[4] तथा सिकन्दरी करने की

1- प्रसाद,ईश्वरी: हिस्ट्री आफ द करौना टर्कस, पृ.-56-57,

2- बरनी: तारीख-ए-फीरोजशाही,अनु. रिजवी,तुगलक कालीन भारत, भाग-1, पृ,-30,

3- रिजवी ने जिन्नतों का तात्पर्य भूत से लिया है- तुगलक कालीन भारत, भाग-1, पृ.-30,

4- रिजवी ने सुलेमानी का अर्थ ऐसे पैगम्बर से लिया है जिसका राज्य हवा पर भी बताया जाता है-तुगलक कालीन भारत भाग-1,पृ.-30, श्रीवास्तव,ए०एल०: दिल्ली सल्तनत, पृ.-200,

महत्वाकांक्षा थी । उसमें असाधारण रूप से मौलिक सूझबूझ थी । उसका मस्तिष्क उर्वर था । उसे सभी मामलों में परम्परागत और रूढ़िगत दृष्टिकोण से घृणा थी । नूतनता से उसे मोह था ।[1]

मंगोल आक्रमणः-

यद्यपि मुहम्मद बिन तुगलक समस्याओं के समाधान में नवीन सुधार का पक्षधर था । इस ओर उसने अनेक योजनाएं भी बनाई, किन्तु उत्तरी-पश्चिमी सीमा सम्बन्धित समस्या के विषय में वह कोई महत्वपूर्ण नीति न अपना सका । यह उसका सौभाग्य ही था कि सल्तनत पर मंगोलों के आक्रमण बन्द हो गये थे । उसके समय में मंगोल आक्रान्ता तर्माशीरीन का आक्रमण विवादस्पद है । इतिहासकार बरनी इस आक्रमण के विषय में मौन है। जिसको लेकर कुछ इतिहासकार यह मानने को तैयार नहीं हैं कि मुहम्मद तुगलक के काल में कोई मंगोल आक्रमण हुआ था । दूसरी ओर ईशामी यहयाबिन अहमद, फरिश्ता और बदायुनी ने इसका सविस्तार उल्लेख किया है। समकालीन इतिहासकार इब्नबतूता भी इसका अस्पष्ट उल्लेख करता है। ईशामी लिखता है कि एक दिन समाचार वाहक दौड़ते हुए मुल्तान से आये और सूचना दी कि मुगल सेना ने रावी नदी पार कर ली है। उसने सिन्धु की सीमा पर बड़ा उत्पात किया है और अब हिन्दुस्तान की ओर बढ़ रही हैं । जब सुल्तान को यह ज्ञात हुआ कि दुष्टों ने मुल्तान पार कर लिया है तो वह भी युद्ध के लिए कटिबद्ध हो गया । प्रत्येक दिशाओं से सेनाएं बुलवाई गयीं । सेना के शिविर शीरी से लेकर जूद पहाड़ियों तक सैनिक छावनी के रूप में सजा दियें गये । सेना अभी गति में नहीं आयी थी कि एक अन्य समाचार वाहक ने आक कहा कि तीन दिन हुए कि मुंगल मेरठ पहुँच कर उत्पात मचा रहे हैं । समस्त प्रजा किले में

1- पाण्डेय, ए०वी०: पूर्व मध्य कालीन भारत, पृ.-25,

2- इसामी, फुतूहुस्सलातीन, अनु. रिजवी. तुगलक कालीन भारत, भाग-1, पृ.-103, तथा,आगा मेंहदी हुसेन, भाग-3, पृ.-697-98,

घुस गयी है और वह स्थान नष्टहो रहा है । एक सेना समुद्र के समान बड़े वेग से बढ़ती जा रही है । तर्माशीरीन उस सेना का सेनानायक है ।[1]

उपर्युक्त समाचार को सुनकर सुल्तान ने बुगरा के पुत्र युसुफ को आदेश दिया कि दस हजार सवारों की सेना मेरठ की ओर ले जाकर मुगलों पर आकस्मिक हमला करे । किन्तु यदि शत्रु और आगे बढ़े तो वह पीछे से हमला करे । जबकि सुल्तान सामने से आक्रमण करेगा ।[2] युसुफ ने सुल्तान के आदेशानुसार मेरठ पहुँच कर शिविर लगा दिया और अवसर पाकर मुगोलों पर आक्रमण कर दिया । जब वास्तविक संघर्ष आरम्भ हुआ तो मंगोल बिगुलों की भयानकर ध्वनि से भारतीय सैनिक चकरा गये किन्तु इस दाप वेदना में भी शाहीसेना ने मंगोल सेना पर विजय प्राप्त की । ईशामी लिखता है कि हिन्दी[3] {तुर्म} के सवार भाग खड़े हुए । युसुफ ने सुल्तान के पास मुंगलों के हिन्दुस्तान से भागने के समचार भेज दिये । जो लोग बन्दी बनाये गये थे उन्हें भी उसने भेज दिया । इन बन्धकों में तुर्मशिरीन के बहन का पुत्र महत्वपूर्ण है[4] जबकि स्वयं तुर्मशिरीन वापस भाग गया था । ईशामी के अनुसार इस युद्ध में स्वयं सुल्तान थानेश्वर तक आया था और वहीं से उसने अपने सैनिकों को भागते हुए मुगलों का पीछा करने के लिए भेजा था ।[5]

1- इसामी, फुतूहुस्सलातीन, अनु॰ रिजवी, तुगलक कालीन भारत, भाग-1, पृ॰-103,

2- इसामी, फुतूहुस्सलातीन, अनु॰ रिजवी, तुगलक कालीन भारत, भाग-1 पृ॰ 104, इसीमी, फुतूहुस्सलातीन, अनु॰ आगा मेंहदी हुसेन, भाग-3, पृ॰-698-99,

3- इसामी: फुतूहुस्सलातीन, अनु॰ रिजवी, तुगलक कालीन भारत, भाग-1, पृ॰-104,
रिजवी ने लिखा है इस स्थान पर तुर्माशीरीन होना चाहिए तुगलककालीन भारत, भाग-1, पृ॰-104,

4- इसामी: फुतूहुस्सलातीन, अनु॰ रिजवी, तुगलक कालीन भारत, भाग-1, पृ॰ 104, तथा आगा मेंहदी हुसेन, भाग-3, पृ॰-699-700,

5- इसामी: फुतूहुस्सलातीन, अनु॰ रिजवी, तुगलक कालीन भारत, भाग-1, पृ॰-104 तथा आगा मेंहदी हुसेन, पृ॰-700-701,

यहया बिन अहमद सरहिन्दी तुर्माशीरीन के आक्रमण का समय 729 हि0 {1328-29 ई.} लिखता है[1] । उसके अनुसार इस अवधि में खुरासान के शासक कुतलुग ख्वाजा का भाई तर्माशीरीन मुगल एक बहुत बड़ी सेना लेकर दिल्ली की विलायत में घुस आया और उसने बहुत से किलों पर विजय प्राप्त कर ली । लाहौर, समाना, इन्दरी और बदायूँ तक की सीमा के लोगों को बन्दी बना लिया । जब उसकी सेना नदी पार {यमुना-तट} तक पहुँच गई तो वह रूक गया । सुल्तान दिल्ली तथा हौजे खास के मध्य एक बहुत बड़ी सेना एकत्र करके वहीं उतर पड़ा । संघर्ष में पराजित होकर तर्माशीरीन सिन्ध नदी के पार भाग गया था । सुल्तान के कलानूर की सीमा तक उसका पीछा किया ।[2] कलानूर का किला जो कि टूट-फूट गया था, उसे मलिक मुजीरूद्दीन अबूरिजा को प्रदान किया गया ताकि वह उसे सुव्यवस्थित कर दे[3] । वहाँ पर कुछ योग्य सरदारों को नियुक्त कर सुल्तान स्वयं वापस लौट आया ।

तारीखे मुहम्मदी का लेखक मुहम्मद बिहामद खानी तर्माशीरीन के आक्रमण की घटना का विवरण इस प्रकार देता है-जब सुल्तान मुहम्मद दो-तीन वर्ष तक दौलताबाद में निवास करता रहा तो उन्हीं दिनों में तर्माशरीन का आक्रमण हुआ। वह दुष्ट बहुत भारी सेना लेकर तिरमिज से हिन्दुस्तान पहुँचा और दोआब के मध्य के बहुत से नगर विजित कर लिये तथा प्रजा की हत्या कर दी और उन्हें बन्दी बनाया । सुल्तान मुहम्मद बिन तुगलक शाह भी एक विशाल सेना लेकर यमुना नदी के तट पर पहुँचा और उसने वहाँ अपना शिविर लगा दिया । यमुना नदी दोनों

1- सरहिन्दी, यहया: तारीख-ए-मुबारकशाही, अनु. रिजवी, तुगलक कालीन-भारत, भाग-1, पृ.-345 तथा बसु, पृ.-103,

2- सरहिन्दी, यहया: तारीख-ए-मुबारकशाही, अनु. रिजवी, तुगलक कालीन-भारत, भाग-1, पृ.-345 तथा बसु, के0.के0, पृ.-103,

3- सरहिन्दी, यहया: तारीख-ए-मुबारकशाही, अनु. रिजवी तुगलक कालीन-भारत, भाग-1, पृ.-345 तथा बसु, पृ.-103,

सेनाओं के मध्य थी । जब दुष्ट तर्माशीरीन ने मुसलमानों की शक्ति तथा उनका ऐश्वर्य देखा तो तुरन्त तिरमिज वापस लौट गया ।[1]

तर्माशीरीन के आक्रमण का उल्लेख करते हुए फरिश्ता लिखता है कि आरम्भ में जब सुल्तान मुहम्मद तुगलक का राज्य दृढ़ भी नहीं हुआ था, 727 हि० §1326-27 ई०§ में तर्माशीरीन का आक्रमण हुआ ।[2] पारिस्थितिक प्रमाण उसकी तिथि का समर्थन करते हैं ।[3] ह० नि० वह लमगान तथा मुल्तान से दिल्ली के द्वार तक कुछ प्रदेशों को विध्वंस करता और कुछ को वचन देकर अधिकार में करता हुआ अपने शिविर दिल्ली में लगवा दिया । सुल्तान मुहम्मद तुगलक शाह ने युद्ध करना संभव न देखकर बड़ी नम्रता से व्यवहार किया और कुछ विश्वास पात्रों को मध्यस्थता करने के आशय से उसने धन, सम्पत्ति तथा जवाहरात देकर तर्माशीरीन के पास भेजा । जिससे उसे राज्य पुन: प्राप्त हो जाय । सुल्तान की ओर से उपहार पाकर तर्माशीरीन[4] संतुष्ट हो गया और उसने स्वदेश लौटने का निर्णय लिया । तर्माशीरीन दिखाने के ठाट पर तो दिल्ली से प्रस्थान कर गया, किन्तु वह गुजरात को लूटता हुआ सिन्ध तथा मुल्तान के मार्ग से वापस गया ।[5]

इब्नबतूता तर्माशीरीन के आक्रमण का सविस्तार वर्णन करता है जो सभी भारतीय विवरणों से बिल्कुल भिन्न है । उसका ईशामी यहया सरहिन्दी तथा अन्य भारतीय इतिहासकारों के वर्णनों से सामंजस्य स्थापित करने का एक मात्र मार्ग यह

1- खानी, मुहम्मद बिहामद: तारीखे मुहम्मदी, अनु० रिजवी, तुगलक कालीन-भारत, पृ०-354,

2- फरिश्ता, तारीख-ए-फरिश्ता, अनु० ब्रिग्स, भाग-1, पृ०-237,

3- हबीब निजामी, दिल्ली सुल्तनत, पृ०-428,

4- फरिश्ता, तारीख-ए-फरिश्ता, अनु० ब्रिग्स, भाग-1, पृ०-237,

5- फरिश्ता:तारीख-ए-फरिश्ता, अनु० ब्रिग्स, भाग-1, पृ०-237,

है कि यह मान लिया जाय कि दूसरा तर्माशीरीन झूठा व्यक्ति था ।[1] इब्नबतूता कहता है कि भारत आते समय वह बुखारा में दो मास तक तर्माशीरीन के अतिथि के रूप में ठहरा । उस समय तर्माशीरीन अपनी शक्ति की चरम सीमा पर था । वह एक विशाल साम्राज्य पर शासन कर रहा था तथा विशाल सेनाएं उसके इशारे तथा आह्वान पर तैयार रहती थी । भारत आने के दो वर्ष पश्चात् इब्नबतूता को ज्ञात हुआ कि चंगेजी "यसा" उल्लघंन करने के दण्ड स्वरूप जनता ने तर्माशीरीन को राज्य च्युत कर दिया और उसके चचेरे भाई वज़ान अबूल के प्रति निष्ठा की शपथ ली । तर्माशीरीन भारत आया और बिना अपना परिचय दिये सिन्ध में रहने लगा । मुल्तान का राज्यपाल इमादुल मुल्क सरतेज उसे खोज निकालने में सफल हुआ ।[2] और उसने सुल्तान को इस विषय की सूचना दी । सुल्तान का चिकित्सक जिसने पहले तर्माशीरीन की सेवा की थी, उसे पहचानने के लिए भेजा गया । उसने एक फोड़े के चिन्ह से, जिसका उसने उपचार किया था, उसे पहचान लिया ।[3] ऐसे प्रतिष्ठित व्यक्ति की राज्य में उपस्थिति से निहित राजनीतिक खतरे से अहमद अयाज तथा कुतलुग खाँ ने सुल्तान को सावधान किया । मुहम्मद बिन तुगलक भी सतर्क था । उसने दरबार में झूठे दावेदार को बुलवाया और जब वह आ गया तो सुल्तान ने क्रोध पूर्वक उसे सम्बोधित किया-हे वेश्या के पुत्र तुमने झूठ बोलने का साहस कैसे किया और कहते हो कि तुम तर्माशीरीन हो जबकि तर्माशीरीन मारा जा चुका है और यहाँ हमारे साथ उसकी कब्र का संरक्षक है ।[4] मध्येशियाई इतिहासकारों के अनुसार तर्माशीरीन ने गजनी भाग जाने का प्रयत्न किया किन्तु पकड़ा

1- हबीब निजामी, दिल्ली सल्तनत, पृ॰-428,

2- इब्नबतूता: रेहला, अनु॰ आगा मेंहदी हुसैन, रेहलाआफ इब्नबतूता-पृ॰-256-57,

3- इब्नबतूता: रेहला, अनु॰ आगा मेंहदी हुसैन, दि रेहला आफ इब्नबतूता, पृ॰ 257
हबीब निजामी, दिल्ली सल्तनत, पृ॰-428,

4- आगा, मेंहदी हुसैन, दि रेहला ऑफ इब्नबतूता, पृ॰-257-58,

गया और बाजान के पास भेज दिया गया जिसने 1332 ई॰ में उसका बध कर दिया। मुहम्मद बिन तुगलक को अवश्य वास्तविक तथ्यों की सूचना दी गई होगी। इब्नबतूता के अनुसार सुल्तान द्वारा प्रयुक्त शब्द स्पष्ट बताते हैं कि सुल्तान यह जानता था कि वह एक मंगोल धोखेबाज से निपट रहा है जिसने यह संकेत देना लाभकर समझा कि वह तर्माशीरीन है। झूठा दावेदार भारत से निकाल दिया गया।[1]

उपर्युक्त वर्णनों से स्पष्ट है कि मंगोल नेता तर्माशिरीन आक्सस पार के क्षेत्र का शासक था और वह चगताई वंशी दाऊद का पुत्र था[2]। जिसने अलाउद्दीन के समय में भारत पर अधिकार करने की बहुत चेष्टा की थी। चगताई और हलाकू के वंशजों में बराबर द्वेष चलता आ रहा था। इस समय वंशगत द्वेष में धार्मिक द्वेष भी जुड़ गया क्योंकि फारस के इलखानों ने शियाधर्म स्वीकार कर लिया था और तर्माशीरीन ने सुन्नी धर्म स्वीकार किया।[3] आंतरिक कलह के कारण फारस की शक्ति घटने लगी और उलजैतू के उत्तराधिकारी अबू सईद के समय में अमीर चौपान के षड्यन्त्रों के कारण फारस के साम्राज्य के विघटन के लक्षण प्रकट होने लगे। तर्माशीरीन ने इस स्थिति से लाभ उठाकर खुरासान पर अधिकार जमाने की योजना बनाई और वह काबुल तथा गजनी के क्षेत्र में सेना एकत्रित करने लगा। अभी उसकी तैयारी पूरी नहीं हुई थी कि चौपान के बेटे अमीर हसन ने उस पर आक्रमण कर दिया और उसको बुरी तरह पराजित किया[4] तथा गजनी को लूटा और ध्वस्त

1- हबीब निजामी; दिल्ली सुल्तनत, पृ॰-429,
2- लाल, के0 एस0; ट्वाइलाइट आफ दि सल्तनत, पृ॰-32, फुटनोट, 123
3- पाण्डेय, ए0 बी0; पूर्वमध्य कालीन भारत, पृ॰-217,
4- पाण्डेय, ए0 बी0; पूर्वमध्य कालीन भारत, पृ॰-217,

किया । यह घटना 1326-27 ई. में हुई । तर्माशीरीन के लिए स्वदेश भागना कठिन हो गया अस्तु वह भारत की ओर भागा ।[1] उसका उद्देश्य यह था कि भारत के सुन्नी शासक की सहायता प्राप्त करके शिया विजेता को हराये और उसका राज्य समाप्त कर दे । वह दिल्ली तक चला आया । सुल्तान मुहम्मद बिन तुगलक ने उसका स्वागत किया औरउसको शरण दी ।[2] परन्तु ख्वाजा जहाँ और कुतलुग खाँ ने उसका भारत में रहना उचित नहीं समझा । अस्तु सुल्तान ने उनके परामर्श के अनुसार तर्माशीरीन को बिदा कर दिया तथा चलते समय उसे पांच हजार दीनार भेंट किये ।[3] संकट और विपत्ति के समय सुल्तान का सौजन्य और स्वागत पाने के कारण तर्माशीरीन बहुत कृतज्ञ हो गया । उसने व्यक्तिगत अनुभव द्वारा सुल्तान की प्रतिष्ठा एवं शक्ति का भी ज्ञान प्राप्त कर लिया था । इसलिए उसने बराबर मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध रखा तथा अपने पत्रों में भ्रातृत्व भावनाओं को व्यक्त किया ।[4]

मंगोल सदा से आक्रमण करने और देश विजय के लिए भारत आते रहे थे इसकारण इसामी, यहया एवं फरिश्ता आदि इतिहासकारों ने तर्माशीरीन के आगमन को भी आक्रमण का रूप दे दिया जबकि बर्नी एवं इब्नबतूता ने इसका उल्लेख तक नहीं किया । मंगोल इतिहासकारों ने संभवत: पाँच हजार दीनार दिये जाने के कारण इसे मंगोलों की विजय बताया है । इन लोगों का कहना है कि तर्माशीरीन ने मुलतान और लगमान के मार्ग से भारत में प्रवेश किया । पश्चिमोत्तर सीमा के हाकिम उसको रोकने में असमर्थ रहे जिसके कारण वह दिल्ली तक बढ़ता चला गया ।[5]

1- पाण्डेय, ए0 बी0: पूर्व मध्य कालीन भारत, पृ.-217,
2- पाण्डेय, ए0 बी0: पूर्व मध्य कालीन भारत, पृ.-217,
3- पाण्डेय, ए0 बी0: पूर्व मध्य कालीन भारत, पृ.-217,
4- पाण्डेय, ए0 बी0: पूर्व मध्य कालीन भारत, पृ.-217,
5- पाण्डेय, ए0 बी0: पूर्व मध्य कालीन भारत, पृ.-218,
श्रीवास्तव, ए0 एल0: दिल्ली सल्तनत, पृ.-193

सुल्तान मुहम्मद ने इतनी कायरता और दुर्बलता दिखाई कि उसने इनका खुला विरोध करने के स्थान पर राजधानी के दुर्ग में शरण ली। कुछ समय बाद मंगोल बदायूँ की तरफ मुड़ गये क्योंकि वे घेरा डालने में प्रायः असफल रहते थे। बदायूँ में अकाल पड़ रहा था इसलिए वे कठिनाई में पड़ गये। सुल्तान मुहम्मद तुगलक ने इस समय तक आवश्यक सेना एकत्रित कर ली थी जिसे उसने मंगोलों के विरूद्ध भेजा। साथ ही उसने उनको धन भी दिया। फरिश्ता कहता है कि यह धन प्रायः दिल्ली राज्य के मूल्य के बराबर था। इस कारण मंगोल लौट गये।[1] सुल्तान का पीछा करने वाली सेना से उनका कहीं युद्ध नहीं हुआ।

उपर्युक्त दोनों वर्णनों से यह स्पष्ट हो जाता है कि तर्माशीरीन के साथ काफी सैनिक थे, उन्होने मार्ग के स्थानों में कुछ लूटमार भी की होगी। सीमान्त शासक उसको रोकने में असफल रहे। दिल्ली के शासक वर्ग को मध्य एशिया की परिवर्तित स्थिति का कुछ पता नहीं था, तथा तर्माशीरीन दिल्ली तक आने के बाद ही वापस गया। यद्यपि उसमें और सुल्तान मुहम्मद में कोई युद्ध नहीं हुआ। संपूर्ण घटनावली का अवलोकन करने से विदित होता है कि तर्माशीरीन ने न तो आक्रमण के उद्देश्य से भारत में प्रवेश किया[2] और न सुल्तान ने कायरतावश उसे धन देकर विदा किया।[3] यदि सुल्तान सचमुच दुर्बल और धनी होने का प्रमाण देता तो मंगोल विजेता निश्चय ही उससे मित्रता करने के स्थान पर भविष्य में फिर उस पर आक्रमण करता क्योंकि ज्यों-ज्यों समय बीतता गया सुल्तान मुहम्मद की शक्ति क्षीण होती गयी।[4] तर्माशीरीन का दिल्ली तक का आ जाना भी पश्चिमोत्तर

1- फरिश्ता: तारीखे फरिश्ता, अनु, रिजवी, तुगलक कालीन भारत, भाग 1, पृ0 379 तथा ब्रिग्स, भाग-1, पृ0 237-38.

2- पाण्डेय, ए0बी0: पूर्व मध्य कालीन भारत, पृ0 218

3- पान्डेय ए0बी0: पूर्व मध्य कालीन भारत पृ0 218

4- पाण्डेय, ए0बी0: पूर्व मध्य कालीन भारत, पृ0 218.

सीमा की दुरावस्था का परिचायक है ।[1] परन्तु इस सम्बन्ध में स्मरणीय है कि मंगोलों का भारतीय भौगोलिक ज्ञान इतना विशद तथा उनकी सेना की गति इतनी तीव्र होती थी कि अलाउद्दीन के समय में भी वे कई बार दिल्ली और दोआब तक पहुँचने में सफल हो गये थे ।

कुछ लेखकों का यह मानना है कि सुल्तान मुहम्मदबिन तुगलक ने मंगोलों के आक्रमण से राजधानी को सुरक्षित रखने के लिए उसे पश्चिमोत्तर सीमा से दूर हटाना चाहा । इनमें गार्डिनर ब्राउन का नाम प्रमुख है । इनके अनुसार मंगोलों के आक्रमण तथाभयानक बाढ़ के आने से पंजाब का महत्व घट गया था, इसलिए राजधानी को दक्षिण में स्थानांतरित किया गया ।[2] किन्तु यह तर्क सारहीन है, बाढ़ व आक्रमण ऐसी घटनायें नहीं हैं, जिनसे राजधानी परिवर्तित की जाय । राजधानी के पास रहने के कारण ही अलाउद्दीन और बलबन अपनी सीमा सुरक्षा व्यवस्था में सफल हुए थे । राजधानी के दूर रहने पर राजधानी भले ही बची रहती परन्तु उत्तर भारत का समूचा साम्राज्य ही विदेशी आक्रमणकारी के हाथ चला जाता । दूसरे उस समय विदेशी आक्रमणों काभय ही नहीं था । इस कारण यह सुझाव भी स्वीकार करने योग्य नहीं प्रतीत होता ।

राजधानी परिवर्तन के लिए समकालीन इतिहासकारों द्वारा दिये गये विवरण यद्यपि विवादास्पद हैं,किन्तु कोई भी इतिहासकार यह नहीं संकेत करता कि राजधानी परिवर्तन का कारण मंगोल आक्रमण का भय था । यहया कहता है कि दोआब में कर-वृद्धि एवं अकाल के कारण अशान्ति फैल गई । सुल्तान ने वहाँ की हिन्दू जनता को दण्ड देने के लिए समस्त दिल्लीवासियों को देवगिरि जाने का आदेश दिया ।[3] इब्नबतूता लिखता है कि दिल्ली के कुछ लोग सुल्तान की नीति

1- पाण्डेय,ए०बी०:पूर्व मध्य कालीन भारत-- पृ० 218.

2- गार्डिनर ब्राउन:जर्नल आफ यू०पी०हिस्टारिकल सोसायटी,खण्ड-1,भाग-2,13

3- यहिया: तारीख-ए-मुबारकशाही, अनु० रिजवी, तुगलक कालीन भारत,भाग-1 पृ० 34।

से असन्तुष्ट थे इस कारण वे पत्रों में गालियां लिख-लिख कर उनको तीरों में बांधकर रात के समय सुल्तान के महल में फेंकते रहते थे । सुल्तान नहीं जानता था कि यह शरारत कौन करता है । अस्तु उसने समस्त दिल्लीवासी जनता को दण्ड देने के लिए उसे उजाड़ने का निश्चय किया ।[1] बरनी लिखता है कि सुल्तान मध्यम श्रेणी और उच्च वर्ग के लोगों का विनाश करना चाहता था। इसलिए उसने दिल्ली उजाड़ने का इरादा किया ।[2] पर यह सभी विचार निराधार हैं क्योंकि दिल्ली कभी भी पूरी नहीं उजड़ी और उसमें टकसाल तथा अन्यसरकारी अधिकरण सदा बने रहे ।

आधुनिक इतिहासकारों में राजधानी परिवर्तन का सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्पष्टीकरण प्रो० हबीब ने दिया है ।[3] मुहम्मद बिन तुगलक अपने किसी भी समकालीन से अधिक दक्षिण को जानता था । मलिक काफूर ने अपने चार सफल अभियानों में दक्षिण के सबसे धनी मंदिर लूटे थे तथा अधिकांश राज्यों को दिल्ली की सर्वोच्च सत्ता स्वीकार करने पर विवश किया किन्तु अलाउद्दीन ने दिल्ली के मोटे तथा बुद्धिमान कोतवाल के स्वस्थ तथा समझदार परामर्श का अनुसरण कर एक बीघा भूमि भी जीतकर साम्राज्य में मिलाने से इन्कार किया । दक्षिण के राज्यों को उनके सभी रत्नों से वंचित कर दिया गया किन्तु उनकी भूमि उन्हें वापस कर दी गई ।

मुबारकशाह के समय दक्षिण नीति बिल्कुल परिवर्तित कर दी गई । उसने केवल देवगिरि के यादव ही समाप्त नहीं किए अपितु उनके प्रदेश में,अपना शासन स्थापित किया और अनेक नगण्य अधिकारियों में जिन्हें "अमीराने सादा" अर्थात्

1- इब्नबतूता: रेहला, अनु. रिजवी ,तुगलक कालीन भारत,भाग-1,पृ0 214

2- बरनी: तारीखे फीरोजशाही, अनु0 रिजवी ,तुगलक कालीन भारत,भाग-1 पृ0 42-43 ।

3- प्रो0 हबीब: दि पोलिटिकल थ्योरी आफ दि देहली सुल्तनत, पृ0 24.

भी सैनिकों का अधिकारी कहते थे, वितरित किया । इस प्रकार मुहम्मद बिन तुगलक इस निष्कर्ष पर पहुँचा था कि जब तक वारंगल के राज्य का अस्तित्व है, देवगिरि की स्थिति कभी सुरक्षित नहीं होगी । उसने अपने पिता के शासन काल में वारंगल पर अभियान का नेतृत्व किया था तथा असफलता की कड़वाहट का स्वाद चखा था । फिर भी उसका दूसरा प्रयास सफल रहा था और देवगिरि की भाँति वारंगल अमीराने सादा को सौंप दिया गया था । फिर भी स्थिति संतोषजनक नहीं थी । विदेशी शासन अर्थात् उत्तर दक्षिण का शासन अमीराने सादा तथा हिन्दू आबादी जिन्हें नियन्त्रित करने की आशा उनसे की जाती थी, दोनों को सामान्य रूप से असह्य था । दोनों ने देखा कि यह एक दशक से अधिक नहीं चलेगा । विरोधी शक्तियाँ अति शक्तिशाली थी । इसके अतिरिक्त भारत में इस्लाम की सफलता उसके पूर्णतः देशी बनने पर निर्भर थी ।[1]

मुईजुद्दीन तथा आदिकालीन तुर्क सुल्तान भारतवर्ष में दो महान आंदोलनों के कारण सफल हुये थे । मध्य ऐशिया तथा फारस पर मंगोल आक्रमणों ने भारी संख्या में शरणार्थी भारत खदेड़ दिये थे जो स्थायी रूप से भारत में बस गये थे । उसी समय चिश्ती तथा सुहरावर्दी रहस्यवादी संप्रदायों (सिलसिला) ने अपने सेना से भी कठिन अनुशासन सहित भारतवर्ष के प्रत्येक ग्राम तथा नगर में व्यापक धार्मिक प्रचार किया था ।[2] उनके प्रयत्नों ने यथेष्ट अल्पसंख्यक शुद्ध भारतीय इस्लाम की परिधि में ले आए थे । यह मालियों, बावर्चियों, नाइयों तथा अन्य "निकम्मे रत्नों" की अल्प

1- प्रो० हबीब: अलीगढ़ मैगजीन, जुलाई, 1930.

2- प्रो० हबीब: अलीगढ़ मैगजीन, जुलाई, 1930.

संख्या जिसे बरनी घृणा की दृष्टि से देखता था स्वाभाविक रूप से उस सामाजिक प्रजातन्त्र के लिए उद्यत हुई जो भारत में इस्लाम का योगदान है तथा जिसने दिल्ली साम्राज्य को आवश्यक शक्ति प्रदान की । यदि ऐसा ही कुछ दक्षिण में भी न होता अर्थात निर्वासन या धर्म परिवर्तन से वहां एक देशी मुस्लिम जनसंख्या का सृजन न होता तो हिन्दू प्रतिक्रिया की पहली लहर सब कुछ अपने आवेग में बहा ले जाती ।[1]

मुहम्मद बिन तुगलक ने जिसमें बुलडाग की भांति दृढ़ता तथा शेख फरीदुद्दीन की दूरदर्शी उदारता का सम्मिश्रण था, तथा जिसकी विचारधारा का वह अनुयायी था, गम्भीरता से यह कार्य पूरा करने का निश्चय किया । उसकी दृष्टि में दिल्ली की आबादी थी जो बड़े चैनसे रह रही थी । दक्षिण के लिए " वह एक अति उत्तम सामाजिक और आर्थिक इकाई थी और वह उसे वहां ले जाना चाहता था ।" किन्तु यह पर्याप्त नहीं था । जब तक एक व्यापक प्रचार नहीं किया जाता तथा मुस्लिम सामाजिक तथा धार्मिक केन्द्र दक्षिण में स्थापित नहीं किए जाते, उसकी योजना असफल होगी । इसलिए रहस्यवादी भी प्रचार तथा उपदेश के लिए भेजने थे ।[2]

इतिहासकार यह भी मानने को तैयार नहीं कि मुहम्मद तुगलक ने राजधानी परिवर्तित की थी । प्रो० के०ए० निजामी का मत है कि दक्षिण प्रयोग से संबंधित यह धारणा कि सुल्तान ने राजधानी दौलताबाद स्थानान्तरित कर दी थी सत्य नहीं है । वास्तव में उसने दौलताबाद को द्वितीय प्रशासनिक नगर बनाया ।[3] ऐसा सोचने के तीन आधार है[4] §1§ मसालिम उल अवसार में लेखक का यह कथन है कि दिल्ली सल्तनत को दो राजधानियां है, एक दिल्ली और दूसरी देवगिरि

1- प्रो० हबीब: अलीगढ़ मैगजीन, जुलाई, 1930.

2- प्रो० हबीब: अलीगढ़ मैगजीन, जुलाई, 1930.

3- हबीब निजामी: दिल्ली सुल्तनत , पृ० 439.

4- पाण्डेय, ए०बी०: पूर्वमध्य कालीन भारत, पृ० 242.

१ कुव्वतुल इस्लाम१ §2§ दिल्ली से बराबर सिक्के ढाले जाने के प्रमाण मिल चुके हैं क्योंकि 1327, 1328, 1329 ई॰ के दिल्ली टकसाल के सिक्के उपलब्ध हैं । §3§ बहरामऐब॰ के विद्रोह के समय सुल्तान ने दिल्ली में ठहर कर पहले सेना एकत्रित की थी और बाद में वह वहीं दो वर्ष तक रहा था । अस्तु ऐसा प्रतीत होता है कि उसने दिल्ली को उत्तर भारत का प्रधान नगर बनाए रखते हुए दक्षिण भारत मालवा तथा गुजरात के लिए दौलताबाद को केन्द्रीय स्थल बनाना चाहा ।[1] इस प्रकार यह कहना कि मंगोलों के आक्रमण से बचाने के लिए मुहम्मद तुगलक ने दिल्ली के स्थान पर दौलताबाद को राजधानी बनाया तर्कसंगत नहीं हैं ।

पश्चिमोत्तर प्रान्तों के सुदृढ़ीकरण के लिए विजय योजनाएं

मुहम्मद तुगलक अलाउद्दीन के समान बड़ा महत्वाकांक्षी था । उसमें विशाल साम्राज्य निर्माण करने की महत्वाकांक्षा थी । वह भारत में ही नहीं अपितु भारत के बाहर भी अपने राज्य का विस्तार करना चाहता था ।

कालानूर व पशावर §पेशावर§ की विजय[2]

सिंहासनारोहण के तुरन्त बाद[3] मुहम्मद बिन तुगलक ने कालानूर तथा पेशावर की ओर कूच किया ।[4] संभवत: तरमाशीरीन के आक्रमण के उपरान्त उसे आरम्भ किया गया । उसने सैनिकों को एक वर्ष का अग्रिम वेतन देकर आदेश दिया कि वे सभी आवश्यक हथियार घोड़ों इत्यादि से लैस हों । तत्पश्चात् वह लाहौर की ओर चला और दो मास में वहां पहुँच गया । वह लाहौर में रूक गया

1- पाण्डेय, ए०बी०: पूर्व मध्य कालीन भारत, पृ. 242.
2- इसामी: फुतूहस्सलातीन, अनु॰ रिजवी तुगलक कालीन भारत भाग-1 पृ॰ 92
हबीब निजामी: दिल्ली सल्तनत पृ॰-429,
3- इसामी: फुतूहस्सलातीन, अनु॰ रिजवी॰ तुगलक कालीन भारत भाग-1 पृ॰ 92
4- इसामी: फुतूहस्सलातीन, अनु॰ रिजवी, तुगलक कालीन भारत भाग-1 पृ॰ 92

और उसने सेना को पेशावर की ओर बढ़ने का आदेश दिया । उसका उद्देश्य यह था कि सीमावर्ती क्षेत्रों में स्थित दुर्गों में मंगोलों के विरूद्ध सेना रखे जहां वे समस्त क्षेत्र के समानान्तर खाइयों में तैनात थे और भारतीय प्रदेश लूटा करते थे । इसामी कहता है, उस वर्ष पिछले वर्षों में जो हुआ था उसके विपरीत भारतीय सैनिकों ने मंगोल,प्रदेशों में लूटमार की ।[1] कलानौर तथा पेशावर पर अधिकार कर लिया गया और यहां सुल्तान के नाम का "खुत्बा" पढ़ा गया ।[2] चूंकि वहां खाद्यान्न उपलब्ध नहीं था । अतः सैनिकों को जीवन निर्वाह के लिए पशुओं के आखेट पर निर्भर होना पड़ा । ऐसी विषम परिस्थिति में शीघ्र ही सैनिकों का मन वहां से ऊब गया और वे लाहौर वापस आ गए जहां उनकी मुलाकात सुल्तान मुहम्मद बिन तुगलक से हुई । इस अवसर पर सुल्तान स्वयं लाहौर में लगभग तीन मास तक रूका, जिससे वह सीमावर्ती क्षेत्र को व्यवस्थित कर सके ।[3] इतना ही नहीं इस समय विद्रोही तत्वों को भी बुरी तरह रौंदा गया । इस प्रकार मुहम्मद बिन तुगलक ने दिल्ली सल्तनत को उत्तरी-पश्चिमी सीमा से उत्पन्न वाह्य समस्याओं से पर्याप्त समय के लिए मुक्त करा दिया ।

खुरासान अभियान:

मुहम्मद बिन तुगलक दिल्ली सल्तनत का विस्तार खुरासान पर भी करना चाहता था । खुरासान फारस या ईरान साम्राज्य का एक प्राचीन महत्वशाली प्रदेश रहा है । दिल्ली सुल्तानों के वंश के अनेक व्यक्ति अमीर और

1- इसामी: फुतूहुस्सलातीन, अनु. रिजवी, तुगलक कालीन भारत, पृ.-92
2- इसामी: फुतूहुस्सलातीन, अनु. रिजवी, तुगलक कालीन भारत,भाग-1पृ.92
3- इसामी: फुतूहुस्सलातीन, अनु. रिजवी, तुगलक कालीन भारत,भाग-1पृ.92

अधिकारी इस क्षेत्र से आये थे। इसलिए इस क्षेत्र के प्रति सुल्तान की विशेष अभिरूचि थी।[1] इस समय खुरासान का शासक अल्पवयस्क एवं अनुभवहीन था। उसका नाम इब्नसईद था। उसके दुराचार से खुरासान में अराजकता और अस्त व्यस्तता थी तथा विघटनकारी प्रवृत्तियां बलवती थीं।[2] फरिश्ता हमें सूचित करता है कि ईराक और खुरासान से बड़ी संख्या में राजकुमार और मलिक लोग सुल्तान के पास पहुँचे। उन्होने उसे विश्वास दिलाया कि ईरान और तूरान की विजय आसानी से हो जायेगी।[3] डा० के०ए० निजामी का कथन है कि चूँकि दक्षिण एशिया और फारस में उस समय एक राजनीतिक रिक्तता सी छायी हुयी थी, अतः मुहम्मद बिन तुगलक ने इस स्थित का लाभ उठाना चाहा ताकि उसने प्रभाव क्षेत्र का विस्तार हो सके।[4] उसी समय वंशगत, धर्मगत तथा व्यक्तिगत द्वेष के कारण तर्माशीरीन भी खुरासान पर आक्रमण करने की योजना बनाने लगा और उसने सुल्तान मुहम्मद तुगलक से सहायता मांगी।[5] मिस्त्र का शासक भी एक कट्टर सुन्नी था। अस्तु, तुर्माशीरीन ने सोचा कि मिस्त्र और भारत का सहयोग प्राप्त करके खुरासान पर अधिकार करना कठिन न होगा।[6] वस्तुतः सुल्तान मुहम्मद बिन तुगलक को मध्य एशिया की राजनीतिक उथल-पुथल का ठीक

1- पाण्डेय, ए०बी०: पूर्व मध्य कालीन भारत, पृ० 218-19

2- पाण्डेय, ए०बी०: पूर्व मध्य कालीन भारत पृ० 218-19

3- फरिश्ता: तारीखे फरिश्ता: अनु० रिजवी, तुगलककालीन भारत, भाग-1 पृ० 380.

4- हबीब निजामी: दिल्ली सुल्तनत पृ० 443-44

5- पाण्डेय, ए०बी० : पूर्व मध्य कालीन भारत- पृ० 219

6- पाण्डेय; पूर्व मध्य कालीन भारत, पृ० 219.

ज्ञान नहीं था और न ही उसने इस बात को गम्भीरतापूर्वक विचार किया कि आक्रमण की इस योजना में उसे किन भीषण कठिनाइयों का सामना करना पड़ सकता है । यदि उसे वहां की स्थिति का ज्ञान होता तो वह समझ सकता था कि खुरासान की आंतरिक स्थिति कितनी ही खराब क्यों न हो परन्तु इस पर विदेशी अधिकार होना या रह पाना अत्यन्त कठिन था[1] । इतना ही नहीं अपनी ही स्थिति पर यदि वह समुचित विचार करता तो उसे विदित हो जाता कि जब स्वदेश में विद्रोहों की झड़ी लगी थी, दोआब में अकाल और भुखमरी के कारण जनता में त्राहि-त्राहि मची हुयी थी तथा भारतीय सेना में न तो उलुग खाँ और जफर खां ऐसे सेनानी थे और न उस सेना में विदेश में सफल युद्ध संचालन के लिए अपेक्षित क्षमता एवं योग्यता थी तब विदेश विजय की कल्पना शेख चिल्लियों की सी बात थी ।[2] सियारूल औलिया में इस तथ्य का स्पष्ट उल्लेख है कि सुल्तान मुहम्मद तुगलक ने दिल्ली तथा निकटवर्ती प्रदेशों के समस्त विशिष्ट वर्ग एवं कुछ शेखों को बुलाकर खुरासान विजय के संदर्भ में परामर्श किया । इनमें मौलाना फखरूद्दीन जर्रादी मौलाना शम्सुद्दीन याहिया तथा शेख नासिरूद्दीन महमूद प्रमुख हैं । किन्तु इन लोगों ने इस विजय को असंभव एवं मूर्खतापूर्ण बताया ।[3] फिर भी सुल्तान मुहम्मद बिन तुगलक ने एक विशाल सेना के संगठन का आदेश दे

1- पाण्डेय० ए०बी०: पूर्व मध्य कालीन भारत, पृ० 219.

2- अमीर खुसरो: सियारूल औलिया, पृ० 271-73,
अनु० रिजवी, तुगलक कालीन भारत, भाग-1 , पृ० 147.

3- खुसरो, अमीर: सियरूल औलिया , पृ० 271-73
अनु० रिजवी तुगलक कालीन भारत, भाग- 1
पृ० 147-148.

दिया । बरनी के विवरण से इस सेना की निम्नलिखित विशेषतायें स्पष्ट होती हैं ।[1]

﴾1﴿ दीवाने अर्ज द्वारा दी गयी सूचना के अनुसार भर्ती की कुल संख्या 3,70,000 अश्वारोही थी ।

﴾2﴿ वेतन नकद या इक्ता दोनों ढंगों से दिया गया था ।

﴾3﴿ साज-सज्जा अर्थात् बाण, घोड़े इत्यादि के बेफिक्र खरीद के लिए भारी मात्रा में धन दिया गया था ।

﴾4﴿ उस सेना को एक वर्ष का वेतन दिया गया था और सोचा गया था कि प्राप्त लूट के माल से दूसरे वर्ष का व्यय किया जा सकेगा परन्तु सौभाग्य से इस सेना के जाने के पूर्व ही तर्माशीरीन स्वदेश में अपदस्थ हो गया और मिस्त्र के शासक ने अबू सईद से मित्रता कर ली । इस कारण सुल्तान मुहम्मद ने आक्रमण की योजना का परित्याग कर दिया ।[2] इस तथ्य पर सभी इतिहासकार एक मत हैं कि मुहम्मद तुगलक ने खुरासान अभियान का विचार त्याग कर बुद्धिमत्ता का परिचय दिया ।

खुरासान शब्द का प्रयोग प्रायः असावधानी से किया गया । इसलिए इसका निश्चित भौगोलिक क्षेत्र जो मुहम्मद तुगलक के विचार में था, निर्धारित करना कठिन हैं ।[3] इब्नबतूता कहता है कि भारत में सभी विदेशी खुरासानी कहलाते हैं ।[4]

1- हबीब निजामी: दिल्ली सुल्तनत, पृ0 442-43.

2- हबीब निजामी: दिल्ली सुल्तनत, पृ0 444, पाण्डेय ए0बी0: पूर्व मध्य कालीन भारत, पृ0 219.

3- हबीब एवं निजामी : दिल्ली सुल्तनत, पृ0 444

4- इब्नबतूता : रेहला, अनु0 रिजवी, तुगलक कालीन भारत, भाग-1, पृ0 217-218.

जियाउद्दीन बरनी खुरासान के साथ ईरान भी जोड़ देता है ।[1] फरिश्ता खुरासान में ईरान और तूरान दोनों का उल्लेख करता है ।[2] वास्तव में मुहम्मद बिन तुगलक का उद्देश्य खुरासान को विजित करना न हो कर दिल्ली सल्तनत की उत्तर पश्चिम सीमा को वैज्ञानिक आधार पर निर्धारित करना था । अभी तक हेलमन्द नदी से सिन्ध नदी का क्षेत्र कभी तो मंगोल आक्रान्ताओं के अन्तर्गत तो कभी कबाइली जातियों के अन्तर्गत रहा । मुहम्मद बिन तुगलक इस क्षेत्र को अधिकृत कर सल्तनत की सीमाएं संभवतः हेलमन्द नदी तक बढ़ाना चाहता था ताकि इस नदी को पार कर बाह्य आक्रमण कारी सिन्धु नदी तक न पहुंच पायें, पंजाब का उपजाऊ प्रदेश आक्रमणकारियों के वीभत्स आक्रमण से सुरक्षित रहे और उत्तर पश्चिम से होने वाले आक्रमणों का सुल्तान को सामना न करना पड़ सके तथा विदेशी जातीय तत्वों को भारत आने में कोई असुविधा न हो ।

नगर कोट विजयः-

नगर कोट का हिन्दु राज्य पंजाब के कांगड़ा जिले में था । यहां का अभेद्य दुर्ग अत्यन्त प्रसिद्ध था । हमेशा से यह शासन को चुनौती देता आया था । अलाउद्दीन के समय में भी यह दुर्ग हिन्दू राजा के अधिकार में था । यहां चीन के मंगोलों के लिए भारत की उत्तरी सीमा पर दबाव डालना संभव हो सकता था । अतः साम्राज्य की सुरक्षा की दृष्टि से इस क्षेत्र पर अधिकार करना आवश्यक था ।[3] सुल्तान ने 1 लाख सैनिकों सहित नगरकोट पर आक्रमण किया, स्थानीय राजा को पराजित किया ।[4] परन्तु सुल्तान ने उसको सन्तुष्ट रखने के उद्देश्य से दुर्ग उसे वापस कर दिया और वहां के सुविख्यात ज्वालामुखी मंदिर को पूर्ववत् सुरक्षित रहने दिया ।

1- बरनीःतारीखे फीरोजशाही, अनु॰ रिजवी॰ तुगलककालीन भारत, भाग-1, पृ॰ 45,
2- फरिश्ताःतारीखे फरिश्ता; अनु॰ रिजवी, तुगलक कालीन भारत-भाग-1, पृ॰ 380
3- पाण्डेय, ए॰बी॰ःपूर्व मध्यकालीन भारत, पृ॰-220,
4- बरनीः तारीखे फीरोजशाही, पृ॰ 483 एवं अफीफ तारीखे फीरोजशाही- पृ॰-185-89॰

करा़जल का अभियान-

कराजल क्षेत्र हिमालय की तराई में स्थित था । वास्तव में इस क्षेत्र पर विजय अभियान सुल्तान की एक विस्तृत नीति का अंग था जिसके अन्तर्गत वह उत्तर में सुरक्षा व्यवस्था की कड़ी को पूरा करना चाहता था । इब्न बतूता के अनुसार हिमालय की तराई के राज्य जो न तो विशेष समृद्ध थे और न आसानी से जीते जा सकते थे, चीन के प्रभाव में आ सकते थे और इस तरह चीन के मंगोलों के लिए देश की उत्तरी सीमा पर दबाव डालना संभव हो सकता था ।[1] अतः मुहम्मद तुगलक ने साम्राज्य की सुरक्षा की दृष्टि से उन्हें अपने प्रभाव क्षेत्र में लेना चाहा । बरनी ने कराजल अभियान में सुल्तान के उद्देश्य को इन शब्दों में प्रकट किया है- "सुल्तान ने सोचा कि चूँकि खुरासान तथा मावरा-उन्नहर के विजय की योजना बनायी जा रही है । अतः कराजल पर्वत को जो हिन्दुस्तान तथा चीन के निकट के मार्ग के मध्य में है, इस्लामी पताकाओं द्वारा विजय कर लिया जाय ताकि सेना के लिए घोड़े प्राप्त करने और सैनिक अभियानों में सुगमता हो ।[2] प्रो. के.ए. निजामी ने बरनी के इस कथन से असहमति प्रकट की है कि कराजल का अभियान खुरासान विजय से सम्बन्धित था । उनका मत है कि चूँकि हिमालय खुरासान अभियान के मार्ग में बाधक नहीं था । अतः बरनी का कथन कोई अर्थ नहीं रखता ।[3] फरिश्ता ने चीन को सुल्तान के कराजल अभियान का अन्तिम लक्ष्य माना है ।[4] किन्तु फरिश्ता के इस मत की पुष्टि किसी अन्य स्रोत से नहीं होती । सभी ऐतिहासिक स्रोतों के विश्लेषण से सुल्तान का वास्तविक उद्देश्य यही प्रतीत होता है कि

1- इब्न बतूता: रेहला, पृ.-98, अनु. रिजवी, तुगलक कालीन भारत, भाग-1 पृ.-218,
2- बरनी, जियाउद्दीन: तारीख-ए-फीरोजशाही, अनु. रिजवी, तुगलक कालीन भारत, भाग-1, पृ.-40,
3- हबीब निजामी: दिल्ली सुल्तनत, पृ.-444-45,
4- फरिश्ता: तारीख-ए-फरिश्ता, अनु. रिजवी, तुगलक कालीन भारत, भाग-1 पृ.-380

वह उस क्षेत्र के सामरिक महत्त्व की दृष्टि से कराजल को विजित करना चाहता था और पर्वतीय क्षेत्र के सरदारों को सल्तनत के प्रभाव क्षेत्र में लाने का इच्छुक था

कराजल पर आक्रमण के लिए सुल्तान ने दस हजार सैनिकों की एक शक्तिशाली सेना अपने भांजे खुशरो मलिक, इब्नबतूता जिसका नाम मलिक नुकबिया लिखता है, के नेतृत्व में भेजा[2]। यद्यपि कराजल पर विजय प्राप्त हुई, पर यह विजय हार से भी अधिक विनाशकारी सिद्ध हुई। बरनी के शब्दों में सुल्तान ने आदेश दिया कि समस्त सेना कराजल पर्वत के बीच के स्थानों पर विजय प्राप्त कर ले। इस आदेश के अनुसार समस्त सेना ने कराजल पर्वत की ओर प्रस्थान किया और उसके अन्तर्गत प्रविष्ट होकर भिन्न-भिन्न स्थानों पर पड़ाव डाल दिया। कराजल के हिन्दुओं ने वापसी के मार्ग की घाटियों पर अधिकार कर लिया। और इस प्रकार उस पर्वतीय क्षेत्र में समस्त सेना का बिनाश हो गया। इतनी बड़ी सुव्यवस्थित तथा चुनी हुई सेना में से केवल दस सवार सैनिक लौट सके।[3] इसामी के अनुसार सुल्तान ने एक लाख सेना भेजी, जिसमें से केवल 5-6 हजार ही लौट सके।[4] डा० के० ए० निजामी के अनुसार सुल्तान ने मलिक खुसरो को आदेश दिया था कि अभियान के दौरान जदिया विजय के बाद सेना तिब्बत की ओर आगे न बढ़े।[5] सुल्तान ने इस बारे में भी विस्तार से आदेश दिये थे कि सैन्य संचालन किस सीमा तक किया जाना है। सैनिकों को कहाँ-कहाँ रुकना है और सारे रास्ते में सैनिक चौकियाँ कहाँ-कहाँ

1- हबीब निजामी: दिल्ली सुल्तनत, पृ. 445,

2- इब्नबतूता: रेहला, अनु. रिजवी, तुगलक कालीन भारत, भाग-1 पृ. 218,

3- बरनी: तारीखे फीरोजशाही, अनु. रिजवी, तुगलक कालीन भारत, भाग-1, पृ.-46,

4- इसामी: फुतुहुस्सलातीन, अनु. रिजवी, तुगलक कालीन भारत, भाग-1, पृ.-105-6,

5- निजामी, के.ए.: आपसिट, पृ.-522,

स्थापित करनी है ताकि फौज को सामान की पूर्ति नियमित रूप से होती रहे । लेकिन जदिया जीत लेने के बाद मलिक खुशरों ने सुल्तान के आदेश को भुलाकर आगे तिब्बत की ओर प्रस्थान कर दिया । इस तरह अनजाने में उसने वही गलती दुहरायी जो 13वीं शताब्दी में मुहम्मद बिन बख्तियार खिल्जी ने की थी । सेना के आगे बढ़ने के कुछ ही समय बाद वर्षा शुरू हो गयी और फौज में बीमारी फैल गयी । ऐसे में पर्वतीय लोगों ने बड़े-बड़े शिलाखण्ड लुढ़काये और दिल्ली की फौजों को नष्ट कर दिया ।

सेना के विनाश के लिए वास्तव में सुल्तान को दोष देना उपयुक्त नहीं होगा । क्योंकि खुशरों मलिक के अनुचित उत्साह ने सेना को पहाड़ियों के चंगुल में फंसा दिया । सुल्तान को सेना के विनाश के बावजूद आशा के अनुरूप राजनीतिक परिणाम प्राप्त हुए, क्योंकि इब्नबतूता के अनुसार सुल्तान ने इस शर्त पर पर्वतीय निवासियों से शान्ति सन्धि की कि उसको एक निश्चित धनराशि अदा करेंगे ।[1] दूसरे शब्दों में पहाड़ी तराई के इन लोगों ने सुल्तान का प्रभुत्व स्वीकार कर लिया ।

परन्तु इतने के बावजूद सुल्तान को दोषमुक्त नहीं किया जा सकता क्यों कि सैनिक योजना पूर्णतः व्यवस्थित और सुविचारित नहीं थी और संभवतः योग्य सेनापतियों का कुशल नेतृत्व भी उसे प्राप्त नहीं था । कराजल अभियान के विनाश कारी परिणाम हुए । क्योंकि जनता का असन्तोष और भी बढ़ गया, सुल्तान की सैनिक निर्बलता उजागर हो गयी जिससे विद्रोही तत्वों को बल मिला एवं साम्राज्य की सैनिक शक्ति को इतना आघात पहुँचा कि बाद में किसी भी शत्रु के विरूद्ध शक्ति शाली सेना संगठित नहीं की जा सकी ।

1- निजामी: के.ए.-आपसिट-पृ.-522,
इब्नबतूता: रेहला, अनु. रिजवी, तुगलक कालीन भारत, भाग-1
पृ.-218,

मुहम्मद तुगलक के समय के विद्रोह

मुहम्मद तुगलक सन् 1321 ई॰ में गद्दी पर बैठा । मात्र 5 वर्षों बाद ही 1326-27 से विद्रोहों का सिलसिला शुरू हुआ और सन् 1351 में उसकी मृत्यु तक लगभग 22 विद्रोह हुए[1] । ये विद्रोह साम्राज्य भर में हुए, जिनका प्रसार उत्तर पश्चिम में मुल्तान से पूर्व में बंगाल और दक्षिण में माबर तक था ।[2] इन विद्रोहों ने उत्तरी-पश्चिमी सीमा को बहुत ही कमजोर बना दिया और पश्चिमोत्तर प्रान्त लगभग स्वतन्त्र रहने लगे ।[3]

मुल्तान में किशलू खाँ का विद्रोह[4]

§1328ई॰§- दक्षिण में बहाउद्दीन गुर्शास्प के विद्रोह §1326ई॰§ का दमन करने के उपरान्त दक्षिण के प्रशासन को सुव्यवस्थित करने के लिए दौलताबाद में एक दूसरे प्रशासनिक तन्त्र §तथा कथित राजधानी§ का निर्माण किया गया । बहाउद्दीन की जीवितावस्था में ही खाल खिंचवा ली गयी और उसमें भूषा भरवा कर उसे साम्राज्य भर में घुमवाया गया।[5] प्रत्येक प्रधान नगर में राजकीय उद्घोषक बाजार में खड़ा होता और भीड़ को एकत्रित करके कहता-देखो राज्य के शत्रु इसी प्रकार विनष्ट होंगे । बहाउद्दीन का मांस चावल के साथ पकवाया गया और उसके सम्बन्धियों के पास भेजा गया ।[6] अन्त में कुत्ते बिल्लियों ने उसका मांस

1- पाण्डेय,ए०बी०: पूर्व मध्य कालीन भारत, पृ॰-221,

2- श्रीवास्तव,ए०एल०: दिल्ली सल्तनत्-पृ॰-195,

3- श्रीवास्तव,ए०एल०: दिल्ली सल्तनत्-पृ॰-195,

4- बदायूँनी: मुन्तखबुत्तवारीख, भाग-1,अनु॰ रिजवी,तुगलक कालीन भारत, भाग-1, पृ॰-36/ 728 हि॰ §1327-28 ई॰§

5- इब्नबतूता: रेहला,अनु॰ रिजवी,तुगलक कालीन भारत,भाग-1,पृ॰216,

6- इब्नबतूता: रेहला,अनु॰ रिजवी,तुगलक कालीन भारत,भाग-1,पृ॰216,

खाया । मुहम्मद तुगलक समझता था कि इस प्रकार के दण्ड को सुनकर अन्य लोग विद्रोह करने का ध्यान छोड़ देगें, पर यह आशा पूरी न हो सकी । इब्न बतूता कहता है कि जब गुर्शस्पकी भूसा भरी खाल मुल्तान पहुँची तो किश्लू खाँ ने इस्लामी पद्धति के अनुसार इसे दफना दिया । यह कार्य सुल्तान को पसन्द नहीं आया । और तब उसेन किश्लू खाँ को जिसने उसे राज्य प्राप्ति में सहायता दी थी, दरबार में उपस्थित होने का आदेश दिया । किश्लू खाँ ने दण्डित होने के भय से विद्रोह करदिया ।[1] यहया के अनुसार राजधानी परिवर्तन के उपरान्त सुल्तान ने राज्य के अमीरों को आदेश दिया कि वे अपने परिवारों को नयी राजधानी में भेज दें और वहाँ अपने लिए मकान बनवा लें । बहराम अथवा (किश्लू खाँ) ने आदेश की अवहेलना की । उसे समझाने के लिए अली खताति नामकव्यक्ति को भेजा गया किंतु किसी बात पर किश्लू खाँ के दामाद से झगड़ा हो जाने से वह मारा गया । किश्लू खाँ ने सुल्तान के दण्ड से भयभीत होकर विद्रोह कर दिया ।[2]

विद्रोह का समाचार पाते ही सुल्तान दौलताबाद से दिल्ली की ओर चल पड़ा और वहाँ से सेना लेकर मुल्तान जा पहुँचा ।[3] पर चूँकि किश्लूखाँ की सेना कहीं अधिक प्रबल थी । अतः सुल्तान ने सैनिक कौशल कापरिचय देते हुए अपने चार हजार चुने हुए सैनिकों को छिपाकर शेष सेना को आक्रमण करने का आदेश दे दिया ।[4] किश्लू खाँ की सेना के प्रचण्ड आक्रमण से शाही सेना भाग खड़ी हुई । और जब विजय के नशे में फूलकर किश्लू खाँ ने अपने सैनिकों को लूटमार का आदेश दिया तभी सुल्तान ने छुपे हुए सैनिकों के साथ उस पर तेजी से हमला किया । किश्लू खाँ की सेना बिखर चुकी थी । अतः सुल्तान की जीत हुई । किश्लू का सिर काटकर

1- इब्नबतूता, रेहला, अनु. रिजवी, तुगलक कालीन भारत भाग-1, पृ. 217,

2- यहया, मुन्तखबुत्तवारीख, अनु. रिजवी, तुगलक कालीन भारत, भाग-1, पृ. -361,

3- बरनी, तारीख-ए-फीरोजशाही, अनु. रिजवी, तुगलक कालीन भारत, भाग-1, पृ. -47,

4- इब्नबतूता, रेहला, अनु. रिजवी, तुगलक कालीन भारत, भाग-1, पृ. 217,

सुल्तान के सामने लाया गया । तत्पश्चात् सुल्तान ने विद्रोह के लिए सारे मुल्तान को उत्तरदायी मानकर सभी नागरिकों की हत्या का आदेश दिया । कत्लेआम शुरू हो गया । पर सौभाग्यवश जब यह बात शेख रूक्नुद्दीन जो कि शेख बहाउद्दीन ज़कारिया के पौत्र थे, को मालूम हुआ तो वे नंगे पांव नंगे सिर सुल्तान के पास पहुँचे और उसने नागरिकों की ओर से क्षमा मांगी ।[1] सुल्तान का रोष शान्त हो गया और उसने जनता को क्षमा कर दिया । किश्लू खाँ का सिर उस मकान के द्वार पर टांग दिया गया, जहाँ सुल्तान ठहरा हुआ था । जब इब्नबतूता भारत आया तो उसने वह सिर उसी द्वार पर टंगा हुआ देखा ।[2]

सिंध विद्रोह:-

सिंध का प्रथम विद्रोह 1328 ई. में कमालपुर निवासियों द्वारा किया गया ।[3] इस विद्रोह के नेता कमालपुर के "काजी" तथा "खतीब" थे । सुल्तान ने ख्वाजएजहाँ को इस विद्रोह के दमनार्थ भेजा । इब्नबतूता लिखता है कि विद्रोही पराजित हुए और काजी तथा खतीब वजीर के समक्ष लाए गए और उसने उनकी जीवित खाल उतरने के आदेश दे दिया । उन्होंने कहा "हमें अन्य किसी प्रकार मारो ।" वजीर ने उससे प्रश्न किया तुम्हारी हत्या क्यों की जा रही है, उन्होंने उत्तर दिया," सुल्तान की अवज्ञा के कारण," इस पर वजीर ने उत्तर दिया तब मैं कैसे सुल्तान की आज्ञा के विपरीत कार्य कर सकता हूँ, उसने मुझे तुम्हें इसी भाँति मारने की आज्ञा दी है ।

1- इसामी: फुतूहुस्सलातीन, अनु. रिजवी, तुगलक कालीन भारत भाग-1पृ.98
बरनी: तारीख-ए-फीरोजशाही, अनु. रिजवी, तुगलक कालीन भारत भाग-1, पृ. -47,

2- इब्नबतूता: रेहला, अनु. रिजवी, तुगलक कालीन भारत भाग-1, पृ. -217,

3- इब्नबतूता: रेहला, अनु. रिजवी, तुगलक कालीन भारत भाग-1, पृ. -217,

सिंध का द्वितीय विद्रोह सन् 1333ई.में सेहवान में हुआ । इब्नबतूता जो इसी वर्ष सेहवान पहुँचा था विद्रोहियों के शव नगर के परकोटे में गड़ी हुई कीलों से लटकते हुए पाया । अतः यह विद्रोह अवश्य ही इसी साल किसी समय हुआ होगा । वहाँ का शासक रतन नामक हिन्दू था । उसे "अजीम-उस्सिंध" की पदवी दी गई थी । कुछ मुसलमान उससे ईर्ष्या करते थे । उन्होंने एक दिन झूठ-मूठ चोरों के आक्रमण का शोर मचाया और जब रतन तथाकथित चोरों को पकड़ने के लिए निकला तथा उनसे युद्ध आरम्भ किया तब इन लोगों ने घेर कर उसे मार डाला । इन विद्रोहियों में वुनार तथा क़ैसरे रूमी का नाम प्रमुख है । इन दोनों ने समस्त सरकारी सम्पत्ति पर, जिसका मूल्य लगभग 12 लाख था, अधिकार कर लिया । वुनार मलिक फिरोजों के नाम से प्रसिद्ध हुआ । उसने एक विशाल सेना भर्ती की । सुल्तान मुहम्मद बिन तुगलक ने विद्रोह को दबाने के लिए मुल्तान के राज्यपाल इमादुलमुल्क सर्तेज को भेजा । इमादुलमुल्क के पहुँचते ही वुनार भाग खड़ा हुआ । अब क़ैसरे रूमी ने विद्रोही कमान संभाली । परंतु वह भी इमादुलमुल्क द्वारा पराजित हुआ । वुनार एवं क़ैसरे रूमी के साथ अन्य विद्रोही पकड़ लिए गए और उनकी खाल खिंचवाकर उसमें भूसा भरवाया गया । उनकी भूसाभरी लाशों को किले के फाटक पर तथा दीवालों के सहारे उनको लटकवा दिया गया । इब्नबतूता लिखता है कि उसने जब रात के समय इनको अंधेरे में लटकते हुए देखा तो वह भूत के भय से बहुत डर गया ।[1]

1- इब्नबतूताः रेहला, अनु. रिजवी, तुगलक कालीन भारत, भाग-1पृ.-200, रिजवी ने इस आक्रमण की तिथि 734 हि. (1333 ई.) लिखा है ।

लाहौर में हलाजून का विद्रोह

मलिक हलाजून ने जो लाहौर का मुगल अमीर था, सुल्तान की परेशानियों का लाभ उठाकर, अपनी स्वतंत्रता घोषित कर दी और गक्खरों के प्रधान गुलचन्द को अपना मुख्य परामर्शदाता नियुक्त किया ।[2] इन लोगों ने लाहौर के मुक्ता तातार खाँ की जो सुल्तान द्वारा नियुक्त था, कि हत्या कर दी । यह समाचार वजीर ख्वाजा जहाँ को प्राप्त हुआ । वह समस्त खुरासानियों तथा उस सेना को जो उस समय दिल्ली में थी, एवं अन्य अधिकारियों को लेकर लाहौर की ओर चल पड़ा । सुल्तान ने भी ख्वाजा जहाँ की मदद के लिए कुछ अमीरों को नियुक्त कर दिया । एक बड़ी नदी के किनारे जिसे बी.एस. निज्जर ब्यास लिखते हैं[3] दोनों सेनाओं का युद्ध हुआ । हलाजून पराजित हुआ । वह भाग गया । उसकी सेना का बहुत बड़ा भाग नदी में डूब कर नष्ट हो गया । ख्वाजा जहाँ ने लाहौर में प्रवेश किया जहाँ उसने विद्रोहियों की खाल खिंचवा ली । कुछ लोगों की अन्य प्रकार से हत्या करवा दी । लोगों की हत्या कराने काकार्य मुहम्मद बिन (पुत्र) नजीब नायब वजीर ने कराया जो रक्तपायी एवं अत्यधिक निष्ठुर स्वभाव का था । इब्नबतूता लिखता है कि विद्रोहियों की लगभग 300 विधवाएं ग्वालियर किले में भेज दी गईं ।[4]

उपर्युक्त विद्रोह की तिथि यहया ने 743 हि॰ (1342-43 ई॰) बताया है ।[5] बदायूँनी ने भी यहया की तिथि की पुष्टि की है ।[6] किंतु एस॰ए॰ए॰ रिजवी

1- रिजवी, एस॰ ए॰ ए॰; तुगलक कालीन भारत भाग-1, पृ॰-219 में आक्रमण की तिथि 1335 ई॰ लिखा है ।

2- इब्नबतूता, रेहला, अनु॰ रिजवी, तुगलक कालीन भारत, भाग-1, पृ॰-219,

3- निज्जर, बी॰ एस॰, पंजाब अण्डर दि सुल्तान्स, पृ॰-55-56,

4- इब्नबतूता, रेहला, अनु॰ रिजवी, तुगलक कालीन भारत, भाग-1, पृ॰-213-20,

5- यहया, तारीख-ए-मुबारक शाही अनु॰ रिजवी, तुगलक कालीन भारत, भाग-1 पृ॰-345,

6- बदायूँनी, मुन्तखबुत्तवारीख, अनु॰ रिजवी, तुगलक कालीन भारत, भाग-1, पृ॰-364,

ने इस विद्रोह की तिथि 1335 ई. माना है ।

शाहू अफ़गान का विद्रोह

यह विद्रोह 742 हि. (1341 ई.) में हुआ ।[2] शाहू अफगान ने मुलतान के राज्यपाल बहज़ाद का बध कर दिया और स्वयं सुल्तान बन बैठा ।[3] उससे निपटने के लिए मुहम्मद बिन तुगलक ने दिल्ली से कूच किया । मार्ग में ही उसे अपनी माता मखदूमए जहाँ की मृत्यु का समाचार मिला, किंतु शोकाकुल होते हुए भी उसने अपनी यात्रा जारी रखी । दीपालपुर के समीप उसे ज्ञात हुआ कि शाहू सुल्तान की शक्ति से डरकर अफ़गानिस्तान भाग गया है । इब्नबतूता "अफ़गानों के स्वदेश" का अर्थ खम्बायत, गुजरात तथा नहरवाला बताता है, जहाँ अफगान रहते थे । सुल्तान को इस पर बड़ा क्रोध आया, उसकी यह नीति नहीं थी कि वह विद्रोही को सहन करे । उसने साम्राज्य के सभी अफ़गानों को बन्दी बना लिए जाने के आदेश दिए ।

हिन्दू रयूयतों का विद्रोह (1343 ई.)

कुहराम सुनाम तथा समाना के प्रधानों ने सुल्तान के विरूद्ध सन् 1343 ई. में विद्रोह कर दिया ।[4] इस विद्रोह का मूल कारण था किसानों द्वारा भू-राजस्व न देना और कृषि कार्य स्थगित कर देना । इन लोगों ने अपने गाँव खाली

1- रिजवी, एस. ए. ए., तुगलक कालीन भारत, भाग-1, पृ.-219,

2- आगा मेंहदी हुसैन: दि राइज एण्ड फॉल आफ मुहम्मद बिन तुगलक, पृ. 180
यहया ने यह तिथि 744 हि. (1343-44) मानी है, रिजवी, पृ.-345,

3- बरनी: तारीख-ए-फीरोजशाही, अनु. रिजवी, तुगलक कालीन भारत, भाग-1 पृ.-51,
इब्नबतूता: रेहला, अनु. रिजवी, तुगलक कालीन भारत, भा. 1, पृ. 229,
सरहिंदी, यहया: तारीखे मुबारकशाही, अनु. रिजवी, तुगलक कालीन भारत-भाग-1, पृ.-345,

4- बरनी: तारीखे फीरोजशाही, अनु. रिजवी, तुगलक कालीन भारत, भा. 1 पृ.52
यहया: तारीखे मुबारकशाही, अनु. रिजवी, तुगलककालीन भारत, भा. 1 पृ. 345

कर दिए थे और बहुत बड़ी संख्या में जंगलों में एकत्रित हो गए, जहाँ से राहजनी और लूट मार का कार्य करने लगे । विद्रोही कांगड़ा जिले तक फैल गए । सुल्तान व्यक्तिगत रूप से एक विशाल सेना के साथ विद्रोहियों के विरूद्ध कैथल एवं कुहराम होते हुए बढ़ा । सुल्तान ने विद्रोहियों के शिविर को नष्ट कर दिया एवं लूटा । विद्रोही टुकड़ियों को छिन्न-भिन्न कर दिया गया और नेताओं को उचित दंड दिया गया । उनके पैतृक भूमि को जब्त कर लिया गया और वे दिल्ली लाये गए जहाँ उन्हें इस्लाम स्वीकार करने के लिए बाध्य किया गया । तत्पश्चात् उनकी भूमि उन्हें वापस कर दी गई ।[1]

तगी का विद्रोह एवं थट्टा अभियान

तगी तुर्किस्तान से आया हुआ एक तुर्की दास था जो सुल्तान मुहम्मद की कृपा से ही दरबार का निरीक्षक नियुक्त हुआ था ।[2] पर यह स्वामिभक्त न हो सका । जिस समय सुल्तान दौलताबाद के विद्रोह से निपटने के लिए दक्षिण की ओर था, तगी "मुकद्दमों" और गुजरात के अमीराने साधा से मिल गया और विद्रोह की पताका फहरा दी ।[3] उसने गुजरात के गवर्नर का बध कर दिया, अन्हिलवाड़ा तथा खम्बात पर अधिकार कर लिया और भड़ौंच पर आक्रमण किया। उसके समर्थकों की संख्या बराबर बढ़ती गई और उसने अन्हिलवाड़ा तथा खम्बात

1- सरहिन्दी, यहया: तारीखे मुबारकशाही, अनु. बसु के.के., पृ.-106,

2- हबीब-निजामी: दिल्ली सल्तनत, पृ.-466,

3- बरनी: तारीख-ए-फीरोजशाही, अनु. रिजवी. तुगलक कालीन भारत, भाग-1, पृ.-75,
इसामी: फुतूहुस्सलातीन, अनु. रिजवी, तुगलक कालीन भारत, भाग1, पृ. 139

से प्राप्त धन का उपयोग करके एक विशाल सेना तैयार कर ली । सुल्तान ने जैसे ही यह समाचार प्राप्त किया वह स्वयं भड़ौंच की ओर बढ़ा परन्तु तगी ने सामना करने के स्थान पर पीछे हट जाना उचित समझा । खम्बात तथा अन्हिलवाड़ा के पास भीषण संग्राम हुए, और तगी को अन्त में सिंध में थट्टा के जाम के पास शरण लेनी पड़ी ।[1] गुजरात रूककर सुल्तान ने वहाँ की प्रशासनिक स्थिति को व्यवस्थित किया । सुल्तान ने अहमद अयाज तथा मलिक मकबूल नायब वजीर को दिल्ली भेजा तथा भारी संख्या में शेख उलमा, मलिक तथा अमीर उनके परिवार घोड़ों और पैदल सैनिकों सहित बुलवाए । सैनिकों से भरी नावें दीपालपुर, मुलतान, उच्छ और सिविस्तान से उसके पास आईं । मावरा उन्नहर के शासक अमीर कजमान ने अल्तून बहादुर के नेतृत्व में चार या पाँच हजार मंगोल अश्वारोही भेजे । इस प्रकार सुल्तान ने एक विशाल सेना सहित थट्टा की ओर कूच किया ।[2]

थट्टा के निकट पहुँचकर सुल्तान बुरी तरह बीमार पड़ गया । फिर भी वह बिना अपने स्वास्थ्य की परवाह किए लगातार दो दिन तक नदी में यात्रा करता रहा । उसकी बीमारी बढ़ गई । वह सोंदा नामक एक गाँव के निकट उतरा और एक सप्ताह के पश्चात्, 21 मुहर्रम, 752 हि. यानि की 20 मार्च 1351 को उसकी मृत्यु हो गई ।[3] इस प्रकार सुल्तान मुहम्मद बिन तुगलक की जीवन लीला उत्तरी-पश्चिमी सीमा समस्या के समाधान के दौरान ही समाप्त

1- इसामी: फुतुहूस्सलातीन, अनु. रिजवी, तुगलक कालीन भारत, भाग-1 पृ.139
बरनी: तारीखे फीरोजशाही, अनु. रिजवी, तुगलक कालीन भारत, भा. 1 पृ. 77

2- बरनी: तारीखे फीरोजशाही, अनु. रिजवी, तुगलक कालीन भारत, भा. 1 पृ.80

3- आगा मेंहदी हुसैन: राइज एण्ड फाल आफ दि मुहम्मद बिन तुगलक पृ.164-65
हक, एस. एम.: बर्नीज हिस्ट्री आफ तुगलक, पृ.-76,
फरिश्ता: तारीखे फरिश्ता, अनु. ब्रिग्स, भाग-1, पृ.-425,

हो गई । यद्यपि मुहम्मद बिन तुगलक ने सल्तनत को उत्तरी-पश्चिमी सीमा से आने वाले वाह्य संकट से, मैत्री संधि के माध्यम से, बचाये रखा । तर्माशीरीन के अतिरिक्त ईराक के शासक मूसा, ख्वारिज्म कीरानी तुराबक और चीन के सम्राट तोगन तैमूर ने भारत से कूटनीतिक सौहार्द स्थापित करने के लिए दूत भेजे थे ।[1] सुल्तान मुहम्मद ने भी विदेशियों का बहुत अधिक सम्मान किया और इब्न बतूता को अपना दूत बनाकर चीन भेजा था । किंतु वह अपनी सल्तनत के ही पश्चिमोत्तर प्रान्तों को नियन्त्रित करने के लिए सदैव संघर्षरत रहा और इसी संघर्ष में उसकी जीवन लीला भी समाप्त हो गई ।

फीरोज शाह तुगलक

फीरोजशाह तुगलक 24 मुहर्रम 753 हिजरी अर्थात् 23 मार्च, 1351 ई. को सिंहासनारूढ़ हुआ ।[2] उस समय वह थट्टा के निकट शाही शिविर में था जहाँ सुल्तान मुहम्मद तुगलक की मृत्यु से सेनानायकों और सैनिकों में निराशा व्याप्त थी और तग़ी के विरूद्ध अभियान में सहायता के लिए एकत्रित वैतनिक मंगोल सैनिक भी उत्पात मचाने तथा शाही शिविर को लूटने में लगे थे ।[3] बरनी के अनुसार मुहम्मद तुगलक अपनी मृत्यु से कुछ ही वर्ष पूर्व तीन विश्वासपात्र व्यक्तियों को चुन चुका था जिनका सम्मान उसने अपने सभी मलिकों, अमीरों औरसहायकों की अपेक्षा कहीं अधिक बढ़ा दिया था ।[4] इनमें पहला मलिक कबूल खलीफती था जिसका निधन मुहम्मद के

1- पाण्डेय, ए0बी0: पूर्व मध्य कालीन भारत, पृ.220

2- अफीफ: तारीख-ए-फीरोजशाही, अनु. रिजवी, तुगलक कालीन भारत, भाग-2, पृ.-56,

3- बनर्जी, जे.एम.: हिस्ट्री आफ फीरोजशाह तुगलक, पृ.4

4- बरनी: तारीख-ए-फीरोजशाही, अनु. रिजवी, तुगलक कालीन भारत, भाग-2, पृ.-5,

जौहरी, आर.सी.: फीरोज तुगलक, पृ.-10-11,

जीवन काल में ही हो गया था । दूसरा ख्वाजा जहाँ अहमद अय्याज था जो वजीर था और मुहम्मद तुगलक की मृत्यु के समय लगभग 84 वर्ष का वृद्ध हो चुका था । तीसरा उसका चचेरा भाई फीरोज था जिसे मुहम्मद ने अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया था ।[1] बरनी के अनुसार मुहम्मद तुगलक की बीमारी में फीरोज ने उसकी बहुत सेवा-सुश्रूषा की थी । राजधानी से बहुत दूर थट्टा के निकट शाही शिविर में मुहम्मद तुगलक की 20 मार्च, 1351 ई॰ को मृत्यु हो जाने के बाद सभी उपस्थित अमीरों, मलिकों और विशिष्ट व्यक्तियों ने फीरोज को सुल्तान पद पर आरूढ़ किया । मुहम्मद के उत्तरा-धिकारी के निर्वाचन के लिए जो सभा हुई उसमें शेख नासिरूद्दीन अवधी चिराग -ए-देहलवी ने फीरोज का नाम प्रस्तावित किया, खलीफा अल्मुस्तसिर बिल्ला के वंशज गयासुद्दीन ने प्रस्ताव का अनुमोदन किया और निर्वाचन सभा ने पर्याप्त विचार विमर्श के पश्चात फीरोज को उत्तराधिकारी घोषित कर दिया । अमीरों के सहमत हो जाने पर भी जब फीरोज ने सुलतान बनने में आनाकानी की तो अफीफ के अनुसार "तातार खाँ; ने जो सब लोगों में अधिक वृद्ध था, खड़े होकर जबरदस्ती सुल्तान फीरोज को राजसिंहासन पर बिठा दिया । सुल्तान ने नमाज पढ़ी, ईश्वर से सहायता की प्रार्थना की और राजमुकुट धारण किया । किंतु सुल्तान फीरोज ने मुहम्मद तुगलक के निधन के शोक वस्त्र न उतार कर राजसी वस्त्रों को उन्हीं वस्त्रों पर पहन लिया ।"[2] अमीरों ने फीरोज के निर्वाचन को अधिक पुष्ट करने के उद्देश्य से यह भी कहा कि मुहम्मद तुगलक ने अपने अंतिम

1- बरनी: तारीख-ए-फीरोजशाही, अनु॰ रिजवी, तुगलक कालीन भारत-भाग-2, पृ॰-6
जौहरी, आर॰सी॰: फीरोज तुगलक, पृ॰-12,

2- अफीफ: तारीख-ए-फीरोजशाही, अनु॰ रिजवी, तुगलक कालीन भारत-भाग-2, पृ॰-56,

वसीयतनामें में फीरोज को ही उत्तराधिकारी नियुक्त किया था ।[1]

सुलतान बनते ही फीरोज ने सेना को व्यवस्थित किया और तीसरे ही दिन उसने मंगोलों के विरूद्ध शक्तिशाली आक्रमण का आदेश दे दिया[2] और बहुत से मंगोल बन्दी बना लिए गए । जिन लोगों को मंगोलों ने बन्दी बना लिया था उन्हें मुक्त कर दिया गया । न केवल मंगोलों का उत्पात समाप्त हो गया बल्कि "थट्टा के उपद्रवी भी परास्त होकर वापस चले गये ।" यह सफलता प्राप्त कर सुलतान ने सेना सहित दिल्ली की ओर प्रस्थान किया और ख्वाजा निजामुद्दीन अहमद के अनुसार, सुलतान 2 रजब 752 हि॰ अर्थात् 25 अगस्त 1351 ई॰ को स्थायी रूप से दिल्ली के राजसिंहासन पर आरूढ़ हुआ ।[3]

सुलतान फीरोज एक शांतिप्रिय शासक था जिसे युद्ध से स्वाभाविक घृणा थी । अतः अपने शासनकाल में उसने विजय अभियानों को अधिक महत्व नहीं दिया, हालाँकि उसका यह प्रयत्न रहा कि साम्राज्य से पृथक हुए भागों को पुनः विजित करे । दुर्भाग्यवश उसे उस कार्य में विशेष सफलता नहीं मिली और अनेक अभियानों में तो वह बहुत ही अयोग्य प्रमाणित हुआ । सुलतान का यह विचार था कि केवल अपनी महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए ही हजारों मुसलमानों को कटवा देना अनैतिक और अधार्मिक कार्य है, जिसके लिए उसे

1- बरनीः तारीख-ए-फीरोजशाही, अनु. रिजवी. तुगलक कालीन भारत- भाग-2, पृ.-8,

2- अफीफः तारीख-ए-फीरोजशाही, अनु. रिजवी, तुगलक कालीन भारत- भाग-2, पृ.-56,
जौहरी, आर.सी.; फीरोजतुगलक, पृ.-13,

3- अहमद, ख्वाजा निजामुद्दीनः तारीख-ए-मुबारकशाही, अनु. रिजवी, तुगलक कालीन भारत, भाग-2, पृ.-197,

ईश्वर के समक्ष जवाब देना पड़ेगा । इसीलिए वह यथासंभव युद्ध से बचा ।

यह दिल्ली सल्तनत एवं फीरोजशाह तुगलक का सौभाग्य ही था कि इस समय मंगोल आक्रमण का अन्त हो गया था और स्वयं फीरोज तुगलक को पश्चिमोत्तर प्रान्त की रक्षा के लिए मात्र दो अभियान करने पड़े नगरकोट एवं सिंध पर आक्रमण ।[2] बरनी लिखता है कि हिन्दू तथा सिन्ध के सभी योग्य लोगों ने देख लिया है कि फीरोजशाह के शुभ राज्यकाल में चंगेज खाँ के मुगलों के आक्रमण का अन्त हो गया है । उनके लिए देश की सीमा में लूट तथा विनाश के लिए प्रविष्ट होना सरल नहीं और न वे मित्रता और राजभक्ति के बढ़ाने से ही आकर अत्यधिक धन ले जा सके हैं ।[3]

मुगलों ने दो बार साहस किया । एक बार वे सोदरा नदी पार करके आसपास के प्रदेश में घुस आये किंतु कुछ इस्लामी सेनाओं ने उन तुच्छ लोगों से युद्ध किया और दैवी विजय तथा सहायता के कारण, जो सुलतान फीरोजशाह की पताकाओं के साथ सर्वदा रहती हैं, बहुत से दुष्ट मार डाले गये और बहुत से बन्दी बना लिए गए । बन्दियों को ऊँट पर बिठाकर तथा उनके गलों में दो शाखों वाली लकड़ी डालकर घुमवाया गया । बहुत से दुष्ट भागते हुए सोदरा नदी में डूब मरे ।[4]

1- पाण्डेय, ए०बी०: पूर्व मध्य कालीन भारत, पृ.-263,
जौहरी, आर.सी.: फीरोज तुगलक, पृ. 192-193,

2- आगा मेंहदी हुसैन: तुगलक डायनेस्टी, पृ. 398,
बनर्जी, जे.एम.: हिस्ट्री आफ फीरोजशाह तुगलक, पृ.-36एवं43,

3- बरनी: जियाउद्दीन, तारीखे फीरोजशाही, अनु. रिजवी, वही, भाग-2 पृ.-48, इलियट एवं डाउसन, भाग-3, पृ.-267-68,

4- बरनी: तारीखे फीरोजशाही, अनु. इलियट एवं डाउसन, भाग-3, पृ. 267-68

दूसरी बार जब मुगल गुजरात पर आक्रमण करना चाहते थे तो उस पर अन्धाधुन्ध टूट पड़े । कुछ प्यास के कारण मर गये और कुछ की इस्लामी सेना ने हत्या कर दी । बहुत से गुजरात के मुकद्दमों के रात्रि आक्रमण के समय नष्ट हो गये ।[1] चंगेज खाँ के इन दुष्ट अनुयायियों में दस में से एक भी राज्य की सीमा न पार कर सका । परमेश्वर ने अपनी विशेष कृपा से संसार की रक्षा करने वाले, युग तथा काल के सुल्तान फीरोजशाह , ईश्वर उसके देश तथा राज्य की सर्वदा रक्षा करता रहे, के राज्य को अपने दैवी विजय तथा सफलता से संबद्ध किया है ।[2] बरनी ने इन आक्रमणों की तिथि नहीं दी है । यहया के अनुसार सुल्तान फीरोजशाह तुगलक ने 759 हि. ﴾नवम्बर 1358 ई.﴿ में समाना की ओर प्रस्थान किया । वहाँ वह शिकार में व्यस्त था कि उसे ज्ञात हुआ कि मंगोल दीपालपुर की सीमा में प्रवेश कर गये हैं । सुल्तान ने इन्हें कुचलने के लिए मलिक कुबूल सरपर्दादार को सेना के साथ भेजा । उसके पहुँचने के पूर्व ही मंगोल वापस लौट गये ।[3] फरिश्ता, बदायूँनी एवं निजामुद्दीन ने भी समर्थन किया है ।[4]

नगरकोट पर आक्रमण

मुहम्मद तुगलक के शासन के अंतिम वर्षों में नगरकोट के राजा ने स्वयं को स्वतंत्र घोषित कर दिया था । उसे पुनः सल्तनत के अधीन बनाने के लिए

1- जौहरी, आ. सी.: फीरोजशाह तुगलक, पृ.-42,
2- बरनी, जियाउद्दीन: तारीखे फीरोजशाही, अनु. रिजवी, तुगलक कालीन-भारत, भाग-2, पृ.-48-49,
3- यहया: तारीखे-मुबारकशाही, अनु. बसु के. के., पृ.-132,
4- फरिश्ता: तारीखे फरिश्ता, भाग-1, अनु. ब्रिग्स, पृ.-26,
बदायूँनी: मुन्तखबुत्तवारीख, अनु. रेकिंग, भाग-1, पृ.-328,
अहमद, ख्वाजा निजामुद्दीन, तबकाते अकबरी, अनु. डे. बी. भाग-1 पृ. 240,

फीरोज ने सन् 1363 ई.[1] में आक्रमण किया । सुल्तान ने नगरकोट को घेर लिया और लगभग 6 माह तक घेरा डाले रहा । प्रदेश की खूब लूटमार की गई और ज्वालामुखी के मंदिर को ध्वस्त किया गया । सुल्तान ने नगर की जनता को एकत्रित करके मूर्ति पूजा के विरूद्ध एक भाषण द्वारा यह समझाने की चेष्टा की कि उसने देवी की प्रतिमा को इसलिए नहीं तोड़ा है कि उनके हृदय को ठेस पहुँचे बल्कि इसलिए तोड़ा है कि वे मूर्तिपूजा के पाप से मुक्त हो सके ।[2] इतिहासकार फरिश्ता के अनुसार सुल्तान ने मूर्ति के टुकड़ों और गोमांस को एक कपड़े में बांधकर मंदिर के ब्राहम्णों के गले लटकवाया और उसी दशा में उन्हें सारे नगर में घुमवाया ।[3] 6 माह के घेरे के बाद अन्त में नगरकोट के शासक रूप चन्द ने[4] आत्म समर्पण कर दिया । उसने सुल्तान की अधीनता स्वीकार करने का वचन दिया । उसे क्षमा कर दिया गया और उसका सम्मान पूर्वक स्वागत करके वह दिल्ली लौट गया । लूट के माल में फीरोज को हजारों संस्कृत ग्रंथ भी प्राप्त हुए जिनमें से कुछ का उसकी आज्ञा से फारसी में अनुवाद किया गया ।

डॉ. रियाजुल इस्लाम ज्वालामुखी के मंदिर के मूर्ति विध्वंश की घटना को सत्य नहीं मानते । इनका कथन है कि अफीफ स्वयं भ्रमित था और उसने दूसरों को भी भ्रम में डाल दिया । मंदिर के भीतरी भाग में लगभग 3 फुट गहरा चौकोर गड्ढा है । बीच में मुख्य दरार को आस-पास थोड़ा साखोखला कर दिया गया

1- जौहरी, आर. सी. :फीरोजशाह तुगलक, पृ.-72,

2- अफीफ:तारीखे फीरोजशाही, अनु. रिजवी, तुगलक कालीन भारत, भा. 2, पृ.-91.

3- फरिश्ता:तारीखे फरिश्ता, अनु. ब्रिग्स, भाग-1, पृ.-454-55,

4- जौहरी, आ. सी. :फीरोजशाह तुगलक, पृ. 73,
सीरत इस शासक का नाम संसार चन्द लिखता है परन्तु यह तो 1430 ई. से 1450 ई. काशासक था जिसका 1430 ई. का लेख प्राप्त हुआ है। इम्पीरियल गजेटियर , भाग-XIV, पृ.-397,

है और आग लगाने पर गैस लपटों के रूप में भड़क उठती है । कोई मूर्ति नहीं है । धधकती हुई दरार को देवी का प्रज्वलित मुख माना जाता है । जिसका सर रहीत शरीर भवन के मंदिर में होना बताया जाता है ।[1] सीरत का कहना है कि सरीयत के नियमों के अनुसार 50 मंदिर छोड़ दिये गये थे ।[2]

थट्टा अभियान-{1365-67 ई.}

मुहम्मद तुगलक को सिंध के विद्रोह ने काफी परेशान किया था । अतः सिंध के शासक जाम बाबीनिया को दण्ड देने के लिए सन् 1365ई.में सुल्तान फिरोज ने एक विशाल सेना सहित राजधानी थट्टा की ओर कूच किया ।[3] इस अभियान कादूसरा उद्देश्य यह भी था कि मुल्तान के मुक्ता आइने माहरू ने बाबीनिया के व्यवहार की गंभीर शिकायत की थी, जिसने मंगोलों को निरन्तर इस देश पर आक्रमण करने के लिए उकसाया था ।[4] सुल्तान ने जाम बाबीनिया पर आक्रमण के लिए 90 हजार घुड़सवार 400 हाथी और विशाल संख्या में पैदल सैनिक एकत्र किये थे ।[5] उधर जाम बाबीनिया की सेना में भी लगभग 20 हजार घुड़ सवार और चार लाख पैदल सैनिक थे ।[6] फीरोज ने अभियान के लिए 5000 नावों का

1- आक्योलाजिकल सर्वे आफ इण्डिया, रिपोर्ट खण्ड-5,पृ. 171,

2- हबीब निजामी: दिल्ली सुल्तनत, पृ.-497,

3- सरहिन्दी, यहया: तारीख-ए-मुबारक शाही अनु. रिजवी,तुगलक कालीन-भारत, भाग-2,पृ.-200,
जोहरी,आर.सी.:फीरोजशाह तुगलक,पृ.-81,

4- हबीब निजामी: दिल्ली सुल्तनत, पृ.-497,
जोहरी,आर.सी.: फीरोजशाह तुगलक, पृ.-79-80

5- अफीफ: तारीख-ए-फीरोजशाही,अनु.रिजवी.तुगलक कालीन भारत-भाग-2 पृ.-93,

6- अफीफ: तारीखे फीरोजशाही,अनु.रिजवी,तुगलक कालीन भारत भाग-2, पृ.-95,
बनर्जी,जे.एम.: हिस्ट्री आफ फीरोजशाह,तुगलक, पृ.-37,

एक विशाल बेड़ा तैयार कराया जिसे अनुभवी सामुद्रिक सेनानियों के अधीन रखा गया ।[1]

फीरोज की रणनीति विचित्र थी । वह युद्ध भीकरना चाहताथा, पर साथ ही यथा संभव रक्तपात से भी बचना चाहता था । अतः जब कभी शत्रु हार कर दुर्ग में बंद हो जाता तो सुल्तान किले पर हमला करने या दीवारों पर चढ़कर किले में प्रवेश करने का आदेश नहीं देता था । उसकी नीति यह थी कि शत्रु का बाहर से सम्बन्ध बिलकुल काट दिया जाय ताकि साधन और खाद्य सामग्री से वंचित होकर शत्रु घुटने टेक दें । यह एक ऐसी नीति थी जिसमें घेरा लम्बे समय तक डाले रहना होता था और सफलता अनिश्चित भी हो सकती थी ।[2] थट्टा में समय बीतने के साथ-साथ सेनाओं निरूत्साह छाने लगाऔर तभी दुर्भिक्ष और महामारी का प्रकोप हुआ । इस चपेट में सुल्तान के लगभग एक चौथाई सैनिक काम आये । सुल्तान ने घबरा कर अपने हितैषियों तथा मित्रों से परामर्श किया और जैसा कि अफीफ लिखता है कहा-"इस समय इस स्थान से लौट जाना चाहिए और गुजरात की ओर प्रस्थान करना चाहिए । वहाँ सेना तैयार करके यदि जीवित रहे और ईश्वर की कृपा रही तो दूसरे वर्ष आना चाहिए, फिर देखें क्या होता है"।[3]

सुल्तान गुजरात की ओर बढ़ा लेकिन मार्ग दर्शकों के विश्वासघात के कारण समस्त सेना मार्ग में भटक गयी और कच्छ के रन में फंस गयी ।[4] सुल्तान भी रास्ता भूल गया और लगभग 6 मास तक दिल्ली में सुल्तान और सेना के बारे

1- अफीफ; तारीखे फीरोजशाही, अनु. रिजवी, तुगलक कालीन भारत, भाग-2 पृ.-95,
जौहरी, आर. सी. : फीरोज तुगलक, पृ.-82,

2- हबीब निजामी; दिल्ली सल्तनत, पृ.-497,

3- अफीफ; तारीखे फीरोजशाही, अनु. रिजवी, तुगलक कालीन भारत, भाग-2 पृ.-95

4- ईश्वरी प्रसाद; मध्य युग का इतिहास, पृ.-300,

में कोई समाचार न पहुँच सका ।[1] चारो ओर व्याप्त भीषण अकाल से सुल्तान की बची-खुची सैनिक शक्ति भी क्षतिग्रस्त हो गयी । स्थिति इतनी बिगड़ गयी कि कुछ लोग सड़ा मांस और कच्ची खालों को खाने लगे । घोड़ो में ऐसा रोग फैला कि वे बड़ी संख्या में मर गये ।[2] सुल्तान बड़ी कठिनाई से गुजरात पहुँच सका । उसने नये सैनिकों की भरती आरंभ की । और युद्ध सामग्री जुटाने में लगभग 2 करोड़ मुद्राये एकत्रित की । सैन्य संगठन पूर्ण कर सुल्तान तुरन्त थट्टा के द्वितीय अभियान पर रवाना हुआ[3] और उसके सिंध नदी के तट पर डेरा डाला । किंतु जब शाही सेनाध्यक्ष इमादुर मुल्क और जफर खाँ ने नदी पार करने की कोशिश की तो सिन्धियों द्वारा उसका मार्ग रोक दिया गया ।[4] वे नदी पार कर मिट्टी के सुदृढ़ किले में घुस गये । इस पर यह निश्चय किया गया कि नदी के ऊपर की ओर जाकर लगभग 120 कोश दूर भक्कर के नीचे से नदी को पार किया जाय । ऐसा ही किया गया और जब नदी के दूसरे तट पर भयंकर संग्राम छिड़ गया तो सुल्तान की दयालुता और दुर्बलता फिर एक बार विजय के मार्ग में अवरोध बन गयी ।[5] दोनों ओर निरपराध मुस्लिम सैनिकों के रक्तपात से विचलित होकर सुल्तान ने रात्रि के समय ही अपने एक मलिक को नौका में बैठाकर सिंध नदी के उस पार भेजा और उससे कहा कि बशीरा (इमादिर मुल्क) से कह दे कि वह लौट आये क्यों कि दोनों ओर से निर्दोष मुसलमानों की हत्या

1- जौहरी, आर. सी.: फीरोजशाह तुगलक, पृ.-83.
अफीफ: तारीख-ए-फीरोजशाही, अनु. रिजवी, तुगलक कालीन भारत, भाग-2, पृ. 95,

2- अफीफ: तारीखे फीरोजशाही, अनु. रिजवी, तुगलक कालीन भारत, भाग-2-पृ.-98,

3- अफीफ: तारीखे फीरोजशाही, अनु. रिजवी, तुगलक कालीन भारत, भाग-2, पृ.-99,

4- जौहरी, आर. सी.: फीरोज तुगलक, पृ.-85,
बनर्जी, जे.एम.: हिस्ट्री आफ फीरोजशाह तुगलक, पृ.-38,

5- अफीफ: तारीख-ए-फीरोजशाही, अनु. रिजवी, तुगलक कालीन भारत, भाग-2, पृ.-102,

हो रही है । यह फरमान पाते ही शाही सैनिक वापस लौट पड़े । सुल्तान ने सिन्धियों के प्रबल और भीषण प्रतिरोध को देखकर यह निर्णय किया कि शाही सेना नदी के तट पर डेरा डाले रहे और इमादुल मुल्क राजधानी जाकर एक नयी सेना लाये ।[1] आदेश का पालन हुआ और जब थट्टा वासियों ने सुना कि सुल्तान के पास दिल्ली से सेना के झुंड आते जा रहे हैं और सुल्तान ने सेना सहित निवास का निश्चय कर लिया है तो उन्होंने युद्ध को लम्बा न खींच कर आत्म समर्पण करना ही उपयुक्त समझा ।[2] वे सुल्तान की दयालुता से परिचित थे । उन्हें आशा थी कि पश्चाताप करने और दीन शब्द कहने मात्र से सुल्तान का मुसलाया जा सकेगा । यही हुआ । थट्टा वासियों के आत्म समर्पण करने पर युद्ध का कोई प्रयोजन नहीं रह गया और दोनों पक्षों में सन्धि हो गयी ।[3] जाम बाबीनिया ने अधीनता स्वीकार कर ली ।[4] उसे दिल्ली ले जाया गया । जहाँ उसके लिए काफी बड़ी पेन्सन निश्चित कर दी गयी । और उसके भाई तमाची को थट्टा का शासक नियुक्त कर दिया गया । कुछ समय पश्चात् तमाची ने विद्रोह कर दिया । तमाची को जाम बाबीनिया ने पुनः गिरफ्तार कर दिल्ली भेज दिया ।[5]

यद्यपि इतिहासकारों ने थट्टा अभियान को सुल्तान की सैनिक अयोग्यता और अदूरदर्शिता का परिचायक माना । पर पश्चिमोत्तर सीमा नीति के दृष्टिकोण से यह अभियान महत्वपूर्ण रहा है ।

1- अफीफ, तारीख-ए-फीरोजशाही, अनु. रिजवी, तुगलक कालीन भारत-भाग-2, पृ.-103

2- अफीफ, तारीख-ए-फीरोजशाही-अनु. रिजवी-तुगलक कालीन भारत-भाग-2, पृ.-103

3- बनर्जी, जे.एम., हिस्ट्री आफ फीरोजशाह, तुगलक, पृ.-40

4- अफीफ, तारीख-ए-फीरोजशाही, अनु. रिजवी, तुगलक, कालीन भारत-भा.2 पृ.14
जौहरी, आर.सी.-फीरोजशाह तुगलक, पृ.-87,

5- अफीफ, तारीख-ए-फीरोजशाही, अनु. रिजवी, तुगलककालीन भारत-भाग-2, पृ.-106.

नगरकोट थट्टा एवं निचले सिन्ध पर सल्तनत का प्रभुत्व होना उतना ही आवश्यक था जितना की सैनिक प्रदर्शन ताकि वाह्य आक्रमणकारी सीमावर्ती प्रदेशों पर आक्रमण करने का साहस न कर सके ।[1]

सुल्तान फीरोज तुगलक यद्यपि उत्तरी-पश्चिमी सीमा की रक्षा करने में सफल रहा किन्तु उसकी आन्तरिक नीतियों ने सल्तनत को इतना कमजोर बना दिया कि उसी के समय से दिल्ली सल्तनत् में विघटन के तत्व उत्पन्न होगये जिसका लाभ आगे चलकर पश्चिमोत्तर प्रान्त के प्रान्त पतियों एवं बाह्य आक्रमण-कारियों ने उठाया । विभिन्न क्षेत्रों में अपने सुधारो, उदारता और दयालुता के कारण फिरोज तुगलक ने अत्यधिक लोक प्रियता अर्जित की और एक आदर्श शासक की कोटि में स्थान प्राप्त किया, पर दुर्भाग्यवश अनुचित उदारता, दुर्बलता और प्रशासनिक आयोग्यता के कारण उसके सुधारों और अन्य कार्यों का साम्राज्य पर सामूहिक प्रभाव अच्छा नहीं पड़ा ।[2] फीरोज ने शासन तन्त्र को खराब कर दिया, राज्य् कर्मचारियों को प्रसन्न करने के लिए उनके वेतन और भत्ते बढ़ा दिये किंतु उन्हें कर्त्तव्य परायण बनाये रखने को व्यवस्था नहीं की । गुप्तचरों को हटाकर या गुप्तचर व्यवस्था को निकम्मा बनाकर उनके हृदय से भय मिटा दिया । सब कार्य मन्त्रियों पर छोड़ दिया गया और स्वयं उनके काम का समुचित निरीक्षण करने की परवाह नहीं की । सुल्तान ने स्थायी सेना रखने की पद्धति को त्याग दिया । इससे उसका सैनिक संगठन सामतंवादी पद्धति पर गठित हो गया । सैनिकों

1- आगा, मेंहदी हुसेन: तुगलक डायनेस्टी, पृ. 398,

2- मजूमदार, रायचौधरी तथा दत्ता: भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास-पृ.-59,
जोहरी, आर.सी.: फीरोजशाह तुगलक, पृ.-194,

को वेतन पुनः जागीर के रूप में दिया जाने लगा । लगभग वे सभी कमियां पुनः उत्पन्न हो गयीं, जो बलबन के पूर्व प्रचलित थीं ।[1]

फीरोज ने 1351-1389 ई० तक शासन किया । इस 37 वर्ष के शासन काल में उसने सल्तनत की जड़ को खोखला कर दिया और उसके पतन का मार्ग प्रशस्त कर दिया ।[2] परन्तु जब तक वह जीवित रहा, तबतक कोई विशेष विद्रोह नहीं हुआ और सुल्तान का साम्राज्य अक्षुण्ण बना रहा ।

तुगलक शाह द्वितीय-(1388-89 ई.)

सुल्तान फीरोज तुगलक की मृत्यु के बाद उसका पौत्र तुगलक खाँ, जो स्वर्गीय युवराज फतह खाँ का पुत्र था, "द्वितीय गयासुद्दीन तुगलक के नाम से गद्दी पर बैठा ।[3] वह अनुभव हीन एवं अल्पवयस्क तथा विलासी प्रकृति का होने के कारण सुरा और सुन्दरी में विशेष रूचि रखता था । उसके अनैतिक और उद्दण्ड आचरण से सल्तनत के उच्च पदाधिकारी और अमीर रूष्ट हो गये और वह शीघ्र षडयन्त्र का शिकार बन गया, षडयन्त्र का नेतृत्व इसके चाचा नासिरूद्दीन मुहम्मद ने किया ।[4] कुछ षडयन्त्रकारी महलों में घुस गये । उन्होंने भागते हुए सुल्तान गयासुद्दीन का पीछा कर उसका सिर काट डाला । यहया लिखता है कि ईश्वर की शक्ति कितनी आश्चर्य जनक है कि वह जिस द्वार से एक बादशाह को मुकुट और सिंहासन सहित वैभव के साथ बाहर लाता है पलक मारते ही, उसका शीश

1- ईश्वरी प्रसाद, मध्य युग का इतिहास, पृ.-320-21,
पाण्डेय, ए. बी., पूर्व मध्य कालीन भारत, पृ.-263

2- चौधरी, आर. सी. फीरोजशाह तुगलक, पृ.
त्रिपाठी, आर. पी., सम आसपेक्ट्स आफ मुस्लिम ऐडमिनिस्ट्रेशन पृ. 72

3- पाण्डेय, ए. वी. : पूर्व मध्य कालीन भारत, पृ.-277,

4- फरिश्ता, तारीख-ए-फरिश्ता, अनु. ब्रिग्स भाग-1, पृ.-444-45,

काटकर उसी द्वार से उसको बाहर छोड़ देता है । यह घटना 19 फरवरी 1389 को घटित हुई ।[1] और अब दिल्ली के सरदारों ने मृत सुल्तान के चचेरे भाई जफर खाँ के पुत्र अबूबक्र को सुल्तान घोषित किया ।

अबूबक्र- (1389-1390 ई.)

अबूबक्र यद्यपि निर्विरोध सुल्तान बन गया था । किंतु जब तक मुहम्मद शाह जीवित था तब तक उसकी स्थिति संकटमय थी ।[2] वह उसकी पराजय की योजना तैयार कर रहा था कि उसे पता चला कि रूकनुद्दीन अबूबक्र की हत्या करके स्वयं सुल्तान बनने का स्वप्न देख रहा था । अतः उसने रूकनुद्दीन का बध कर दिया । इससे अबूबक्र का पक्ष दुर्बल हो गया । इसका लाभ उठाकर समाना के शताधिकारियों ने विद्रोह करके वहाँ के हाकिम खुर्शीद[3] का बध कर दिया । शाह को नेतृत्व ग्रहण करने के लिए आमन्त्रित किया मुहम्मद समाना में सिंहासनासीन हुआ । अब उसने दिल्ली पर दूसरी बार आक्रमण किया । परन्तु बहादुर नाहिर ने उसे फिर पराजित किया ।[4]

मुहम्मद शाह ने अब जेशर में अपना अड्डा जमाया । अबूबक्र से असंतुष्ट अमीर मुहम्मद शा के पास एकत्रित होने लगे । इनमें दो प्रमुख व्यक्ति थे । मलिक सरवर (जिसे उसने ख्वाजा जहाँ की उपाधि दी तथा अपना वजीर नियुक्त किया)

1- यहया, तारीख-ए-मुबारकशाही; अनु. रिजवी, तुगलक कालीन भारत भाग-2, पृ.-208,
फरिश्ता: तारीख-ए-फरिश्ता अनु. ब्रिग्स भाग-1, पृ.-454-55,

2- पाण्डेय, ए.बी.: पूर्व मध्य कालीन भारत, पृ.-277,

3- फरिश्ता: तारीख-ए-फरिश्ता में हाकिम का नाम मलिक सुल्तान-लिखता है- पृ.-470-71,

4- यहया: तारीख-ए-मुबारकशाही, अनु. बसु, के.के., पृ.-468-69,

और नासिरूलमुल्क खिज्र खाँ। दिल्ली लेने का एक और प्रयास किया गया परंतु यह भी असफल रहा तो भी उसके समर्थकों की संख्या बढ़ती गयी । पश्चिमोत्तर क्षेत्र में मुल्तान, समाना, लाहौर, हिसार और हांसी के हाकिम पूर्णतया उसके समर्थक हो गये ।[1] अबूबक्र ने जलेशर पर आक्रमण किया परन्तु मुहम्मद शाह ने उसी समय दिल्ली पर अधिकार कर लिया । किंतु अबूबक्र के वापस आने पर एक बार पुनः मुहम्मद शाह को दिल्ली छोड़ना पड़ा । किंतु इसीबीच तेजी से षडयन्त्र हुए और अबूबक्र को गद्दी छोड़ना पड़ा ।

नासिरूद्दीन मुहम्मद शाह

1390 ई. में नासिरूद्दीन मुहम्मद शाह दिल्ली का सुल्तान बना, जो 1394 ई. तक सिंहासनारूढ़ रहा ।[2] इस समय दिल्ली सल्तनत अमीरों के बीच षडयन्त्र का खेल ही बना रहा और कोई निश्चित कदम न उठाया जा सका ।[3] फिर भी पश्चिमोत्तर सीमा की सुरक्षा हेतु मुहम्मद शाह ने विशेषध्यान दिया । सारंग खाँ को पूरे पंजाब का गवर्नर नियुक्त किया गया, जिसने अपना मुखयालय दिपालपुर बनाया था ।[4] इसी समय शेख गक्खर ने जो नमक की पहाड़ी का शक्ति शाली सामन्त था लाहौर को अधिकृत कर लिया । सारंग खाँ ने मुल्तान से सैनिकों को इकट्ठा किया और गक्खर के विरूद्ध तैयारी करने लगा । वर्षात के बाद सारंग खाँ ने लाहौर की ओर प्रस्थान किया । तिहारा नामक गाँव के पास सतलज को पार किया । शेख गक्खर ने भी दिपालपुर में बढ़कर अजोधन का घेरा डाल दिया

1- पाण्डेय, ए0बी0: पूर्व मध्य कालीन भारत, पृ.-277,

2- श्रीवास्तव, आर्शीवादी लाल: दिल्ली सल्तनत्-पृ.-216,

3- पाण्डेय, ए0बी0: पूर्व मध्य कालीन भारत-पृ.-277,

4- निज्जर, बी0एस0: पंजाब अण्डर दि सुल्तान्स, पृ.-60

किन्तु वह सारंग खाँ को न रोक सका । शेख गक्खर पराजित हुआ और जम्मू की पहाड़ी में भाग गया ।[1] सारंग खाँ ने अपने भाई खानदेह को जिसका उपनाम आदिल खान था लाहौर के किले का अधीक्षक नियुक्त किया और स्वयं दिपालपुर लौट आया ।[2] मुहम्मद शाह जनवरी 1394 ई. में मर गया और हुमायूँ अलाउद्दीन सिकन्दर शाह की उपाधि से गद्दी पर बैठा पर शीघ्र ही वह भी मर गया[3] और उसके बाद ख्वाजा जहाँ ने उसके छोटे भाई राज कुमार महमूद को गद्दी पर बिठा दिया ।

महमूद शाह-(1394-1412)

यह तुगलक वंश का अंतिम शासक था । इसके शासन काल में राजसभा षड्यन्त्रों एवं दलबन्दी का अखाड़ा बन गया । अमीर और मलिक चरित्र भ्रष्ट हो गये थे । सल्तनत के विभिन्न प्रान्तों के प्रान्त पति स्वतंत्र हो गये थे । ख्वाजा जहाँ ने जौनपुर जाकर अपना स्वतन्त्र शर्की राज्य स्थापित कर लिया ।[4] वह दिल्ली के पूर्वी क्षेत्रों का अधीश्वर बन गया । पश्चिमोत्तर क्षेत्र में भी दिपालपुर के हाकिम सारंग खाँ ने अपनी स्वतंत्र शक्ति स्थापित कर ली । वह समाना के अतिरिक्त समस्त पश्चिमोत्तर प्रान्त का अधिपति बन बैठा ।[5] सारंग खाँ ने मुल्तान के गवर्नर खाजिर खान पर भी आक्रमण किया । दोनों के मध्य

1- यहया, तारीख-ए-मुबारकशाही, अनु. रिजवी तुगलक कालीन भारत-भाग-2, पृ.-217,

2- श्रीवास्तव, आशीर्वादी लाल-दिल्ली सल्तनत-पृ.-216,

3- निज्जर, बी.एस., पंजाब अण्डर दि सुल्तान्स-पृ.-60-61,

4- पाण्डेय, ए.बी.: पूर्व मध्य कालीन भारत, पृ.-279,

5- पाण्डेय, ए.बी.: पूर्व मध्य कालीन भारत, पृ.-279,

1395-96 में भयंकर युद्ध हुआ । सारंग खाँ विजयी हुआ और उसने मुल्तान पर अधिकार कर लिया ।[1] 1397 ई. में एक विशाल सेना लेकर सारंग खाँ ने समाना की ओर प्रस्थान किया वहाँ के गवर्नर मालिक खाँ ने अपने को किले में बन्द कर लिया और उसके सामने कुछ अवरोध उत्पन्न किया । किन्तु सारंग खाँ बढ़ते हुए पानीपत निकल गया और तातार खाँ से मिल गया । दिल्ली की गद्दी के दूसरे दावेदार नुसरत शाह ने पानीपत के तत्कालीन गवर्नर आलमबेग को निर्देश दिया कि वे सारंग खाँ का विरोध करें । 4 अक्टूबर 1396 को सारंग खाँ पराजित हुआ और मुल्तान लौटने को विवश हुआ ।[2] इसी बीच तैमूर के पौत्र पीर मुहम्मद ने नवम्बर दिसम्बर 1397 में सिंध नदी पार कर उच्छ पर अधिकार कर लिया । तत्पश्चात् वह मुल्तान का घेरा डालने के लिए आगे बढ़ा और सारंग खाँ ने छः माह तक घेरे के पश्चात् बिना किसी शर्त के समर्पण कर दिया ।[3]

महमूद शाह के विरूद्ध राजधानी में भी षडयंत्र चल रहा था । इनमें मल्लू खाँ, मुकर्रब खाँ तथा सआदत खाँ ने विशेष भाग लिया ।[4] सुलतान महमूद का वजीर सआदत खाँ था । उसमें तथा संरक्षक मुकर्रब खाँ में गहरी प्रतिद्वंदिता थी और दोनों ही एक दूसरे को नीचा दिखाना चाहते थे । मल्लू खाँ का भाई था और वह अत्यन्त महत्वाकांक्षी, स्वार्थी तथा कुटिल था । जिस समय सुलतान ग्वालियर में था मल्लू ने वजीर का वध करके सुलतान को वश में करने का षडयंत्र

1- निज्जर, बी.एस. : पंजाब अण्डर द सुल्तान्स, पृ.-61,

2- फरिश्ता, तारीख-ए-फरिश्ता, अनु. ब्रिग्स, भाग-1, पृ. 481-82,
सरहिन्दी, यहया: तारीख-ए-मुबारकशाही, अनु. बसु, पृ.-168,
हेग, डब्लू. : कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया, भाग-3, पृ.-194,
निज्जर बी.एस. : पंजाब अण्डर द सुल्तान्स, पृ.-61,

3- सरहिन्दी, यहया: तारीख-ए-मुबारकशाही, अनु. बसु, पृ.-168,
बदायूँनी : मुन्तखबुत्तावारीख, अनु. रैकिंग, भाग-1, पृ.-266,

4- पाण्डेय, ए.बी. : पूर्व मध्य कालीन भारत, पृ.-279,

रचा । परंतु वह इसमें असफल रहा और कठिनाई से बचकर दिल्ली आया । उसके अन्य सहयोगी मार डाले गये । जब सुलतान वापस आया तब मुकर्रब ने उसे भीतर घुसने की अनुमति नहीं दी । सुलतान तथा सआदत खाँ की सारी चेष्टाएं विफल हो गईं । तब सुलतान ने मुकर्रब की राय के अनुसार कार्य करने का वचन दिया और वह राजधानी में प्रवेश पा गया । परन्तु इस कमी से सआदत को बहुत क्षोभ हुआ । उसने अपने महत्त्व को बनाये रखने के लिए तुगलकशाह द्वितीय के छोटे भाई नुसरत खाँ को मेवात से बुलाकर उसे सुलतान घोषित कर दिया ।[1] और फीरोजाबाद में अपने सैनिकों का पड़ाव डाला । किंतु ऐसी परिस्थितियाँ घटीं की सआदत के मित्र उसके पक्ष को छोड़कर अलग होने लगे । ऐसे में उसने मुकर्रब खाँ से सहायता माँगी । मुकर्रब ने पहले उसे आश्रय देने का वचन दिया । किंतु जब वह उसके अधिकार में आ गया तो उसका बध कर दिया ।[2]

मल्लू खाँ ने नुसरत शाह का पक्ष लिया और उसकी ओर से दिल्ली पर अधिकार करना चाहा । परन्तु जब वह इसमें सफल नहीं हुआ तो उसने नुसरत शाह का साथ छोड़कर मुकर्रब खाँ की अधीनता स्वीकार कर ली । इस प्रकार राजधानी में रहने का अवसर पाकर मल्लू खाँ पुनः षडयंत्र रचने लगा और मुकर्रब को मारकर सुलतान महमूद का वजीर व संरक्षक बन बैठा । मल्लू ने महमूद की ओर से शासन करने का निश्चय किया । इस समय नुसरत शाह का प्रधान मंत्री जफर खाँ का बेटा

1- पाण्डेय, ए.वी.: पूर्व मध्य कालीन भारत, पृ.-279,

2- पाण्डेय, ए0वी0: पूर्व मध्य कालीन भारत, पृ.-279,

तातार खाँ पराजित होकर अपने पिता के पास गुजरात चला गया और नुसरत शाह दोआब में छिपा रहा । इसी समय समरकंद के अमीर तैमूर ने भारत पर आक्रमण किया ।[1]

तैमूर एवं उसका आक्रमण

तैमूर तुर्कों की एकउच्च जाति बरलास की गुरकन शाखा के सरदार[2] अमीर तरगई का बेटा था ।[3] हाजी बरलास तैमूर का चाचा था । तैमूर का जन्म 1336 ई०[4] में मुवारून्नहर {ट्रान्स-आक्सियाना} प्रदेश में समरकन्द से लगभग 40 मील दक्षिण की ओर केस नामक स्थान पर हुआ था । तैमूर की जाति को लेकर कुछ विवाद है । हेवेल महोदय लिखते हैं कि तैमूर वास्तव में एक तुर्क था, किंतु उसके दरबार के वंशावली निर्धारकों ने राजनीतिक कारणों से उसे एक वंशावली दी, जिसमें वह एक शुद्ध मंगोल तथा चंगेजखाँ का वंशज बना दिया गया ।[5] तैमूर के पिता तर्गई तथा उसके पितामह तकल ने अपना जीवन एक समृद्ध मध्यवर्गीय स्थिति में व्यतीत किया लेकिन उन्हें कोई राजकीयपद प्राप्त न था ।[6] तैमूर मंगोल जाति के अभिजात वर्ग का एक प्रतिष्ठित सदस्य था, किंतु दूसरी ओर जैसा कि यजदी दृढ़ता पूर्वक कहता है वह आत्म निर्मित था और अपने राज्य वंश का वास्तविक संस्थापक था ।[7] जब वह 25 वर्ष का था तो उसके पिता की की मृत्यु हो गयी

1- पाण्डेय, ए॰वी॰: पूर्व मध्य कालीन भारत पृ॰-280,
2- फजल, अबुल: अकबर नामा, अनु॰ वेवरिज, भाग-1, पृ॰-205
ईश्वरी प्रसाद: भारतीय मध्य युग का इतिहास, पृ॰-327,
3- आगा मेंहदी हुसैन: तुगलक डायनेस्टी, पृ॰-461, फुटनोट ।
4- प्रो॰ हबीब के अनुसार तैमूर का जन्म 7/8 अप्रैल 1334 ई॰ की रात्रि में हुआ था । हबीब निजामी, दिल्ली, सल्तनत, पृ॰-88,
5- हेवेल, ई॰बी॰: हिस्ट्री आफ आर्यन रूल इन इण्डिया, पृ॰-368,
6- हबीब निजामी, दिल्ली सुल्तनत्- पृ॰-107,
7- हबीब निजामी: दिल्ली सुल्तनत्-पृ॰-107,

और उसी वर्ष 1360 की वसन्त ऋतु में तुगलुक तैमूर खाँ ने (दावा के पुत्र उगुल ख्वाजा का पुत्र) जो तुर्किस्तान जट्टा का शासक था ने अपना पैतृक दावा स्थापित करने के लिए ट्रान्स-आक्सियाना पर आक्रमण कर दिया । तरमा शीरीन की मृत्यु के पश्चात् 38 वर्ष के समय में ट्रान्स-आक्सियाना में 8 खानों ने राज्य किया था, किंतु इस समय वहाँ राजनीतिक शून्यता थी । ऐसे में 3 जट्टा अमीरों को कीस पर आक्रमण करने के लिए आदेश प्राप्त हुए । इन आक्रमणों से घबड़ाकर तैमूर का चाचा हाजी बरलास आक्सस नदी पार करके भागा । तैमूर ने इसका लाभ उठाया और अपने चाचा का साथ छोड़कर आक्रमणकारियों से मिल गया । इसके बदले में तैमूर को कीस प्राप्त हुआ[1] किंतु कुछ दिनों के बाद ही हाजी बरलास ने पुनः कीस पर अपना अधिकार कर लिया । दूसरे वर्ष 1361 की वसन्त ऋतु में तुगलुक तैमूर पुनः वापस आया और हाजी बरलास खुरासान की ओर भागा किंतु मार डाला गया । तैमूर खान के समक्ष उपस्थित हुआ और उसका स्वागत किया गया । किंतु इस समय भी खान यहाँ न रूक सकाऔर अपने पुत्र इलियास ख्वाजा को ट्रान्स आक्सियाना का अपना उत्तराधिकारी बनाकर एवं अमीर बितीचेक को उसका मुख्य परामर्श दाता नियुक्त कर स्वदेश को लौट गया।[2] संभवतः तैमूर भी एक परामर्श दाता नियुक्त किया गया था । किंतु तैमूर को कुचल देने की योजना बनायी गयी । और इसके बाद तैमूर लगातार भागता रहा ।किंतु तैमूर का सबसे बड़ा दुर्भाग्य अभी भी उसके साथ था । मखान के तुर्क शासक अलीबेग चूनगरबानी नामक उलूस के अरबून शाह का पुत्र-ने उसे बन्दी बनाने के लिए 60 सिपाही भेजे और उसे 62 दिन तक एक ऐसे अंधेरे कमरे में बन्द रखा जिसमें इतने

1- सक्सेना, आर॰के॰: अमीर तैमूर की आत्मकथा, पृ॰-12,

2- सक्सेना, आर॰के॰:अमीर तैमूर की आत्मकथा, पृ॰-12,

पिस्सू भरे थे कि तैमूर उन्हें अपने पैरों पर चढ़ने से नहीं रोक पाताथा ।[1] किंतु अलीबेग के बड़े भाई मुहम्मद बेग ने उसके पास एक सन्देश भेजकर उसे डाटा कि एक तुर्क सज्जन भाई के साथ ऐसा अमानुषिक तथा लक्ष्यहीन दुर्व्यवहार उचित नहीं है और तैमूर मुक्त कर दिया गया ।

इसके उपरान्त अमीर हुसेने दक्षिणी अफगानिस्तान के गर्मसीर नामक स्थान में चला गया जो जट्टा लोगों की पहुँच से बाहर था । उधर तैमूर भी कीस तथा समरकन्द से निकल कर अमीर हुसेन से जा मिला । मार्ग में उसने कुछ सेना एकत्रित कर ली थी । सीस्तान के शासक ने तैमूर की सेना का लाभ उठाकर सीकसीज के विरूद्ध युद्ध करने का आग्रह किया । फलस्वरूप जो युद्ध हुआ उसमें तैमूर का पैर घायल हो गया और उसे तुमान नामक स्थान पर घाव अच्छा होने तक रूकना पड़ा । इसी समय से तैमूर, तैमूर लंग कहा जाने लगा ।[2] अब तैमूर का भाग्योदय हो रहा था । तुगलुक तैमूर की मृत्यु हो चुकी थी । इलियास को अपने पिता के सिंहासन पर बैठने के लिए वापस होना पड़ा । वापस होती हुई जट्टा सेना को अमीर हुसेन एवं तैमूर ने लोहे के पुल नामक युद्ध में पराजित किया । मई 1365 ई॰ में जट्टा सेनाओं ने एक बार फिर ट्रान्स-आक्सियाना पर आक्रमण किया । भीषण संग्राम में अमीर हुसेन और तैमूर पराजित हुए ।[3] वे सुरक्षा के लिए आक्सस नदी के दक्षिणी प्रदेश में भाग गये । विजयी जट्टा सेना ने समर कन्द की ओर प्रस्थान किया किन्तु वहाँ के नागरिकों ने बड़े ही धैर्य

1- सक्सेना, आर॰ के॰: अमीर तैमूर की आत्मकथा, पृ॰-12,

2- हबीब एवं निजामी: दिल्ली सुल्तनत, पृ॰-89,

3- हबीब एवं निजामी: दिल्ली सुल्तनत, पृ॰-89,

पूर्वक जदटा सेनाओं का चार मास तक सामना किया और ठीक उपरान्त अमीर हुसेन और तैमूर वहाँ उपस्थित हुए और उन्होंने अपना अधिकार स्थापित किया।[1]

ट्रान्स-ऑक्सियाना पर तैमूर का अधिकार स्थापित हो जाने पर उसका अपने साथी अमीर हुसेन से संघर्ष हो गया ।[2] फलस्वरूप उनमें युद्ध हुआ जिसमें तैमूर को पराजित होना पड़ा और वह आक्सस नदी के पूर्व स्थित मरूभूमि में भाग गया । अगले 2 वर्षों तक उसे कोई विशेष सफलता न मिली । किंतु अपने इस दुर्भाग्य के समय में भी लगभग 250 सैनिकों की सहायता से कर्सी नामक दुर्ग पर जिसकी रक्षा के लिए 20,000 सैनिक नियुक्त थे, अधिकार कर लिया । इससे उसके सभी शत्रु और मित्र आश्चर्य चकित रह गये ।[3] किंतु इस सफलता का उसके लिए केवल नैतिक महत्त्व था, क्योंकि अमीर हुसेन ने एक बार पुन: तैमूर को जैक्सारटीज नदी की ओर भागने के लिए विवस किया । किंतु एक बार पुन: तैमूर और हुसेन में समझौता हो गया । दोनों ने मिलकर बदक्शां के शाहों को उनके गगन चुम्बी पहाड़ी प्रदेशों में पराजित करने में सफलता प्राप्त की । अमीर हुसेन ने इसे अपना सबसे कठीन युद्ध कहा । किंतु यहीं से उसका पराभव प्रारम्भ हो गया । यजदी के अनुसार अमीर हुसेन के निम्नलिखित प्रारम्भिक दोष उसके पतन के लिए उत्तरदायी थे । क्योंकि उन्होंने अमीरों को तैमूर की ओर मिल जाने के लिए विवस किया । ये चारित्रिक दोष थे । धन का लोभ, कंजूसी, कठोर स्वभाव, कटु भाषण, अपने विषय में गलत फहमी-अहंकार तथा दम्भ । अमीर हुसेन के इस दोष का तैमूर लंग ने लाभ उठाया ।[4] और जब

1- हबीब एवं निजामी, दिल्ली सुल्तनत, पृ.- 89,
2- हबीब एवं निजामी, दिल्ली सुल्तनत, पृ.- 90,
3- हबीब एवं निजामी, दिल्ली सुल्तनत, पृ.- 90,
4- हबीब एवं निजामी, दिल्ली सुल्तनत, पृ.- 90,

संपूर्ण व्यवस्था हो गयी तो अपनी सेनाएं एकत्रित की । और नये खान सहित अमीर हुसेन के विरुद्ध कूच किया जो हिन्दुस्तान नामक दुर्ग में था और जिसे उसने बल्ख के पास बनाया था । तैमूर ने सर्वप्रथम अमीर हुसेन के पास एक संदेश भेजा जिसमें स्पष्ट उल्लेख था कि-"बाहर निकल कर आओ और आज्ञा पालन करो"।[1] अन्ततः अमीर हुसेन ने प्राचीन बल्ख मस्जिद में छिपने का प्रयत्न किया। किंतु पकड़ा गया और तैमूर के समक्ष पेश किया गया । तैमूर ने घड़ियाली आंसू बहाये उसे हज के लिए जाने की अनुमति दे दी । वह अभी कुछ ही दूर गया था कि तैमूर के दो अधिकारियों ने उसकी हत्या करवा दी ।[2] उसके चार पुत्रों में से दो को मार डाला गया और शेष दो हिन्दुस्तान भाग आये । इस प्रकार अब वह अपना राज्याभिषेक कराने में सक्षम हो गया । 13 अप्रैल 1370ई॰को तैमूर मंगोलों की परम्परानुगत चुनाव प्रणाली के समस्त अनुष्ठानों सहित सिंहासनारूढ़ हुआ ।[3] एकत्रित अमीरों ने उसके सामने झुककर उसका अभिवादन किया और एक मन और स्वर से उसकी आज्ञा पालन का वचन दिया । तैमूर ने समरकन्द को अपनी राजधानी बनाया और कुछ ही समय में उसने ख्वारिज्म, तुर्किस्तान और फारस पर अधिकार कर लिया । अपनी निरंतर विजयों से उत्साहित होकर तैमूर ने अपनी सेना का रूख भारत कीओर कर दिया ।

1- हबीब निजामी: दिल्ली सल्तनत, पृ॰-90-91,

2- हबीब निजामी: दिल्ली सल्तनत, पृ॰-91,

3- हबीब निजामी: दिल्ली सल्तनत, पृ॰-91,
श्रीवास्तव,पी॰एल॰: दिल्ली सुल्तानों की उत्तर-पश्चिम सीमानीति,

पीर मुहम्मद का अभियान

तैमूर के पौत्र[1] पीर मुहम्मद ने एक सेना लेकर सिंधु नदी को पार की और आसानी से उच्छ एवं दीपालपुर पर कब्जा कर लिया। मल्लू खाँ के बड़े भाई सारंग खाँ को मुल्तान में घेर लिया।[2] तैमूर स्वयं पंजाब के खोखरों का दमन करता हुआ व्यास नदी के तटपर आकर अपने पौत्र से मिला।[3]

तैमूर का अभियान

तैमूर के भारतीय अभियान का उद्देश्य विवादास्पद है। "मुल्फुजात-ए-तैमूरी" और "जफरनामा" के अनुसार इस आक्रमण का उद्देश्य विजय या लूट न होकर विधर्मियों का बिनाश था।[4] जफरनामा के लेखक सरफुद्दीन यजदी के शब्दों में-"धार्मिक युद्ध करने की इच्छा से प्रेरित होकर उसने मुल्तान और दिल्ली की ओर प्रयाण किया।[5] किंतु प्रो॰ मुहम्मद हबीब का मत है कि तैमूर के भारतीय अभियान की योजना एक उत्तम समय सारिणी सहित केवल लूटमार के उद्देश्य से बनायी गयी थी।[6] मार्च 1398ई॰में तैमूर ने 92,000 शक्तिशाली घुड़सवारों के साथ जो मुख्य रूप से तुर्की जनजातियों से लिये गये थे, के साथ भारत की ओर बढ़ा।[7] तैमूर के लिए यह आवश्यक था कि वहकाबुल से अफगानों

1- लेनपूल,एस॰: दि मुहम्डन डायने स्टीज, पृ॰-268

2- यजदी: जफर नामा,भाग-2,अनु॰ रिजवी,तुगलक कालीन भारत,भा॰ 2 पृ॰-241,

3- तिमूर:मुलफ्जाते तिमूरी,इलियट एवं डाउसन,भाग-3,पृ॰-417-18,

4- तिमूर:मुलफुजाते तिमूरी,इलियट एवं डाउसन,भाग-3,पृ॰-418,

5- यजदी,जफरनामा:भाग-2,इलियटएवं डाउसन,भाग-3,पृ॰-443,

6- हबीब एवं निजामी: दिल्ली सुल्तनत, पृ॰-98,

7- यजदी:जफरनामा,भाग-2,अनु॰ रिजवी,तुगलक कालीन भारत,भाग-2, पृ॰-242,

सक्सेना,आर॰के॰:अमीर तैमूर की आत्मकथा, पृ॰-33,

के प्रदेशों में अपने यातायात के साधन सुरक्षित रखने के लिए दुर्ग बनाये और जनजातियों को दण्ड दे । मूसानामक अफगानों के एकशासक को इरियाब का दुर्ग बनाने के लिए प्रेरित किया गया और फिर उसे मार डाला गया । नग्ज का दुर्ग तैमूर के ही अधिकारियों ने निर्मित किया । दो अफगान जनजातियों पूर्निया और कलाती के कत्लेआम से मार्ग में आतंक का वातावरण छा गया जिससे तैमूर बिना किसी भय के आगे बढ़ सकता था । अत: वह नग्ज बन्नू होते हुए सिंध की ओर बढ़ा और 24 सितम्बर 1398 ई. को सिंध नदीपार कर लिया ।[1] तैमूर ने अपना रास्ता बड़ी ही सावधानी से चुना था । उसका उद्देश्य था बड़े-बड़े नगरों से बचते जाना किंतु साथ ही साथ अपने सैनिको के लिए खाद्यान्न और सामग्री की व्यवस्था छोटे-छोटे एवं असहाय नगरों को लूटकर पूरा करना । वह एक जलहीन मार्ग "चौल" से होकर गुजरा,[2] जिसे जफर नामा में चौले जलाली कहा गया है ।[3] सिरमूर पर्वत के मुकदमों और रायों ने तैमूर को अपने प्रदेश से यात्रा करने में सहायता की और उसकी कृपा प्राप्त की। जजिरा संभवत: झेलम नदी का एक द्वीप था । यहाँ का शासक शहाबुद्दीन मुबारक शाह था जिसने तैमूर के मार्ग में अवरोध करने का प्रयत्न किया[4] किंतु पराजित हुआ और भागने के लिए विवश हुआ । अगले एक सप्ताह की यात्रा के बाद वह झेलम एवं चिनाब के संगम पर पहुँचा । 13 अक्टूबर 1398 ई. को

1- यजदी:जफरनामा,भाग-2,अनु. रिजवी,तुगलक कालीन भारत,भाग-2 पृ.-242,

2- हबीब एवं निजामी: दिल्ली सुल्तनत, पृ.-99,

3- यजदी: जफरनामा,भाग-2,अनु. रिजवी, तुगलक कालीन भारत-भाग-2, पृ.-242,

4- यजदी: जफरनामा,भाग-2,अनु. रिजवी, तुगलक कालीन भारत-भाग-2, पृ.-242,

वह मुल्तन से 35 फरसंग की दूरी पर स्थिति तुलम्बा नामक नगर में पहुँचा। यहाँ दानों सम्प्रदायों के विशिष्ट व्यक्ति अर्थात् हिन्दू राय, मुसलमान मलिक सैयद तथा धार्मिक विद्वान आदि उससे भेंट करने आये और 2 लाख टंके की उसे पेसकस दी । तैमूर ने उसे स्वीकार किया किन्तु वह भारत में चन्दा एकत्रित करने और जनता की जय-जय कार प्राप्त करने नहीं आया था । अतः उसने उस समय अपना उद्देश्य प्रकट किया । हर किसी के लिए अकाट्य आदेश दिया गया कि सैनिक जहाँ कहीं भी खाद्यान्न पायें उस पर अधिकार कर लें । इस लिए अपनी आदत के अनुसार वे नगर में घुस गये । इमारतों को जला दिया, नागरिकों को बन्दी बना लिया और जोकुछ भी हाथ लगा उसे लूट लिया ।[2]

शेखा खोखर के भाई जसरथ गक्खर ने लाहौर पर अधिकार कर लिया था । अतः जब तैमूर तुलम्बा से आगे बढ़ा तो उसे जाल और शाह नयाज नामक ग्रामों में अपने डेरे लगाने पड़े । तैमूर और जसरथ में संघर्ष हुआ । जसरथ पराजित हुआ और वहाँ एक भीषड़ नरसंहार हुआ । बी०एस० निज्जर का मत है कि सारंग खाँ के साथ शत्रुता के कारण जसरथ तैमूर से मिल गया ।[3] यहाँ से बढ़ते हुए तैमूर ने रावी नदी के किनारे-किनारें व्यास नदीपर स्थित जनजन ग्राम के दूसरी ओर अपना शिविर लगाया ।[4] यहीं पर तैमूर के पौत्र पीर मुहम्मद ने आकर उससे भेंट की ।[5] अब तैमूर को यह ज्ञात हुआ कि पीर मुहम्मद को कितनी भयंकर कठिनाइयों का सामना करना पड़ा होगा । पीर मुहम्मद की

1- लाल, के०एस० : ट्वालाइट आफ दि सल्तनत, पृ०-17-18, फुटनोट 26
2- तिमूर: मुलफूजाते तिमूरी, इलियट एवं डाउसन, भाग-3, पृ०-414,
3- निज्जर, बी०एस०: पंजाब आण्डर दि सुल्तान्स, पृ०-63,
4- तिमूर: मुलफूजाते तिमूरी, इलियट एण्ड डाउसन, भाग-3, पृ० 414-16
यजदी: जफरनामा-भाग-2, अनु० रिजवी, तुगलक कालीन भारत, भाग-2, पृ०-244-45,
5- हबीब निजामी: दिल्ली सुल्तनत, पृ०-100,

सेना एक भयंकर बीमारी के कारण नष्ट हो गयी । उसकी यह विजय यात्रा असफल रही थी । अतः तैमूर ने उसे 30,000 घोड़ों की सेना देकर पुनः शसक्त बना दिया ।

भटनेर की विजय

चार दिन जन्जन में विश्राम के उपरान्त अमीर तैमूर सहवाल, असगन होता हुआ जहवाल पहुँचा ।[1] तैमूर ने मुख्य सेना को यह आदेश दिया कि वह दीपालपुर के मार्ग से होकर कूच करे और उससे समाना में मिले और वह स्वयं लगभग 10,000 अश्वारोहियों को लेकर चल पड़ा । दीपालपुर के सभी निवासी, जिन्होंने पूर्व में पीर मुहम्मद को बहुत परेशान किया था, भटनेर भाग गये । भटनेर का दुर्ग उत्तर पश्चिम भारत का सुदृढ़ किला माना जाता था ।[2] स्वयं तैमूर पाकपत्तन के रास्ते शेख फरीद शेजशकर की मजार पर पहुँचा यहाँ से 80 मील की यात्रा तय करने के बाद तैमूर भटनेर पहुँचा जहाँ दीपालपुर एवं पाकपत्तन के लोग शरण लिए हुए थे । भटनेर का शासक राय दुलचीं ‍(दुलीचंद) भाटी राजपूत था । लेकिन उसकी जाति बहुत पहले इस्लाम में परिवर्तित कर दी गई थी ।[3] राय दुलची इस स्थिति में नहीं था कि जो

1- यज़दी :जफरनामा, भाग-2, अनु० रिजवी, तुगलक कालीन भारत, भाग-2, पृ०-246 तथा इलियट एवं डाउसन, भाग-3, पृ०-486-87, तिमूर:मुलफ्जाते तिमूरी, अनु० इलियट एवं डाउसन, भाग-3, पृ० 420-21।

2- निज्जर, बी०एस०, पंजाब अण्डर दि सुल्तान्स, पृ०-63,

3- निज्जर, बी० एस०, पंजाब अण्डर दि सुल्तान्स, पृ०-63,
रिजवी ने भटनेर के शासक का नाम दुलचन्द लिखा है, बसु ने जुलजेस भट्टी लिखा है तथा ब्रिग्स ने राव खिलजे लिखा है ।
रिजवी, एस० ए० ए० :तुगलक कालीन भारत, भाग-2, पृ. -247-48,
बसु, के० के० : तारीखे मुबारकशाही, अंगरेजी अनुवाद, पृ०-171,
ब्रिग्स, जे० : हिस्ट्री आफ दि राइज एण्ड फाल आफ द मुहमडन पावर इन इण्डिया-भाग-1, पृ०-282,

हिन्दू और मुसलमान निवासी उसकी शरण में आये थे उनकी रक्षा कर सकता । किंतु जब राय ने अधीनता स्वीकार कर ली तो उसके भाई कमालुद्दीन ने, जो मुसलमान था, विरोध जारी करवा दिया । परिणामत: भटनेर में भी आगजनी एवं भयंकर कत्ले आम हुआ । लगभग 10,000 हिन्दू मारे गये । मृतक मुसलमानों की संख्या का उल्लेख नहीं हुआ है ।[1]

भटनेर विजय के उपरान्त तैमूर सरसुती नगर की ओर बढ़ा । यहाँ के निवासी नगर छोड़कर भाग गये थे इनकापीछा किया गया और उनकी हत्या कर दी गई[2] । नवम्बर के तृतीय सप्ताह में मुख्य शिविर समाना[3] होते हुए कैथल पहुँचा[4] और यहाँ लूट के बाद पानीपत के मार्ग से दिल्ली की ओर प्रस्थान किया गया । तैमूर की सेना की अन्य टुकड़ियाँ भी, जिन्हें तैमूर ने विभिन्न मार्गों से बढ़ने का आदेश दिया था, कैथल पहुँचकर तैमूर की मुख्य सेना से आ मिली । 11 दिसम्बर को तैमूर ने यमुना नदी पार कर जहाँपनाह नामक महल में, जिसे फिरोजशाह ने बनवाया था और जो दिल्ली से छ: मील दूरी पर स्थित था निवास किया । दूसरेदिन मल्लू इकबाल खाँ 4,000 अश्वारोहियों, 5,000 पैदल सैनिकों और सत्ताइस हाथियों सहित तैमूर के विरूद्ध चला । किंतु ऐसा प्रतीत होता है कि वह प्रथम मुठभेड़ में ही परास्त हो वापस लौट गया ।[5] इस समय तैमूर नें लगभग एक लाख हिन्दुओं को जो युद्ध में बन्दी बनाये गये थे, निर्ममता

1- यजदी :जफरनामा, भाग-2, अनु. रिजवी, तुगलक कालीन भारत, भाग-2, पृ.-249-50 तथा इलियट एवं डाउसन, भाग-3, पृ.-490-91, तिमूर: मुलफ्जाते तिमूरी, इलियट एवं डाउसन, भाग-3, पृ.-426-27,

2- यजदी: जफरनामा, भाग-2, अनु. रिजवी, तुगलक कालीन, भाग-2, पृ. 250-51 तिमूर: मुलफ्जाते तिमूरी, इलियट एवं डाउसन, भाग-3, पृ.-428,

3- यजदी :जफरनामा, भाग-2, अनु. रिजवी, तुगलक कालीन भारत, भाग-2पृ. 251

4- यजदी :जफरनामा, भाग-2, अनु. रिजवी, तुगलक कालीन भारत, भाग-2- पृ.-251 तथा इलियट एवं डाउसन, भाग-3, पृ.-430, तिमूर: मुलफ्जाते तिमूरी, अनु. इलियट एवं डाउसन, भाग-3, पृ.-431,

5- हबीब एवं निजामी: दिल्ली सल्तनत, पृ.-101,

से कत्ल कर दिया ।[1] क्योंकि उसे भय था कि युद्ध के समय कहीं वे भागकर शत्रु से न जा मिलें । जिहाद के नाम पर की गई इन नृशंस हत्याओं में एक मौलाना ने जिसने अपने जीवन में एक भेंड़ तक नहीं मारी थी पन्द्रह हिन्दुओं का बध कर दिया ।[2]

तैमूर के आक्रमण को विफल करने के लिए दिल्ली के सुल्तान महमूद ने दस सहस्र अश्वारोहियों, चालीस सहस्र पदाति और 125 हाथियों की एक विशाल सेना संगठित की ।[3] तैमूर ने भी बड़ी कुशलताऔर सावधानी से अपनी सेना सुसंगठित की । पीर मुहम्मद, जहाँगीर, यादगार विर्लास और अमीर जाँनशाह को युद्ध के लिए सेना के विशेष अंग सौंपे गये । स्वयं तैमूर ने भी सेना का एक पार्श्व संभाला । दिल्ली के समीप ही तैमूर एवं महमूद की सेना में भयंकर युद्ध हुआ । तैमूर की संगठित सेना के आगे सुलतान की सेना ठहर न सकी और उसकी पराजय हुई । अपनी सुरक्षा के लिए महमूद रणक्षेत्र से गुजरात की ओर भाग गया और उसका वजीर मल्लू इकबाल खाँ बुलन्दशहर की ओर भाग गया । विजयी तैमूर ने दिल्ली नगर में बड़ी शान और धूमधाम से प्रवेश किया ।[4] 28 दिसम्बर को

1- यजदी:जफरनामा,भाग-2,अनु• रिजवी तुगलक कालीन भारत, भाग-2, पृ•-154 तथा इलियट एवं डाउसन, भाग-3,पृ•-497,
तिमूर: मुलफुजाते तिमूरी,अनु•इलियट एवं डाउसन,भाग-3,पृ•-436,

2- फरिश्ता:तारीख-ए-फरिश्ता,अनु• ब्रिग्स,भाग-1,पृ•-284,
यहया एवं बदायूँनी के अनुसार 50,000 लोगों का बध हुआ-
बसु,के•के•,पृ•-172, रैकिंग,पृ•-356,
डा•लाल,के•एस• ने भी 5,000 लोगों का बध लिखा है-तिमूर्स विजिटेशन आफ डेहली,प्रोसीडिंग्स आफ इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस, 20वाँ सेशन (1957) पृ•-199,

3- यजदी: जफरनामा,भाग-2,अनु• रिजवी,तुगलक कालीन भारत-भाग-2, पृ•-257 तथा इलियट एवं डाउसन, भाग=3,पृ•-498-99,
तिमूर:मुलफुजाते तिमूरी,इलियट एवं डाउसन,भाग-3,पृ•-437,
निज्जर,बी•एस•: पंजाब अण्डर दि सुल्तान्स, पृ•-64,

4- हबीब एवं निजामी: दिल्ली सल्तनत, पृ•-101,

आम लूट आरम्भ हुई और जहाँपनाह तथा सीरी के अधिकांश घर लूटे गये । 29 दिसम्बर को भी लूटमार उसी प्रकार जारी रही । प्रत्येक सैनिकों ने लगभग 150 मर्द, औरतऔर बच्चों को पकड़ा । बहुमूल्य वस्तुओं जैसे मोती, मणि विशेषरूप से हीरे, भाँति-भाँति के बहुमूल्य वस्त्र, सोने चाँदी के वर्तन इत्यादि का मूल्यांकन असंभवहै ।[1] 30 दिसम्बर को सैनिक पुरानी दिल्ली पहुँचे क्योंकि बहुत से हिंदू वहाँ भाग गए थे और उन्होंने वहाँ जामा मस्जिद में शरण ली थी।[2] इन सभी कानरसंहार हुआ और समस्त पुरानी दिल्ली लूटी गई । इन घटनाओं का औचित्य सरफुद्दीन अलीयजदी इस प्रकार लिखता है[3] दिल्ली के लब्ध प्रतिष्ठित नागरिकों,प्रसिद्ध उल्माओं और मौलवियों ने दिल्ली को न लूटने और दिल्ली निवासियों के साथ सद्व्यवहार करने को प्रार्थना की । तैमूर ने इसे प्रसन्नता से स्वीकार कर लिया और अपनी सेना को खुलकर विजयोत्सव मनाने के आदेश दिये परन्तु कुछ समय के पश्चात व्यापारियों से धन वसूली के प्रश्न पर तैमूर के सैनिकों में और दिल्ली के व्यापारियों व निवासियों में संघर्ष हो गया और कुछ सैनिकों को हत्या कर दी गई । इससे क्रोधित हो तैमूर ने दिल्ली में कत्ले आम करवा दिया ।" स्पष्ट है कि यजदी का तात्पर्य यहथा कि तैमूर निर्दोष एवं सदाचारी व्यक्ति था । ऊपर से देखने वाले के लिए जो घोर अन्याय दिखाई पड़ता था वह वास्तव में ईश्वर की पूर्व निर्धारित इच्छा थी ।[4]

1- यजदी :जफरनामा,भाग-2,अनु. रिजवी,तुगलक कालीन भारत,भाग-2 पृ.-259,
हबीब एवं निजामी: दिल्ली सुल्तनत्, पृ.-102,

2- हबीब एवं निजामी: दिल्ली सुल्तनत्, पृ.-102,

3- हबीब एवं निजामी: दिल्ली सुल्तनत्, पृ.-102,

4- हबीब एवं निजामी: दिल्ली सुल्तनत्, पृ.-103,

दरबारी इतिहासकार तैमूर द्वारा किए गए नृशंस हत्याकांड के विषय में केवल हिन्दुओं का उल्लेख करते हैं । पर ऐसा सोचना व्यर्थ है कि इस हत्या कांड में मुसलमान छोड़ दिए गए थे । ज्यार्जिया में किए गए दो धर्म युद्धों के अतिरिक्त तैमूर और उसके तातारियों ने अपनी समस्त शक्ति मुसलमानों को लूटने और उनके संहार में लगा दी थी ।[1]

तैमूर की वापसी-

15 दिन तक विश्राम करने के बाद तैमूर ने 1 जनवरी 1399 ई॰ सन् को दिल्ली छोड़ दिया ।[2] उसकी समस्या यह थी कि उसे एक ऐसे मार्ग से स्वदेश वापस होना जिसमें उसे किसी विशेष विरोध का सामना न करना पड़े । किंतु जिसमें उसके सैनिकों को वह समस्त लूट की सामग्री मिल सके जिसकी उन्हें आवश्य- कता थी अर्थात् स्त्रियाँ, बच्चे, गल्ला और मवेशी । पिछले समय के मंगोल अनुभव से प्रेरित होकर उसने दूर अर्थात् हिमालय पर्वत और शिवालिक पर्वतमाला के बीच का क्षेत्र चुना ।[3] फिरोजाबाद से होता हुआ वह मेरठ पहुँचा । यहाँ के नागरिक सफी नामक एक हिन्दू और दो मुसलमानों इलियार, अफगान और मौलाना अहमद थानेश्वरी के पुत्र के नेतृत्व में विरोध करने के लिए दृढ़संकल्प थे ।[4] सफी युद्ध करते हुए मारा गया । उसके दोनों मुसलमान साथी बंदी बनाकर तैमूर के समक्ष ले जाए

1- हबीब निजामी: दिल्ली सुल्तनत,-पृ.-102,

2- निज्जर बी.एस. : पंजाब अण्डर दि सुल्तान्स, पृ.-64,
यजदी: जफरनामा,भाग-2,अनु. रिजवी,तुगलक कालीन भारत-भाग-2 पृ.-259,इलियट एवं डाउसन-भाग-3, पृ.-440,

3- हबीब निजामी: दिल्ली सुल्तनत, पृ.-102,

4- यजदी: जफरनामा,भाग-2,अनु. रिजवी,तुगलक कालीन भारत-भाग-2, पृ.-260,

गए । नगर निवासियों की हत्या की गई और उनकी स्त्रियों एवं बच्चों को दास बना लिया गया ।[1] अब शिवालिक का मार्ग साफ हो गया था । तैमूर ने लगभग एक मास (26 जनवरी से 24 फरवरी) हरिद्वार तथा यमुना के बीचका सम्पन्न प्रदेश लूटने में व्यतीत किया । इस समय 7 किलों पर अधिकार हुआ और ग्रामीणों से 20 छोटी-मोटी लड़ाइयाँ हुईं ।[2] इन किलों में से एक किला शेख का था जो कि मलिक शेख गक्खर का सम्बन्धी था । यद्यपि शेख ने समर्पण कर दिया किंतु वहाँ के निवासियों ने धन देने से मनाकर दिया । उनको निरस्त करने के लिए तैमूर ने कपट प्रबन्ध किया । उसने अनेक अस्त्रों के लिए उच्च पैसा देने की घोषणा की चाहे भले ही वे क्षतिग्रस्त हो गये हों । फिर भी निवासियों ने आत्मसमर्पण न किया इससे विवशतः किले पर आक्रमण कर उसे हस्तगत करना पड़ा।[3] बहुत से व्यक्ति मार डाले गये और शेष को बन्दी बना लिया गया ।

तैमूर ने नगरकोट के बारे में सुनरखा था । अस्तु इसके अधिकृत करने की इच्छा व्यक्त की । पर ऐसा प्रतीत होता है कि वह शिवालिक के अंतरंग भागों का भेदन नहीं कर सका । पठान कोट और नूरपुर उसके रास्त में थे । जो निश्चित रूप से क्षतिग्रस्त हुए होंगे । तैमूर ने अपने अभियान से सम्बन्धित घटनाओं एवं युद्धों कावर्णन किया है । किंतु उनमें नगरकोट का कोई उल्लेख नहीं

1- हबीब एवं निजामी: दिल्ली सुल्तनत- पृ.-102,

2- यजदी:जफरनामा,अनु. रिजवी,तुगलक कालीन भारत भाग-2,पृ.268,
फरिश्ता:तारीखे फरिश्ता,अनु.ब्रिग्स,भाग-1,पृ.-496,
निज्जर, बी.एस.:पंजाब अण्डर दि सुल्तान्स, पृ.-65,
हबीब एवं निजामी: दिल्ली सुल्तनत, पृ.-103,

3- यजदी:जफरनामा भाग-2,अनु.रिजवी,तुगलक कालीन भारत,पृ.270
तथा इलियट एवं डाउसन,भाग-3,पृ.-468,

मिलता । इसका शिविर दसूया में था जब उसने नगरकोट विजय का संकल्प लिया था । देश की कठिन स्थिति ने उसे अपना संकल्प पूरा करने में विफल कर दिया ।[1] पठानकोट से गुजरने के बाद रावी के लिए रास्ता संभवतः शाहपुर कंडी में बनाया गया था । इसलिए वह लखनऊ जसोता और साम्बा होते हुए जम्बू की ओर बढ़ा । तैमूर जम्बू से गुजरा वहाँ उसने नगर को लूटा और बुरी तरहध्वस्त किया । वहाँ के निवासियों को जानवरों की तरह से काट डाला । वह 5 मार्च 1399 को स्वदेश की ओर लौटा । उसने एक टुकड़ी लाहौर भेजी । शेख गक्खर बहुत पहले ही तैमूर के शिविर से भाग गया था । और उसने लाहौर को पुनः अधिकृत कर लिया था । गक्खर प्रधान ने हिन्दू शाह का जो कि तैमूर का कोषाधिकारी था, समरकन्द लौटते हुए लाहौर में कोई स्वागत नहीं किया था । यह एक मुख्य कारण था, जिसके कारण पीर मुहम्मद गक्खर को ठिकाने लगाने के लिए भेजा गया । पीर मुहम्मद ने उस पर आक्रमण किया । शेख गक्खर और उसके पुत्र जशरथ को बन्दी बना लिया तथा बहुत बड़ी मात्रा में धन लूटा । बाद में शेख का सिर काट दिया गया ।[2]

तैमूर भारत से लौट ही रहा था कि उसे यह सुनाई पड़ा कि उसके अपने ही साम्राज्य के पश्चिमी प्रान्त में बड़ी ही चिन्ताजनक स्थिति उत्पन्न होगयी है । मिश्र की सरकार ने पुनः सीरिया में अपनी सत्ता स्थापित कर

1- निज्जर, बी.एस. : पंजाब अण्डर दि सुल्तान्स, पृ.-65,

2- यजदी : जफरनामा, भाग-2, पृ.-169-175, उद्धृत, निज्जर, बी.एस., पंजाब अण्डर दि सुल्तान्स, पृ.-65,
फरिश्ता : तारीखे-फरिश्ता, ब्रिग्स भाग-1, पृ.-497,

ली थी और सुल्तान अहम्मद जलायर ने बगदाद पर फिर से अधिकार प्राप्त कर लिया था । यह भी देखा गया कि तैमूर का पुत्र मीरान शाह घोड़े से गिरने के पश्चात जब बीमारी से अच्छा हुआ तो वह इतना पागल हो गया था कि जार्जिया के लोगों ने ही तैमूरी सेना को बुरी तरह पराजित कर दिया । अब तैमूर को भारत वर्ष में कोई रूचि नहीं रही । और मुख्य सेना को धीरे-धीरे आने काआदेश देकर स्वयं तेजी से स्वदेश की ओर चल पड़ा ।[1] उसने 3 मार्च को चिनाब नदी पार की । और 1 मई को वह आक्सस नदी के किनारे पहुँच गया ।[2] सल्तनत् काल में उत्तर-पश्चिम से भारत पर अनेक आक्रमण हुए किंतु तैमूर के अतिरिक्त कोई भी आक्रमणकारी दिल्ली पर न अधिकार कर सका । नि:सन्देह तैमूर सल्तनत काल के आक्रमणकारियों में प्रथम एवं अन्तिम आक्रमणकारी था जिसने राजधानी पर अधिकार करने में सफलता प्राप्त की ।

स्वदेश लौटने के पूर्व अमीर तैमूर ने खिज्र खाँ को जिसे सारंग ने मुल्तान से वंचित कर दिया था, को दीपालपुर लाहौर और मुल्तान प्रान्तों का गवर्नर नियुक्त किया ।[3] उससे कहा-"मैं दिल्ली तथा अन्य सभी क्षेत्र जो मैंने विजित किया है, तुम्हें प्रदान करता हूँ ।[4] किंतु दिल्ली तथा जिन क्षेत्रों से मंगोल गुजरे थे वहाँ अकाल तथा प्लेग प्रबलता से फैले थे । विशषकर दिल्ली 2 मास तक निर्जर

1- हबीब निजामी, दिल्ली सुल्तनत्, पृ.-103,

2- हबीब निजामी, दिल्ली सुल्तनत्, पृ.-103,

3- फरिश्ता:तरीख-ए-फरिश्ता,अनु. ब्रिग्स,भाग-1,पृ.-497,
हबीब एवं निजामी: दिल्ली सुल्तनत्, पृ.-103,
निज्जर,बी.एस.: पंजाब अण्डर दि सुल्तान्स, पृ.-65
श्रीवास्तव,ए.एल.: दिल्ली सल्तनत्, पृ.- 142,

4- सरहिन्दी,यहया: तारीख-ए-मुबारकशाही,अनु. रिजवी,तुगलक कालीन-भारत-भाग-2, पृ.-220,

रही । इसलिए खिज़्र खाँ मुल्तान और दीपालपुर में स्थापित हो गया था और मूर्खता वश उसने दिल्ली दूसरों के लिए छोड़ दी ।[1]

तैमूर ने पंजाब तथा उत्तरी भारत को अव्यवस्थित और खून खराबे के साथ छोड़ा था । वहाँ अत्यधिक गड़बड़ी अव्यवस्था और परेशानियां थीं । समाना, भटनेर, भटिंडा, दीपालपुर, शिवालिक पहाड़ियां, लाहौर, मुल्तान, जम्मू और सिन्ध प्रान्त इतनी बुरी तरह लूटे गये तथा जलाये गये कि इन्हें अपनी पुरानी स्थिति प्राप्त करने में कई वर्ष लग गये । पुरूषों, स्त्रियों और बच्चों की निर्दयतापूर्वक हत्या की गयी । खेतों में फसलें पूरी तरह नष्ट करदी गयीं । परिणामस्वरूप स्वाभाविक अकाल पड़ा । तुगलक राज्य पूरी तरह से उखाड़ फेंका गया । पंजाब और सिंध का ऊपरी भाग तैमूर के वायसराय खिज़्र खाँ द्वारा शासित था । समाना का प्रान्त गालिब खाँ के हाथ में था, जिसने इसे छोटे किंतु स्वतन्त्र राज्य में परिवर्तित कर दियाथा । उत्तर भारत के दूसरे प्रान्तों में सभी प्रान्तीय मुक्ता स्वतंत्र हो गये थे । इस प्रकार तैमूर ने दिल्ली सल्तनत को विखण्डित कर दिया ।[2]

खिज़्र खाँ का पश्चिमोत्तर प्रान्तों में उत्कर्ष

तैमूर के वापस चले जाने के उपरान्त दिल्ली सल्तनत पुनः नासिरूद्दीन महमूद और राजकुमार नुसरतशाह के यहया संघर्ष का विषय बन गयी । राजकुमार

1- श्रीवास्तव, ए॰एल॰ : दिल्ली सल्तनत, पृ॰-220

2- निज्जर, बी॰एस॰ : पंजाब अण्डर दि सुल्तान्स, पृ॰-66,
पाण्डेय,ए॰बी॰ : पूर्व मध्य कालीन भारत, पृ॰-283-85,
यहया:तारीख-ए-मुबारकशाही,अनु॰ रिजवी॰ उत्तर तैमूर कालीन भारत-भाग-1, पृ॰-3-4,

नुसरत शाह ने मेरठ से निकल कर दिल्ली की ओर प्रस्थान किया किंतु वह शीघ्र ही मल्लू इकबाल खाँ द्वारा मेवात भागने को विवश कर दिया गया ।[1] दिल्ली पर इकबाल खाँ का अधिकार हो गया और उसने सीरी को अपना निवास स्थान बनाया । दिल्ली पुन: बसने लगी और दिल्ली तथा दोआब के नगरों पर इकबाल का पूर्ण अधिकार हो गया ।[2] किंतु लाहौर, सिंध और मुल्तान खिज्र खाँ के हाथों में तथा समाना बहराम खाँ के हाथों में ही बना रहा । इकबाल खाँ ने सुल्तान महमूद को बुलाकर उसे सुल्तान घोषित किया किंतु समस्त अधिकार अपने हाथ में ही रखे । परिणाम स्वरूप उसमें तथा सुल्तान में संघर्ष उत्पन्न हो गया ।[3] सुल्तान महमूद कन्नौज चला गया और वहीं संतुष्ट हो गया । जून-जुलाई 1405 ई. में इकबाल खाँ ने समाना की ओर कूच किया जहाँ बहराम खाँ तुर्क-बच्चा ने इकबाल खाँ के भतीजे और सारंग खाँ के पुत्र के विरूद्ध विद्रोह कर दिया था । किन्तु सैय्यद जलालुद्दीन बुखारी के पौत्र शेख इल्मुद्दीन ने हस्तक्षेप किया और उसके आश्वासन पर विश्वास कर बहराम खाँ इकबाल खाँ को देखने आया । बहराम खाँ के साथ विश्वास घात हुआ । और उसकी जीवित ही खाल उतरवा ली गयी । तथा उसके साथियों को जेल में बंद कर दिया[4] दिया । इकबाल खाँ के अभियान का उद्देश्य खिज्र खाँ की बढ़ती

1- यहया: तारीख-ए-मुबारकशाही, अनु. रिजवी, उत्तर तैमूर कालीन - भारत, भाग-1, पृ.-3
   अहमद निजामुद्दीन: तबकात-ए-अकबरी, भाग-1, अनु. रिजवी, उत्तर तैमूर-कालीन भारत-भाग-1, पृ.-55,

2- अहमद निजामुद्दीन: तबकात-ए-अकबरी, भाग-1, अनु. रिजवी, उत्तर तैमूर-कालीन भारत-भाग-1, पृ.-55,

3- अहमद निजामुद्दीन: तबकात-ए-अकबरी, भाग-1, अनु. रिजवी, उत्तर तैमूर-कालीन भारत-भाग-1, पृ.-57,
   यहया: तारीख-ए-मुबारकशाही, अनु. रिजवी. उत्तर तैमूर कालीन भारत पृ.-6,

4- अहमद निजामुद्दीन: तबकात-ए-अकबरी, अनु. रिजवी, उत्तर तैमूर कालीन भारत-भाग-1, पृ. 58,
   यहया: तारीखे मुबारकशाही, रिजवी-उत्तर तैमूर कालीन भारत भाग-1, पृ.-8.

हुई शक्ति को कुचलना था । खिज्र खाँ भी पूरी सजधज के साथ इकबाल खाँ का मुकाबला करने के लिए आगे बढ़ा । दोनों सेनाएं पाक पत्तन के मध्य रास्ते में मिली और 12 नवम्बर 1405 को अजोधन नदी के किनारे युद्ध हुआ[1] जब दोनों तरफ से संघर्ष अपने उत्कर्ष पर था, दुर्भाग्यवश इकबाल खाँ का घोड़ा घायल हो गया । और वह नदी के किनारे ही गिर गया । यह सब देखकर खिज्र खाँ के सैनिक उसके ऊपर टूट पड़े और उसका सिर काट डाला ।[2] उसका कटा हुआ सिर खिज्र खाँ की राजधानी फतेहपुर भेज दिया गया जहाँ उसे शहर के द्वार पर प्रदर्शित किया गया । इस प्रकार खिज्र खाँ अमीर तैमूर के प्रतिनिधि के रूप में सिन्ध, पंजाब और मुल्तान में शक्ति शाली बना रहा ।[3]

इकबाल खाँ की मृत्यु के बाद नेतृत्व विहीन दिल्ली के अमीरों ने सुल्तान महमूद को कन्नौज से आमन्त्रित कर उसे दिल्ली की गद्दी सौंप दी ।[4] सुल्तान महमूद के दो खतरनाक पड़ोसी थे अर्थात् पूर्व में शर्की शासक और पश्चिम में खिज्र खाँ । सुल्तान महमूद ने दोनों ही पड़ोसियों की ओर विशेष ध्यान दिया । दौलत खाँ को एकविशेष सेना सहित समाना की ओर भेजा । समाना के निकट हुए एक युद्ध में बेश्य खाँ तुर्क बच्चा को, जिसने बहराम खाँ तुर्क बच्चा

1- यहया:तारीख-ए-मुबारकशाही,अनु.बसु.के.के., पृ.-174,

2- अहमद निजामुद्दीन:तबकात-ए-अकबरी,अनु.रिजवी,उत्तर तैमूर कालीन-भारत-भाग-1, पृ.59,

3- निज्जर, बी.एस.:पंजाब अण्डरदि सुल्तान्स, पृ.-66,

4- अहमद निजामुद्दीन: तबकात-ए-अकबरी,अनु.रिजवी,उत्तर तैमूर-कालीन भारत-भाग-1, पृ.-59,

की मृत्यु के पश्चात् समाना पर अधिकार कर लियाथा, पराजित कर दिया । किंतु चूँकि बैरम खाँ ने खिज़्र खाँ को अपना स्वामी स्वीकार कर उसके प्रति निष्ठा की शपथ ली थी, अतएव खिज़्र खाँ एक विशाल सेना के साथ दौलत खाँ से बदला लेने के लिए उसके विरूद्ध रवाना हुआ । भयभीत होकर दौलत खाँ यमुना के पार भाग आया । यमुना नदी के क्षेत्र का पूर्ण भाग खिज़्र खाँ के अधिकार में आ गया।[1] खिज़्र खाँ ने हिसार, फिरोजा की "सिक" कवाम खाँ को प्रदान की । समाना और सुनाम बैरम खाँ से लेकर "मजलिसे आली" "जीरत खाँ" को दे दी गयी । किंतु सरहिन्द और कुछ परगने बैरम खाँ को दिये गये । सुल्तान महमूद के अधिकार में केवल दोआब स्थित उसके प्रदेश तथा रोहतक जिले के अतिरिक्त और कुछ नहीं छोड़ा गया ।[2]

दिसम्बर 1408 में सुल्तान महमूद ने हिजार फिरोजा के लिए प्रस्थान किया और कवाम खाँ ने बिना किसी संघर्ष के उसकी अधीनता स्वीकार कर ली ।[3] फलस्वरूप खिज़्र खाँ जो कवाम का अधिपति था, स्वाभाविक रूप से उससे चिढ़ गया । उसने द्वितरफे आक्रमण की योजना बनायी । मलिक तुहफा को दोआब लूटने के लिए भेजा और स्वयं सीधे दिल्ली की ओर चल पड़ा । सुल्तान महमूद को सीरी और इख्तियार खाँ को फिरोजाबाद में घेर लिया किंतु रसद की कमी

1- अहमद, निजामुद्दीन: तबकात-ए-अकबरी, अनु. रिजवी, उत्तर तैमूर-कालीन-भारत -, भाग-1, पृ. 60,

2- सरहिन्दी, यहया: तारीख-ए-मुबारकशाही, रिजवी, उत्तर तैमूर कालीन भारत भाग-1, पृ.-10,

3- सरहिन्दी, यहया: तारीख-ए-मुबारकशाही, अनु. रिज़्वी, उत्तर तैमूर - कालीन भारत -भाग-1, पृ.-10,

के कारण उसे घेरा उठाना पड़ा और अपनी राजधानी फतेहपुर वापस लौटना पड़ा ।[1]

यद्यपि खिज्र खाँ बिना किसी उपलब्धि के वापस लौट आया था, फिर भी उसे देश और सुल्तान महमूद की वास्तविक स्थिति की जानकारी हो गयी थी । उसने यह देख लिया था कि सुल्तान दिनों-दिन नाम मात्र का प्रधान होता जा रहा था ।[2] अतः उसने दिल्ली की गद्दी प्राप्त करने के लिए लगातार प्रयत्न प्रारम्भ कर दिये । 1410-11 में खिज्र खाँ ने 3 माह तक रोहतक का घेरा डालने के पश्चात् उस पर विजय प्राप्त कर ली ।[3] महमूद के राज्य की व्यवस्था पूर्णतः टूट गयी थी । वह अपनी सत्ता बनाये रखने के लिए कोई साधन नहीं सोच सका और पूर्ण-रूपेण आनन्द तथा भोग विलास में व्यस्त रहने लगा । 1411-12 में खिज्र खाँ ने मेवाड़ का एक बड़ा भाग उजाड़ डाला और तत्पश्चात् सुल्तान को सीरी में घेर लिया । उधर इख्तियार ने भी जो सुल्तान महमूद की ओर से फिरोजाबाद का अधिपति था खिज्र खाँ की अधीनता स्वीकार कर ली । इस प्रकार दोआब और दिल्ली के उपक्षेत्र खिज्र खाँ के अधिकार में आ गये । किंतु एक बार पुनः अनाज और चारे की कमी के कारण खिज्र खाँ को सीरी का घेरा उठाना पड़ा । और अप्रैल 1412 में पानीपत होते हुए फतेहपुर वापस लौटना पड़ा ।[4] इसी बीच अप्रैल 1412 में ही सुल्तान महमूद की मृत्यु हो गयी और उसके अमीरों ने दौलत खाँ को प्रति शासक मानकर उसके प्रति अपनी

1- सरहिन्दी, यहया: तारीख-ए-मुबारकशाही अनु. रिजवी, उत्तर तैमूर कालीन भारत-भाग-1, पृ.-11,
अहमद निजामुद्दीन: तबकात-ए-अकबरी, अनु. रिजवी, उत्तर तैमूर कालीन भारत-भाग-1, पृ.-62,

2- निज्जर वी.एस. : पंजाब अण्डर दि सुल्तान्स, पृ.-67,

3- यहया: तारीख-ए-मुबारकशाही, अनु. रिजवी, उत्तर तैमूर कालीन भारत-भाग-1, पृ.-11,
हबीब एवं निजामी, दिल्ली सुल्तनत, पृ.-523,

4- सरहिन्दी, यहया: तारीख-ए-मुबारकशाही, अनु. रिजवी, उत्तर तैमूर-कालीन भारत-भाग-1, पृ.-12,
अहमद, निजामुद्दीन: तबकात-ए-अकबरी, रिजवी, उत्तर तैमूर कालीन-भारत, भाग-1, पृ.-62,

निष्ठा व्यक्त की ।[1] नवम्बर-दिसम्बर 1413 में खिज्र खाँ ने 60,000 सशक्त घुड़सवारों के साथ दिल्ली की ओर प्रस्थान किया और मार्ग के अनेक किलों को विध्वंस करता हुआ दौलत खाँ को सीरी में घेर लिया । घेरा लगभग 4 माह से अधिक समय तक चलता रहा क्यों कि खिज्र खाँ इसबार रसद एवं चारे की ओर से पूर्ण रूप से तैयार होकर आया था । अन्ततः विवश होकर दौलत खाँ को खिज्र खाँ के समक्ष समर्पण करना पड़ा । खिज्र खाँ ने उसे बन्दी बना लिया और हिसार फिरोजा भेज दिया । इस प्रकार सोमवार 4 जून 1414 को खिज्र खाँ दिल्ली की गद्दी पर आसीन होगया ।[2] और एक नये वंश की स्थापना की ।

1- सरहिन्दी, यहया: तारीख-ए-मुबारकशाही, अनु. रिजवी, उत्तर तैमूर कालीन भारत-भाग-1, पृ.-12,
हबीब एवं निजामी: दिल्ली सुल्तनत, पृ.-523,

2- सरहिन्दी, यहया: तारीख-ए-मुबारकशाही, अनु. रिजवी, उत्तर तैमूर कालीन भारत-भाग-1, पृ.-13,
हबीब एवं निजामी: दिल्ली सुल्तनत, पृ.-523,

अध्याय - 6

सैयद एवं लोदी सुल्तानो की उत्तरी - पश्चिमी सीमा नीति ।

अध्याय-6

सैय्यद एवं लोदी सुल्तानों की उत्तरी-पश्चिमी सीमा नीति

§ 1414-1526 ई. §

तुगलक साम्राज्य के पतन के साथ ही विभिन्न स्वाधीन राज्यों का जन्म हुआ, जिनकी शक्ति क्रमशः बढ़ती गई । सल्तनत की गद्दी पर सैय्यदों का अधिकार हुआ लेकिन उनमें इतनी शक्ति नहीं थी कि वे सल्तनत के विघटन को इसके विपरीत रोकपाते या राजनीतिक विश्रृंखलता की स्थिति का अन्त कर पाते ।[1] विस्तार में दिल्ली सल्तनत संकुचित हो गई और उसके शासक अपनी नीतियाँ अत्यन्त सीमित संदर्भ में प्रतिपादित करने में संतुष्ट थे । उनकी राजनीतिक दृष्टि दिल्ली के चारों ओर लगभग दो सौमील के घेरे तक सीमित थी ।[2] दिल्ली का जो थोड़ा सा राज्य शेष रहा उस पर भी पड़ोसी स्वतंत्र राज्य दाँत लगाने लगे और उन्होंने उसका कुछ भाग दबा भी लिया । इस तरह दिल्ली में केन्द्रीय सरकार किसी स्वाधीन प्रान्तीय राज्य से किसी प्रकार श्रेष्ठतर नहीं रह गई, यद्यपि पिछले सुल्तानों की राजधानी के साथ संयुक्त होने के कारण इसका मान कुछ अधिक रहा । 15वीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध राजनीतिक विश्रृंखलता का युग रहा और इस काल में किसी सार्वभौम सत्ता की स्थापना संभव प्रतीत नहीं होती थी ।[3]

1- पाण्डेय,ए.बी.: पूर्व मध्य कालीन भारत, पृ.-288,

2- हेग, डब्लू.: कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया, भाग-3, पृ.-205,
पाण्डेय,ए.बी.: पूर्व मध्य कालीन भारत-पृ.-2,
हबीब निजामी,:दिल्ली सल्तनत, पृ.-539

3- पाण्डेय, ए.बी., पूर्व मध्य कालीन भारत, पृ.-288-89

खिज्र खाँ:-

खिज्र खाँ ने जिस राजवंश की स्थापना की उसे सैय्यद वंश कहा गया है । इसका एक मात्र प्रमाण "तारीखे मुबारकशाही" है ।[1] यहया सरहिन्दी का कथन दो विचारों पर आधारित है: प्रथम यह कि, एक बार मलिक मर्दान दौलत ने जो फीरोज के समय में मुल्तान का शासक था एक दावत दी । इस दावत में खिज्र खाँ का पिता सुलैमान हाथ धुलाने का कार्य कर रहा था । यह देखकर सैय्यद जलालुद्दीन बुखारी मखदूमें जहानियान जो कि एक सुहरावर्दी संत थे, ने कहा कि सुलैमान से यह कार्य न कराना चाहिए, क्योंकि वह सैय्यद परिवार में जन्मा था ।[2] द्वितीय, खिज्र खाँ में सैय्यदों की नैतिक विशेषताएँ थीं । "तारीखे मुहम्मदी" का लेखक वंशावली के प्रश्न पर मौन है । जो भी हो इतिहासकारों ने "सैय्यद" की उपाधि को खिज्र खाँ के राजवंशीय सुविधा हेतु बनाए रखा है ।[3]

सैय्यद वंश की स्थापना के मूल में भी उत्तरी-पश्चिमी सीमा की महत्वपूर्ण भूमिका रही है । इस वंश का उत्कर्ष आक्रामक तातारियों या मंगोलों के कारण था ।[4] यही कारण है कि सभी अर्थों में इस वंश का संस्थापक एक स्वतंत्र स्थिति धारण नहीं कर सका। मुगलों की सर्वसत्ता की स्वीकृति के प्रतीक स्वरूप "खुत्बा" में मुगल शासक शाह रुख के नाम का उल्लेख किया जाता था किंतु एक रोचक नवाचार के रूप में उसमें खिज्र खाँ का नाम भी जोड़ा जाता था । खिज्र

1- सरहिन्दी, यहया; तारीखे मुबारकशाही, पृ.-182, अनु. रिजवी, उत्तर तैमूर कालीन भारत-पृ.-14,

2- सरहिन्दी, यहया; तारीखे मुबारकशाही, अनु. रिजवी, उत्तर तैमूर कालीन भारत, पृ.-14,

3- हबीब निजामी; दिल्ली सल्तनत, पृ.-539,
रिजवी, एस.ए.ए.; उत्तर तैमूर कालीन भारत, पृ.-14,

4- हबीब निजामी; दिल्ली सल्तनत, पृ.-540,

खाँ ने न तो शाह की उपाधि धारण की और न अपने नाम के सिक्के ही चलाए, नेलसन राइट[1] लिखते हैं, उन्होंने केवल तिथियाँ बदलकर वे सिक्के बनाए रखना अधिक पसन्द किया जो निकटपूर्व में अधिक लोकप्रिय हो गये थे। संभवतः अपनी स्थिति दृढ़ बनाने में सैय्यद लोगों ने मुगलों तथा तुगलक वंश से अपने सम्बन्ध का लाभ उठाना चाहा। मुगल एक प्रतिष्ठित सैनिक समझे जाते थे, जबकि अपने अंतिम दिनों में महत्त्वहीन होते हुए भी तुगलकों को परंपरागत सम्मान प्राप्त था। जैसे ही सैय्यदों को स्वीकार कर लिया गया एवं उन्हें दृढ़ता प्राप्त हो गई, उन्होंने मुगल प्रभुत्व एवं तुगलक सम्बन्ध दोनों ही त्याग दिया।[2] अब सैय्यदों ने अपने राजत्व के सभी प्रतीकों का उपयोग प्रारम्भ किया। यह समय खिज्र खाँ के उत्तराधिकारी मुबारक शाह का था।

खिज्र खाँ ने परिस्थितियों पर विजय प्राप्त करने की कोशिश की जो अत्यधिक भयावह थी: इस काल में हिन्दू विद्रोहों के प्रधान केन्द्र थे– कटेहर, खोखर प्रदेश, दोआब और ग्वालियर। मुस्लिम विद्रोह के प्रधान क्षेत्र थे, मेवात, सरहिंद पंजाब और बयाना। संघर्षरत पड़ोसी राज्यों में मुख्य थे, गुजरात, मालवा और जौनपुर। खिज्र खाँ जो स्वयं उत्तरी-पश्चिमी सीमा की उपज था पश्चिमोत्तर सीमा पर विशेष ध्यान दिया। बैरम खाँ की मृत्यु के तत्काल बाद समस्त पश्चिमोत्तर सीमा प्रांत राजकुमार मुबारक के अधीन कर दिया गया।[4] मलिक साधु

1– राइट, नेलसन: दि क्वाइनेज एण्ड मेट्रोलॉजी आफ दि सुल्तान्स ऑफ डेल्ही, पृ.–239,

2– हबीब निजामी; दिल्ली सुल्तनत, पृ.–540,

3– हबीब निजामी, दिल्ली सुल्तनत, पृ.–540,

4– सरहिन्दी, यहया: तारीखे मुबारकशाही, अनु. रिजवी, उत्तर तैमूर कालीन भारत–पृ.–16,

निज्जर, बी.एस.: पंजाब अण्डर दि सुल्तान्स, पृ.–71,

हबीब निजामी: दिल्ली सुल्तनत, पृ.–544,

नादिरा उसका सहायक नियुक्त हुआ । जीरक खाँ को समाना का गवर्नर नियुक्त किया गया । राजकुमार ने मलिक साधु नादिरा एवं जीरक खाँ के सहयोग से सीमावर्ती क्षेत्रों के मामले व्यवस्थित किए ।[1] विद्रोही प्रवृत्तियों का दमन करने के पश्चात राजकुमार मुबारकशाह मलिक साधु नादिरा को सरहिन्द में अपना प्रतिनिधि नियुक्त कर जीरक खाँ एवं अन्य अमीरों के साथ दिल्ली वापस लौट आया ।[2]

तुर्क बायों का विद्रोह:

सुल्तान के वापस लौटते ही बैरम खाँ तुर्कबाचा के परिवार के एवं नजदीकी रिश्तेदारों ने पुन: विद्रोह कर दिया । उन्होंने अपने नेता तुगान रईस से सहायता माँगी और सरहिन्द पर आक्रमण कर दिया । जून 1416 ई० में मुबारक खाँ के सहायक मलिक साधु नादिरा का बध कर दिया गया तथा उसकी सेना को पराजित कर सरहिन्द पर अधिकार कर लिया गया ।[3] मलिक साधु नादिरा के वध का समाचार सुनकर राजकुमार ने मलिक दाऊद और समाना के गवर्नर जीरक खाँ को स्थिति से निपटने के लिए भेजा । तुर्क बायों ने शाही सेना से सीधा संघर्ष करना उचित न समझा अत: सतलज को पार करके शिवालिक की पहाड़ियों में चले गये । शाही सेना ने विद्रोहियों का पीछा किया लेकिन शिवालिक पहाड़ी के प्रधान

1- सरहिन्दी, यहया: तारीखे मुबारकशाही, अनु० बसु, पृ०-185, फरिश्ता: तारीख-ए-फरिश्ता, अनु० ब्रिग्स, भाग-1, पृ०-510,

2- सरहिन्दी, यहया: तारीख-ए-मुबारकशाही, अनु० बसु, पृ०-191-92, बदायूँनी: मुन्तखाब-उत्तवारीख, भाग-1, अनु० रैंकिंग, पृ०-509, फरिश्ता: तारीख-ए-फरिश्ता, अनु० ब्रिग्स, भाग-1, पृ०-509,

3- सरहिन्दी, यहया: तारीख-ए-मुबारकशाही, अनु० रिजवी, उत्तर तैमूर-कालीन भारत, पृ०-17,

एवं नगरकोट के राज्य द्वारा आश्रय दिये जाने के कारण तुर्क बाचों को पकड़ पाना असंभव हो गया । दो माह बाद दाउद एवं जीरक खाँ ने उनका पीछा करना बंदकर दिया क्योंकि इस कठिन तराई में उन्हें पकड़ पाना असंभव था ।[1] कमालबाधन को साधु नादिरा के स्थान पर राजकुमार का नया सहायक नियुक्त किया गया और इस्लाम खान को सरहिन्द का नया गवर्नर नियुक्त किया गया।[2] इस प्रकार पश्चिमोत्तर प्रान्त को व्यवस्था करने के उपरान्त पुनः मलिक दाऊद एवं जीरक खाँ को वापस बुला लिया गया ।

1417-18 ई. में तुर्कबाचों ने पुनः तुगान रईस की मदद ली तथा सरहिन्द में विद्रोह कर दिया ।[3] राजकुमार मुबारक का प्रतिनिधि मलिक कमाल बाधन घेर लिया गया । इस स्थिति का सामना करने के लिए समाना का गवर्नर अमीर जीरक खाँ पुनः सरहिन्द भेजा गया । जब जीरक खाँ सरहिन्द पहुँचा तो तुर्क बाचों ने पुनः अपना घेरा उठा लिया और पहले की भाँति शिवालिक की पहाड़ियों में शरण ली ।[4] जीरक खाँ ने पायल तक जो कि सरहिन्द से 25 मील उत्तर-पश्चिम में स्थित है, तक उनका पीछा किया । यहाँ तुगान रईस से एक संधि हुई, जिसमें 3 शर्ते निश्चित हुई । इन शर्तों का मुख्य आशय यह था कि तुगान अब तुर्क बाचों की मदद नहीं करेगा । इस संधि को दृढ़ता देने के लिए तुगान को अपना पुत्र बंधक के रूप में दिल्ली भेजना पड़ा ।[5]

1- सरहिन्दी, यहया: तारीख-ए-मुबारकशाही, अनु. बसु. पृ.-191-92, फरिश्ता: तारीखे फरिश्ता, अनु. ब्रिग्स, भाग-1, पृ.-510,

2- निज्जर, बी.एस.: पंजाब अण्डर द सुल्तान्स, पृ.-71,

3- सरहिन्दी, यहया: तारीख-ए-मुबारकशाही, अनु. रिजवी, उत्तर तैमूर-कालीन भारत, पृ.-18,
हबीब एवं निजामी: दिल्ली सुल्तनत, पृ.-545,

4- सरहिन्दी, यहया: तारीख-ए-मुबारकशाही, अनु. रिजवी, उत्तर तैमूर-कालीन भारत, पृ.-18
हबीब निजामी: दिल्ली सुल्तनत, पृ.-545,

5- सरहिन्दी, यहया: तारीख-ए-मुबारकशाही, अनु. रिजवी, उत्तर तैमूर-कालीन भारत, पृ.-18,

सारंग खाँ का विद्रोह:

जून 1419 ई. में एक छद्मवेशी ने जो सारंग खाँ होने का दावा करता था, बजवारा में विद्रोह कर दिया ।[1] इस विद्रोह का दमन करने के लिए मलिक सुल्तान शाह लोदी को सरहिन्दप्रदान किया गया और उसे विद्रोहियों से निपटने का आदेश दिया गया । दूसरी ओर समाना के गवर्नर जीरक खाँ तथा मलिक खैरूद्दीन खानी को भी भेजा गया । छद्मवेशी सारंग खाँ सरहिन्द, समाना और जालंधर के सम्मिलित सेना का सामना करने के लिए बजवारा से अरूबार (रोपर) की ओर प्रस्थान किया किंतु वहाँ पर भी वह अपने को असमर्थ पाकर एवं छिटपुट संघर्ष में पराजित होकर शिवालिक पहाड़ियों में भाग गया ।[2] इस पहाड़ी क्षेत्र में उसे पकड़ पाना असंभव था । अतः खैरूद्दीन खानी दिल्ली वापस लौट गया । जीरक खाँ समाना गया और मलिक सुल्तान शाह रोपर में रहा । छद्मवंशी सारंग खाँ की समाप्ति में खिज्र खाँ को कोई विशेष प्रयत्न नहीं करना पड़ा । भाग्य ने पलटा खाया । सारंग खाँ एवं तुगान-रईस में एक संधि हो गयी जिसका उद्देश्य खिज्र खाँ से टक्कर लेना था, किंतु यह संधि अधिक दिनों तक न चल सकी । फरिश्ता लिखता है कि जब तुगान ने देखा कि सारंग खाँ के पास अत्याधिक संख्या में रत्न हैं तो उसने उसकी हत्या करवा दी ।[3] इस प्रकार खिज्र खाँ का एक कर्मठ विरोधी मंच से हटा दिया गया।

1- इलियट एवं डाउसन, भाग-4, पृ.-163,

2- अहमद, निजामुद्दीन: तबकाते अकबरी, भाग-1, अनु. रिजवी उत्तर-तैमूर कालीन भारत-भाग-1, पृ.-67,
सरहिन्दी, यहया: तारीख-ए-मुबारकशाही, अनु. रिजवी, उत्तर तैमूर कालीन भारत-भाग-1, पृ.-20,

3- अहमद, निजामुद्दीन: तबकाते अकबरी, भाग-1, अनु. रिजवी, उत्तर तैमूर-कालीन भारत-पृष्ठ- 67,
सरहिन्दी, यहया: तारीखे मुबारकशाही, अनु. रिजवी, उत्तर तैमूर-कालीन भारत, पृ.-20,
फरिश्ता: तारीख-ए-फरिश्ता, भाग-1, पृ.-163,

तुगान रईस का विद्रोह:

सारंग खाँ की सेना एवं कोष को पाकर तुगान रईस और अधिक प्रोत्साहित हुआ तथा जुलाई 1420ई॰में सरहिन्द में विद्रोह कर दिया ।[1] सरहिन्द को घेर लिया तथा मंसूरपुर एवं पायल का मध्यवर्ती क्षेत्र लूटा ।[2] इस विद्रोह के दमन के लिए दिल्ली सुल्तान खिज़्र खाँ ने मलिक खैरूद्दीन खानी को भेजा । खैरूद्दीन की सेना को दृढ़ता प्रदान करने के लिए समाना के गवर्नर जीरक खाँ को भी उससे मिल जाने का आदेश दिया । तुगान नें उन सम्मिलित सेनाओं का मुकाबला न करने में ही बुद्धिमानी समझी और खोखरों के प्रदेश से होता हुआ भाग गया ।[3] जीरक खाँ ने तुगान की इक्ता पर अधिकार कर लिया ।

इस प्रकार खिज़्र खाँ ने जो अत्यन्त समर्थ और कर्मठ शासक था, पश्चिमोत्तर सीमा पर लगातार हो रहे विद्रोहों को दबाने का सफल प्रयास किया। किंतु यह उसका दुर्भाग्य ही था कि पश्चिमोत्तर सीमा की भौगोलिक स्थिति एवं तुर्कबाचों तथा तुगान रईस की छापामार युद्ध पद्धतिनेसमस्या का अंतिम समाधान नहीं होने दिया ।

1- सरहिन्दी यहया: तारीख-ए-मुबारकशाही, अनु॰ रिजवी, उत्तर तैमूर-कालीन भारत-पृ॰-21,
हबीब निजामी: दिल्ली सुल्तनत, पृ॰-546,

2- सरहिन्दी, यहया: तारीख-ए-मुबारकशाही, अनु॰ रिजवी, उत्तर तैमूर-कालीन भारत-भाग-1, पृ॰-21,
अहमद, निजामुद्दीन: तबकात-ए-अकबरी, अनु॰ रिजवी, उत्तर तैमूर कालीन-भारत-भाग-1, पृ॰-67,

3- सरहिन्दी, यहया: तारीख-ए-मुबारकशाही, अनु॰ रिजवी, उत्तर तैमूर कालीन भारत, भाग-1, पृ॰-21,
अहमद निजामुद्दीन: तबकात-ए-अकबरी, अनु॰ रिजवी, उत्तर तैमूर कालीन-भारत, भाग-1, पृ॰-67,

सुल्तान मुबारक शाह-§1421-1433 ई.§

खिज़्र खाँ ने अपनी मृत्यु के केवल तीन दिन पूर्व ही मुबारकशाह को अपना प्रत्यक्ष उत्तराधिकारी मनोनीत किया । इस निर्णय को सभी मलिकों एवं अमीरों ने स्वीकार किया । अत: 22 मई 1421ई.को वह निर्विरोध दिल्ली सिंहासन पर बैठा ।[1] सिंहासनारूढ़ होने के पश्चात् उसने अमीरों एवं मलिकों को सामान्यत: उनके भूतपूर्व इक्ताओं पर पुन: प्रतिष्ठित कर दिया । किंतु पश्चिमोत्तर सीमा के लिए कुछ नवीन व्यवस्था की गयी । उत्तर-पश्चिमी प्रदेश और पंजाब में भी कानून और व्यवस्था की सामान्य स्थिति सन्तोष जनक नहीं थी । वहाँ पर मुबारक शाह के लिए तिहरी चुनौती थी । §1§ गक्खर §2§ तुर्क बच्चे §3§मुग़ल । अत: परिस्थितियों का सामना करने के लिए मुबारक शाह ने हिसार फिरोजा एवं हांसी के जिले मलिक रजब नादिर से लेकर अपने भतीजे मलिकुश्शर्क मलिक बद्र को प्रदान किया ।[2] रजब को दीपालपुर की इक्ता प्रदान की गयी ।[3]

जसरथ गक्खर का विद्रोह:

जसरथ गक्खर जनजाति के सरदार शेखा का पुत्र था । यह झेलम के दोनों ओर का शासक था । पन्द्रहवीं शताब्दी में गक्खर रावी एवं चिनाब के बीच के

1- अहमद, निजामुद्दीन:तबकात-ए-अकबरी, अनु. रिजवी. उत्तर तैमूर कालीन-भारत, भाग-1, पृ.-67,
हबीब एवं निजामी:दिल्ली सुल्तनत्, पृ.-547 किंतु रिजवी ने तारीख-ए-मुबारकशाही का अनुवाद करते हुए सिंहासनारोहण की तिथि 20मई1421 ई. माना है, पृ.-22,

2- अहमद, निजामुद्दीन:तबकात-ए-अकबरी, अनु. उत्तर तैमूर कालीन भारत, भाग-1, पृ.-68,

3- सरहिन्दी, यहया: तारीख-ए-मुबारकशाही, अनु. बसु, पृ. 197,
फरिश्ता:तारीख-ए-फरिश्ता, भाग-1, अनु. ब्रिग्स, पृ.-512,

क्षेत्र में शक्तिशाली हो गये थे और अपनी शक्ति को कश्मीर की पहाड़ी तक बढ़ा लिया था। जसरथ ने 1396 ई॰ में लाहौर पर अधिकार कर लिया। जब तैमूर दक्षिणी पंजाब से दिल्ली की ओर जा रहा था तो दीपालपुर के पास जसरथ ने उसका विरोध किया किंतु वह पराजित हुआ और अपने पिता शेखा के पास नमक की पहाड़ियों में भाग गया।[1] किंतु जब तैमूर के आक्रमण ने भारत के उत्तरी पश्चिमी प्रान्त को अत्यधिक जर्जर कर दिया तो जसरथ ने अपने क्रिया कलाप का विस्तार किया। इससे उसकी शक्ति बहुत अधिक बढ़ गयी। पिता-पुत्र ने पुनः लाहौर पर अधिकार कर लिया। किंतु जब तैमूर वापस लौट रहा था तो उसने पुनः जसरथ को बन्दी बनाया और एक कैदी के रूप में समरकन्द ले गया।[2] किंतु यहाँ जसरथ कैद से बच निकला और पुनः लाहौर वापस आ गया तथा अपनी जाति का नेता बन गया। उसने एक स्वतंत्र राज्य की स्थापना की और दिल्ली सुल्तान की इस क्षेत्र में ढीली पकड़ का अधिकाधिक लाभ उठाया। जसरथ गक्खर को उस समय सर्वाधिक लाभ हुआ जब उसने कश्मीर के एक गृहयुद्ध में भाग लिया। जसरथ का प्रत्याशी जैनुल आबिदीन सफल हुआ। जसरथ के साथ एक सौभाग्य की बात और हुई वह यह कि तुगान रईस उससे मिल गया।[3] इसी समय खिज्र खाँ की मृत्यु हो गयी और गक्खर नेता जसरथ को दिल्ली पर अधिकार करने का सुनहरा अवसर दिखने लगा। सुल्तान

1- बदायूँनी: मुन्तखबुत्तवारीख, अनु॰ इलियट एवं डाउसन, भाग-4, पृ॰ 416, फरिश्ता: तारीख-ए-फरिश्ता, अनु॰ ब्रिग्स, भाग-1, पृ॰-513,

2- निज्जर, बी॰ एस॰; पंजाब अण्डर दि सुल्तान्स, पृ॰-73,

3- सरहिन्दी, यहया; तारीख-ए-मुबारकशाही, अनु॰ बसु, पृ॰-192-194, अहमद, निजामुद्दीन; तबकाते अकबरी, अनु॰ जैरेट-सरकार, पृ॰ 271,

जैनुल आबिदीन तथा तुगान रईस की मदद से उसने स्यालकोट से कूच किया और रावी, व्यास तथा सतलज को पार करता हुआ लुधियाना के गवर्नर राय कमालुद्दीन मियाँ पर आक्रमण किया और उसे पूर्व की ओर भागने को विवश किया । लुधियाना से रोपर तक का सम्पूर्ण क्षेत्र लूट लिया और उजाड़ डाला । इसके बाद उसने सतलज को पार किया और जालंधर के गवर्नर जीरक खाँ को घेर लिया ।[1] छिटपुट संघर्ष के बाद दोनों के मध्य एक समझौता हो गया ।(1) जलंधर का दुर्ग खाली कर दिया जाएगा और उसे तुगान रईस की देख रेख में छोड़ दिया जाएगा । (2) तुगान का एक पुत्र जीरक खाँ के साथ दिल्ली जाएगा और (3) जसरथ खराज भेजेगा और स्वयं स्वदेश लौट जाएगा ।[2] इस संधि के बाद जीरक खाँ दुर्ग से बाहर आया किंतु जसरथ ने अपना वचन भंग किया और उसे बन्दी बनाकर लुधियाना ले गया ।[3] इसके बाद जसरथ 22 जून 1421 ई॰ को सरहिन्द के लिए आगे बढ़ा तथा वहाँ के अमीर मलिक सुल्तान शाह लोदी को घेर लिया । सरहिन्द का दुर्ग अत्यन्त दृढ़ था अतः उस पर जसरथ का अधिकार न हो सका ।[4] इसी बीच दिल्ली सुल्तान मुबारक शाह ने भी भारी वर्षा के बावजूद सरहिन्द की ओर कूच किया । सुल्तान के आगमन को सुनकर जसरथ लुधियाना की ओर वापस लौट गया । फरिश्ता लिखता है कि जीरक खाँ कैद से भाग निकला और सुल्तान से समाना में जा मिला ।[5]

1- सरहिन्दी, यहया; तारीख-ए-मुबारकशाही, अनु॰ रिजवी, उत्तर तैमूर कालीन-भारत, भाग-1, पृ॰-23,

2- सरहिन्दी, यहया: तारीख-ए-मुबारकशाही, अनु॰ रिजवी, उत्तर तैमूर कालीन-भारत-भाग-1, पृ॰-23,

अहमद, निजामुद्दीन: तबकातेअकबरी, अनु॰ रिजवी, उत्तर तैमूर कालीन-भारत-भाग-1, पृ॰-69,

3- सरहिन्दी, यहया: तारीखे मुबारकशाही, अनु॰ रिजवी, उत्तर तैमूरकालीन-भारत-भाग-1, पृ॰-23,

4- सरहिन्दी, यहया: तारीखे मुबारकशाही, अनु॰ रिजवी, उत्तर तैमूर कालीन भारत-भाग-1, पृ॰-23,

5- फरिश्ता: तारीख-ए-फरिश्ता, भाग-1, पृ॰-164,

मुबारकशाह अब जीरक खाँ को साथ लेकर जसरथ के विरूद्ध लुधियाना के लिए बढ़ा । किंतु जसरथ ने आश्चर्यजनक रूप से वहाँ प्राप्त नावों द्वारा नदी को पार कर लिया । नदी अपने पूरे बाढ़ पर थी और सभी नावें जसरथ द्वारा हटा ली गई थीं । परिणामस्वरूप शाही सेना नदी न पार कर सकी ।[1] 40 दिन तक वे संघर्षरत रहे और सुल्तान ने नदी के किनारे-किनारे बढ़ना जारी रखा और जसरथ पर ध्यान टिकाये रखा । 8 अक्टूबर 1421 ई॰ को जबकि वर्षा रूक गई थी सुल्तान ने कुछ अमीरों मलिक सिकन्दर तुहफा, जीरक खाँ, महमूद हसन, मलिक कालू तथा अन्य को ऊँचाई पर रोपर के निकट नदी पार करने का आदेश दिया । वे लोग अवरोधों के बावजूद नदी पार करने में सफल हुए । शाही सेना के नदी पार करने की सूचना पाते ही जसरथ ने भागने में ही अपनी भलाई समझी । वह शीघ्रता से जालंधर की ओर वापस लौटा और व्यास नदी पार किया । पीछा करते हुए सुल्तान जब व्यास के निकट पहुँचा तो जसरथ रावी की ओर भागा । मुबारक ने भी पहाड़ की तराई के निकट भोजा नामक स्थान पर व्यास को पार किया । जसरथ ने चेनाव को पार किया और तिलहर[2] में प्रवेश किया । सुल्तान मुबारकशाह भी जम्मू के राय भीम की मदद से शीघ्रता से चेनाब को पार किया और तिलहर नामक दुर्ग को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया । किंतु जसरथ यहाँ से भी बच निकला । वह एक स्थान से दूसरे स्थान पर भागता रहा । अत्यधिक प्रयास करने पर भी सुल्तान न तो उसे पकड़ सका और न सदा के लिए रोक ही सका । थक कर सुल्तान जनवरी 1422 ई॰ को लाहौर वापस लौट आया और यहाँ रूककर पश्चिमोत्तर प्रान्त की पुर्नव्यवस्था की ।[3]

1- सरहिन्दी, यहया: तारीख-ए-मुबारकशाही, अनु॰ रिजवी, उत्तर तैमूर कालीन भारत, पृ॰- 24,
निज्जर बी॰एस॰: पंजाब अण्डर दि सुल्तान्स, पृ॰-74,

2- बदायूँनी: मुन्तखाब-उत-तवारीख, अनु॰ रैकिंग, इन्होंने इसकी पहचान चनाब के दाहिन तट पर रियासी नगर के बिल्कुल सामने तलवारा गाँव से की है, जो स्यालकोट से लगभग 50 मील उत्तर पहाड़ियों में स्थित है ।

3- हबीब निजामी, दिल्ली सुल्तनत, पृ॰-549,

लाहौर की पुनर्व्यवस्था:

तैमूर के विध्वंश के बाद से ही लाहौर नगर उपेक्षित रहा था । दिल्ली सुल्तान द्वारा इस ओर कोई ध्यान नहीं दियागया था । यहाँ की सामरिक स्थिति को ध्यान में रखते हुए मबारकशाह ने इसके पुनर्वास का निर्णय लिया । मकानों की मरम्मत करवा कर यहाँ पुन: लोगों को निवसित किया गया । उन लोगों के लिए अधिक सुरक्षा सुविधा तथा क्षति पूर्ति का वादा किया जो वहाँ बसने को तैयार थे । दुर्ग एवं उसके द्वारों की भी मरम्मत करवायी गई । इस नगर का पुननर्मांकन करते हुए सुल्तान ने अपने नाम पर मुबारकाबाद रखा । तत्पश्चात लाहौर की इक्ता मलिकुश्शर्क महमूद हसन को प्रदान की गई तथा दो हजार अश्वारोहियों की एक विशेष सेना खोखरों एवं तुर्क बाचों के विद्रोह के दमन के लिए रखी गई । इन प्रबन्धों के बाद सुल्तान दिल्ली चला आया ।[1]

जसरथ का पुन: विद्रोह:-

कश्मीर घाटी स्थित तलवारा जसरथ गक्खर का प्रधान सुरक्षा कपाट था ।[2] सुल्तान ने अपने अभियान में इसे नष्ट कर दिया था, इससे गक्खर प्रधान सर्वाधिक अपमानित हुआ था । अत: मई 1422 ई॰ में ही उसने स्थानीय जमींदारों के सहयोग से पैदल एवं अश्वारोहियों की एक विशाल सेना एकत्रित कर लाहौर के गवर्नर महमूद हसन की ओर बढ़ा । चनाब एवं रावी को पार कर उसने शेख हुसैन जन्जानी के मकबरे के पास शिविर डाला ।[3] मलिकुश्शर्क ने जसरथ को युद्ध के लिए

1- फरिश्ता; तारीख-ए-फरिश्ता, भाग-1, अनु॰ ब्रिग्स, पृ॰-515,
सरहिन्दी, यहया; तारीख-ए-मुबारकशाही, अनु॰ बसु, पृ॰-203-204,

2- लाल, के॰ के॰ एस॰; ट्वालाईट ऑफ सल्तनत, एपेन्डिक्स॰ बी॰

3- सरहिन्दी, यहया; तारीख-ए-मुबारकशाही, अनु॰, बसु, पृ॰ 204,
फजल, अबुल; आइने अकबरी, भाग-2, अनु॰, जैरेट-सरकार, पृ॰-363,

ललकारा जिससे दोनों सेनाओं में 2 जून को युद्ध हुआ । इस युद्ध में जसरथ पराजित हुआ और खदेड़ दिया गया । किंतु दूसरे दिन ही वह पुन: प्रकट हुआ । यह युद्ध लगभग 35 दिन तक चलतारहा । अन्तत: जसरथ की पुनर्पराजय हुई । जसरथ इस बार भी बच निकला और कलानूर की पहाड़ियों की ओर भाग गया ।[1]

उत्तर-पश्चिम में जसरथ दिल्ली सल्तनत के लिए एक गंभीर संकट बन गया था । अत: जसरथ को पूरी तरह से समाप्त करने के लिए सुल्तान मुबारक शाह ने सिकन्दर तुहफा की अधीनता में दिल्ली से एक कुमुक भेजी ।[2] जम्मू के राय को भी सम्मिलित सेना की मदद का आदेश दिया गया । इस प्रकार जसरथ के विरूद्ध सैनिक कार्रवाई में दीपालपुर के अमीर मलिक रजब, सरहिन्द के अमीर मलिक सुल्तान शाह लोदी, राय फीरोज मियां सिकन्दर तुहफा से मिल गए थे । जब यह सम्मिलित सेना जम्मू की सीमा पर पहुँची तो भीम राय भी उसमें शामिल हो गया । अब यह सेना लाहौर के गवर्नर महमूद हसन की ओर बढ़ी जिसे दिल्ली सुल्तान की ओर से फर्मान मिला था कि वह अपनी सैन्य सज्जा के लिए जालंधर जाए और वहाँ से सुसज्जित हो वापस लौटे । इस संयुक्त सेना ने तलवारा में जसरथ गक्खर का पीछा किया । किंतु इस बार भी जसरथ बच निकला जब कि गक्खर प्रधान एवं बहुत बड़ी संख्या में गक्खर सैनिक मारे गये ।[3] अभियान अभी

1- सरहिन्दी, यहया: तारीख-ए-मुबारकशाही, अनु॰ रिजवी, उत्तर तैमूर कालीन भारत, पृ॰-25,

अहमद, निजामुद्दीन: तबकात-ए-अकबरी, अनु॰ रिजवी, उत्तर तैमूर कालीन भारत, भाग-1, पृ॰-70,

2- सरहिन्दी, यहया: तारीखे मुबारकशाही, अनु॰ रिजवी, उत्तर तैमूर कालीन भारत, पृ॰-25-26,

3- बदायूँनी: मुन्तखाब-उततवारीख, भाग-1, अनु॰ रैकिंग, पृ॰-297,

फरिश्ता: तारीख-ए-फरिश्ता, अनु॰ ब्रिग्स, पृ॰-522,

सरहिन्दी, यहया: तारीखे मुबारक शाही, अनु॰ बसु, पृ॰-220,

सफल भी नहीं हुआ था कि मुबारकशाह को अपना ध्यान देश के अन्य गड़बड़ी वालें क्षेत्रों की ओर देना पड़ा । ये क्षेत्र थे कटेहर एवं कम्पिल । इस कारण एक बार पुन: सारी सेना वापस हो गयी और जसरथ बचा रह गया ।

जिस समय सुल्तान इटावा के मामले सुलझा रहा था उसी समय जसरथ ने पुन: पहाड़ियों से निकलकर जम्मू के राजा भीम राय पर आक्रमण किया । राय पराजित हुआ और मारा गया ।[1] जसरथ ने उसके राज्य की बुरी तरह लूटा । इस विजय से जसरथ की शक्ति बहुत अधिक बढ़ गई, क्योंकि यहाँ उसे बहुत बड़ी मात्रा में धन तथा हथियार प्राप्त हुआ था ।[2] अब उसने पंजाब में अपनी कार्यवाही बढ़ा दी तथा 10-12 हजार की सेना के साथ लाहौर तथा दीपालपुर के जिलेंपर आक्रमण किया इस समय लाहौर का गवर्नर महमूद हसन के स्थान पर मलिक सिंकदर तुहफा था । इसने स्वयं जसरथ की प्रगति रोकने के लिए प्रस्थान किया और दीपालपुर के गवर्नर को भी सचेत किया । इसी समय यह समाचार प्राप्त हुआ कि काबुल से शेख अली अबसार एवं सिविस्तार की ओर बढ़ रहा है । अत: मुबारक शाह ने खैरूद्दीन के स्थान पर मलिकुश्शर्क मलिक महमूद हसन को मुल्तान एवं सिविस्तान का "आरिजे ममालिक" नियुक्त किया ।[3] मलिक महमूद हसन ने मुल्तान को पुनर्स्थापित करने का प्रयास किया । उसने जन कल्याण के लिए अनेक कार्य किया तथा उदारता पूर्वक अनुदानों एवं पेंशनों का भुगतान किया । इसके अतिरिक्त उसने मुल्तान को सैनिक दृष्टि से भी सुसज्जित किया । दुर्गों की मरम्मत करवाई तथा वहाँ दुर्धर्ष

1- सरहिन्दी, यहया: तारीख-ए-मुबारकशाही, अनु. रिजवी, उत्तर तैमूर-कालीन भारत, भाग-1, पृ.-27,
अहमद, निजामुद्दीन: तबकात-ए-अकबरी, अनु. रिजवी, उत्तर तैमूर कालीन-भारत भाग-1, पृ.-71,

2- सरहिन्दी, यहया: तारीख-ए-मुबारकशाही, अनु. रिजवी, उत्तर तैमूर-कालीन भारत, भाग-1, पृ.-27,
अहमद, निजामुद्दीन: तबकात-ए-अकबरी, अनु. रिजवी, उत्तर तैमूर कालीन-भारत, भाग-1, पृ.-71,

3- सरहिन्दी, यहया: तारीख-ए-मुबारकशाही, अनु. रिजवी, उत्तर तैमूर-कालीन भारत, भाग-1, पृ.-27-28,
अहमद, निजामुद्दीन: तबकाते अकबरी, अनु. रिजवी, उत्तर तैमूर कालीन-भारत, भाग-1, पृ.-72,

सैनिक नियुक्त किए । इस प्रकार मुलतान में एक बार पुन: शांति और व्यवस्था कायम हुई तथा आक्रमण के निवारणार्थ एक विशाल सेना का संगठन हुआ । परिणाम स्वरूप उत्तरी-पश्चिमी सीमा पर कुछ समय के लिए स्थिति सुगम हो गई और जनता प्रगति के मार्ग पर आगे बढ़ सकी ।[1]

लगभग पाँच वर्ष तक शांत रहने के बाद जसरथ ने अगस्त-सितम्बर 1428 ई. में पुन: हरकत की ।[2] इस समय सुल्तान बयाना व मेवात में व्यस्त था । इसका लाभ उठाते हुए जसरथ ने कालानूर को घेर लिया । सुल्तान ने पुन: जीरक खाँ एवं इस्लाम खाँ को मलिक सिकन्दर तुहफा के सहायतार्थ भेजा । किंतु इन मलिकों की सेना के आगमन के पूर्व ही सिकन्दर तुहफा पराजित हो गया और लाहौर लौट आया । जसरथ ने जालंधर को लूटा किंतु उस पर अधिकार न कर सका । अत: वह पुन: कालानूर लौट गया । इसी बीच सिकन्दर की मदद के लिए सुल्तान द्वारा निर्देशित अमीर अपनी सेना के साथ पहुँच गये । सम्मिलित सेना ने कांगड़ा के निकट जसरथ को पराजित किया । उसका समस्त साजो सामान लूट लिया गया । किंतु इस बार भी जसरथ भाग निकला और आगे चलकर सैय्यद सत्ता के लिए गंभीर संकट बना रहा ।[3]

1- हबीब निजामी: दिल्ली सुल्तनत , पृ.-550

2- निज्जर,बी.एस.; पंजाब अण्डर दि सुल्तान्स, पृ. 77,

3- सरहिन्दी,यहया: तारीख-ए-मुबारक शाही अनु.रिजवी,उत्तर तैमूर-कालीन भारत,भाग-1, पृ.-34-35,

फौलाद एवं सैय्यद सलीम के पुत्रों का विद्रोह:-

फौलाद भटिंडा के सूबेदार सैय्यद सलीम का दास था । सैय्यद सलीम के पास भटिंडा के किले के अतिरिक्त अमरोहा और यमुना दोआब के कुछ परगने भी थे जहाँ उसने अत्यधिक अनाज का भण्डारण किया था । सैय्यद सलीम की मृत्यु मार्च 1430 ई. में हो गयी । उसकी मृत्यु पर सुल्तान ने उसकी इक्ताएँ और परगने उसके पुत्रों में विभाजित कर दिया । बड़े पुत्र को सैय्यद खाँ की उपाधि एवं छोटे को सुजाउल मुल्क की उपाधि प्रदान की । किंतु ऐसा प्रतीत होता है कि सलीम के पुत्रों की महत्वाकांक्षाएं अतृप्त रही । और अधिक प्राप्त करने की लालच में उन्होंने अपने पिता के दास फौलाद से मिलकर विद्रोह कर दिया तथा उस समस्त धन को अपने कब्जे में कर लिया, जिसे सैय्यद सलीम ने बड़ी कंजूसीपूर्ण ढंग से एकत्रित किया था ।[1] सुल्तान मुबारक शाह ने सैय्यद सलीम के पुत्रों को जो उसकी मृत्यु के समय शाही शिविर में थे, बन्दी बना लिया । फौलाद को प्रलोभन देकर अपनी ओर मिलाने के लिए तथा सैय्यद के धन पर अधिकार करने के लिए मलिक युसूफ शर्वर और रायहीनू भाटी को भेजा । पर ये लोग सफल न हो सके । फौलाद एक विश्वासघाती चाल चला[2] और दिल्ली के अधिकारियों से समझौते का बहाना कर उनपर अचानक आक्रमण कर दिया । शाही सेना बुरी तरह पराजित हुई । वे भाग गये और फौलाद ने उनका सिरसा तक पीछा किया । उनके धन, सामान फौलाद के हाथ लगे । फौलाद की इस धृष्टता को सुनकर सुल्तान परेशान हो उठा और उसने स्वयं उसके विरूद्ध कूच करने का निर्णय लिया ।[3] सुल्तान ने ताबर-हिन्दा के लिए प्रस्थान किया और शीघ्र

1- सरहिन्दी, यहया:तारीख-ए-मुबारकशाही, अनु. रिजवी, उत्तर तैमूर कालीन भारत, पृ.-36,
फरिश्ता:तारीख-ए-फरिश्ता, भाग-1, अनु. ब्रिग्स, पृ.-523-24,

2- सरहिन्दी, यहया:तारीखे मुबारकशाही, अनु. रिजवी, उत्तर तैमूर कालीन-भारत भाग-1, पृ.-36-37,
अहमद, निजामुद्दीन:तबकाते अकबरी, अनु. रिजवी, उत्तर तैमूर कालीन-भारत-भाग-1, पृ.-76,

3- सरहिन्दी, यहया:तारीखे मुबारकशाही, अनु. रिजवी, उत्तर तैमूर कालीन भारत, भाग-1, पृ.-37,

ही सरसुती पहुँच गया, जहाँ उसने पौलाद द्वारा पराजित अमीरों से भेंट की । सुल्तान सरसुती में ही रूक गया तथा मुल्तान के गवर्नर मलिकुश्शर्क इमादुल मुल्क महमूद हसन को मुल्तान तेकुमुक भेजने तथा पौलाद से निपटने के बारे में परामर्श के लिए बुलाया । पौलाद ने अपने को ताबर-हिन्दा दुर्ग में बन्द कर लिया । उस दुर्ग में इतने प्रचुर साधन थे कि लम्बे समय तक घेरे का सामना किया जा सकता था । सुल्तान के पहुँचने के पूर्व ही जीरक खाँ, मलिक कालू, इस्लाम खाँ और कमाल खाँ ने ताबर हिन्दा का दुर्ग घेर लिया ।

ऐसा प्रतीत होता है कि पौलाद सुल्तान को शक्ति से घबड़ा गया था । उसने किले में बंद रहते हुए भी सुल्तान के पास यह प्रस्ताव भेजा कि मुझे इमादुल मुल्क पर विश्वास है । और यदि वह मेरे साथ चले तो मैं सुल्तान के समक्ष समर्पण कर दूँगा ।[1] इमादुल मुल्क ताबरहिन्दा भेजा गया । पौलाद भी दुर्ग के द्वार पर आया तथा इमादुल मुल्क तथा मलिक कालू से मिला । यह निश्चय किया गया कि अगले दिन पौलाद दुर्ग से बाहर आयेगा और सुल्तान के प्रति सम्मान प्रदर्शित करेगा । किंतु यह संभव न हो सका । पौलाद के कुछ सैनिकों ने उसे गुप्त सूचना दी कि सुल्तान मुबारक शाह उसकी हत्या करने के लिए दृढ़ संकल्प है । अतः मृत्यु के भय से पौलाद ने समझौता का विचार त्याग दिया ।[2] और शाही सेना के विरूद्ध संघर्ष का निर्णय लिया । मुबारक शाह दृढ़ कदम उठाने से हिचकने लगा, क्योंकि उसे यह सूचना मिली कि पौलाद काबुल के सूबेदार की सहायता का प्रयास कर रहा है ।[3] इसी समय सल्तनत के अन्य राज्यों में भी विद्रोह हो रहे थे । जिनका

1- सरहिन्दी, यहया: तारीख-ए-मुबारकशाही, अनु. रिजवी, उत्तर तैमूर कालीन भारत, भाग-1, पृ. 37,
अहमद, निजामुद्दी: तबकाते अकबरी, अनु. रिजवी, उत्तर तैमूर कालीन भारत-भाग-1, पृ.-77,
हबीब निजामी; दिल्ली सल्तनत पृ.-555,

2- सरहिन्दी, यहया; तारीख-ए-मुबारकशाही, अनु. उत्तर तैमूर कालीन भारत-भाग-1, पृ.-37,

3- निज्जर, बी.एस.; पंजाब अण्डर दि सुल्तान्स, पृ.-78,

दमन अति आवश्यक था। सुल्तान ने खाने आजम इस्लाम खाँ, कमाल खाँ और राय फिरोज मियाँ को ताबर हिन्दा का घेरा डाले रहने का आदेश दिया। इमादुल मुल्क को मुल्तान वापस भेज दिया और स्वयं दिल्ली वापस लौट आया।[1] किंतु एक बार इमादुल मुल्क पुनः ताबर हिन्दा आया और घेरे की सुदृढ़ व्यवस्था कर पुनः मुल्तान लौट गया। फिर भी आश्चर्य जनक ढंग से पौलाद ने बहुत अधिक नकद तथा उपहार भेज कर काबुल के शेख अली की सहायता प्राप्त कर ली और 6 महीने तक डटकर घेरे का विरोध करता रहा।[2]

काबुल के शेख अली का आक्रमण:-

पौलाद से बहुत अधिक धन प्राप्त करने के आमत्रंण पर शेख अली ने भारत पर आक्रमण करने का निश्चय किया। फरवरी-मार्च 1431 ई. में एक विशाल सेना के साथ वह भारत आ गया।[3] गक्खर जनजाति के लोग भी शेख अली से मिल गये। जसरथ गक्खर के भतीजे ख्वाजगा ने भी सियोर और सलवन्त से एक विशाल सेना एकत्र कर शेख अली से हाथ मिलाया। इन लोगों की मुलाकात तलवारा में हुई। कसूर से होते हुए शेख अली ने व्यास नदी को पार किया और राय फिरोज के देश को बुरी तरह लूटा। फिरोज को अपनी सारी योजना स्थापित कर शीघ्रातिशीघ्र वापस लौटना पड़ा। उधर जब शेख अली ताबर हिन्दा से 10 मील दूर था, इस्लाम

1- हबीब निजामी; दिल्ली सुल्तनत, पृ.-555,
2- हबीब निजामी; दिल्ली सुल्तनत, पृ.-555,
3- सरहिन्दी, यहया; तारीख-ए-मुबारकशाही, अनु. बसु, पृ.-225,
अहमद निजामुद्दीन: तबकाते अकबरी, अनु. रिजवी, उत्तर तैमूर कालीन-भारत, पृ.-77,

खाँ, कमाल खाँ एवं अन्य अमीरों ने डेरा उठा लियाऔर अपने प्रदेश लौट गये। फौलाद किले से बाहर आया और अपने वायदे के अनुसार शेख अली को 2 लाख टंके पेश किये।[1] इसके बाद भी शेख अली लगभग 20 दिन तक भारत में रूका रहा और पास-पड़ोस के अनेक इक्ताओं, नगरों और गाँवों को बुरी तरह लूटा।[2] यह तबाही सर्वाधिक जालंधर में हुई। वहाँ पर बहुत से लोगों का कत्ल कर दिया गया। जालंधर से शेख अली मुल्तान की ओर बढ़ा। मुल्तान का गवर्नर इमादुल मुल्क तुलम्बा की ओर बढ़ा और शेख अली को ललकारना चाहा। किंतु इसीसमय उसके पास दिल्ली सुल्तान मुबारक शाह का आदेश पहुँचा कि वह मुल्तान लौट जाए और शेख अली से युद्ध न करे।[3] सुल्तान के इस आदेश ने जहाँ एक ओर इमादुल मुल्क के आदेश को भंग किया, वहीं दूसरी ओर शेख अली को बहुत अधिक प्रोत्साहित करदिया। शेख अली ने मुल्तान की ओर बढ़ने का निश्चय किया और वह 7 मई 1431ई.को मुल्तान पहुँच गया। इमादुल मुल्क जो शेख के आगमन से अवगत नहीं था, यह जानकर कि शेख ने मुल्तान पर आक्रमण कर दिया है, मलिक सुल्तान शाह लोदी को उसके प्रतिरोध के लिए भेजा। दोनों के मध्य संघर्ष हुआ, जिसमें 15 मई 1431 ई. को लोदी मारा गया और शेख अली को विजय मिली। आगे बढ़कर शेख अली ने खुशरूआबाद पर अधिकार कर लिया और मुल्तान की नमाजगाह के नजदीक पहुँच गया। अगले दिन उसने शहर के दरवाजे पर आक्रमण किया, किंतु इसबार इमादुल मुल्क ने शेख अली को अपने शिविर में लौटने के लिए मजबूर कर दिया। शेख अली ने पुनः 6-8 जून को मुल्तान पर दुबारा आक्रमण किया किंतु

1- सरहिन्दी, यहया: तारीख-ए-मुबारकशाही, अनु. रिजवी, उत्तर तैमूर-कालीन भारत, पृ.-38,
अहमद, निजामुद्दीन: तबकात-ए-अकबरी, अनु. रिजवी, उत्तर तैमूर कालीन-भारत, पृ.-77,

2- सरहिन्दी, यहया: तारीख-ए-मुबारकशाही, अनु. रिजवी, उत्तर तैमूर कालीन भारत, पृ.-38-39,
अहमद, निजामुद्दीन: तबकात-ए-अकबरी, अनु. रिजवी, उत्तर तैमूर कालीन-भारत, पृ.-77,

3- हबीब एवं निजामी: दिल्ली सल्तनत, पृ.-555,

इसबार भी वह पराजित हुआ।

शेख अली अभी भी वापस लौटने के लिए तैयार नहीं था । यह दिल्ली सुल्तान के लिए अत्यन्त-चिन्ता का विषय था । अत: सुल्तान मुबारक शाह ने खाने आजम फतेह खाँ, जीरक खाँ, मलिक कालू, इस्लाम खाँ, मलिक युसूफ सरवर, खाने आजम कमाल खाँ और रायहीनू जुल्जीभाटी को इमादुल मुल्क को मदद के लिए आदेश दिया ।[1] इस सम्मिलित सेना ने शेख अली की सेना पर आक्रमण किया । शेख अली बुरी तरह पराजित हुआ। उसके अनेक सैनिक मार डाले गये और बहुत से भागते हुए झेलम में डूब मरे । शेख अली और उसका भतीजा मुजफ्फर चेनाब नदी पार कर किसी तरह सिओर नामक कस्बे में पहुँचे । इस प्रकार इमादुल मुल्क की यह शेख अली पर बहुत ही लाभकारी विजय रही जिसमें बहुत बड़ी मात्रा में लूट का माल, घोड़े एवं साज सामान प्राप्त हुए । यहया सरहिन्दी युद्ध के परिणाम के विषय में लिखता है-ऐसी भयंकर विपत्ति किसी भी आक्रामक सेना पर इससे पहले कभी या किसी अन्य शासन काल में नहीं पड़ी थी । जो नदी से भागे वे डूब कर मर गये और जो लड़े वे मार डाले गये । इस प्रकार न युद्ध और न पलायन ही उपयोगी रहा ।[2] सम्मिलित सेना ने सिओर तक शेख अली का पीछा किया किंतु वह बचकर भाग निकला ।[3] किंतु शेख अली के भतीजे मुजफ्फर ने अपने को सिओर दुर्ग में बंद

1- सरहिन्दी, यहया: तारीख-ए-मुबारक शाही, अनु० रिजवी, उत्तर तैमूर कालीन भारत, पृ०-40,
अहमद, निजामुद्दीन: तबकात-ए-अकबरी, अनु० रिजवी, उत्तर तैमूर कालीन-भारत, पृ०-78,

2- सरहिन्दी, यहया: तारीख-ए-मुबारकशाही, अनु० रिजवी, उत्तर तैमूर-कालीन भारत, पृ०-41,
फरिश्ता: तारीखे फरिश्ता, अनु० ब्रिग्स, पृ०-526,

3- सरहिन्दी, यहया: तारीख-ए-मुबारकशाही, अनु० रिजवी, उत्तर तैमूर कालीन भारत, पृ०-41,
अहमद, निजामुद्दीन: तबकात-ए-अकबरी, अनु० रिजवी, उत्तर तैमूर कालीन-भारत, पृ०-78,

कर लिया और सुल्तनत की सेना के शौर्य की परीक्षा करने लगा । किंतु इसी समय सुल्तान मुबारकशाह का आदेश आया कि सिओर का घेरा उठा लिया जाय । आदेश का पालन हुआ और घेरा उठा लिया गया ।[1]

मुल्तान की पुनर्व्यवस्था:-

इस प्रकार शेख अली की समस्या से राहत महसूस करते हुए सुल्तान मुबारक शाह ने मुल्तान की पुनर्व्यवस्था का निर्णय लिया । यहाँ इमादुल मुल्क महमूद हसन के स्थान पर मलिक खैरूद्दीन खानी को नियुक्त किया गया ।[2] ऐसा करने का क्या वास्तविक प्रयोजन है यह विवादास्पद है । यहिया सरहिन्दी लिखता है कि यह स्थानान्तरण अविवेकपूर्ण एवं गलत सलाह से युक्त था क्योंकि इससे मुल्तान में विद्रोह हुआ ।[3] पर ऐसा प्रतीत होता है कि सुल्तान ने यह स्थानान्तरण आन्तरिक विद्रोह को बचाने के लिए किया था । यह दिल्ली सल्तनत् के लिए सार्वभौम सत्य रहा है कि अधिक शक्ति सम्पन्न हो जाने पर प्रांतो के सूबेदार अधिक शक्ति का हरण करने लगते हैं और परिणामत: अपने स्वामी के प्रति ही सिर उठाने लगते हैं । मुल्तान भारत वर्ष का एक महत्वपूर्ण एवं सामरिक महत्व का सीमा प्रांत था । यहाँ का गवर्नर इमादुल मुल्क शेख अली जैसे मुगल आक्रान्ता को हराकर बहुत ही उत्साही

1- सरहिन्दी, यहया: तारीख-ए-मुबारकशाही, अनु. रिजवी, उत्तर तैमूर कालीन भारत, पृ.-41,

2- फरिश्ता; तारीख-ए-फरिश्ता, भाग-1, अनु. ब्रिग्स, पृ.-526,

3- सरहिन्दी, यहया; तारीख-ए-मुबारकशाही, अनु. बसु. पृ.-229, तथा रिजवी, उत्तर तैमूर कालीन, भारत, पृ.-41,

हो गया था । अतः उसका वहाँ से हटाया जाना उचित ही था । क्योंकि खिज्र खाँ भी इसी तरह का एक शक्तिशाली सूबेदार था जिसने दिल्ली की गद्दी को अधिकृत कर लिया था । इसके पहले भी इस तरह का हस्तांतरण हो चुका था मुहम्मद हसन लाहौर से जालंधर भेज दिया गया था । किंतु इमादुल मुल्क का हस्तांतरण सिद्धान्ततः उचित होते हुए भी व्यवहार में ठीक न था[2] मुल्तान में अभी भी इमादुल मुल्क की सख्त आवश्यकता थी । उसके हटते ही मुल्तान में गम्भीर स्थितियाँ उत्पन्न हुई ।

जसरथ गक्खर 1431 ई.

मुगल आक्रान्ता शेख अली ने पंजाब में जिस अराजकता की स्थिति उत्पन्न की थी उसका लाभ उठाते हुए जसरथ गक्खर एक बार पुनः सल्तनत के विरूद्ध सक्रिय हो उठा । दिसम्बर 1431ई.में जब मलिक सिकन्दर तुहफा जालंधर की ओर जा रहा था, जसरथ ने एक विशाल सेना के साथ उसका मार्ग अवरूद्ध किया । सिकन्दर तुहफा पराजित हुआ और बंदी बना ।[3] इससे प्रोत्साहित हो जसरथ ने लाहौर के दुर्ग को घेर लिया । किंतु इसी समय सिकन्दर के एक मलिक सैय्यद नज्मुद्दीन एवं उसके दास मलिक खुशखबर ने जसरथ का कड़ा प्रतिरोध किया और दुर्ग की रक्षा की । इसीबीच मुगल आक्रान्ताशेख अली पुनः भारत आ गया और मुल्तान के प्रदेशों को लूटने लगा।[4]

1- निज्जर,बी.एस.; पंजाब अण्डर दि सुल्तान्स, पृ.-81,
2- निज्जर,बी.एस.; पंजाब अण्डर दि सुल्तान्स, पृ.-81,
3- सरहिन्दी, यहया:तारीख-ए-मुबारकशाही,अनु. रिजवी,उत्तर तैमूर कालीन भारत, पृ.-41,
फरिश्ता:तारीख-ए-फरिश्ता,भाग-1,अनु. ब्रिग्स,पृ.-526,
4- सरहिन्दी,यहया:तारीख-ए-मुबारकशाही,अनु. रिजवी,उत्तर तैमूर कालीन भारत, पृ.-42,
अहमद,निजामुद्दीन:तबकात-ए-अकबरी,अनु. रिजवी,उत्तर तैमूर कालीन-भारत, पृ.-78,

23 नवम्बर 1431 ई॰ को शेख अली ने तुलम्बा के दुर्ग को नष्ट किया एवं वहाँ के नागरिकों का भयंकर कत्ले आम किया । क्रूर नृशंस अत्याचार के विषय में सरहिन्दी लिखता है कि यद्यपि कस्बे के अनेक निवासी, काजी या सैय्यदों के परिवार के थे किंतु उस अभागे निर्दयी नीच ने मुसलमानों के लिए कोई लिहाज नहीं किया और दैवी प्रकोप का भी भय नहीं किया ।[1] युवा स्त्रियाँ एवं बच्चे उनके परिवारों से छीनकर उसके घर घसीट कर ले जाए गए । पुरूषों में से कुछ तलवार के घाट उतार दिए गए और कुछ छोड़ दिए गए । ऐसा प्रतीत होता है कि यह शेख अली का अपनी पूर्व पराजय का प्रतिशोध था । इसी समय पौलाद भी ताबरहिंदा से बाहर निकलाऔर राय फिरोज के राज्य को उजाड़ने तथा लूटने लगा ।[2] राय फीरोज अपने राज्य की रक्षा करते हुए मारा गया । पौलाद ने उसका सिरकाट लिया और अपने साथ ताबरहिंदा ले गया ।

जसरथ, शेख अली एवं पौलाद के एक साथ अभियान से सुल्तान मुबारक शाह बहुत अधिक परेशान हुआ । इस समस्या के समाधानार्थ वह स्वयं फरवरी 1432 ई॰ में लाहौर एवं मुल्तान के लिए रवाना हुआ ।[3] मलिक सरूरूल मुल्क को एक अग्रिम दल के रूप में पहले ही भेज दिया गया । शाही सेना के समाना पहुँचने की सूचना पाकर जसरथ ने लाहौर किले का घेरा उठा लिया और सिकन्दर तुहफा एवं अन्य

1- सरहिन्दी, यहया: तारीखे मुबारकशाही, अनु॰ रिजवी, उत्तर तैमूर कालीन-भारत, पृ॰-42,

2- सरहिन्दी, यहया: तारीखे मुबारकशाही, अनु॰ रिजवी, उत्तर तैमूरकालीन-भारत, पृ॰-42,
अहमद, निजामुद्दीन: तबकाते अकबरी, अनु॰ रिजवी, उत्तर तैमूर कालीन-भारत, पृ॰-79,

3- सरहिन्दी, यहया: तारीखे मुबारकशाही, अनु॰ रिजवी, उत्तर तैमूर कालीन-भारत, पृ॰-42-43,
अहमद, निजामुद्दीन: तबकाते अकबरी, अनु॰ रिजवी, उत्तर तैमूर कालीन-भारत, पृ॰-79,

प्रमुख बन्दियों को लेकर तिलहर के पहाड़ी दुर्ग में भाग गया । सुल्तान के आगमन तथा जसरथ के भागने की सूचना पाकर शेख अली मुगल ने भी तुलम्बा खाली कर दिया और बरतूत चला गया । इस प्रकार शेख अली ने भी इस अवसर पर युद्ध बचा दिया । सुल्तान ने पुन: परिस्थितियों से समझौता किया और भागते हुए जसरथ ने शेख अली का पीछा न कर अभियान स्थगित कर दिया । किंतु इस अवसर पर पुन: सुल्तान ने लाहौर एवं मुल्तान की पुनर्व्यवस्था की ।[1] मलिकुश्शर्क शम्सुलमुल्क से लाहौर की इक्ता ले करखाने आजम नुसरत खाँ गुर्ग अंदाज को दे दी गई। समसुलमुल्क को यह आदेश हुआ कि वह शम्सुलमुल्क के परिवार को लाहौर के दुर्ग से बाहर लाकर राजधानी पहुँचाए ।[2]

मुबारक शाह जैसे ही पंजाब से वापस लौटा अगस्त 1432 ई. में जसरथ ने पुन: तिलहर से निकल कर लाहौर के गाँवों को लूटना प्रारम्भ कर दिया ।[3] लाहौर के नवीन गवर्नर नुसरत खाँ ने उसे युद्ध के लिए ललकारा । सुलतान भी नुसरत की मदद के लिए लौटा अभी वह पानीपत में ही था कि उसे सूचना मिली कि नुसरत ने जसरथ को पराजित कर दिया है और जसरथ एक बार पुन: भाग गया है । अत: सुल्तान पुन: दिल्ली वापस लौट गया । क्योंकि उसे बयाना एवं ग्वालियर के विद्रोहियों के दमन के लिए मलिकुश्शर्क से परामर्श करना था ।

1- सरहिन्दी, यहया: तारीख-ए-मुबारकशाही, अनु. रिजवी, उत्तर तैमूर - कालीन, भारत, पृ.-43,

2- बदायूँनी: मुन्तखबुत्तवारीख, अनु. रैंकिंग, पृ.-390,
फरिश्ता: तारीखे फरिश्ता: भाग-1, अनु. ब्रिग्स, पृ.-527,
सरहिन्दी, यहया: तारीखे मुबारकशाही, अनु. बसु, पृ.-223,

3- सरहिन्दी, यहया: तारीखे मुबारकशाही, अनु. बसु,, पृ.-223,
अहमद, निजामुद्दीन: तबकाते अकबरी, अनु. रिजवी, उत्तर तैमूर कालीन-भारत, पृ.-43,

दिल्ली पहुँचते ही पुनः सुल्तानमुबारकशाह को सितम्बर 1432 ई. में ही समाना के उपद्रवियों को दंड देने के लिए प्रस्थान करना पड़ा ।[1] सुल्तान अभी पानीपत में ही शिविर लगाए था कि उसे पुनः पौलाद के संकट की सूचना मिली । पौलाद राय फीरोज के धन को पाकर बहुत अधिक मजबूत हो गया था और ताबरहिन्दा में सुरक्षित किला बन्दी किए था । अतः सुल्तान ने सरवरुल मुल्क को ताबरहिंदा जाने का आदेश दिया । किंतु सरवरुलमुल्क ने जीरक खाँ, इस्लाम खाँ और मलिक राजा को नेतृत्व का भार देकर स्वयं सुल्तान से परामर्श हेतु पानीपत की ओर रवाना हुआ । ऐसा प्रतीत होता है इस समय सुल्तान ने पूर्व निर्धारित कार्यक्रम में परिवर्तन किया और कुछ समय के लिए अभियान की ओर से मुख मोड़ लिया । किंतु इस बीच उसने पुनः उत्तर-पश्चिम की प्रशासनिक व्यवस्था में परिवर्तन किया । लाहौर और जालंधर की इक्ताएं नुसरत खाँ के नियन्त्रण से ले ली गईं और वहाँ मलिक इलाहदाद काका लोदी की नियुक्ति की गई ।[2]

जब जसरथ ने उपर्युक्त व्यवस्था को सुना तो उसने नये गवर्नर इलाहदाद काका लोदी-जोकि अधिकार ग्रहण करने जा रहा था, के विरूद्ध अपनी जोर आजमाइश करनी चाही । बाजवारा के निकट दोनों सेनाओं में संघर्ष हुआ । इलाहदाद काका लोदी पराजित हुआ और जान बचाकर पहाड़ियों की तराई में कोही नामक स्थान पर चला गया जो कि बजवारा से 10 कि.मी. दक्षिण

1- सरहिन्दी, यहया: तारीख-ए-मुबारकशाही, अनु. रिजवी, उत्तर तैमूर-कालीन, भारत, पृ.-43,
अहमद, निजामुद्दीन: तबकाते अकबरी, अनु. रिजवी, उत्तर तैमूर कालीन-भारत, पृ.-79,

2- सरहिन्दी, यहया: तारीखे मुबारकशाही, अनु. बसु, पृ.-233-34,
अहमद, निजामुद्दीन: तबकाते अकबरी, अनु. रिजवी, उत्तर तैमूर कालीन-भारत, पृ.-79

पूर्व में स्थित था ।[1] इसी बीच ताबरहिंदा का गवर्नर पौलाद सरवरूलमलिक के नेतृत्व में पुनः घेर लिया गया । किंतु मुगल आक्रान्ता शेख अली पुनः पौलाद को मदद के लिए आगे बढ़ा ।[2] यह सूचना पाते ही तुरन्त सुल्तान मुबारकशाह ने घेरा डाले हुए अमीरों की सहायता के लिए इमादुल मुल्क को एक विशाल सेना के साथ भेजा । दिल्ली की शक्ति से सैनिक मजबूर हो गये । पर शेख अली ने अपनी यात्रा जारी रखी और द्रुतगति से चलकर लाहौर पहुँचा । मलिक राजा, मलिक इस्माइल और मलिक युसूफ सरवर जिनपर लाहौर की सुरक्षा का उत्तर दायित्व था, दुर्ग में बंद होगये किंतु अगले ही दिन इन्होंने नगर से पलायन कर दिया । शेख अली ने भागते हुए लोगों का पीछा करवाया, मलिक राजा बंदी हुआ एवं अनेक सैनिक मार डाले गये । इस प्रकार शेख अली ने बिना एक बूंद खून बहाये ही लाहौर के किले पर अधिकार कर लिया और वहाँ के लोगों को बुरी तरह लूटा तथा मस्जिदों को अपवित्र किया ।[3] शेख अली ने लाहौर के दुर्ग की मरम्मत करवाई और उसकी रक्षा के लिए 2000 की एक सैनिक टुकड़ी छोड़कर दीपालपुर के लिए प्रस्थान किया । मलिक युसूफ सरवर जिसने दीपालपुर के दुर्ग में शरण ली थी[4] दुर्ग छोड़ने ही वाला था, कि मलिकुश्शर्क इमादुलमुल्क द्वारा अपने भाई के नेतृत्व में भेजी गई एकसेना उससे आ मिली । यह समाचार पाते

1- सरहिन्दी, यहया:तारीखे मुबारकशाही,अनु॰बसु, पृ॰-234,
बदायूँनी:मुन्तखाबुत्तवारीख, भाग-1, अनु॰ रैकिंग, पृ॰-390-91,
फरिश्ता:तारीखे फरिश्ता,भाग-1,अनु॰ ब्रिग्स, पृ॰-527,

2- सरहिन्दी,यहया:तारीखे मुबारकशाही,अनु॰रिजवी॰उत्तर तैमूर कालीन-भारत, पृ॰-45,

3- सरहिन्दी,यहया:तारीखे मुबारकशाही,अनु॰रिजवी,उत्तर तैमूर कालीन-भारत, पृ॰-45,
निज्जर,बी॰एस॰; पंजाब अण्डर दि सुल्तानस, पृ॰-83,

4- फरिश्ता:तारीखे फरिश्ता,अनु॰,ब्रिग्स, पृ॰- 528,
सरहिन्दी,यहया:तारीखे मुबारक शाही, अनु॰,बसु, पृ॰-235-36,

ही शेख अली ने अपना इरादा बदल दिया । ऐसा प्रतीत होता है कि शेख अली इमादुल मुल्क से पहले ही भयभीत था अतः उसने उसके भाई के नेतृत्व की सेना से युद्ध बचा दिया ।

वास्तव में लाहौर की पराजय मुबारक शाह की जल्दबाजी में लिए गए निर्णय का परिणाम थी । वह लोगों की योग्यता परखने में भी अक्षम था, और मात्र बार-बार स्थानान्तरण को ही प्रशासनिक व्यवस्था का मूलमंत्र मानता था । उसने बहुत से अक्षम लोगों की महत्वपूर्ण पदों पर नियुक्ति कर दी । मलिक युसूफ सरवर सीमाप्रांत जैसे महत्वपूर्ण स्थान का गवर्नर होने लायक नहीं था । पर वह अपने पिता सरवरूल मुल्क के कारण उस पद पर नियुक्त हो गया था ।[1]

मलिक युसुफ एवं अन्य अधिकारियों की कायरता से क्रोधित एवं चिंतत हो सुल्तान मुबारक शाह स्वयं जनवरी-फरवरी 1433 ई. में समाना की ओर प्रस्थान किया ।[2] यहाँ मलिकुश्शर्क इमादुलमुल्क एवं अन्य अमीर जो इटावा एवं ग्वालियर भेजे गये थे उसके साथ हो लिए । फरवरी 1433 ई. में सम्मिलित सेनाएं सुनाम से होते हुए तलौंदी के लिए प्रस्थान की । यहाँ इमादुलमुल्क और इस्लाम खाँ लोदी जो ताबरहिंदा में थे सुल्तान से सलाह मशविरे के लिए आ गये। अन्य अमीरों को भी आदेश दिया गया कि वे दुर्ग के आस-पास रहें । अब सुल्तान शेख अली की ओर बढ़ा । किंतु शेख अली ने पुनः युद्ध बचाने का निर्णय लिया और सुल्तान के दीपालपुर पहुँचने के पहले ही उसे छोड़ दिया । इस बार सुल्तान हर कीमत पर शेख अली से संघर्ष करना चाहता था[3] अतः उसने कमालुश्शर्क को भागते

1- निज्जर, बी. एस. : पंजाब अण्डर द सुल्तान्स, पृ.-84,

2- सरहिन्दी, यहया: तारीख-ए-मुबारकशाही, अनु. बसु, पृ.-236,

3- हबीब एवं निजामी: दिल्ली सुल्तनत, पृ.-558,

हुए शेख अली का पीछा करने के लिए भेजा । मलिक सिकन्दर तुहफा जिसने कुछ धन के बदले जमानत द्वारा अपने को मुक्त कर लिया था को शम्सुलमुल्क की पदवी प्रदान की गई ।[1] इसे लाहौर कोअधिकृत करने के लिए कहा गया जिसे शेख अली की सेना ने अधिकृत कर रखा था । सुल्तान स्वयं शेख अली के भतीजे मुजफ्फर के विरूद्ध बढ़ा । अमीर मुजफ्फर ने एक मास तक सिओर दुर्ग की रक्षा की । किंतु अंततः उसने सुल्तान के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया । इस समय एक संधि हुई जो अत्यधिक सौहार्दपूर्ण थी । अमीर मुजफ्फर ने मई 1433 ई॰ में अपनी पुत्री का विवाह मुबारक के दत्तक पुत्र से कर दिया । बहुत अधिक धन उपहार स्वरूप भेंट किया और दुर्ग खाली कर दिया ।[2] उधर उन मुगलों ने भी जो लाहौर के दुर्ग में घिर गए थे ।लिकुशर्क शम्सुलमुल्क के समक्ष आत्मसमर्पण कर दियाऔर उसने दुर्ग पर अधिकार कर लिया । दूसरी ओर इमादुल मुल्क लगातार शेख अली का पीछा करता रहा । वह उसके अनेक गढ़ों एवं साजो सामान पर कब्जा करता रहा । किंतु शेख अली से उसकी मुलाकात न हो सकी । ऐसाप्रतीत होता है शेख अली जो इमादुल मुल्क से बहुत अधिक भयभीत था शीघ्रता से काबुल लौट गया ।

सिओर के सफल अभियान के पश्चात सुल्तान मुबारक शाह ने अपनी सेना, हाथी और शिविर दिपालपुर में छोड़े और प्रसिद्ध संतो के मकबरों के दर्शन हेतु मुल्तान गया । यहाँ उसने ईश्वर को धन्यवाद दिया और सीमाप्रांत की नवीन प्रशासनिक व्यवस्था की ।[3] लाहौर एवं जालंधर की इक्ता शम्सुलमुल्क से वापस

1- सरहिन्दी, यहया: तारीख-ए-मुबारकशाही, अनु॰ रिजवी, उत्तर तैमूर कालीन-भारत, पृ॰-46,
अहमद, निजामुद्दीन: तबकात-ए-अकबरी, अनु॰ रिजवी, उत्तर तैमूर कालीन-भारत, पृ॰-81,

2- अहमद, निजामुद्दीन: तबकाते अकबरी, अनु॰ रिजवी, उत्तर तैमूर कालीन-भारत, पृ॰-81
सरहिन्दी, यहया: तारीखे मुबारकशाही, अनु॰ रिजवी, उत्तर तैमूर कालीन-भारत, पृ॰-46,
किंतु फरिश्ता के अनुसार मुजफ्फर ने बादशाह को अपनी पुत्री सौंपी-
रिजवी, एस॰ ए॰ ए॰ : उत्तर तैमूर कालीन भारत, पृ॰-46, का नोट

3- सरहिन्दी, यहया: तारीखे मुबारकशाही, अनु॰ रिजवी, उत्तर तैमूर कालीन-भारत, पृ॰-47,

लेकर इमादुल मुल्क को दे दी गई और बयाना जहाँ पर इमादुल मुल्क था शमसुल मुल्क को दे दी गई । इस व्यवस्था के बाद मुबारक शाह दिल्ली वापस लौट आया । उसका सिओर अभियान इतना सफल रहा कि शेखअली पुनः वापस नहीं आया और दोनों सीमा प्रान्त मुल्कों के अधिग्रहण से बच गया ।[1]

19 फरवरी 1434 ई• तक अपनी हत्या से पूर्व सुल्तान मुबारक शाह 13 वर्ष तक अत्यन्त कठिन परिस्थितियों में शासन करता रहा । उसके सिंहासनारोहण के समय सल्तनत की उत्तरी-पश्चिमी सीमा प्रान्त विद्रोहियों की दया पर निर्भर था । जसरथ, काबुल का शेख अली एवं ताबर हिंदा का गवर्नर पौलाद लगातार सल्तनत को परेशान किए हुए थे । जसरथ एवं पौलाद का उद्देश्य तो स्वतंत्र राज्य स्थापित करने का था, पर शेख अली विद्रोही परिस्थितियों का लाभ उठाकर पंजाब के प्रांतों को लूटना मात्र चाहता था । जसरथ एक अपराजेय वीर गखखर जाति का था, जिसने 20 वर्ष तक दिल्ली सुल्तान के विरूद्ध संघर्ष किया । सर्वप्रथम उसने 1398 ई• में तैमूर को रोकने का प्रयत्न किया पर यहाँ असफल होने पर उसने अपने पिता शेखा को लाहौर अधिकृत करने में मदद दिया और सफल रहा । लौटते तैमूर को उसने पुनः रोकना चाहा किंतु इस बार बंदी हुआ और समर कन्द ले जाया गया । किंतु अपनी दृढ़ इच्छाशक्ति के कारण वह पुनः भाग निकला और वापस आकर सल्तनत का दुश्मन बन बैठा ।

मुबारक शाह की उत्तरी-पश्चिमी सीमा नीति सफल रही थी । यद्यपि कुछ इतिहासकारों ने उसकी पश्चिमोत्तर सीमा प्रांतों की प्रशासनिक व्यवस्था की यह कहकर निंदा की है, कि मुबारकशाह द्वारा गवर्नरों के हस्तांतरण जल्दी-जल्दी

1- निज्जर, बी•एस• : पंजाब अण्डर दि सुल्तान्स, पृ•-85,

होते थे और उसे योग्य व्यक्तियों की परख न थी ।[1] किंतु यह आक्षेप सिद्धान्ततः सत् होते हुए भी व्यावहारिक नहीं है । मुबारकशाह इस तथ्य से भली-भाँति परिचित था कि जब कभी भी पश्चिमोत्तर सीमा प्रांत के गवर्नरों को अधिक शक्ति एवं प्रभुता मिली इन लोगों ने सल्तनत के प्रतिविद्रोह किया था और आवश्यकता पड़ने पर विदेशी शक्ति का भी सहारा लिया था । यद्यपि शीघ्रता में एवं ईर्ष्या वश किये गये परिवर्तन हानिकारक सिद्ध हुए किंतु सल्तनत को आतंरिक विद्रोह से बचाने का यही एक मात्र उपयुक्त साधन था ।[2] जो कुछ भी हो मुबारक शाह ने पश्चिमोत्तर सीमा के विद्रोहियों का दमन कर प्रशंसनीय कार्य किया ।

मुहम्मद शाह 1434-43 ई.:-

मुबारक शाह की मृत्यु के उपरान्त दिल्ली के सरदारों ने अलग खान को मुहम्मद शाह की उपाधि से 9 रजब 837 हि. (19 फरवरी 1434 ई.) को दिल्ली की गद्दी पर बिठाया ।[3] दिल्ली सरदारों को इस सुल्तान से बड़ी आशा थी, किंतु उसने उन सरदारों को शीघ्र ही निराश कर दिया । वह राज्य के कर्त्तव्यों में कोई रूचि नहीं लेता था और विलासिता का शिकार हो गया । उसके शासन काल में दिल्ली का साम्राज्य बहुत विशृंखलित और छोटा रह गया । जौनपुर के शासक इब्राहीम शर्की ने दक्षिण पूर्वी जिलों पर अधिकार कर लिया और 1440ई.

1- हबीब निजामी: दिल्ली सुल्तनत्, पृ.-560,

2- निज्जर, बी.एस.: पंजाब अण्डर द सुल्तान्स, पृ.-85,

3- सरहिन्दी, यहया: तारीखे मुबारक शाही, अनु., रिजवी, उत्तर तैमूर-कालीन, भारत, पृ.-50,

में मालवा का शासक महमूद खिल्जी भी सल्तनत की ओर बढ़ने लगा । उत्तरी पश्चिमी सीमा में भी हलचल उत्पन्न हो गयी । मुल्तान में एक अफगान जाति लंगास, जो कि अभी हाल में ही निर्वासित हुई थी, वहाँ के गवर्नर के खिलाफ विद्रोह कर दिया । इस उपद्रव के दमन के लिए सुल्तान स्वयं मुल्तान गया और स्थिति संभल जाने पर वहाँ खाने खाना को नियुक्त कर दिल्ली लौट आया ।[1] किंतु यहाँ पर सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण समस्या बहलोल लोदी के कारण उत्पन्न हुई । प्रारम्भ में बहलोल लोदी मुहम्मद शाह के पक्ष में था, जिस जशरथ गक्खर के दमन के लिए भेजा गया था, किंतु जशरथ ने बहलोह से संधि कर ली और उसके महान भविष्य की भविष्यवाणी कर उसकी चापलूसी की । यहीं से बहलोल की निष्ठा डगमगायी और वह सुल्तान मुहम्मद के लिए एक समस्या बन बैठा ।[2]

उत्तरी-पश्चिमी सीमा प्रान्त सतत विद्रोही प्रवृत्ति के होते जा रहे थे, जिसका लाभ बहलोल लोदी को मिल रहा था । मुबारक शाह के समय इस्लाम खाँ लोदी सरहिन्द का सूबेदार था, जो मई 1431ई में शेख अली के विरूद्ध लड़ते हुए मारा गया । वह एक बहादुर जनरल था तथा सरहिन्द की सूबेदारी के सर्वथा योग्य था । इसका उत्तराधिकारी बहलोल लोदी को नियुक्त किया गया । इस घटना ने इस्लाम खाँ के पुत्र कुतुब खाँ को ईर्ष्यालु बना दिया । कुतुब खाँ ने दिल्ली सुल्तान मुहम्मदशाह से हस्तक्षेप की माँग की तथा सुल्तान के कान यह कहकर भरे कि बहलोल

1- हबीब निजामी; दिल्ली सुल्तनत, पृ.-562,
2- हबीब निजामी; दिल्ली सुल्तनत, पृ.-562,
पाण्डेय, ए.बी.; पूर्व मध्य कालीन भारत, पृ.-293,

लोदी सरहिन्द के बाहर भी कुछ अफगानी क्षेत्रों पर अधिकार करना चाहता है । सुल्तान कुतुब खाँ की बातों में आगया । उसने मलिक सिकन्दर तुहफा को सरहिंद की ओर बढ़ने का आदेश दिया । मलिक सिकन्दर ने इस समय जशरथ की सहायता प्राप्त की और दोनों की सम्मिलित सेनाओं ने बहलोल लोदी पर आक्रमण कर दिया ।[2] इन शक्तियों का सामना करने में असमर्थ बहलोल लोदी शिवालिक पहाड़ियों में चला गया । इस अवसर पर मलिक सिकन्दर ने अफगानों पर अनेक प्रकार से अत्याचार किया और उन्हें लूटा। इस समय तक कुतुबखाँ भी अफगानों से मिल गया था । अतः वह बहुत अधिक अपमानित किया गया और उसके चाचा का पुत्र शाहीन युद्ध में मारा गया ।

अब बहलोल अफगानों का निर्विवाद प्रतिनिधि बन गया । और उनके द्वारा प्रोत्साहित तथा सहायता प्राप्त करके वह पुनः सरहिन्द का अधिपति बन गया अब उसने सरहिन्द के आस-पास के जिलों पर भी अधिकार करने का प्रयास किया । मुहम्मदशाह ने एक दूसरी सेना बहलोल लोदी को दण्ड देने के लिए कोतवाल हिसाम खान के नेतृत्व में भेजी । हिसाम खानखरार तक गया, जहाँ बहलोल लोदी ने 500 घोड़ों के साथ उससे युद्ध किया और पराजित किया । इस विजय से बहलोल और अधिक महत्वाकांक्षी हो गया । किंतु साथ ही वह बहुत अधिक बुद्धिमान था अतः जल्द बाजी में उसने कोई कार्य नहीं किया ।[3] उसने सुल्तान के पास एक पत्र

1- सरहिन्दी, यहया; तारीख मुबारक शाही, अनु, बसु, पृ.-244-45
फरिश्ता; तारीखे फरिश्ता, भाग-1, अनु, ब्रिग्स, पृ.-533-34,

2- फरिश्ता; तारीखे फरिश्ता, भाग-1, अनु. ब्रिग्स, पृ.-535,
निज्जर, बी.एस.: पंजाब अण्डर द सुल्तान्स, पृ. 87,

3- निज्जर, बी.एस.: पंजाब अण्डर द सुल्तान्स, पृ.-87,

लिखा, जिसमें हिसाम खान के बुरे वर्ताव एवं सैय्यद के प्रति अपनी भक्ति भावना का जिक्र किया । आगे उसने यह भी लिखा कि यदि हिसाम खान को मृत्यु दण्ड दिया जाय तो मैं दिल्ली दरबार में उपस्थित हो सकूँगा ।[1] सुल्तान मुहम्मद शाह बहलोल को न पहचान सका और बहलोल की वाक् पटुता में आ गया । अफगानों की स्वामिभक्ति प्राप्त करने के लिए इस कठिन संयोग में भी सुल्तान ने हिसाम खान की मृत्यु का आदेश दे दिया और हामिद खान को वजीर नियुक्त किया गया । वास्तव में यह सुल्तान की एक महत्त्वपूर्ण भूल थी । क्यों कि सुल्तान ने उन लोगों के विश्वास को ठुकरा दिया था जिन्होंने उसे शत्रु से बचाया था । यह एक ऐसाकारण था जिससे उसके अनुयायियों ने उसका विश्वास खो दिया और सभी सूबेदार स्वेच्छानुसार कार्य करने लगे । पूर्व में इब्राहीम शर्कीने बहुत से शाही परगनों पर अधिकार कर लिया । पानीपत के आगे उत्तर एवं पश्चिम में बहलोल शक्ति का विस्तार कर रहा था । मुल्तान में लंगाश जनजाति ने पुनः विद्रोह किया । किसानों एवं जमीदारों ने भविष्य का अनुमान लगाते हुए राजस्व पर अधिकार कर लिया ।[2]

1440 ई. में जब मालवा सुल्तान महमूद खल्जी जिसने नागौर, हांसी एवं हिसार फिरोजा में अपनी शक्ति का विस्तार किया था, सुल्तान मुहम्मद पर आक्रमण किया तो मुहम्मद शाह ने तत्काल बहलोल लोदी से सहायता की

1- फरिश्ता:तारीखे फरिश्ता, भाग-1, अनु. ब्रिग्स, पृ.-537-38,
अहमद, निजामुद्दीन:तबकाते अकबरी, भाग-1, पृ.-295,
पाण्डेय, ए.बी. :पूर्व मध्य कालीन भारत, पृ.-310,

2- निज्जर, बी.एस. : पंजाब अण्डर द सुल्तान्स, पृ.-87,
फरिश्ता: तारीखे फरिश्ता, भाग-1, अनु. ब्रिग्स, पृ.-537,

याचना की । बहलोल लोदी तत्काल 20,000 दुर्घर्ष अफगानों के साथ मदद के लिए पहुँच गया । मुहम्मद शाह व्यक्तिगत रूप से महमूद खल्जी के विरूद्ध नहीं गया । लेकिन उसने अपने पुत्र अलाउद्दीन को एक विशाल सेना के साथ बहलोल के नेतृत्व में भेजा । अलाउद्दीन ने कायरता का प्रदर्शन किया । इसके बावजूदबहलोल लोदी ने लौटते हुए महमूद खिल्जी पर धोखे से आक्रमण कर दिया एवं अनेक लोगों की हत्या कर दी । मालवा सेना को भागने के लिए विवश किया और बहुत अधिक सामग्री छीन ली । इस पर मुहम्मद शाह बहलोल लोदी से बहुत अधिक प्रसन्न हुआ और उसे"खान-ए-खाना" की उपाधि प्रदान की । और उसे अपना पुत्र बना लिया ।[1] बहलोल लोदी की महत्वाकांक्षा को बहुत अधिक बल मिला । उसने हिसार फीरोजा, सुनाम, लाहौर एवं दीपालपुर सहित अनेक प्रांतो पर अधिकार कर लिया । इसी बीच जसरथ गक्खर ने पुन: सुल्तान के विरूद्ध 1441 ई॰मेंसिर उठाया । जसरथ के दमन के लिए सुल्तान ने बहलोल को नियुक्त किया और उसे लाहौर तथा दीपालपुर की इक्ता दे दी । बहलोल के पहुँचने पर जसरथ ने उससे संधि कर ली और उसे दिल्ली सल्तनत के विरूद्ध मिलाने का प्रयत्न किया । जसरथ ने बहलोल के महान भविष्य की भविष्यवाणी कर उसकी मन: स्थिति को बदल दिया । बहलोल की निष्ठा डगमगाई और वह सुल्तान मुहम्मद की आशाएं पूरी न कर सका । इसके विपरीत दिल्ली के अधीनस्थ प्रदेशों के विरूद्ध कूच किया और पानीपत तक के सभी प्रदेशों पर अधिकार कर लिया। इसके उपरान्त आगे बढ़कर उसने दिल्ली भी घेर ली ।[2] पर अभी समय अनुकूल न था अत: वापस लौटकर

1:- डार्न: हिस्ट्री आफ दि अफगान, पृ॰-44,
फरिश्ता:तारीख-ए-फरिश्ता, भाग-1,अनु॰ ब्रिग्स, पृ॰-538,

2- हबीब निजामी: दिल्ली सुल्तनत, पृ॰-562,
पाण्डेय, ए॰बी॰: पूर्व मध्य कालीन भारत, पृ॰-310,

सरहिन्द में उसने विद्रोह कर दिया । इन घटनाओं ने सुल्तान की स्थिति बहुत दुर्बल बना दी "यहाँ तक कि दिल्ली से बीस "करोह" की परिधि में अमीर उसके विरोधी हो गये ।[1] 1445 ई॰ में लगभग 10 वर्ष तक अयशी शासन के पश्चात् मुहम्मदशाह की मृत्यु हो गई ।

अलाउद्दीन आलमशाह-(1445-51ई॰)

मुहम्मद शाह की मृत्यु के बाद 1445 ई॰ में अमीरों और सरदारों ने उसके बेटे अलाउद्दीन को गद्दी पर बिठाया ।[2] उसने आलमशाह की उपाधि धारण की । दुर्भाग्यवश वह सैय्यद वंश का सबसे अयोग्य शासक सिद्ध हुआ । अपने पिता से भी बढ़कर लापरवाह और निकम्मे अलाउद्दीन के समय में दिल्ली साम्राज्य केवल शहर और कुछ आस-पास के गाँवों तक ही सीमित रह गया । महत्वाकांक्षी बहलोल लोदी ने केन्द्रीय शासन की दुर्बलता से लाभ उठाया । सुलतान ने लोदी की चुनौती का सामना करने के बजाय उसके भय से दिल्ली छोड़कर बदायूँ में रहना शुरू किया । अब बदायूँ उसका स्थायी निवास स्थान और भोग विलास का केन्द्र बन गया । सुल्तान ने अपने वजीर हामिद खाँ का बध करने का प्रयत्न कर भारी भूल की । हामिद खाँ ने बहलोल को दिल्ली आकर गद्दी पर अधिकार करने का निमन्त्रण दिया । अब बहलोल की सफलता में कोई सन्देह नहीं था । उसने एक सफल आक्रमण कर दिल्ली पर अधिकार कर लियाऔर निःसहाय सुलतान अलाउद्दीन आलम शाह ने अपने प्रिय जिले बदायूँ को छोड़कर शेष सारा राज्य स्वेच्छापूर्वक बहलोल को दे

1- हबीब निजामी: दिल्ली सुल्तनत्, पृ॰-562,
पाण्डेय, ए॰बी॰: पूर्व मध्य कालीन भारत, पृ॰ 310,

2- अहमद, निजामुद्दीन: तबकाते अकबरी, अनु॰ रिजवी उत्तर तैमूर कालीन-भारत, पृ॰-85-86,

दिया । बहलोल लोदी ने, जो अफगान था खुतबे से आलमशाह का नाम हटा दिया और 19 अप्रैल 1451 ई. को सार्वजनिक रूप से स्वयं को दिल्ली का सुलतान घोषित कर दिया ।[1] इस तरह दिल्ली साम्राज्य की बागडोर सैय्यदवंश के हाथों से खिसक कर अफगानों के लोदी वंश के हाथ आ गई । अलाउद्दीन आलमशाह की मृत्यु बदायूँ में ही 1478 ई. में हो गई । जीवन का शेष भाग निर्विध रूप से बदायूँ में बिताते हुए भूतपूर्व सुल्तान को संभवतः अपना राज्य खो देने की घटना से कोई दुख नहीं हुआ । इस प्रकार सैय्यद वंश मुल्तान के राज्य के रूप में उत्पन्न होकर बदायूँ के राज्य के रूप में समाप्त हो गया । मध्यकालीन भारतीय इतिहास में यह वंश न तो राजनीतिक और न सांस्कृतिक दृष्टि से ही कुछ योगदान कर सका। वास्तव में यह दिल्ली साम्राज्य के विघटन और पुनर्निमाण की प्रक्रिया में एक आवश्यक चरण था ।[2]

लोदी सुल्तानों की उत्तरी-पश्चिमी सीमा नीति

§ 1451-1526 ई. §

लोदी अफगान जाति के थे ।[3] भारत में प्रथम अफगान साम्राज्य स्थापित करने का श्रेय इसी जाति को है । 1451 ई. से 1526 ई. तक दिल्ली सल्तनत पर लोदी वंश का प्रभुत्व रहा जिसे प्रथम अफगान साम्राज्य की संज्ञा दी जाती है ।

1- मआसिरे रहीमी, भाग-1, पृ. 437 में यह तिथि दी गई है किंतु अहमद-यादगार ने इस तिथि को 1 मार्च 1451 ई. लिखा है:
तारीखे सलातीने अफगना: अनु. रिजवी, उत्तर तैमूर कालीन भारत, भाग-1, पृ.-311,
फरिश्ता; तारीखे फरिश्ता, भाग-1, अनु. ब्रिग्स, पृ.-543,

2- हबीब निजामी; दिल्ली सुल्तनत, पृ.-564,

3- पाण्डेय, ए.बी.; दि फर्स्ट अफगान इम्पायर इन इंडिया, पृ.-31-34,
मुहम्मद कबीर; अफसानये शाहान, अनु. रिजवी, उत्तर तैमूर कालीन भारत-पृ.-359,

जिस प्रकार बहलोल लोदी के सुल्तान बनने के साथ ही आकस्मिक रूप से प्रथम अफगान साम्राज्य का उदय हुआ, उसी प्रकार 1526 ई. में बाबर के हाथों इब्राहीम लोदी के अन्त के साथ ही प्रथम अफगान साम्राज्य समाप्त हो गया । पूर्व में सुल्तान और पेशावर से पश्चिम में सुलेमान पर्वत तथा गजनी तक फैले हुए पर्वतीय प्रदेश के अधिवासी अफगान या पठान नाम से जाने जाते हैं ।[1] वे शारीरिक दृष्टि से लम्बे और मोटे तथा बलिष्ठ काठी के होते थे । वे स्वभावत: युद्धप्रिय, साहसी एवं शौर्यवान होते थे । किंतु दुर्भाग्य यह है कि वे सांस्कृतिक दृष्टि से ऊपर न उठ सके थे और न उनमें एक नेताके नेतृत्व में संगठित होने का गुण ही था । वे अनेक कबीलों में विभक्त थे औरकबीले के सभी व्यक्ति समान समझे जाते थे । उनमें कोई कबीला बड़ा छोटा न था । वे नेता का चुनाव प्रजातान्त्रिक ढंग से करते थे, इस चुनाव में उसके गुणों यथा-आयु,शूरता,नेतृत्व की क्षमता आदि का ध्यान रखते थे । इसमें किसी वंश का महत्त्व नहीं था । अत: उनके संगठन को हम प्रजातान्त्रिक संगठन कह सकते हैं ।[2] चौदहवीं शताब्दी तक अफगान किसी प्रकार की प्रगति नहीं कर सके थे । उनके जीवन में स्थायित्व कम था । कृषि की अपेक्षा पशुपालन उनका मुख्य उद्यम था । व्यापार को विशेष महत्त्व दिया जाता था । मुख्य व्यवसाय घोड़ों की क्रय-विक्रय था ।[3] परन्तु कभी-कभी आवश्यकता पड़ने पर वे अपने धनी व्यापारियों को लूटकर अपनी आय बढ़ाने में संकोच नहीं करते थे । इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि प्रारम्भ में अफगान मात्र एक बलिष्ठ पर्वतीय जाति थी, जिसका सैनिक रूप में उपयोग अन्य साम्राज्यों ने किया ।

तुर्कों के आगमन के पूर्व भारतीय शासकों ने अफगानों को सैनिक रूप में प्रयोग किया । शाहियों चौहानों की सेना में अफगान सैनिक भी होते थे । परंतु

1- पाण्डेय,ए.बी.; दि फर्स्ट अफगान इम्पायर इन इंडिया,पृ.-37,

2- पाण्डेय,ए.बी.; दि फर्स्ट अफगान इम्पायर इन इंडिया,पृ.-38,
मुहम्मद कबीर;अफसानये शाहान,अनु. रिजवी उत्तर तैमूर कालीन भारत-पृ.-358,

3- मुहम्मद कबीर;अफसानये शाहान,अनु. रिजवी,उत्तर तैमूर कालीन भारत-पृ.-358,

वे किसी उच्च पद पर नियुक्त नहीं किये जाते थे । महमूद गजनवी ने उनके बल एवं शौर्य का लाभ उठाने की दृष्टि से उनको अपनी सेना में भर्ती किया । मामलुक सुल्तानों ने भी उनकी सहायता ली । इन्हें मुख्यत: पार्वत्य एवं विद्रोही क्षेत्रों में शांति स्थापना हेतु नियुक्त कियागया ।[1] इस बात में कोई सन्देह नहीं कि इन लोगों ने बड़ी कठोरता के साथ विद्रोहियों का दमन कियाऔर स्थापित दिल्ली सल्तनत को सुदृढ़ बनाने में सहायता की । सुल्तान नासिरूद्दीन महमूद के शासन काल में वे सेना में भारी संख्या में भर्ती किए गए । 1260 ई॰ में जब बल्बन मेवातियों के विद्रोह के दमन के लिए बढ़ा तो उसने लगभग तीन हजार अफगान सैनिक भर्ती किए[2] बलबन ने अपने शासन काल में विद्रोही क्षेत्रों यथा जलाली, कम्पिल, पटियाली, भोजपुर एवं दिल्ली आदि में अफगान सैनिक चौकियाँ स्थापित की ।[3] इस अवधि में अफगानों ने जो महत्व प्राप्त कियाउसने उन्हें भविष्य में अपने प्रभाव का विस्तार करने में यथेष्ठ सहायता प्राप्त हुई और अफगानों की शक्ति के उत्कर्ष काप्रभावशाली एवं महत्वपूर्ण आधार बना । खिल्जी काल में अफगानों की इस निम्न स्थिति में थोड़ा हेम समझे जाते रहे कि तुर्क इनकी अधीनता स्वीकार करना अपना अपमान समझते थे ।[4] तुर्क लोग खिल्जियों को अफगान समझते थे और इनकी अधीनता स्वीकार करने को तैयार नहीं थे । अलाउद्दीन खिल्जी के शासन काल में इख्तियारूद्दीन यल अफगान और मलिक मुख अफगान ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई ।[5] तुगलक सुल्तानों के समय अफगानों का प्रभाव बहुत बढ़ गया । मुहम्मद तुगलक ने

1- पाण्डेय, ए॰बी॰, दि फर्स्ट अफगान इम्पायर इन इंडिया, पृ॰-38,
2- मिनहाज सिराज, तबकाते नासिरी, पृ॰-315,
हबीब निजामी: दिल्ली सुल्तनत, पृ॰-570,
3- बरनी, तारीखे फीरोजशाही, पृ॰-56-57,
4- हबीब एवं निजामी, दिल्ली सुल्तनत, पृ॰-570,
5- पाण्डेय, ए॰बी॰, दि फर्स्ट अफगान इम्पायर, पृ॰-38,
हबीब एवं निजामी, दिल्ली सुल्तनत, पृ॰-570,

परम्परागत तुर्की अमीरों के विरूद्ध सन्तुलनकारी दल के रूप में अमीरों का जो नयावर्ग खड़ा किया उसमें अफगानों एवँ अन्य विदेशियों को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था । मुहम्मद तुगलक वंशानुगत अधिकार की जगह प्रतिभा सम्पन्न लोगों की नियुक्ति के पक्ष में था । उसके समय मलिक यल अफगान और मुख अफगान इन दो भाइयों ने अमीर पद प्राप्त किया और मुख अफगान तो कुछ दिनों तक दौलताबाद में शासक भी रहा ।[1] अफगानों ने मुहम्मद तुगलक के विरूद्ध विद्रोह संगठित करने में एक विशिष्ट भूमिका निभाई । काजी सलाल अफगान, मलिक शाहू अफगान और मलिक मख अफगान उसके विरूद्ध विद्रोह में उठ खड़े हुए ।[2] मलिक मुख अफगान ने दौलताबाद में सुल्तान नासिरूद्दीन की पदवी धारण कर अपनी स्वतन्त्र सत्ता स्थापित की किंतु जब हसन गंगू दक्षिण में एक बड़ी शक्ति के रूप में प्रकट हुआ तो उसने स्वेच्छा से उसके पक्ष में अपना दावा त्याग दिया। ऐसा प्रतीत होता है कि "सादा" अमीरों का एक महत्वपूर्ण तत्व अफगानों द्वारा संगठित था और इसी वर्ग ने चौदहवीं शती के उत्तरार्द्ध में अफगान जगीदारों का भारी संख्या में आविर्भाव किया ।[3] फीरोजशाह तुगलक ने वंशानुगत सिद्धान्त के विकास को प्रोत्साहित किया जब उसने सभी नियुक्तियाँ वंशानुगत कर दी । अपने साहस और चरित्र के कारण अफगान सैनिक भारी संख्या में सीमांत प्रदेशों में भर्ती किए जाते थे । मुल्तान के एक मुक्ता ने भारी संख्या में अफगान नियुक्त किए । 1379 ई. में मलिक वीर अफगान बिहार का गवर्नर नियुक्त हुआ ।[4] उत्तर तुगलुक काल में अफगानों ने उत्तर-मध्य क्षेत्र में भी नियुक्तियाँ प्राप्त की । सैय्यद वंश में भी उनकी शक्ति में वृद्धि हुई ।[5]

1- पाण्डेय, ए.बी., दि फर्स्ट अफगान इम्पायर, पृ.-38,

2- हबीब निजामी, दिल्ली सुल्तनत, पृ.-571,

3- हबीब निजामी, दिल्ली सुल्तनत, पृ.-571,

4- पाण्डेय, ए.बी., दि फर्स्ट अफगान इम्पायर, पृ.-38,

5- पाण्डेय, ए.बी., दि फर्स्ट अफगान इम्पायर, पृ.-38-39,

खिज्र खाँ ने 1417 ई. में सरहिन्द को मलिक बहराम शाह लोदी के अधीनता में रखा। मुल्तान में मलिक सुलेमान लोदी ने अपनी स्थिति सुदृढ़ की थी। रापरी, हुसेन खाँ अफगान और उसके पुत्र कुत्बखाँ अफगान के अधीन था।

पश्चिमोत्तर में लोदियों की शक्ति का प्रादुर्भाव:-

सुल्तान फीरोज शाह तुगलक के समय में अफगानों की विभिन्न जातियाँ भारत में आकर निवसित हुई थीं। इनमें लोदी, सूर, नियाजी, फर्मूली एवं नूहानी आदि प्रमुख थे।[1] यह सब कबीले आपस में एक दूसरे से और मूल में गिलजई अफगानों से सम्बन्धित थे। वे अपने को अफगान कहते थे। इन नवागत्तुक अफगानों में एक व्यक्ति मलिक बहराम था जो मुल्तान के हाकिम मलिक मर्दान दौलत के यहाँ नौकर हो गया।[2] उसके पाँच पुत्र थे मलिक सुल्तान शाह, मलिक काला, मलिक फीरोज मलिक मुहम्मद तथा मलिक ख्वाजा।[3] मलिक सुल्तान शाह ने अधिक गौरव प्राप्त किया और जब मर्दान दौलत की मृत्यु के बाद खिज्र खाँ के सुल्तान बनने पर अफगानों का प्रभाव और भी बढ़ा तो बड़ी संख्या में अफगान सैनिक भर्ती किए गए। 1405 ई. में खिज्र खाँ एवं मल्लू इकबाल के मध्य हुए संघर्ष में सुल्तान शाह ने भी भाग लिया था। इसी ने मल्लू खाँ का बध किया था। इससे वह खिज्र खाँ का विशेष

1- पाण्डेय, ए.बी., दि फर्स्ट अफगान इम्पायर, पृ.-39,

2- फरिश्ता:तारीखे फरिश्ता, उद्धृत ए.बी.पाण्डेय, दि फर्स्ट अफगान-इम्पायर, पृ.-40,

3- फरिश्ता:तारीखे फरिश्ता, उद्धृत ए.बी.पाण्डेय, दि फर्स्ट अफगान-इम्पायर, पृ.-40,

कृपा पात्र हो गया और उसे सरहिन्द का मुक्ता नियुक्त किया गया । सुल्तान बनने पर खिज्र खाँ ने सुल्तान शाह को इस्लाम खाँ की उपाधि प्रदान की, और उसकी गणना बड़े अमीरों में होने लगी । सैय्यद सुल्तानों के काल में पंजाब में खोखरों तथा अन्य विद्रोही अमीरों के दमन में इस्लाम खाँ ने विशेष योगदान दिया । यहिया सरहिन्दी लिखता है कि उसकी कर्मठता एवं विशेष स्वामिभक्ति को देखते हुए उसे खान-ए-आजम, मलिक उस्शर्क एवं, मजलिसे आली जैसी उपाधियाँ मिलीं । इस्लाम खाँ के भाइयों ने भी पदोन्नति प्राप्त की । मलिक काला को दौराला का राज्यपाल नियुक्त किया गया । जब बहलोल गर्भ में था, अचानक घर की छत गिर पड़ी और उसकी माता उसी में दब कर मर गई । परन्तु मलिक काला ने शीघ्रता के साथ उसका पेट चीरकर बच्चे को निकलवा लिया और पाया कि वह जीवित है ।[2] यही बालक भारत में प्रथम अफगान साम्राज्य का संस्थापक हुआ ।[3] अपने पिता द्वारा अत्यधिक सावधानी एवं स्नेह पूर्वक उसका पालन पोषण किया गया । किंतु दुर्भाग्यवश नियाजी अफगानों से एक युद्ध में वह भी मारा गया । अब बालक बहलोल पालन पोषण हेतु सरहिन्द अपने चाचा इस्लाम खाँ के पास ले जाया गया । इस्लाम खाँ के अपने भी बेटे थे किन्तु बहलोल की प्रतिभा को पहचान कर वह उसे विशेष प्यार करता था । उसने अपनी बेटी शम्स खातून का विवाह भी बहलोल के साथ कर दिया ।

इस्लाम खाँ ने धीरे-धीरे अपनी शक्ति का विस्तार किया और लगभग 12 हजार अफगानों का मलिक बन गया । 1433 ई० के लगभग जब इस्लाम खाँ

1- पाण्डेय, ए०बी० दि फर्स्ट अफगान इम्पायर, पृ०-40,

2- हलीम, अब्दुल: हिस्ट्री आफ दि लोदी सुल्तान्स आफ डेल्ही एण्ड-आगरा, पृ०-4-5,

3- हबीब एवं निजामी: दिल्ली सल्तनत, पृ०-571,

का मृत्यु का समय आया तब उसने बहलोल को ही अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया ।[1] यह अत्यन्त निर्भीक निर्णय था किंतु जब वह मर गया तो उसके सेवक तीन वर्गों में विभाजित हो गये ।[2] एक वर्ग ने इस्लाम खाँ की इच्छा के आधार पर बहलोल का समर्थन किया । दूसरे ने इस्लाम खाँ के भाई मलिक फिरोज का समर्थन किया और तीसरे वर्ग ने इस्लाम खाँ के पुत्र कुत्ब खाँ का समर्थन किया । बहलोल ने बड़ी व्यवहार कुशलता से स्थिति संभाली औरआरंभिक कठिनाइयों से बच निकला । किंतु कुत्ब खाँ दिल्ली आया और सुल्तान सैय्यद मुहम्मद शाह के समक्ष उपस्थित हुआ और बहलोल के खिलाफ सुल्तान को भरा । अस्तु, मुहम्मद शाह ने खोखरों को मिलाकर, सिकन्दर तुहफा के साथ एक सेना भेजी जिसने अफगानों को हरा दिया और कुत्ब खाँ सरहिन्द का हाकिम बन गया । फिरोज पकड़ा गयापरन्तु बहलोल बच निकला और उसने पुनः धीरे-धीरे शक्ति संगठित करके सैय्यद साम्राज्य पर छापे मारना आरम्भ किया ।[3] इसी बीच फीरोज भी बंदीगृह से निकल भागा और उसने बहलोल के नेतृत्व का समर्थन किया । कुत्ब खाँ ने भी अपने दुष्कर्मों पर पश्चात्ताप कियातो बहलोल की स्थिति और अधिक सुरक्षित हो गई । वह पुनः सरहिन्द में स्थापित हो गया । सुल्तान मुहम्मद शाह ने हिसाम खाँ "वजीरे हमालिक" के नेतृत्व में एक सशक्त सेना उनका दमन करने के लिए भेजी । काघा में हुए संघर्ष में हिसाम खाँ पराजित हुआ ।[4] इस विजय से बहलोल की प्रतिष्ठा बहुत अधिक बढ़ गई और वह अफगानों में लोकप्रिय हो गया ।

1- अहमद, निजामुद्दीन: तबकाते अकबरी, अनु॰ रिजवी, उत्तर तैमूर कालीन भाग-1, पृ॰-198,
हलीम, अब्दुल: हिस्ट्री आफ दि लोदी सुल्तान्स आफ डेलही एण्ड आगरा पृ॰-6,

2- पाण्डेय, ए॰बी॰: दि फर्स्ट अफगान इम्पायर, पृ॰-45,

3- पाण्डेय, ए॰बी॰: दि फर्स्ट अफगान इम्पायर, पृ॰-46,

4- अब्दुल्ला: तारीखेदाऊदी, अनु॰ रिजवी, उत्तर तैमूर कालीन भारत, भाग-1, पृ॰-241,

इस पर भी बहलोल ने सावधानी से कार्य किया । निष्ठा और स्वामिभक्ति प्रदर्शित करते हुए उसने सुल्तान को एक अत्यन्त विनम्र पत्र लिखा[1] और यह निवेदन किया कि चूँकि उसे हिसाम खाँ से व्यक्तिगत घृणा है अतः वह तब तक दरबार में नहीं आसकता जब तक हिसाम खाँ वहाँ है । यदि हिसाम खाँ को मृत्युदंड दे दिया जाएं और विजारत हामिदखाँ को सौंप दी जाएं तो बहलोल उसकी सेवा के लिए उपस्थित होगा । अस्थिर बुद्धि सुल्तान बहलोल के जाल में आ गया और उसने अपने स्वामिभक्त वजीर का बध कर दिया । सरहिन्द पर बहलोल के अधिकार की पुष्टि हो गई ।[2]

जब मालवा के सुल्तान महमूद खल्जी ने दिल्ली पर आक्रमण किया तो सुल्तान मुहम्मद ने मलिक बहलोल से सहायता मांगी । उसने 20हजार अफगानों और मुगलों की सेना के साथ सुल्तान की मदद की । युद्ध में उसके कार्य ने सुल्तान का दिल जीत लिया। सुल्तान ने उसे खान-ए-खाना और फर्जन्द (पुत्र) की उपाधियाँ दीं ।[3] सरहिन्द लौटने के पश्चात सुल्तान ने बिना सुल्तान की परवाह किए लाहौर दीपालपुर सुनाम और हिसार फीरोजा पर अधिकार कर लिया । शीघ्र ही उसने दिल्ली की ओर कूच कियाऔर नगर को घेर लिया । किंतु वह सफल न हो सका । वापस होकर उसने अपने को सुल्तान घोषित कर दिया किंतु "खुत्बे" एवं सिक्के में उस समय तक अपना नाम नहीं डाला जब तक दिल्ली पर अधिकार नहीं कर लिया।[4]

1- अब्दुल्ला: तारीखे दाउदी, अनु. रिजवी, उत्तर तैमूर कालीन भारत, भाग-1, पृ.-242,
अहमद निजामुद्दीन: तबकाते अकबरी, अनु. रिजवी, उत्तर तैमूर कालीन, भारत, भाग-1, पृ.-199,

2- अब्दुल्ला: तारीखे दाउदी, अनु. रिजवी, उत्तर तैमूर कालीन भारत, भाग-1, पृ.-242,

3- फरिश्ता, तारीख-ए-फरिश्ता, अनु. ब्रिग्स, भाग-1, पृ.-538,
डार्न: हिस्ट्री आफ दि अफगान, पृ.-44,

4- हलीम, अब्दुल: हिस्ट्रीआफ दि लोदी सुल्तान्स आफ डेल्ही एण्ड आगरा, पृ.-110-11,

अलाउद्दीन आलमशाह के शासन काल में बहलोल को दिल्ली पर अधिकार करने का अवसर मिला । हुआ यह कि अलाउद्दीन आलमशाह और वजीर हामिद खाँ के मध्य संघर्ष हो गया ।[1] आलमशाह बदायूँ चलागया तथा ईसा खाँ तुर्क, राजा प्रताप तथा कुत्ब खाँ के भड़काने से हामिद खाँ का बध कराना चाहा । हामिद किसीप्रकार जान बचाकर भागा और दिल्ली में प्रवेश पा गया । उसने राजमहल तथा राजकोष पर अपने अनुयायियों का पहरा बैठा दिया और किसी ऐसे उपयुक्त व्यक्ति की खोज करने लगा जो सुल्तान बनने पर उसे मंत्री पद पर बना रहने दे । वह इसके लिए जौनपुर या मालवा के सुल्तान को उपयुक्त समझता था । किंतु इसी बीच बहलोल एक सशक्त सेना सहित दिल्ली पर चढ़ आया ।[2] हामिद खाँ स्वयं दुर्ग में सुरक्षित होकर बैठ गयाऔर उसने नगर में बहलोल का प्रवेश रोका । बहलोल ने सैनिक संघर्ष की अपेक्षा कूटनीति का सहारा लेना अधिक उपयुक्त समझा और अनेक झूठे वादे और भ्रामक आश्वासन देकर हामिद खाँ से समझौता कर लिया । हामिद खाँ ने बहलोल को सुल्तान स्वीकार कर लिया और बहलोल ने उसे शासन का अधिकार देकर वजीर के पद पर बने रहने देने का वादा किया ।[3] बहलोल इस स्थिति से संतुष्ट नहीं था । इसलिए उसने हामिद खाँ को हटाने के लिए एक षड्यन्त्र रचा । अफगान अपनी असभ्यता एवं बर्बरता के लिए कुख्यात थे । बहलोल ने इसका लाभ उठाकर अफगानों को और बुद्धू बन जाने के लिए कहा । एक दिन जब वे दावत के लिए बुलाये गये तब उन्होंने अपने

1- पाण्डेय, ए.बी. : दि फर्स्ट अफगान इम्पायर, पृ.-53,

2- अहमद, निजामुद्दीन:तबकात-ए-अकबरी,अनु.रिजवी,उत्तर तैमूर कालीन-भारत, भाग-1, पृ.-200,

3- अब्दुल्ला: तारीख-ए-दाउदी,अनु.रिजवी,उत्तर तैमूर कालीन भारत-भाग-1, पृ.-243,

जूते हामिद खाँ के सिर के ऊपर वाले आले में रख दिये । जब हामिद खाँ ने पूँछा "यह क्या करते हो? "तो उन्होंने उत्तर दिया चोरों के भय से जूतों की रक्षा करते हैं । कुछ देर बाद अफगानों ने हामिद खाँ से बिछी हुई कालीन मांगी ताकि वे उस रंग बिरंगी कालीन की टोपियाँ एवं कालीन बनावा लें । इतना ही नहीं इत्र आने पर उसे चाट गये और पान दिए जाने पर बहुत सा चूना खाकर इधर-उधर थूकने लगे । हामिद खाँ ने बहलोल से पूछा ये लोग ऐसा क्यों कर रहें हैं, तो बहलोल का भोला सा उत्तर था, "ये लोग गवाँर और मूर्ख हैं, आदमियों में बहुत कम रहे हैं, खाने और मरने के अलावा इन्हें कुछ नहीं आता"[1] ।

दूसरे दिन बहलोल जब हामिद खाँ के घर मेहमान हुआ तो अफगान लोग भी जबदस्ती घर में घुस गये और कहने लगे बहलोल की तरह वे लोग हामिद खाँ के भी नौकर हैं, अतः हामिद खाँ का अभिवादन करने से वंचित नहीं रहेंगे । हामिद खाँ ने, जो उनकी मूर्खता से पहले ही आश्वस्त हो चुका था । उन्हें आने की आज्ञा दे दी । अफगान घर में घुसकर हामिद खाँ के सेवकों के पास इस तरह खड़े हो गये कि एक-एक सेवक दो दो अफगानों से घिर गया और तभी बहलोल के चाचा कुतुब खाँ लोदी ने बेड़ियाँ निकालकरयह कहते हुए हामिद खाँ के समक्ष रख दी कि-"यह उचित होगा कि तुझे कुछ समय तक एकान्त में रखा जाय, नमक हलाली का खयाल रखते हुए तेरी हत्या नहीं कराई जाती ।" हामिद खाँ को बन्दी बना लिया। बिना किसी प्रतिरोध के वास्तविक अधिकार हो गया ।[2] अब बहलोल ने सुल्तान अलाउद्दीन आलमशाह को पत्र लिखा-"क्योंकि मेरा पालन पोषण आपके पिता ने किया

1- रिजकुल्ला मुश्ताकी: वाक्याते मुश्ताकी, अनु॰ रिजवी, उत्तर तैमूर कालीन भारत, भाग-1, पृ॰-94,
अब्दुल्लाह: तारीख-ए-दाउदी, अनु॰ रिजवी, उत्तर तैमूर कालीन भारत, भाग-1, पृ॰-243,

2- हलीम, अब्दुल: हिस्ट्री आफ दि लोदी सुल्तान्स आफ डेल्ही एण्ड - आगरा, पृ॰-14,

है अतः मैं आपके वकील के रूप में शासन प्रबन्ध को, जो कि आप के हाथ से निकल चुका है, व्यवस्थित कर दूँगा । आपका नाम खुत्बों से पृथक् नहीं होगा ।" आलम शाह ने सारी स्थिति भाँप ली और उत्तर में लिख भेजा,"क्योंकि मेरा पिता आपको पुत्र कहा करता था अतः मैं आपको अपने बड़े भाई के समान समझता हूँ और राज्य आपके लिए छोड़ देता हूँ । मैं केवल बदायूँ से संतुष्ट हूँ ।"[1] अब बहलोल की पूर्ण सफलता निश्चित हो चुकी थी । उसने अपने नाम का खुत्बा तथा सिक्का चलवाया और 19 अप्रैल 1451[2] ई. को सार्वजनिक रूप से सुल्तान के रूप में अपना राज्याभिषेक कराके अबू मुजफ्फर बहलोल शाह की उपाधि धारण की । इस प्रकार प्रथम अफगान साम्राज्य की विधिवत नीव पड़ गई ।[3]

बहलोल लोदी-{1451-1489 ई.}

दिल्ली पर बहलोल का अधिकार हो जाने पर उसकी समस्याएँ घटी नहीं बल्कि बढ़ती ही गई । सर्वप्रथम उसने दिल्ली के आस-पास के क्षेत्रों की समस्याओं का समाधान किया । तदुपरान्त उसने उत्तरी-पश्चिमी समस्या की ओर ध्यान दिया । तबकाते अकबरी का लेखक निजामुद्दीन अहमद लिखता है कि मुल्तान की प्रशासनिक व्यवस्था को ठीक करने के लिए सुलतान स्वयं उस ओर गया ।[4] मुल्तान

1- अहमद, यादगार:तारीखे सलाती ने अफगना, अनु. रिजवी, उत्तर तैमूर कालीन भारत, भाग-1, पृ.-311,
अब्दुल्ला:तारीख-ए-दाउदी, अनु. रिजवी, उत्तर तैमूर कालीन भारत भाग-1, पृ.-244,

2- फरिश्ता:तारीखे फरिश्ता, भाग-1, ब्रिग्स, पृ.-543,
हलीम, अब्दुल:लोदी सुल्तान्स आफ डेल्हीएण्ड आगरा, पृ.-20-30,

3- पाण्डेय, ए.बी.: दि फर्स्ट अफगान इम्पायर, पृ.-58,

4- अहमद, निजामुद्दीन:तबकात-ए-अकबरी, अनु. रिजवी, उत्तर तैमूर कालीन-भारत, भाग-1, पृ.-202,

में लंगाहों का उत्थान अराजकता उत्पन्न कर रहा था ।[1] शेख बहाउद्दीन जकारिया के एक वंशज शेख युसूफ ने, जो कि लंगाहों द्वारा निकाल दिया गया था, मुल्तान छोड़कर बहलोल लोदी की शरण में आ गया । बहलोल ने उसे सभी प्रकार के संरक्षण काआश्वासन दिया । शेख युसूफ से सम्बन्ध प्रगाढ़ करने के लिए बहलोल ने अपनी पुत्री काविवाह शेख युसूफ के पुत्र शेख अब्दुल्ला से कर दिया । अपनी प्रतिष्ठा की पुनर्स्थापना हेतु शेख युसूफ ने बहलोल लोदी को मुल्तान के लंगाहों पर आक्रमण कर उन्हें उखाड़ फेंकने के लिए प्रोत्साहित किया । कुत्बुद्दीन लंगाह की शक्ति को देखते हुए बहलोल की हिम्मत उसके विरूद्ध संघर्ष की नहीं पड़ी । इस बीच वह शेख युसूफ को निरर्थक बचनों से ही संतुष्ट करता रहा ।[2] किंतु जब कुत्बुद्दीन लंगाह 1468-69 ई. में मर गया तो बहलोल लोदी ने कुत्ब खाँ लोदी तथा खाने जहाँ को दिल्ली में अपने प्रतिनिधि के रूप में नियुक्त कर स्वयं लंगाहेंाके विरूद्ध मुल्तान की ओर बढ़ा । किंतु अभी भी लंगाहों का पतन संभव नहीं हो सका क्यों कि बहलोल को मार्ग में ही हुसेन शर्की के दिल्ली की ओर प्रस्थान की सूचना मिली अतः उसने दिल्ली की ओर शीघ्रातिशीघ्र लौटना उचित समझा । दीपालपुर के मार्ग से सुल्तान दिल्ली वापस लौट पड़ा ।[3]

बहलोल द्वारा अफगान सत्ता को सुदृढ़ करना-

अब बहलोल लोदी ने रोह से अफगानों को आमंत्रित कर उन्हें भारत में निवसित करने का विचार बनाया ।[4] वह जानता था कि अफगान दुर्धर्ष योद्धा होते

1- यादगार, अहमद: तारीख-ए-सलाती ने अफगना, अनु. रिजवी, उत्तर तैमूर-कालीन भारत, भाग-1, पृ.-317-18,
यहिया: तारीख-ए-मुबारकशाही, अनु. इलियट एवं डाउसन, भाग-4, पृ. 63,

2- अहमद, निजामुद्दीन: तबकात-ए-अकबरी, अनु. इलियट एवं डाउसन, भाग-3, पृ.-525,

3- हबीब निजामी: दिल्ली सुल्तानत, पृ.-580,

4- हबीब निजामी: दिल्ली सुल्तनत, पृ.-580,

है, अतः उनके आगमन से लोदी साम्राज्य की जड़ें भारत में गहरी जम जाएंगी । अब्बास सरवानी ने इस विषय में अधोलिखित विवरण दिया है ।[1]

सुल्तान बहलोल दिल्ली के निकट पहुँचा थाजब उसे दिल्ली के अवरोध की चिंताजनक सूचना मिली । उसने राज्य के अमीरों और प्रतिष्ठित व्यक्तियों से कहा: "भारत का राज्य विशाल और समृद्ध है । सब राजा "कामदार" {कबीली परम्परानुसार} नहीं है । मेरे पास अपनी मातृभूमि में एक विशाल कुटुम्ब है जो वीरता और साहस के लिए प्रसिद्ध है । वे अपने पुरुषार्थ और शारीरिक शक्ति के लिए विख्यात हैं किंतु वे अपने देश में अपनी जीविका के लिए कठिनाई भोग रहे हैं । यदि वे भारत आ जाएं तो उन्हें दरिद्रता की अपकीर्ति से मुक्ति मिल जाएगी और मैं अपने शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर लूँगा और भारत का साम्राज्य मेरे अधिकार में आ जाएगा ।"इस पर राज्य के प्रतिष्ठित व्यक्तियों एवं अमीरों ने अनुरोध किया, "चक्रवर्ती सम्राट के मन में जो विचार आया है वह राज्य के हित में है । यह उदारता और "कौम" औरकबीले की भलाई के विचारों से उत्प्रेरित है । अन्यथा राज्य के अतिरिक्त उसकी प्रतिष्ठा और सेना को दूसरों की आवश्यकता नहीं है । किंतु औचित्य की माँग है कि महामहिम रोह में कबीलों के नेताओं को इस आशय का फरमान भेजें ।[2] सर्वशक्तिमान ईश्वर ने दिल्ली के साम्राज्य की प्रभुसत्ता अफगानों को दी है । भारत के अन्य शासक उन्हें भारत से बाहर खदेड़ देना चाहते हैं । भारत का क्षेत्र विशाल और सम्पन्न है । यह हमारे सभी संबन्धियों को समायोजित कर सकता है । यदि हमारे सम्बन्धी इस भूमि में आते हैं तो सल्तनत् नाममात्र के लिए मेरे नाम होगी, किंतु प्रत्येक क्षेत्र और "विलायत" जो मेरे नियन्त्रण में है या भविष्य

1- अब्बास सरवानी, तारीखे शेरशाही, इलियट एवं डाउसन, भाग-4पृ. 229, हलीम, अब्दुल, हिस्ट्री आफ द लोदी सुल्तान्स आफ डेल्ही एण्ड आगरा- पृ.-22,

2- अब्बास खाँ सरवानी, तारीखे शेरशाही, अनु. इलियटएवं डाउसन, भाग-4, पृ.-230,

में जिस पर अधिकार किया जाएगा वह आपस में भाई चारे के आधार पर विभाजित कर और उस पर अधिकार कर सकते हैं । इन दिनों सुल्तान हुसेन जौनपुर के शासक ने विशाल सेना और असंख्य जमींदारों की सहायता से दिल्ली घेर ली है । अफगान परिवार इस नगर में हैं । यदि हमारे साथी कबीली विशाल संख्या में हमारी सहायता के लिए आये तो उनकी सहायता का यही समय है । यह फरमान पाते ही उन्हें तुरन्त अपने स्वाभिमान एवं सम्मान से प्रेरित हो भारत आना चाहिए और नगर को सुल्तान हुसेन के नियन्त्रण से बचाना चाहिए । जब वे अपनी आँखों से अपने भारतीय सम्बन्धियों की समृद्ध परिस्थिति और उनके धन के लाभ भी देखेंगे तो वे हमारी तरह अपनी मातृभूमि लौटना पसन्द नहीं करेंगे ।[1] बल्कि सुल्तान की सेना में सम्मिलित हो जाएंगे और भारत की अधिकांश भूमि शाही कर्मचारियों के अधीन करेंगे ।

सुल्तान बहलोल लोदी ने उपर्युक्त सलाह को पसन्द किया और अफगान सरदारों के पास भारत आने के लिए फरमान भेजे । इस फरमान के पहुँचते ही अफगान लोग रोह से चींटियों एवं टिड्डियों की तरह भारत आकर बहलोल की सेना में भरती होने लगे ।[2] वास्तव में बहलोल की यह दुहरी चाल थी ।[3] प्रथम तो उसे विश्वास प्राप्त अफगान सैनिक मिल गये और द्वितीय यह कि उत्तरी पश्चिमी सीमा की मजबूत अफगान जाति बहलोल की हितैषी बन गई ।[4]

1- अब्बास खाँ सरवानी:तारीखे शेरशाह,अनु.इलियट एवं डाउसन,भाग-4, पृ.-230,

2- अब्बास खाँ सरवानी,तारीखे शेरशाही,इलियट एवं डाउसन,भाग-4, पृ.-230,

3- हबीब निजामी, दिल्ली सुल्तनत, पृ.-580,

4- हबीब निजामी, दिल्ली सुल्तनत, पृ.-580,

काश्मीर की ओर से उत्पन्न होने वाली समस्या का समाधान:-

काश्मीर के सुल्तान हसन और उसके चाचा बहराम खाँ के मध्य उत्तराधिकार का संघर्ष छिड़ा हुआ था। बहलोल इस स्थिति से अच्छी तरह अवगत था। अत: इस संघर्ष से उसने लाभ उठाने का निर्णय लिया। बहलोल ने बहराम खाँ को सहायता देने का बचन दिया।[1] किंतु फिर भी बहराम खाँ दुली पुरा में पराजित कर दिया गया और तुरन्त उसकी आँखें फोड़कर उसका बधकर दिया गया। इससे उत्तेजित होकर काश्मीर के सुल्तान हसन शाह ने मलिक ताजी भट्ट की अधीनता में एक सेना पंजाब पर आक्रमण करने के लिए भेज दी। किंतु पंजाब का राज्यपाल तातार खाँ लोदी ने जो अत्यधिक सतर्क था, मलिक ताजी भट्ट को करारी पराजय दी और आगे बढ़कर सियालकोट पर भी विजय प्राप्त कर ली। हसन शाह की मृत्यु के बाद उसका पुत्र मुहम्मद शाह जो अभी अल्पवयस्क था, सिंहासन पर बिठाया गया।[2] उसकी अल्पवयस्कता का लाभ उठाते हुए कुछ सरदारों ने सैय्यद हसन नायब का बध कर दिया। नायब के एक पुत्र सैय्यद मुहम्मद ने प्रतिकूल परिस्थितियों में भी अपने पिता की मृत्यु का बदला लेने का निश्चय किया। उसने तातार खाँ लोदी से सहायता मांगी, जिसने 1484 ई॰ में एक विशाल सेना श्री नगर की ओर रवाना की, किंतु भींभर के सरदार राय हंस ने उस सेना को पराजित कर दिया और सैय्यद मुहम्मद की योजना असफल हो गयी।[3]

1- अहमद निजामुद्दीन: तबकाते अकबरी, भाग-2, उद्धृत हबीब, निजामी, दिल्ली सुल्तनत्, पृ॰-583,

2- हलीम, अब्दुल: हिस्ट्री आफ दि लोदी सुल्तान्स आफ डेल्ही एण्ड आगरा पृ॰-49,

3- हबीब एवं निजामी: दिल्ली सुल्तनत्, पृ॰-583,
हलीम, अब्दुल: हिस्ट्रीआफ दि लोदी सुल्तान्स आफ डेल्ही एण्ड आगरा, पृ॰-48,

<u>तातार खाँ की समस्या का समाधान:-</u>

तातार खाँ युसुफ खेल दिल्ली से पश्चिम की सभी सरकारों जैसे-सरहिंद हिसार फिरोजा, समाना, लाहौर और दीपालपुर का "मुक्ता" था[1]। तातार खाँ की सैनिक शक्ति बहुत अधिक थी। उसके पास 15000 घुड़सवार सैनिक थे। इन शक्तियों एवं वित्तीय साधनों से प्रोत्साहित होकर तातार खाँ ने पंजाब में विद्रोह कर दिया। उसने न केवल खालसा भूमि के कुछ परगनों पर अधिकार करलिया बल्कि बहलोल लोदी द्वारा नियुक्त कुछ अधिकारी भी पदच्युत करदिये। बहलोल लोदी स्थिति की भयंकरता से अवगत था। अत: उसने निजाम खाँ {भावी सुल्तान सिकंदर लोदी} को उमर खाँ सरवानी, दरिया खाँ नूहानी-नासिर खाँ नूहानी एवं मियाँ सैय्यद फरमुली तथा उस समय के अन्य विख्यात सरदारों के साथ तातार खाँ को दंड देने के लिए भेजा। अम्बाला के निकट दोनों सेनाओं में संघर्ष हुआ। साहसिक प्रतिरोध के पश्चात् भी तातार खाँ पराजित हुआ और मार डाला गया।[2] इस प्रकार पंजाब पर पुन: दिल्ली सल्तनत का अधिकार स्थापित हो गया। वास्तव में बहलोल लोदी की यहउत्तर पश्चिमी क्षेत्र में महत्वपूर्ण विजय थी। बहलोल की उपलब्धियों पर टिप्पणी करते हुए डॉ. ईश्वरी प्रसाद ने लिखा है कि---"एक नये वंश के संस्थापक के रूप में तथा दिल्ली साम्राज्य की क्षीण होती हुई प्रतिष्ठा के पुनरूद्धारक के रूप में बहलोल लोदी इतिहास में उच्च स्थान का अधिकारी है। यह सत्य है कि निरन्तर युद्धों में संलग्न रहने के कारण वह शासन तन्त्र के सुधार की ओर ध्यान न दे सका। परन्तु युद्धों में उसकी अपूर्व विजयों ने हिन्दुस्तान में पुन: इस्लामी शक्ति का सिक्का जमा दिया[3]।

1- अहमद, यादगार: तारीख-ए-सलाती ने अफगाना, अनु. रिजवी, उत्तर तैमूर-कालीन भारत, भाग-1, पृ.-322,

2- रिजकुल्लाह मुश्ताकी: वाक्याते मुश्ताकी, 9वीं. 10ए.

3- ईश्वरी प्रसाद, मध्य युगीन भारत, पृ.-465,

बहलोल लोदी की उत्तरी-पश्चिमी सीमा नीति अत्यधिक सफल रही उसने न केवल पश्चिमोत्तर प्रान्तों के विद्रोहों को रोके रखा बल्कि इन प्रान्तों में दुर्धर्ष अफगानों को नियुक्त कर वहाँ अफगान सत्ता को सदा के लिए सुदृढ़ कर दिया । अफगानों को प्रसन्न करने के लिए उसने कबीइली राजत्व सिद्धान्त को भी प्रचलित किया । इसके अतिरिक्त भी उसने पश्चिमोत्तर प्रान्तों के महत्त्व को समझते हुए वहाँ अपने योग्य पुत्र निजाम खाँ (सिकंदर लोदी) को नियुक्त किया ।

सिकन्दर लोदी-(1489-1517 ई.)

बहलोल की मृत्यु के बाद उसका पुत्र निजाम खाँ लगभग समस्त अमीरों की सहमति से 894 हि0 (6 जुलाई 1489 ई.) को गद्दी पर बैठा[1] और सिकंदर शाह की उपाधि धारण की । फिर भी सिकन्दर शाह का राज्यारोहण निर्विरोध नहीं हुआ । कुछ अफगान सरदारों ने यह कहकर उसका विरोध कियाकि वह एक सुनारिन की सन्तान है और राजकुमार की अपेक्षा नीच कुलोत्पन्न सा दीखता है । कुछ सरदार बारबक शाह के पक्ष में थे और कुछ बहलोल के ज्येष्ठ पुत्र ख्वाजा बायजीद के पुत्र आजम हुमायूँ को सुल्तान बनाना चाहते थे ।[2] अतः उन्होंने सुल्तान से आग्रह किया कि वह अपने अधिकार का औचित्य प्रकट करे और अन्ततः अपने शाही शिविर में उसकी उपस्थिति की माँग की । निजाम खाँ ने यह बहाना बनाकर कि वह यात्रा की तैयारी कर रहा है । इस आज्ञा के पालन में बिलम्ब कर दिया । इसी बीच

1- फरिश्ता: तारीखे फरिश्ता, भाग-1, ब्रिग्स, पृ.-531, बदायुनी, मुन्तखाबुत्तवारीख, भाग-1, रैंकिंग, पृ.-312, हलीम, अब्दुल: हिस्ट्री आफ दि लोदी सुल्तान्स आफ डेल्ही एण्ड-आगरा, पृ.-60,

2- फरिश्ता:तारीख-ए-फरिश्ता, ब्रिग्स, भाग-1, पृ.-531-32,

आगरा नगर की स्थापना:

सिकन्दर लोदी के काल में पूर्व, मध्य एवं दक्षिण भारत की समस्या इतनी गम्भीर हो गयी थी कि शान्ति रक्षा की दृष्टि से सिकन्दर लोदी अपना निवास स्थान बदलतारहा । पहले वह संभल में रहा । उसके बाद वह बयाना और आगरा में रहने लगाऔर आगरे की स्थिति से वह इतना सन्तुष्ट हुआ कि उसने आगरा को अपनी राजधानी बनायी तथा वहाँ एक नये नगर की स्थापना की ।[1] कुछ इतिहासकारों का यह मानना है कि सिकन्दर लोदी के पूर्व भी आगरा प्राचीन ग्रामों में से एक ग्राम था । अधिकांश हिन्दुस्तानियों का मत हैकि आगरा राजा किशन के समय में जो मथुरा में राज्य करते थे, एक कोट था । राजा जिससे रूष्ट हो जाता उसे आगरा के कोट में बन्दी बना देता । बहुत समय तक यही होता रहा । जिस वर्ष सुल्तान महमूद गजनवी का हिन्दुस्तान पर आक्रमण हुआ उस वर्ष आगरा नष्ट हो गया ।[2] अब वह मात्र एक तुच्छ ग्राम बनकर रह गया था । सुल्तान सिकन्दर के राज्यकाल में पुन: आगरा की उन्नति होने लगी । 911 हि॰/1506 ई॰ में सिकन्दर लोदी ने आगरा नगर की स्थापना की । नये नगर के लिए स्थान का चुनाव बड़ी छान-बीन और विचार-विमर्श के बाद किया गया ।[3] अनेक दूरदर्शी एवं अनुभवी व्यक्तियों का एक आयोग नावों पर सवार होकर दिल्ली से चला । और यमुना नदी के दोनों ओर क्षेत्रों का उन्होंने निरीक्षण

1- अब्दुल्लाह:तारीख-ए-दाउदी, अनु॰ इलियट एवं डाउसन, भाग-4, पृ॰ 341,

2- अब्दुल्लाह:तारीख-ए-दाउदी, अनु॰ इलियट एवं डाउसन, भाग-4, पृ॰ 342,

3- हलामी, अब्दुल: हिस्ट्र आफ दि लोदी सुल्तान्स आफ डेलही एण्ड, आगरा, पृ॰-83,

हबीब एवं निजामी: दिल्ली सुल्तनत पृ॰-584,

किया । नियामत उल्लाह लिखता है कि स्वयं सुल्तान सिकन्दर एक नाव पर सवार हुआ । और यात्रा का पूर्ण आनन्द लेते हुए तथा मार्ग में शिकार खेलते हुए दिल्ली से आगरा की ओर प्रस्थान किया । जब वह उस स्थान पर पहुँच गया जिसे आयोग ने सुल्तान के निवास के लिए चुना था तब उसने दल के नेता नाव-चालक से पूँछा, इन दोनों ऊँचाइयों में कौन हमारे उद्देश्य के लिए अधिक उपयुक्त है? नायक ने उत्तर दिया, "वह अग्र भाग {आगे-राह} में अधिक उपयुक्त है ।" इस उत्तर से सुल्तान मुस्कराया और कहा आज से इस नगर का नाम आगरा हो गया ।[1] इस प्रकार सुल्तान द्वारा चुना गया यह स्थान देवली परगने में वाशी और पोया नामक ग्रामों में था और बयाना की सरकार के कुल 52 परगनों में से नौ उसमें मिला दिये गये ।[2] इस प्रकार आगरा नगर की स्थापना हो गयी और आगरा दिल्ली सल्तनत के प्रमुख नगरों के साथ ही साथ उसका प्रमुख प्रशासनिक केन्द्र बन गया । प्रो॰ हबीब लिखते हैं कि लोदी काल में राजनीतिक गुरूत्व का केन्द्र धीरे-धीरे आगरा खिसक गया । जहाँ से राज्य की समस्याएं अधिक प्रभाव शाली ढंग से निपटायी जा सकती थीं । इटावा, कोयल और बदायूँ के जमीदारों और मलिकों पर वहाँ से नियन्त्रण रखना सरल था । मेवातियों की क्रियाओं पर आगरे से भली-भाँति दृष्टि रखी जा सकती थी और शर्कियों के विरूद्ध अभियानों की व्यवस्था आगरे से प्रभाव शाली ढंग से की जा सकती थी ।[3]

1- नियामत उल्लाह:तारीखे खाने जहानी, भाग-1, पृ॰-195,

2- हलीम, अब्दुल: हिस्ट्री आफ दि लोदी सुल्तान्स आफ डेलही एण्ड आगरा- पृ॰-83,

3- हबीब एवं निजामी, दिल्ली सुल्तनत, पृ॰-570,

इस प्रकार आगरा के राजधानी बन जाने से सिकन्दर लोदी का सम्पूर्ण ध्यान मध्य एवं पूर्व भारत की ओर ही लगा रह गया और उत्तरी-पश्चिमी सीमा की उपेक्षा होती गयी । उत्तर-पश्चिमी में दौलत खाँ लोदी लगभग अर्द्ध स्वतन्त्र शासक बन गया । पंजाब पर उसने अपने अधिकार को सुदृढ़ करने के लिए अनेक अफगान अमीरों को भी मिला लिया । सिकन्दर लोदी की राजत्व नीति ने भी अमीरों को सल्तनत के प्रति निष्ठा त्यागने में मदद की ।[1] सिकन्दर लोदी ने बहलोललोदी के कबाइली राजत्व सिद्धान्त का परित्याग कर निरंकुश राजत्व नीति को जन्म दिया । तारीखे दाउदी के लेखक अब्दुल्ला के अनुसार "जिस अमीर के नाम फरमान जारी होता वह दो-तीर कोस आगे जाकर उसका स्वागत करता था और वहाँ एक चबूतरा बनवाता था । जो फरमान लाता था वह उस पर खड़ा होता था । अमीर चबूतरे के नीचे खड़े होकर सम्मान पूर्वक अपने दोनों हाथों से फरमान लेताथा और उसे अपने सिर-आँखों पर रखता था । यदि सुल्तान का आदेश होता तो वह उसे वहीं पढ़ता अन्यथा घर ले आता । यदि फरमान को गुप्त रूप से पढ़ने का आदेश होता तो वह ऐसा ही करता।[2] अमीरों एवं सरदारों के हिसाब-किताब की जाँच करने का प्रबन्ध किया गया और इस काम के लिए निरीक्षक नियुक्त किये गये । गुप्तचर विभाग को अत्यधिक सुगठित कर दिया गया जिससे प्रत्येक अमीरों की सूचना उसे मिलती रहे । अमीरों को आदेश दिया गया कि वे दरबार में और दरबार के बाहर प्रत्येक स्थान पर सुल्तान का सम्मान करें । इन सब आदेशों का सम्मिलित प्रभाव यह हुआ कि अफगानों की भाई-चारे की भावना समाप्त हो गयी । और अब वे सुल्तान के प्रति भक्त नहीं रह गये ।

1- पाण्डेय, ए॰बी॰: दि फर्स्ट अफगान इम्पायर , पृ॰,219,

2- अब्दुल्लाह:तारीखे दाउदी,अनु॰रिजवी,उत्तर तैमूर कालीन भारत,भाग-1, पृ॰-261,

रिजकुल्लाह,मुश्ताकी: वाक्याते मुश्ताकी,अनु॰रिजवी,उत्तर तैमूर कालीन-भारत भाग-1, पृ॰-193,

जिसके कारण उत्तरी-पश्चिमी सीमा के सरदार भी अपने को सल्तनत से स्वतन्त्र मानने लगे।[1] अतः स्पष्ट है सिकन्दर लोदी ने यद्यपि मुल्तान में लंगाहों की समस्या के समाधान तथा मुल्तान के सरदार से संधि कर पश्चिमोत्तर को सुदृढ़ करने का प्रयास किया। किंतु उसके राजत्व सिद्धान्त ने सरदारों को असंतुष्ट ही रखा।

इब्राहीम लोदी एवं मुगल सम्राट बाबर का आक्रमण:-

सिकन्दर लोदी की मृत्यु के पश्चात् अमीरों ने दिल्ली सल्तनत का बटवारा इब्राहीम लोदी एवं जलाल खाँ के मध्य कर दिया। प्रारम्भ में इब्राहीम लोदी ने विभाजन कोस्वीकार कर लिया। किंतु रापरी के गवर्नर खान-ए-जहाँ के प्रोत्साहन पर उसने विभाजन को अस्वीकार कर दिया।[2] और कठोर संघर्ष तथा अनेकानेक कूटनीतिक चालों के माध्यम से जलाल खाँ की समस्या को समाप्त कर दिल्ली सल्तनत् को विभाजन से बचा लिया। अब इब्राहीम ने सल्तनत को सुदृढ़ करने की योजना बनाई। विशेषकर पश्चिमोत्तर प्रान्तों की, क्योंकि वहाँ दौलत खाँ लगभग अर्द्ध स्वतन्त्र शासक की भाँति शासन कर रहा था। इब्राहीम इस तथ्य से भली-भाँति परिचित था कि बिना अफगान सरदारों को नियन्त्रण में किये सल्तनत को सुदृढ़ नहीं किया जा सकता। अतः उसने अफगानों के कबाइली राजत्व सिद्धान्त को परिवर्तित करनिरंकुश राजत्व सिद्धान्त का जन्म दिया। किंतु इसी राजत्व सिद्धान्त ने अफगान सरदारों को और अधिक विद्रोही बना दिया।

1- पाण्डेय, ए. बी.; दि फर्स्ट अफगान इम्पायर इन इंडिया, पृ.-219,

2- अब्दुल्ला: तारीख-ए-दाउदी, अनु. रिजवी, उत्तर तैमूर कालीन भारत, पृ.-294,

इब्राहीम लोदी का राजत्व सिद्धान्तः-

इब्राहीम लोदी स्वभाव से निरंकुश था। उसेने बहलोल की रातिनीति पसन्द थी न सिकन्दर की, वह तो अफगान सरदारों को अपनी मुठ्ठी में रखना चाहता था। इब्राहीम ने खुले आम कहा की राजाओं का न तो कोई सम्बन्धी होता है न कुल या कबीला। सभी लोग और सभी कुल उसके सेवक हैं।[1] इब्राहीम ने राजपद की प्रतिष्ठा में वृद्धि के लिए यह निश्चित नियम बना दिया कि दरबार में सुल्तान के समक्ष सभी अमीर हाथ जोड़ कर खड़े होंगे।[2] उसने पुराने अमीरों के अहंकार को समाप्त करने के लिए एक प्रतिरोधी सामन्त खड़ा करने के विचार से नव युवकों को ऊँचे पद देना और अपना विश्वास पात्र बनाना आरम्भ कर दिया। जो अमीर सुलतान के विरोधी थे या जिन्होंने किसी कारण सुलतान के आदेशों की उपेक्षा की उन्हें दण्ड दिया गया। इब्राहीम ने संप्रभुता को इस तरह थोपा तथा अपनी निरंकुशता को कुछ ऐसा रूप दिया कि लोगों को यह सन्देह होने लगा कि सुल्तान न्याय के नहीं बल्कि ईर्ष्या और सन्देह के वशीभूत होकर निर्दोष लोगों को दंडित कर रहा है।[3] इब्राहीम ने यह नहीं सोचा कि वह एक ऐसा युग था जिसमें सुलतान की शक्ति का वास्तविक आधार अमीर थे विशेष कर उस दशा में जब सुलतान निर्बल या कम शक्तिशाली व्यक्ति हो। इब्राहीम, योग्य, साहसी और वीर था, लेकिन वह बलबन या अलाउद्दीन नहीं था। इब्राहीम का "बलबन रवैया" हठीले और उच्छृंखल अफगान अमीरों को बुरी तरह खटकने लगा। उनके हृदय को इस बात से आघात पहुँचा कि उन्हीं का साथ सुलतान के पद पर बैठकर "समानता" के विचार को भुला बैठा है

1- त्रिपाठी, आर॰पी॰ : समऐस्पेक्ट्सआफ मुस्लिम ऐडमिनिस्ट्रेशन, पृ॰-89,
पाण्डेय, ए॰बी॰ : दि फर्स्ट अफगान इम्पायर, पृ॰-184 एवं 220,

2- पाण्डेय, ए॰बी॰ : दि फर्स्ट अफगान इम्पायर, पृ॰-184 एवं 220,

3- पाण्डेय, ए॰बी॰ : दि फर्स्ट अफगान इम्पायर, पृ॰-221,
त्रिपाठी, आर॰पी॰ : समऐस्पेक्ट्स आफ मुस्लिम ऐडमिनिस्ट्रेशन, पृ॰-89,

और उनको सेवकों जैसी स्थिति में ला दिया है । इस भाँति स्थिति बराबर बिगड़ती गई । अमीरों का ऐसा सोचना ठीक ही था क्योंकि भुआको यह सोचकर कि उसकी सांठगाँठ पंजाब के गवर्नर दौलत खान लोदी से है, उसने बंदी गृह में डलवा दिया । इसके पश्चात सुलतान ने फतहखान तथा आजम हुमायूँ सरवानी को धोखे से बुलवाकर उन्हें भी बंदीगृह में डलवा दिया । सुलतान उमराव पर सन्देह करने लगा और उमराव उसपर । न तो अमीरों ने अपना दिल साफ किया न सुलतान ने ही उनको क्षमा किया ।[2] इसी पारस्परिक सन्देह और विद्वेष के कारण प्रायः सारे राज्य में विद्रोह की ज्वाला प्रज्वलित हो उठी जिसे इब्राहीम शांत नहीं कर सका । उत्तरी-पश्चिमी सीमा की समस्या अत्यधिक विष्फोटक हो उठी और उधर से ही आक्रमण कर मुगल आक्रान्ता बाबर ने दिल्ली सल्तनत को समाप्त कर दिया ।

प्रादेशिक शक्तियों का उत्कर्ष:-

सुलतान एवं अमीरों के संघर्ष के दौरान प्रादेशिक शक्तियों को सिर उठाने का अवसर मिला । 1518 ई. में राणा संग्रामसिंह ने सुलतान इब्राहीम लोदी को खटौली के युद्ध में परास्त किया ।[3] अगले वर्ष मालवा राज्य को विजित करने के प्रयास में शाही सेना इस ओर बढ़ी । किंतु वह राजपूतों द्वारा बुरी तरहपराजित हुई । इस प्रकार दिन प्रतिदिन राणा सग्रामसिंह की प्रतिष्ठा बढ़ती गई । राणा संग्राम सिंह से संघर्ष के कुछ समय पश्चात कड़ा के गवर्नर इस्लाम खाँ ने विद्रोह किया और शाही सेना के अध्यक्ष अहमद खाँ कोबुरी तरह परास्त कर अपनी स्वतन्त्रता

1- पाण्डेय, ए.बी. :दि फर्स्ट अफगान इम्पायर , पृ.-221,

2- पाण्डेय, ए.बी. : दि फर्स्ट अफगान इम्पायर,इन इंडिया, पृ. 184,

3- पाण्डेय,ए.बी. :दि फर्स्ट अफगान इम्पायर इन इंडिया, पृ.-181,

की घोषणा की ।[1] थोड़े समय पश्चात् आजम हुमायूँ लोदी तथा सईद खान लोदी भी भागकर उसके साथ मिल गये । इस प्रकार कड़ा से लेकर कन्नौज तक का समस्त प्रदेश इस्लाम खान के हाथ आ गया । दरिया खान नुहानी को भेज कर सुलतान इब्राहीम लोदी ने यह विद्रोह दबा तो दिया, किंतु इसी दरिया खान ने जहान लोदी के साथ मिलकर बिहार में विद्रोह किया । दरिया खान की मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्र बिहार या बहादुर खान ने सुल्तान मुहम्मद की उपाधि ग्रहण की, खुत्बा पढ़वाया तथा सिक्के निकलवाये । इस प्रकार बिहार में स्वतंत्र राज्य की स्थापना हो गई ।[2] थोड़ ही दिनों में अनेक अमीर जोकि सुलतान इब्राहीम के अधीन थे, वे उसका साथ छोड़कर सुल्तान मुहम्मद से जा मिले । इस प्रोत्साहन से मुहम्मद ने बिहार से लेकर संभल तक के विशाल प्रदेश पर अपना अधिपत्य स्थापित कर लिया । इस प्रकार बिहार तथा दक्षिण पश्चिम में दो प्रादेशिक शक्तियों का उत्कर्ष हुआ । इन शक्तियों के उत्कर्ष ने सल्तनत् को अत्यधिक कमजोर बना दिया जिसका प्रभाव पश्चिमोत्तर सीमा पर भी पड़ा ।

पश्चिमोत्तर सीमा की स्थिति:-

उत्तर-पश्चिम में पंजाब में दौलतखान लोदी बीसवर्ष[3] से गवर्नर था और उसकी स्थिति वहाँ बहुत ही सुदृढ़ थी । सुलतान इब्राहीम लोदी के क्रूर स्वभाव एवं नीतियों से वह चिन्तित था । इसी बीच सुलतान ने उसे दरबार में बुलाया ।

1- अहमद यादगार:तारीखे सलाती ने अफगाना, अनु॰ रिजवी, उत्तर तैमूर-कालीन भारत, पृ॰ -344,
पाण्डेय, ए॰ बी॰ :दि फर्स्ट अफगान इम्पायर इन इंडिया, पृ॰ -190,

2- अहमद, यादगार:तारीखे सलाती ने अफगान, अनु॰ रिजवी, उत्तर तैमूर-कालीन भारत, पृ॰ -348,
अब्दुल्ला:तारीखे दाउदी, अनु॰ रिजवी, उत्तर तैमूर कालीन भारत-पृ॰ 304,

3- अहमद यादगार:तारीखे सलाती ने अफगान, अनु॰ रिजवी, उत्तर तैमूर -कालीन भारत, पृ॰ -348,

दौलत खान जो सुलतान के प्रति शंकालु था, स्वयं दरबार में उपस्थित होना उचित नहीं समझा उसने अपने पुत्र दिलावर खान को सुलतान की सेवा में इस संदेश के साथ भेजा कि वह अस्वस्थ है और स्वस्थ होते ही राजकोष के साथ राजधानी में उपस्थित होगा। सुलतान इससे अत्यधिक अप्रसन्न हुआ और उसने दिलावर खान को बन्दीगृह दिखाकर कहा कि यदि दौलत खान शीघ्र नहीं आया तो उसकी भीशीघ्र ही यही दशा होगी।[1] बन्दीगृह में बड़े-बड़े अमीरों की यातनाएं देखकर दिलावर खान घबड़ा गया और अवसर पाते ही भाग निकला।[2] लाहौर पहुँचकर उसने सुलतान के क्रूर व्यवहार के बारे में सब कुछ अपने पिता को बताया। दौलत खान ने यह समझा कि अन्य प्रतिष्ठित अमीरों की ही भाँति इब्राहीम लोदी उसे भी कुचलकर रख देना चाहता है। अतः उसने पंजाब में अपने हितों की रक्षा तथा इब्राहीम लोदी का अंत करने के लिए काबुल के शासक बाबर को भारत पर आक्रमण करने के लिए आमंत्रित किया।[3] इसी समय उसने दूसरे अमीरों से परामर्श करके बहलोल के बेटे आलम खाँ को गुजरात से बुलाया और उसे अलाउद्दीन के नाम से सुलतान घोषित कर दिया। किंतु सुलतान इब्राहीम को शक्तिशाली देखकर वह हिन्दुस्तान से भाग कर बाबर की शरण में जा पहुँचा। निजामुद्दीन अहमद के अनुसार दौलत खान और गाजी खान, से तथा सुलतान इब्राहीम लोदी के अन्य वरिष्ठ अमीरों ने आलम खां के हाथों बाबर के पास हिन्दुस्तान पर आक्रमण करने के लिए पत्र भेजे।[4]

1- अब्दुल्लाह:तारीखे दाउदी,अनु. रिजवी,उत्तर तैमूर कालीन भारत-पृ. 304
अहमद यादगार:तारीखे सलाती ने अफगाना,अनु. रिजवी,उत्तर तैमूर-कालीन भारत, पृ.-349,

2- पाण्डेय,ए.वी.:दि फर्स्ट अफगान इम्पायर पृ.-196,
हलीम,अब्दुल:हिस्ट्री आफ दि लोदी सुल्तान्स आफ डेलही एंड आगरा-पृ.-161-62,

3- अहमद,यादगार:तारीखे सलाती ने अफगाना,पृ. 87-88,अनु. रिजवी,तैमूर-कालीन भारत, पृ.-349,
अब्दुल्लाह:तारीखे दाउदी,पृ.-00,अनु. रिजवी,उत्तर तैमूर कालीन-भारत, पृ.-304, तथा रिजवी,मुगल कालीन भारत-(बाबर),पृ. 448-49,
फरिश्ता:तारीखे फरिश्ता,अनु. ब्रिग्स,दि हिस्ट्री आफ दि राइज आफ-दि महम्मडन पावर इन इंडिया,भाग-2,पृ.-37,

4- निजामुद्दीन अहमद:तबकाते अकबरी,उद्धृत,राधेश्याम बाबर,पृ. 252,

दौलत खान के आमन्त्रण से संबन्धित विवाद:-

दौलत खान के द्वारा बाबर के आक्रमण को आमंत्रण से सम्बन्धित संदर्भ में चार अधिकारिक लेखकों का विवरण परस्पर भिन्न है: नियामत उल्लाह[1] ने "मख्जने अफगना" में लिखा है कि दौलत खाँ ने गाजी खाँ तथा पंजाब के अन्य अमीरों से मिलकर, आलम खाँ के हाथ बाबर को निमन्त्रण भेजा । फरिश्ता[2] ने केवल इतना ही लिखा है कि अपनी तथा अपने परिवार की सुरक्षा के प्रति सशंकित होकर दौलत खाँ ने सुलतान के विरूद्ध विद्रोह कर दिया और काबुल के मुगल शासक बाबर को भारत विजय करने के लिए आमंत्रित किया । बाबर से पहले शाहजादा अलाउद्दीन {आलम खाँ}, जो अपने भाई इब्राहीम के पास से भागकर काबुल में रहने लगा था, भारत में आया और दिल्ली की ओर बढ़ा, परन्तु इब्राहीम ने उसे पराजित कर दिया । अहमद यादगार का कहना है कि बाबर को भारत पर आक्रमण करने का बुलावा देने के लिए दिलावर खाँ को भेजा । यह घटना 1522-23 ई॰ के लगभग की थी ।

राणा संग्राम सिंह द्वारा बाबर को आमन्त्रण:-

कुछ समय पश्चात् मेवाड़ के शासक राणा संग्राम सिंह का राजदूत भी बाबर के पास यह प्रस्ताव लेकर आया कि वह भारत पर उत्तर-पश्चिम से आक्रमण करे और राणा पीछे से उस पर आक्रमण कर लोदी साम्राज्य को समाप्त कर देंगे ।

1- नियामत उल्लाह: मख्जने अफगना, अनु॰ एन॰ राय पृ॰-77,

2- फरिश्ता: तारीखे फरिश्ता, अनु॰ ब्रिग्स, भाग-2, पृ॰-37,

तत्पश्चात लोदी साम्राज्य को वे आपस में बाँट लेंगे । इस योजना के सफल होने का अर्थ यह था कि आगरे के पूर्व तक के प्रदेशों पर राणा का अधिकार होगा तथा आगरा उसके साम्राज्य कीपश्चिमी सीमा होगी, तथा बाबर का अधिकार दिल्ली तक होगा ।[2] बाबर के लिए यह प्रस्ताव बहुत ही महत्वपूर्ण थाक्योंकि बिना पूर्वी क्षेत्र के अफगानों से संघर्ष किए हुए ही वह समस्त हिन्दुस्तान काशासक बन जाएगा ।

जहीरूद्दीन मुहम्मद बाबर:-

काबुल-कंदहार का शासक बाबर मध्य युगीन एशिया के महान् व्यक्तियों में से एक था । उसका जन्म फरगना के शासक उमर शेख मिर्जा के परिवार में सन् 14 फरवरी 1483 ई० में हुआ था ।[3] उसका पिता तैमूर का वंशज था और उसकी माता चंगेज खाँ के परिवार की थी ।[4] बाबर बचपन से ही बड़ा बीर, निडर साहसी आत्म विश्वासी एवं महत्वाकांक्षी था । जब वह ग्यारह वर्ष कुछ माह का था तभी उसके पिता की मृत्यु हो गई और सन् 1494 ई. से 1504 ई. तक उसे अपने चाचाओं मामाओं तथा भाइयों की ओर से बहुत विरोध सहना पड़ा[5] । साथ ही उसे सुविख्यात उजबेग शैबानी खाँ का भी सामना करना पड़ा । इतने पर भी वह कभी घबड़ाया

1- राधेश्याम: बाबर, पृ.-252,

2- बाबर:बाबर नामा, अनुवाद बेवरिज, भाग-2, पृ.-529, पाण्डेय, दि फर्स्ट-अफगान इम्पायर, पृ.-203,
राधेश्याम:बाबर, पृ.-252,

3- पाण्डेय, ए.बी.:दि फर्स्ट अफगान इम्पायर, पृ.-196,
राधेश्याम: बाबर, पृ.-3,

4- राधेश्याम:बाबर, पृ.-4-5,

5- राधेश्याम:बाबर, पृ.-7-8-9,

नहीं, उसने फरगना पर अधिकार रखने के साथ-साथ दो बार समरकन्द पर भी अधिकार किया और अपने महान पूर्वज तैमूर के सिंहासन पर बैठने का सौभाग्य प्राप्त किया ।[1] पर ऐसा प्रतीत होता है बाबर का भाग्यचक्र उसे भारत के करीब लाना चाहता था । अतः 1502 ई॰ से 1504 ई॰ तक भरसक प्रयत्न करने पर भी मध्य एशियामें उसके लिए कोई भविष्य सुधरने की आशा किरण नहीं दिखाई पड़ी ।[2] इसी समय बाबर को यह ज्ञात हुआ कि काबुल में अरगुनों के शासन से असंतोष व्याप्त है । अतः उसने इस ओर अपना भाग्य आजमाना चाहा। वह अक्टूबर 1504 ई॰ में काबुल की ओर बढ़ा और उसने उस पर अधिकार कर लिया ।[3] किंतु 1504 ई॰ से 1512 ई॰ तक बाबर ने लगातार समरकन्द पर ही अपना ध्यान केन्द्रित किया । किंतु इसके बाद उसने अपनी कर्मभूमि अफगानिस्तान को ही बना लिया ।

जहीरूद्दीन मुहम्मद बाबर का भारतीय अभियानः-

तैमूर का वंशज होने के कारण बाबर पंजाब पर अपना पैतृक अधिकार समझता था । अपनी आत्मकथा बाबरनामा में वह लिखता है कि "सन् 910 हि॰ (1504 ई॰) से जब कि मैंने काबुल का राज्य प्राप्त किया था उस समय तक जब की घटनाओं का इस समय में उल्लेख करता हूँ, मैंने भारत विजय के विषय में कभी

1- पाण्डेय, ए॰बी॰ःदि फर्स्ट अफगान इम्पायर, पृ॰-196,

2- पाण्डेय, ए॰बी॰ःदि फर्स्ट अफगान इम्पायर, पृ॰-197,

3- बाबरःबाबर नामा अनु॰ बेव्रिज भाग-1, पृ॰-198-99 तथा रिजवी, मुगल कालीन भारत, बाबर, पृ॰-344,
पाण्डेय, ए॰बी॰ःदि फर्स्ट अफगान इम्पायर, पृ॰-197,

विचार करना बंद नहीं किया था । परन्तु चूँकि कभी मुझे बेगों की ओर से आशंका रहती और कभी मेरे और मेरे भाइयों के बीच में झगड़ा होता रहता, अस्तु इन बाधाओं के कारण मैंने यह कार्य करने का कभी उपयुक्त अवसर नहीं पाया था । अन्त में, यह हर्ष की बात है कि सभी बाधाएँ दूर हो गईं । क्या छोटा क्या बड़ा बेग और सरदार कोई भी इस योजना के विरूद्ध एकशब्द भी कहने का साहस न कर सका । इसलिए 925 हि॰ (1509 ई॰) में मैं एक सेना लेकर गया और बाजौर की विजय से कार्य आरम्भ किया । इस समय से 932 हि॰ (1526 ई॰) तक मैं हमेशा क्रियात्मक रूप से हिन्दुस्तान के घटना क्रम से सम्बद्ध रहा । सात-आठ वर्ष के भीतर मैं स्वयं वहाँ पाँच बार सेना लेकर गया ।[1] इससे स्पष्ट है कि यदि बाबर को दौलत खाँ आदि का आमंत्रण न भी मिलता तो भी वह भारत पर आक्रमण करता । सन् 1519 ई॰ में उसने बाजौर और भीरा पर अधिकार कर लिया । किंतु भीरा विजय करने के उपरान्त उसने यह आदेश निकाला कि कोई सैनिक किसी प्रकार की लूट पाट न करे ।[2] अपनी आत्मकथा में वह लिखता है कि" ऐसा आदेश मैंने इसलिए निकाला कि इन प्रान्तों पर मैं अपना ही अधिकार समझता था"। इसी समय उसने मुल्ला मुर्शिद को इब्राहीम के पास यह सन्देश देकर भेजा कि चूँकि तैमूर ने पंजाब पर अपना शासन स्थापित किया था इसलिए लोदी सुलतान को चाहिए कि वह उसे मेरी पैतृक सम्पत्ति समझकर छोड़ दे । यदि वह ऐसा करता है तो मैं उसके राज्य के शेष भाग में कोई हस्तक्षेप नहीं करूँगा ।[3] किन्तु दौलत खाँ ने उसे

1- बाबर:बाबर नामा, अनु॰ बेवरिज,भाग-2, पृ॰-478-479,

2- बाबर:बाबर नामा, अनु॰रिजवी, मुगल कालीन भारत, पृ॰-100,

3- बाबर:बाबर नामा, अनु॰रिजवी, मुगल कालीन भारत, पृ॰-102,
पाण्डेय, ए॰बी॰: दि फर्स्ट अफगान इम्पायर इन इंडिया,पृ॰-199,

लाहौर से आगे नहीं बढ़ने दिया और वह लौट जाने पर बाध्य हुआ ।[1] संभवत: दौलत खाँ को यह भय था कि समझौता हो जाने पर स्वयं उसका अस्तित्व समाप्त हो जाएगा ।[2] 1520 ई. में बाबर ने स्यालकोट तक धावा किया किंतु अब उसे अपना अधूरा कार्य छोड़कर वापस जाना पड़ा ।[3] उसने 1522 ई. में अरगुनों को कन्दहार से बाहर निकालकर अपनी स्थिति अत्यधिक दृढ़ कर ली । उसने उस्ताद अलीकुली और मुस्तफा रूमी की सेवाएं प्राप्त करके अपना तोपखाना भी सुगठित कर लिया । उसका महान् शत्रु शैबानी खाँ मर्व के युद्ध में पहले ही मारा गया था और फारस के सफवी शासक उसके प्रति मित्रता का भाव रखते ही थे । इस भाँति अब बाबर को काबुल कंदहार के विषय में कोई चिंता नहीं रह गई थी ।

बाबर की लाहौर एवं दीपालपुर विजय:-

दौलत खान एवं राणा संग्राम सिंह के आमंत्रण पर बाबर पुन: 1524 ई. में भारत पर आक्रमण करने के लिए आगे बढ़ा । बाबर के आगमन का समाचार पाते ही लोदी सुलतान इब्राहीम ने एक विशाल सेना पंजाब की ओर दौलतखान को अपने पक्ष में करने तथा यदि आक्रमणकारी आगे बढ़े तो उसे पीछे हटा देने के लिए भेजी ।[4] शाही सेनाओं ने लाहौर पर आक्रमण किया और दौलत खाँ लोदी को वहाँ से भगाकर दुर्ग पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया । इसके पश्चात्

1- बाबर: बाबरनामा, अनु. बेव्रिज, भाग-1, पृ.-385,
ब्रिग्स: दि हिस्ट्री आफ दि राइज आफ दि मुहमडन पावर इन इंडिया- भाग-2, पृ.-35,

2- पाण्डेय, ए.बी.: दि फर्स्ट अफगान इम्पायर, पृ.-199,

3- बाबर: बाबरनामा, अनु. बेव्रिज भाग-1, पृ.-419,
अरस्किन और लिडिन: मेमायर्स आफ बाबर, पृ.-286,

4- राधेश्याम: बाबर, पृ.-253,

उन्होंने पंजाब के विद्रोहियों के विरुद्ध सैनिक कार्यवाहियाँ प्रारम्भ की । अभी यह कार्य पूर्ण भी न हुआ था कि बाबर ने सिंध नदी पार कर लिया । शाही सेनापति को इतना समय न मिल सका कि वह लाहौर के दुर्ग की रक्षा का प्रबंध कर सकता । अतः शीघ्र ही बाबर ने लाहौर के दुर्ग को अधिकृत कर लिया । शाही सेना पराजित हुई और भाग खड़ी हुई । लाहौर को बुरी तरह जला डाला गया ।[1] चार दिन ठहरने के पश्चात् बाबर दीपालपुर की ओर बढ़ा और यहाँ के दुर्ग को भी अधिकृत करने के पश्चात् यहाँ के लोगों को मौत के घाट उतार दिया । यह घटना 930 हि०/22 जनवरी 1524 ई० की है[2]। दीपालपुर में दौलत खान लोदी बाबर से मिलने आया । बाबर ने उसे सुल्तानपुर तथा जालंधर प्रदान कर दिया तथा लाहौर अपने ही हाथों में रखा ।[3] जहाँगीर ने तुजके जहाँगीरी में गलत लिखा है कि पंजाब का प्रशासन दौलत खाँ को सौंपकर बाबर काबुल वापस लौट गया । अब दौलत खान लोदी को यह स्पष्ट हो गया कि बाबर पंजाब को अपने ही हाथों में रखना चाहता है । अतः उसने बाबर को धोखा देकर मार डालने की योजना बनाई । बाबर से यह अनुरोध किया गया कि वह अपनी सेना डेरा इस्माइल खाँ भेजे जहाँ अनेक अफगान सरदार एकत्रित हो मुगलों पर आक्रमण करना चाहते हैं । परन्तु दौलत खान के पुत्र दिलावर खान ने षडयन्त्र की सूचना बाबर को दे दिया । यह भेद खुलते ही बाबर ने दौलत खान तथा गाजी खान को तुरंत

1- राधेश्याम:बाबर, पृ०- 253,

2- बाबर:बाबरनामा,अनु० वेब्रिजभाग-1,पृ०-441, फरिश्ता,तारीखे फरिश्ता पृ०-202,ब्रिग्स, दि हिस्ट्री आफ दि राइज आफ दि मुहमडन पावर- इन इंडिया भाग-2, पृ०-38,

3- बाबर:बाबरनामा,अनु० वेब्रिज भाग-1,पृ० 441,ब्रिग्स, दि हिस्ट्रीआफ- दि मुहमडन पावर इन इंडिया,भाग-2,पृ० 38,बख्शीश सिंह निज्जर,- पंजाब अण्डर दि मुगल्स, पृ०-14,

बन्दी बना लिया और नजरबन्द कर दिया ।[1] जहाँगीर ने तुजके जहाँगीरी में गलत लिखा है कि जब बाबर ने भारत पर द्वितीय आक्रमण कियातो दौलत खाँ उसकी सेवा में आया और उसके पश्चात् मर गया ।[2] सतलज नदी पार करके बाबर नौशेरा पहुँचा तो उसने दौलतखाँ लोदी तथा गाजी खाँ को छोड़ दिया और सुल्तानपुर भेज दिया । किंतु अवसर पाते ही दौलत खाँ अपने परिवार के साथ पहाड़ियों की ओर भाग गया । यह सुनकर बाबर घबड़ाया और उसने दिलावर खाँ को खानखाना की पदवी देकर सम्मानित किया और उसे पैतृक सम्पत्ति वापस दे दी और शीघ्रादि शीघ्र लाहौर वापस लौट गया ।[3] यहाँ उसने मुगलों द्वारा विजित प्रदेशों को मुगल सेनापतियों को देकर काबुल लौट गया । मीर अब्दुल अजीज को लाहौर का प्रान्तपति और मुहम्मद अली ताजिक को कलानौर का प्रान्तपति बनाया । इन्हें यह आदेश दिया कि वो आलम खान से मिलकर स्थिति पर नियंत्रण बनाये रखें ।[4]

दौलतखान द्वारा मुगल सेना का प्रतिरोध:-

बाबर को काबुल लौटा हुआ देखकर दौलत खान लोदी ने, जिसने पहाड़ियों में शरण ली थी, निकलकर बाहर आया और मुगल सेनापतियों के विरूद्ध कार्यवाही प्रारम्भ कर दी । इस समय सुल्तान इब्राहीम लोदी ने भी एक कुशल राजनीतिज्ञ का

1- बाबर:बाबरनामा,अनु• बेव्रिज भाग-1,पृ•442,
2- तुजके जहाँगीरी, अनु• भाग-2, पृ•-88,
3- राधेश्याम, बाबर, पृ•-255,
पाण्डेय,ए•बी•:दि फर्स्ट अफगान इम्पायर इन इंडिया, पृ•-205,
4- राधेश्याम: बाबर, पृ•-255,

परिचय दिया और दौलत खान लोदी को मिलाने का प्रयास किया ।[1] किंतु दौलत खान ने इब्राहीम पर विश्वास नहीं किया । इस पर इब्राहीम ने पंजाब से मुगलों एवं दौलत खाँ को मार भगाने के लिए एक सेना भेजी । दौलत खाँ ने शाही सेना के कुछ अधिकारियों को अपनी ओर फोड़ लियाऔर शाही सेना को बुरी तरह परास्त किया।[2] इसके पश्चात् उसने अपने पुत्र दिलावर खाँ को पराजित किया और सुल्तानपुर के दुर्ग पर अधिकार कर लिया । अब दौलत खान दीपालपुर की ओर बढ़ा । आलमखान जान बचाकर बाबर के पास भाग गया । इसके उपरान्त दौलतखान सियालकोट की ओर बढ़ा । खुसरो को कुलताश घबड़ाया, किन्तु इसी समय लाहौर के प्रान्तपति मीर अब्दुल अजीज की सहायता से उसे राहत मिली और स्यालकोट का दुर्ग बच गया । इस प्रकार दौलत खान की पंजाब में शक्ति बढ़ती रही । इससे चिंतित होकर दिल्ली सुल्तान इब्राहीम लोदी एक बार पुनः दौलत खान को पराजित करने के लिए दिल्ली से रवाना हुआ और बजवाड़ा में पड़ाव डाला ।[3] किन्तु इस बार पुनः दौलत खान ने अपने प्रभावी व्यक्तित्व से इब्राहीम के अनेक अफसरों को अपने पक्ष में कर लिया। इससे इब्राहीम बिना युद्ध किए ही वापस लौट आया ।[4]

उधर आलम खान ने काबुल पहुँचकर बाबर को दौलत खाँ की प्रगति के विषय में अवगत कराया । उसे बताया कि मुगल अफसरों को पंजाब में अनेकानेक कठिनाइयाँ का सामना करना पड़ रहा है ।[5] बाबर तत्काल स्वयं न जाकर आलम

1- राधेश्याम; बाबर, पृ॰-255,

2- राधेश्याम; बाबर, पृ॰-255,

3- राधेश्याम; बाबर, पृ॰-256,

4- राधेश्याम; बाबर, पृ॰-256,

5- बाबर;बाबरनामा,अनुवाद बेवरिज,भाग-2,पृ॰-455,

खाँ के हाथ मुगल अफसरों को यह आदेश भेजा कि वे दिल्ली विजय में आलम खाँ की मदद करे । किंतु मुगल अधिकारियों ने उसे [आलम खाँ को] मदद देने से इंकार कर दिया । इस पर आलम खान ने गाजी खान के पुत्र शेरखान द्वारा दौलतखान लोदी के पास मुगलों के विरूद्ध एक आक्रमणात्मक एवं रक्षात्मक प्रस्ताव भेजा ।[1] फरिश्ता के अनुसार दौलतखान को जब बाबर के पुनः भारत आने के दृढ़ संकल्प की बात ज्ञात हुई तो उसने आलम खाँ के प्रस्ताव को स्वीकार कर लियाओर दूसरी ओर मुगल अधिकारियों के पास यह पत्र लिखा कि वह बाबर की इच्छानुसार आलम खाँ को दिल्ली का सिंहासन दिलाना चाहता है । उधर मुगल अधिकारियों ने दौलत खाँ पर विश्वास करते हुए आलमखाँ से सरहिन्दसे लाहौर तक के प्रदेश को बाबर को सौंप देने का आश्वासन लेकर दौलत खाँ के पास जाने की अनुमति दे दी ।[2] आलम खाँ एवं दौलत खाँ की संयुक्त सेना दिल्ली की ओर प्रस्थान की । वे दिल्ली पहुँच गये और दुर्ग का घेर डाल दिया, किंतु उसे जीतने में असफल रहे । सुल्तान इब्राहीम ने अपने सैनिकों के साथ घेरे का प्रतिरोध किया और शत्रुओं को बुरी तरह परास्त कर भगा दिया ।[3] वापस आकर आलमखाँ लोदी, दौलत खाँ लोदी आदि ने पुनः पत्र द्वारा बाबर को भारत पर आक्रमण का आमंत्रण दिया ।

1- बाबर:बाबरनामा,अनु.बेव्रिज, भाग-2, पृ.-455 तथा इलियट एण्ड - डाउसन, भाग-4, पृ.-241,

2- ब्रिग्स, दि हिस्ट्री आफ द राइज आफ दि मुहमडन पावर इन इंडिया, भाग-2, पृ.-40,

3- ब्रिग्स,जे. : दि हिस्ट्री आफ द राइज आफ दि मुहमडन पावर इन-इंडिया भाग-2, पृ.-41,
बाबर:बाबरनामा, अनु. बेव्रिज भाग-2, पृ.-456,
इलियट एण्ड डाउसन, भाग-4, पृ.-242-43,

सल्तनत(1525)की अन्तिम विजय के लिए बाबर का प्रस्थान:-

932 हि./17 नवम्बर 1525 ई. को बाबर काबुल से भारत के लिए रवाना हुआ।[1] गजनी तथा बदख्शां की सेनाओं को जिनके अधिपति क्रमश: ख्वाजा कलाँ तथा हुमायूँ थे शीघ्र ही मिलने को कहा। देहयाकूत नामक स्थान पर हुमायूँ अपनी सेनाओं के साथ पिता से मिला। इसी समय ख्वाजा कलाँ भी उपस्थित हुआ। बिना किसी रूकावट के सम्मिलित सेनाने सिंध नदी पार की। यहाँ उसने अपने सैनिकों की गणना करवाई। उसे ज्ञात हुआ कि छोटे व बड़े अच्छे या बुरे जो सेना में सम्मिलित हैं उनकी संख्या 12,000 है। निजामुद्दीन अहमद[2] के अनुसार बाबर की सेना में इस समय मात्र 10,000 सैनिक थे। तारीखे अलफी में सैनिकों की संख्या 10,000 ही दी गई है। अब बाबर स्यालकोट की ओर बढ़ा और उसने सेना के अग्रभाग को शीघ्रादिशीघ्र लाहौर पहुँचने का आदेश दिया। जहाँ दौलत खाँ एवं गाजी खाँ कलानौर विजय से प्रोत्साहित होकर आने वाले थे। बाबर को यह भी सूचना मिली की दौलत खाँ तथा गाजी खाँ 40,000 सैनिकों के साथ उसके आक्रमण का सामना करने तथा मार्ग अवरूद्ध करने के लिए लाहौर के निकट रावी के तट पर एकत्रित हैं। एक कुशल राजनीतिज्ञ का परिचय देते हुए बाबर ने मुगल अधिकारियों को यह आदेश दिया कि वे अकेले अफगानों से युद्ध न करें बल्कि स्यालकोट या पसरूर के पास उससे आकर मिले।[3] 29 दिसम्बर को

1- बाबरनामा; अनु. बेवरिज, भाग-2 पृ. 456, रिजवी, मुगल कालीन भारत-पृ.-632, इलियट एण्ड डाउजन, भाग-4, पृ.-242-43, ब्रिग्स, दि हिस्ट्री आफ दि राइज आफ दि मुहमडन पावर इन इंडिया, भाग-2, पृ.-41,

2- निजामुद्दीन; तबकाते अकबरी, अनु. इलियट एण्ड डाउसन भाग-4,-पृ.-239,

3- पाण्डेय, ए.बी.: दि फर्स्ट अफगान इम्पायर इन इंडिया, पृ.-206-7,

बाबर स्यालकोट पहुँचा और उसने दुर्ग को अधिकृत कर लिया । यहाँ से बाबर ने गाजी खाँ का पता लगाने और उससे मुकाबला करने के उचित स्थान के तलाश के लिए अपना दूत भेजा । 30 दिसम्बर को बाबर पसरूर पहुँचा । यहाँ से भी उसने मीर बूजका को लाहौर भेजकर शत्रु की गतिविधियों के विषय में जानकारी करनी चाही । बूजका ने आकर बताया कि बाबर के आने की सूचना पाते ही शत्रु भाग खड़ा हुआ है ।[1] उसने बड़ी मात्रा में सैन्य साज मीर हुसेन तथा जानबेग की देखरेख में पसरूर में छोड़कर कलानौर की ओर प्रस्थान किया । यहाँ उसके समक्ष मुहम्मद मिर्जा तथा आदिल सुल्तान कुछ बेगों के साथ उपस्थित हुए । अब बाबर कलानौर से आगे बढ़ा । रास्ते में ही उसे ज्ञात हुआ कि दौलत खाँ ने मिलवट के दुर्ग में शरण ले रखी है[2] और गाजीखाँ निकटस्थ पहाड़ियों में भाग गया है । अतः उसने शीघ्र ही मुगल अधिकारियों को आदेश दिया कि वे गाजी खाँ का पीछा करें और मिलवट के दुर्ग का ऐसा पहरा दे कि कोई भी बाहर न जा सके ।[3] इस समय बाबर का मुख्य उद्देश्य गाजी खाँ को पकड़ना था ।[4]

मिलवट के दुर्ग पर घेरा डाल दिया गया । प्रथम दिन ही दौलत खाँ का पुत्र अली खाँ दुर्ग से बाहर आया और उसने बाबर से भेंट की । बाबर ने अली खाँ को धमकी एवं आश्वासन दोनों दिया कि यदि वह दुर्ग समर्पित कर दे

1- बाबर:बाबरनामा, अनु. बेवरिज भाग-2, पृ.-453 तथा रिजवी,-मुगलकालीन भारत, पृ.-140-41,

2- बाबर:बाबरनामा,अनु.बेवरिज,भाग-2,पृ.-458,रिजवी,मुगल कालीन-भारत-पृ.-144,

3- बाबर:बाबरनामा,अनु.रिजवी,मुगल कालीन भारत, पृ.-144,

4- राधेश्याम,बाबर, पृ.-263,

तो उसके परिवार के साथ किसी प्रकार का बुरा व्यवहार नहीं किया जाएगा । इसके उपरान्त दुर्ग का घेरा तीव्र कर दिया गया । हताश होकर दौलत खाँ ने बाबर के पास सूचना भेजी कि यदि उसको क्षमा करदिया जाए तो वह दुर्ग को समर्पित कर देगा ।[1] बाबर ने प्रस्ताव स्वीकार कर लिया और ख्वाजा मीर मीरान को उसे अपने समक्ष लाने को कहा । दौलत खाँ अपने पुत्र अली खाँ के साथ ख्वाजा मीर मीरान द्वारा बाबर के समक्ष प्रस्तुत किया गया । इसके बाद सैनिकों को आदेश हुआ कि दुर्ग में प्रवेश कर सभी सामान अपने कब्जे में ले लें । यहाँ गाजी खान के पुस्तकालय में उन्हें बहुमूल्य ग्रंथ एवं पाण्डुलिपियाँ मिलीं । उनमें से कुछ बाबर ने कामरान तथा हुमायूँ को भेंट भेजी ।[2] दौलत खान, अली खान तथा इस्माइल खान एवं अन्य अफगान सरदारों को मिलवत के अधीनस्थ दुर्ग भीरा में बन्द कर देने काआदेश बाबर द्वारा हुआ । कित्ताबेग इन्हें लेकर चला । सुल्तानपुर पहुँचते ही दौलत खान की मृत्यु हो गई ।[3] मुहम्मद अली जंगजंग को मिलवत का दुर्ग सौंप दिया गया और उसकी सहायता के लिए 250 अफगान सैनिकों को नियुक्त किया गया ।

बाबर गाजी खाँ को ढूढ़ते-ढूढ़ते डून की घाटी में पहुँचा । यहाँ उसे गाजी खाँ तो न मिला, पर आराइश खान, मुल्ला मुहम्मद मजहब तथा दुरमेश खान जो कि सुल्तान इब्राहीम लोदी के अमीरों में से थे, के पत्र प्राप्त हुए कि वह

1- बाबर:बाबरनामा,अनु• बेव्रिज भाग-2,पृ•-459,तारीखे अलफी अनु• रिजवी मुगल कालीन भारत, पृ• 634,इलियट एण्ड डाउसन,भाग-4,पृ• 246,

2- निजामुद्दीन अहमद: तबकाते अकबरी,अनु• बी• डे•,भाग-2,पृ• 13,

3- बाबर:बाबरनामा,अनु• रिजवी,मुगल कालीन भारत, पृ•-147,

आगे बढ़ता रहे और वे उससे मिलने की चेष्टा कर रहे हैं ।[1] बाबर दूरूर तथा कलहूर के आगे बढ़ा ही था कि आलम खान उसकी सेवामें उपस्थित हुआ । इसी समय बाबर को इस्माइल जिलवानी और बिबन के भी पत्र प्राप्त हुए जिससे उन्होंने अधीनता स्वीकार की थी । इस प्रकार बाबर निर्विरोध आगे बढ़ता रहा । दून की घाटी से निकलकर वह रूपर होता हुआ सरहिन्द पहुँचा । उसने बनूर तथा सनूर नदियों कोपार किया और उन्हीं के किनारे पड़ाव डाला । यहीं उसे सूचना मिली कि दिल्ली सुल्तान इब्राहीम लोदी उसका सामना करने के लिए अपनी सेना के साथ आगे बढ़ रहा है तथा उस स्थान पर पहुँच चुकाहै जहाँ आलम खान को पराजित कियागया था । इसी समय हामिदखाँ के जो कि हिसार फिरोज का शिकदार था के आगे बढ़ने की सूचना मिली । इब्राहीम एवं हामिद खाँ के बारे में गुप्तचर भेजकर बाबर पुनः आगे बढ़ा और अम्बाला आ पहुँचा ।[3] यहाँ तक उसकी सारी सैनिक तैयारी पूर्ण हो चुकी थी । अतः हुमायूँ को हामिद खाँ के विरूद्ध भेजा गया । हुमायूँ के साथ सेना का दाँया भाग था, जिसमें सुल्तान मुहम्मद दुल्दाई, वली, मुहम्मद अली जंगजंग, वली, हिन्दू बेग, खुसरो, ख्वाजा कलाँ, अब्दुल अजीज, मुहिब अली, किस्ताबेग और शाह मन्सूर बरलास इत्यादि थे ।[4] हुमायूँ को यह आदेश था कि वह हामिद खाँ पर तत्काल आक्रमण करे जिससे वह इब्राहीम से न

1- बाबर:बाबरनामा, अनु॰ रिजवी,मुगल कालीन भारत, पृ॰-150, अहमद,निजामुद्दीन:तबकाते अकबरी,भाग-2,अनु॰ बी॰डे॰,पृ॰-13,

2- अहमद,निजामुद्दीन:तबकाते अकबरी,भाग-2,अनु॰ बी॰डे॰,पृ,-13-14,

3- तबकाते अकबरी;अनु॰इलियट एण्ड डाउसन, भाग-4, पृ॰-249,ब्रिग्स, दि हिस्ट्री आफ दि राइज आफ दि मुहमडन पावर इन इंडिया,भाग-2 पृ॰-43,

4- बाबर:बाबरनामा,अनु॰ रिजवी,मुगल कालीन भारत, पृ॰-150,ब्रिग्स, दि हिस्ट्री आफ दि राइज आफ दि मुहमडन पावर इन इंडिया, भाग-2, पृ॰-43,

मिल सके । हामिद खाँ पर मार्च 1526ई•में आक्रमण करके उसे परास्त किया गया । 100 बन्दियों सहित हुमायूँ वापस आया । आस-पास आतंक फैलाने के लिए बाबर ने सभी बन्दियों को कत्ल करा दिया ।[1] हिसार फिरोजा एवं उसके अधीनस्थ स्थानों पर अधिकार हो जाने से समस्त पंजाब पर बाबर का अधिकार हो गया ।

अम्बाला से आगे बढ़कर बाबर शाहाबाद पहुँचा । इसके बाद वह यमुना नदी के तट पर पहुँचा । यमुना को पार कर उसने सरसावा में पड़ाव डाला और उसने ख्वाजा कलाँ तथा हैदर कुली को समाचार लाने के लिए भेजा । हैदर कुली ने उसे सूचित किया कि इब्राहीम लोदी का अग्रिमदल दाउद खान लोदी तथा हातिम खान लोदी के नेतृत्व में 5000 या 6000 सवारों के साथ यमुना के उस ओर पड़ाव डाले हुए है ।[2] फरिश्ता के अनुसार इस समय हातिम खाँ और दाउद खाँ के अन्तर्गत 27,000 सैनिक थे ।[3] बाबर ने तत्काल 1 अप्रैल 1526ई•को सेना का बायाँ भाग भेजकर दाउद खाँ को भागने के लिए विवश किया । इस प्रकार बाबर का उत्साह अत्यधिक बढ़ गया । सरसावा से आगे बढ़कर 932 हि•/ 12 अप्रैल 1526 ई• को वह पानीपत के मैदान में पहुँचा ।[4]

1- निजामुद्दीन अहमद: तबकाते अकबरी, अनु•बी•डे• भाग-2,पृ• 16,

2- बाबर:बाबरनामा,अनुवाद बेवरिज, भाग-2, पृ•-467,

3- ब्रिग्स: दि हिस्ट्री आफ दि राइज आफ दि मुहमडन पावर इन इंडिया-भाग-3, पृ•-43,

4- बाबर:बाबरनामा, अनु•बेवरिज, भाग-2,पृ•-469, रिजवी, मुगल-कालीन भारत, पृ•-635,

पानीपत का युद्ध-(21 अप्रैल 1526 ई.):-

पानीपत पहुँचकर बाबर ने सर्वप्रथम अपने सेनापतियों व जवानों की एक गोष्ठी का अयोजन किया, जिसमें रणनीति का निर्धारण हुआ । उसने स्वयं पानीपत के मैदान का निरीक्षण किया और विशेष ध्यान अपनी प्रतिरक्षा की ओर दिया। इसके लिए उसने पानीपत के शहर तथा उसके मुहल्लों का जो कि उसकी सेना के दायीं ओर थे, प्रयोग किया। बाईं ओर की कृत्रिम सुरक्षा हुई । इस ओर खाइयाँ खुदवाई गईं तथा पेड़ों की शाखाओं द्वारा उन्हें ढकवा दिया गया । सेना के मध्य भाग के बचाव के लिए 700 गाड़ियों की व्यवस्था की गई । 2 या 3 गाड़ियों के मध्य में 5 या 6 गोली सह पर्दे रखे गए जिससे सैनिकों की रक्षा हो सके । गाड़ियों के मध्य भाग से 100 से लेकर 200 तक सैनिक आगे बढ़कर शत्रु पर आक्रमण कर सकते थे । गोली सह पर्दे तथा गाड़ियों के पीछे पैदल सैनिक रखे गये थे । अश्वारोहियों का कार्य घेराव करना था । निर्धारित रणनीति के हिसाब से सेना के अग्रभाग को आगे बढ़कर शत्रु पक्ष पर आक्रमण करना था । बन्दूक धारियों को जो खाइयों में थे, शत्रु को आगे बढ़ने से रोकना था । डॉ. के.एस.लाल ने बाबर की समस्त युद्ध पद्धति को रक्षात्मक बताया है।[1] उनके अनुसार पानीपत में बाबर द्वारा की गई व्यवस्था बचाव करने की बहुत अच्छी तरकीब थी, साथ ही साथ यदि इब्राहीम लोदी उस व्यवस्था के बीच में होकर आगे बढ़ने की कोशिश करता तो वही उसको फँसाने के लिए जाल बन सकता था ।[2] ऐसा प्रतीत होता है कि यह युद्ध युक्ति बाबर

1- लाल,के.एस.; ट्वाईलाइट आफ द डेल्ही सल्तनत् पृ.-222,
पाण्डेय,ए.बी.; दि फर्स्ट अफगान इम्पायर, पृ.-210,

2- लाल, के.एस.; ट्वाईलाइट आफ दि देहली सल्तनत्, पृ.-222,

के मस्तिष्क की उपज थी । संभवत: यह तैमूर की रक्षात्मक प्रणाली पर निर्भर थी जिसे उसने थानेश्वर के युद्ध में मल्लू इकबाल के विरूद्ध प्रयोग कियाथा । किंतु इस युद्ध प्रणाली में बाबर का मध्य एशिया का भी अनुभव निश्चित रूप से समाहित था । इस युद्ध प्रणाली को "तुलुगमा" प्रणाली कहते हैं ।[1] यह प्रणाली रूमियों, मंगोलों, ईरानियों, बोहिमियन्स के अनुभवों कोध्यान में रखकर बनाई गई थी। इस प्रणाली को सफल बनाने के लिए यह व्यवस्था होती थी कि अश्वारोही एवं तोपखाना एक दूसरे के सहायक के रूप में कार्य करें । साथ ही सेना का प्रत्येक भाग एक दूसरे से सम्बन्धित हो तथा एक दूसरे पर ध्यान रखे । इतना ही नहीं जब शत्रु की सेना चारों ओर से घिर जाये तो मुस्तफा अली तथा उस्ताद अली जो तोपखाने के अध्यक्ष थे शत्रु पर बारी-बारी से प्रहार प्रारम्भ कर दें ।

दिल्ली के सुल्तान इब्राहीम लोदी ने जब दाउद खाँ की पराजय का समचार सुना तो उसने स्वयं कूच करने का निश्चय किया । उसकी अधीनता में एक विशाल सेना ने पानीपत के लिए प्रस्थान किया। इब्राहीम लोदीकीसैन्य संख्या के विषय में इतिहासकारों में मतभेद है: फरिश्ता के अनुसार उसकी सेना में 1,00,000 अश्वारोही एवं 100 हाथी थे ।[2] बदायूँनी के अनुसार उसकी सेना में 10,000 सैनिक तथा 1000 हाथी थे ।[3] नियामतउल्लाह केअनुसार उसकी सेना में 5,000सैनिक थे ,[4] गुलबदन बेगम के अनुसार उसकी सेना में 1,80,000 घोड़े तथा 1500 हाथी थे[5]

1- राधेश्याम; बाबर, पृ.-272,
पाण्डेय, ए.बी.; दि फर्स्ट अफगान इम्पायर, पृ.-210,

2- फरिश्ता; तारीखे फरिश्ता, ब्रिग्स, दि हिस्ट्री आफ दि राइज आफ दि मुहमडन पावर इन इंडिया, भाग-2, पृ.-44,

3- बदायूँनी; मन्तखाबुत्तवारीख, अनु. रिजवी, मुगल कालीन भारत, पृ. 635,

4- नियामत उल्लाह; मखजने अफगना, अनु. एन. राय, पृ.-78,

5- गुलबदन बेगम; हुमायूँनामा, अनु. वेब्रिज, पृ.-93-94,

अहमद यादगार के अनुसार उसकी सेना में 5000 घोड़े तथा 2000 हाथी थे । स्वयं बाबर ने बाबरनामा में लिखा है कि इब्राहीम लोदी की सेना में 1,00,000 सैनिक तथा 1000 हाथी थे ।[2] इस विशाल सेना के साथ प्रस्थान कर इब्राहीम ने पानीपत से 2 मील पूर्व ही पड़ाव डाला । उसने एक भव्य दरबार आयोजित किया तथा हीरे जवाहरात जो भी वह अपने साथ लाया था उसे अपने अमीरों एवं सैनिकों में बाँट दिया तथा उन्हें तब तक युद्ध करने को प्रोत्साहित किया जब तक या तो विजय या वीरगति न प्राप्त हो जाय । उसने यह वादा किया कि विजय प्राप्त होने पर वह अमीरों एवं सेनापतियों को विशेष पुरस्कार देगा । ज्योतिषियों से उसने युद्ध के परिणाम के विषय में भी पूछा । गूढ़ शब्दों में सफलता की भविष्यवाणी हुई कि हमारे समस्त हाथी व घोड़े मुगल सेना में प्रविष्ट हो गये हैं ।" 12 अप्रैल 1526 ई. को इब्राहीम पानीपत के मैदान में पहुँचा । राजपूत शासकों की युद्ध पद्धति को अपनाते हुए उसने अपनी सेना मैदान में उतारी ।

एक सप्ताह तक अफगान तथा मुगल सेनाएं रणभूमि में वास्तविक युद्ध शुरू किए बिना युद्ध के लिए खड़ी रहीं । इब्राहीम ने न तो बाबर की सैन्य संख्या व व्यवस्था जानने का प्रयत्न किया, न उसकी रसद काटने की ही चाल चली । न ही उसने किसी युद्ध युक्ति का निर्धारण किया । प्रो. राधेश्याम इस निष्क्रियता का कारण बताते हुए लिखते हैं कि-"ऐसा प्रतीत होता है कि पहले से ही बाबर की तोपों ने उसको तथा उसके सैनिकों को भयभीत कर दिया था । इसी कारण अगले

1- अहमद यादगार: तारीखे सलाती ने अफगाना, पृ.-95 अनु. रिजवी,- मुगल कालीन भारत, पृ.-452,

2- बाबरनामा: अनु. रिजवी, मुगल कालीन भारत, पृ.-154,

आठ दिनों तक उसने बाबर के विरूद्ध किसी प्रकार की सैनिक कार्यवाही न की और चुप चाप बैठा रहा ।[1] इन्ही आठ दिनों में बाबर ने अपने सैनिको को प्रोत्साहित किया और 19 अप्रैल को युद्ध उकसाने के लिए एक सैनिक टुकड़ी भेजी जिसने इब्राहीम लोदी को युद्ध करने के लिए विवश कर दिया ।[2] लगभग छः बजे प्रातः युद्ध आरम्भ हुआ और दोपहर तक अफगान सेना की घोर पराजय हो चुकी थी । इब्राहीम की सेना की पंक्तियाँ इतनी लम्बी थी कि उनके आक्रमण करने के लिए पर्याप्त स्थान न मिला । इससे थोड़ी गड़बड़ी हुई और पास आने पर उन पर तीरों , गोलियों एवं तोपों का वार हुआ । गाड़ियों के कारण बाधा पड़ने पर उसके सैनिक ठिठके और पीछे से दबाव पड़ने पर उनका संगठन टूटने लगा । ऐसे में बाबर के तीरंदाजों एवं तोपखानों ने बुरी तरह प्रहार प्रारम्भ किया और दायें-बायें के तुलुगमा ने आक्रमण करके शत्रु को चारों ओर से घेर लिया । इस प्रकार बाबर ने कुशल सेनापतित्व के कारण उसकी विजय हुई । इब्राहीम लोदी 20 अप्रैल 1526 ई॰ को युद्ध भूमि में मारा गया । जब युद्ध समाप्त हुआ तो मैदान हजारों अफगानों की लाशों से पटा था ।[3] तारीख-ए-फरिश्ता में मरने वालों की संख्या 50,000 दी है ।[4] निजामुद्दीन अहमद के अनुसार, लगभग 5000 से 6000 तक सैनिक तो सुल्तान इब्राहीम लोदी के शव के पास ही मरे पड़े थे ।[5] न्यामत उल्लाह

1- राधेश्याम:बाबर, पृ॰-274,

2- बाबरनामा, अनु॰ रिजवी, मुगल कालीन भारत, पृ॰-156,

3- बाबर:बाबरनामा, अनु॰ बेवरिज, भाग-2, पृ॰-473-74,

4- फरिश्ता:तारीखे फरिश्ता, अनु॰ ब्रिग्स, दि हिस्ट्री आफ दि राइज आफ-दि मुहमडन पावर इन इण्डिया, भाग-2, पृ॰-45-46,

5- निजामुद्दीन अहमद:तबकाते अकबरी, अनु॰ डे॰ वी॰ भाग-2, पृ॰-23,

लिखता है कि "सुल्तान इब्राहीम के अतिरिक्त भारत का कोई सुल्तान रणभूमि में नहीं मारा गया ।"[1] अहमद यादगार ने इब्राहीम की वीरता के विषय में लिखा है कि बाबर उस समय अत्यन्त प्रभावित हुआ जब उसने मृतकों के बीच इब्राहीम का शव देखा, उसने भूमि से उसका शव उठा लिया और सम्मान पूर्वक उसे दफन कराया और उसकी आत्मा की शांति के लिए मिठाई बाँटी ।[2]

पानीपत की विजय के पश्चात् जब बाबर ने यह देखा कि राणा संग्राम सिंह अपने वादे से मुकर गया है तो उसने हुमायूँ को आदेश दिया कि वह एक सैनिक टुकड़ी लेकर आगरा जाय और उस पर अधिकार कर ले तथा खजाने की रक्षा हेतु प्रबन्ध करें । इस आदेश के ठीक बाद उसने मेहदी ख्वाजा को आदेश दिया कि वह एक दूसरी सैनिक टुकड़ी के साथ दिल्ली को प्रस्थान करें और वहाँ के खजाने की रक्षा करे ।[3] बाबर ने स्वयं भी प्रस्थान किया और तीन दिन बाद यानी कि 24 अप्रैल 1526ई॰को दिल्ली पहुँच गया ।[4] फरिश्ता ने बाबर के दिल्ली पहुँचने की तिथि मंगलवार 12 रजब/23 अप्रैल दी है । दिल्ली में प्रशासनिक व्यवस्था करने के उपरान्त 28 अप्रैल 1526ई॰को बाबर ने दिल्ली से आगरा की ओर प्रस्थान किया । हुमायूँ को आगरा निर्विरोध नहीं प्राप्त हुआ था बल्कि अफगानों से संघर्ष करना पड़ा था । मलिक दाद करोनी, मिल्ली सुरदूक और फिरोज खान मेवाती ने हुमायूँ का सामना किया । हुमायूँ ने दुर्ग का घेरा डाल दिया । अभी

1- न्यामत उल्लाह: तारीखे खाने जहानी, भाग-1, पृ॰-259,

2- अहमद यादगार: तारीखे शाही, पृ॰-98,

3- बाबरनामा, अनु॰ रिजवी, मुगल कालीन भारत, पृ॰-158,
ब्रिग्स, दि हिस्ट्री आफ दि राइज आफ दि मुहमडन पावर इन इंडिया भाग-1, पृ॰-46,

4- फरिश्ता: तारीखे फरिश्ता, अनुवाद ब्रिग्स, दि हिस्ट्री आफ द राइज-आफ दि मुहमडन पावर इन इंडिया, भाग-1, पृ॰-46,

घेरा चल ही रहाथा कि हुमायूँ को शहर पर अपना अधिकार जमाने में सफलता मिल गई । दो दिन पश्चात् ग्वालियर का शासक विक्रमादित्य जो दुर्ग से निकल कर हुमायूँ से संघर्ष करने आया था पराजित हुआ अब अफगान सैनिकों ने भी दुर्ग समर्पित कर दिया ।[1] शीघ्र ही हुमायूँ ने दुर्ग से बाबर के नाम का खुत्बा पढ़वा दिया और बाबर के नाम पर हिन्दुस्तान का प्रशासन संभाल लिया । इसी बीच 4 मई 1526ई.को बाबर आगरा के निकट पहुँचा और उसने सुलेमान फारमूली की मंजिल में पड़ाव डाला । हुमायूँ यहीं पर बाबर की सेवा में उपस्थित हुआ और अभिवादन किया । बाबर ने पहले तो मलिक दाद करोनी, मिल्ली सुरदूक तथा फिरोज खान मेवाती को मृत्यु दंड दिया लेकिन बाद में लोगों के आग्रह पर उन तीनों को छोड़ दिया । इब्राहीम लोदी की मां के साथ भी उदारता का व्यवहार किया गया । बाबर ने उसे 7 लाख टंका मूल्य का एक परगना प्रदान किया । इसके उपरान्त 10 मई 1526 ई. को बाबर ने आगरे में प्रवेश किया[2] तथा दिवंगत सुल्तान इब्राहीम लोदी के महल को अपना निवास स्थान बनाया । इस प्रकार 1192 ई. में तरायन के युद्ध के पश्चात जन्म लेने वाली दिल्ली सल्तनत जिसकी वास्तविक स्थापना 1206 ई. में हुई- का अन्त 1526 ई. में पानीपत के प्रथम युद्ध से सुल्तान इब्राहीम लोदी की मृत्यु के साथ हुआ । इस युद्ध के साथ ही प्रथम अफगान साम्राज्य का अंत हो गया और इसी अवशेष पर मुगल साम्राज्य की स्थापना हुई ।

1- बाबर:बाबरनामा, अनु. बेवरिज, भाग-2, पृ. 476,
ब्रिग्स, दि हिस्ट्री आफ दि राइज आफ दि मुहमडन पावर इन इंडिया भाग-2, पृ.-46-47,

2- बाबर: बाबरनामा,अनु. बेव्रिज, भाग-2, पृ.-477 तथा रिजवी, मुगल-कालीन भारत, पृ.-161-65,

इस प्रकार स्पष्टहै कि इब्राहीम लोदी ने पश्चिमोत्तर सीमा समस्या की गंभीरता पर ध्यान नहीं दिया । यदि वह उत्तरी-पश्चिमी सीमा समस्या की गंभीरता को भली-भाँति समझता और उसकी सुरक्षा के लिए दौलत खाँ लोदी से किसी प्रकार का समझौता कर लेता तो संभवतः सल्तनत की रक्षा हो जाती । अतः स्पष्ट है कि लोदी सुल्तानों में मात्र बहलोल लोदी ने उत्तरी-पश्चिमी सीमा के महत्व को समझा और उसे सुलझाने का प्रयत्न किया । सिकन्दर लोदी एवं इब्राहीम लोदी यद्यपि इस समस्या के प्रति सजग रहे पर उन्होंने सीमा समस्या के लिए कोई ठोस कदम नहीं उठाये। फलस्वरूप पश्चिमोत्तर प्रान्त के गवर्नर दिल्ली सल्तनत के नियन्त्रण से स्वतन्त्र होते गये और अन्ततः उन्होंने सल्तनत के विनाश में हाथ बढ़ाया । परन्तु इतना अवश्य सत्य है कि इब्राही लोदी पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त के लिए सदैव चिंतित रहा । और समय-समय पर पश्चिमोत्तर प्रांतों पर होने वाले आक्रमणों को रोकने का प्रयत्न करता रहा फिर भी उसकी नीति अफगान सदरारों की मनोवृत्ति के अनुकूल न थी, जिसका मूल्य दिल्ली सल्तनत को चुकाना पड़ा ।

अध्याय - 7

उत्तरी - पश्चिमी सीमा समस्याओं का दिल्ली सल्तनत पर प्रभाव ।

अध्याय-7

उत्तरी-पश्चिमी सीमा समस्याओं का दिल्ली सल्तनत पर प्रभाव

मनुष्य और प्रकृति का अभिन्न सम्बन्ध है । प्रत्येक मानवीय क्रियाओं पर वहाँ की प्राकृतिक दशाओं का प्रभाव होता है । इसी प्रकार ऐतिहासिक घटनाएँ भी भौगोलिक दशाओं पर अवलम्बित होती हैं । डी०पी० सरन ने लिखा है कि यदि कोई ऐसा देश है, जिसका इतिहास किसी अन्य भौगोलिक कारक की अपेक्षा सर्वाधिक अपनी सीमाओं द्वारा प्रभावित होता रहा है तो उसमें भारत का नाम प्रमुख है ।[1] मध्य युग में जब आवागमन के आधुनिक वैज्ञानिक साधन नहीं थे, भारत पर केवल उत्तर-पश्चिम कोने से ही विदेशी आक्रमण हो सकता था । पूर्वी हिमालय तथा असम की पहाड़ियों में होकर भी विदेशी आक्रमणकारी को मार्ग मिल सकता[2] था किन्तु उस काल में आक्रमणकारी सेना के लिए उन्हें पार करना असंभव था । यही कारण था कि प्राचीन तथा मध्ययुग में विदेशी आक्रमणकारियों ने भारत में उत्तर पश्चिम सीमा की ओर से ही प्रवेश किया । अतः मध्य युगीन भारत के इतिहास में उत्तर-पश्चिम सीमान्त समस्या का विशेष महत्व है । इस समस्या ने विशेष रूप से नवस्थापित दिल्ली सल्तनत की आन्तरिक एवं वाह्य नीति को गम्भीर रूप से प्रभावित किया । सम्पूर्ण सल्तनत काल का राजनैतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास उत्तरी

1- सरन, डी०पी० : स्टडीज इन मेडिवल इण्डिया, पृ०-188,

2- स्टैम्प, एल. डडले: एशिया का भूगोल, पृ०-189-90,
सरकार, यदुनाथ: युग युगीन भारत, पृ०-14-15,
श्रीवास्तव, आशीर्वादी लाल= दिल्ली सल्तनत, पृ०-299,

पश्चिमी सीमा समस्या से प्रभावित होता रहा । जब कभी भी मध्य एशिया में राजनैतिक उथल-पुथल होती अथवा किसी महत्वाकांक्षी विजेता का उदय होता तो उसका प्रभाव भारत पर भी अवश्य पड़ता ।

जब तक सीमान्त विस्फोटक रहा, दिल्ली का कोई भी सुल्तान शांति की नींद नहीं सो सका और उत्तरी-पश्चिमी सीमान्त समस्त सल्तनत् काल में विस्फोटक बना रहा । ऐसी स्थिति में सुल्तानों ने सैनिक शक्ति में अधिक से अधिक वृद्धि की और सैनिकवादी नीति का अनुशरण किया । आन्तरिक विद्रोहों का दमन करने के लिए भी उन्होंने अमीरों के साथ प्राय: निरंकुश नीति को ही अपनाया । इस कारण राजत्व का सिद्धान्त पूर्णत: निरंकुशता पर आधारित हो गया । दूसरी ओर दिल्ली सुल्तान उत्तरी=पश्चिमी सीमा के विस्फोटक बने रहने के कारण सांस्कृतिक गतिविधि में भी अपना भरपूर योगदान न दे सके । इण्डो-मुस्लिम संस्कृति का बीजा रोपण सल्तनत काल में हुआ।किन्तु उसका यथेष्ट विकास मुगलकाल में ही संभव हो सका । आर्थिक दृष्टि से भी सल्तनत बहुत पीछे हो गयी थी । आक्रमणकारियों का एक मुख्य उद्देश्य भारत से धन लूटना होता था । अशान्त परिस्थितियों के कारण कृषि व व्यापार वाणिज्य की ओर भी कोई विशेष ध्यान न दिया जा सका। किंतु उत्तरी-पश्चिमी सीमाका एक सुखद पक्ष यह भी है कि सल्तनत् कालीन सांस्कृतिक आदान-प्रदान इस सीमान्त से ही संभव हो सका था ।

सैन्य संसाधनों पर प्रभाव-

सल्तनत काल में उत्तर-पश्चिम सीमा की ओर से लगातार आक्रमण हो रहे थे । इन आक्रमणों को रोकना सुल्तानों के लिएसर्व प्रमुख समस्या थी । अत: सुल्तानों के लिए अपनी सैनिक शक्ति का सुदृढ़ करना आवश्यक हो गया । वाह्य आक्रमण का लाभ भारतीय असंतुष्ट वर्गों ने भी उठाया ।[1] जब कभी वाह्य आक्रमण हुआ तो हिंदू

1- श्रीवास्तव, आशीर्वादी लाल: दिल्ली सल्तनत, पृ.-339,

हिन्दू सामन्तों, विद्रोही मलिकों और अमीरों ने सुल्तान के विरूद्ध विद्रोह किया। इन्ही कारणों से सुल्तानों को सैनिकवादी नीति का अनुशरण करना पड़ा ।[1]

दिल्ली सुल्तानों ने सुदृढ़ सैनिक संगठन की स्थापना के अनेक प्रयत्न किए और बलबन तथा अलाउद्दीन जैसे सुलतानों को पर्याप्त सफलता भी मिली । परंतु स्थायी रूप से किसी कुशल सैनिक संगठन की स्थापना नहीं की जा सकी[2] और इस प्रकार की परिस्थितियाँ उत्पन्न होती रहीं कि या तो सुलतान के अन्तिम काल में या उसकी मृत्यु के बाद दूसरे सुलतान के अधीन सैनिक संगठन पुनः दुर्बलता का शिकार रहा । यद्यपि इस विषय पर विशिष्ट उल्लेख प्राप्त नहीं हैं फिर भी हम यह मान सकते हैं कि वह इल्तुतमिश ही था जिसने सल्तनत की "शाही सेना" संगठित करने पर विचार किया जिसकी भर्ती, वेतन भुगतान तथा प्रशासन केन्द्रीय सरकार द्वारा होता था ।[3] इल्तुतमिश की सैन्य संगठन में रूचि इस बात से स्पष्ट है कि फखे मुदब्बिर ने युद्धकला पर एक पुस्तक लिखकर उसे समर्पित की थी ।[4]

बलबन ने अन्य किसी विभाग के तुलना में सैन्य संगठन अधिक आवश्यक समझा । उसने सेना की संख्या में वृद्धि की और सेना के केन्द्रीय दल (हश्मकल्ब) में सहस्रों निष्ठावान और अनुभवी अधिकारी नियुक्त किए । उनका वेतन बढ़ा दियागया और वेतन के बदले उनके लिए गाँव निश्चित किए गए ।[5] उसने अपने पुत्र

1- डे,यू.एन., दिमिलिटरी आर्गनाइजेशन आफ द सल्तनत आफ डेल्ही, जर्नल आफ दि युनाइटेड प्राविन्सेज हिस्टारिकल सोसायटी, 1941, पृ.48-49,

2- पाण्डेय,ए.बी.: पूर्व मध्य कालीन भारत, पृ.-166,

3- हबीब निजामी: दिल्ली सुल्तनत, भाग-1, पृ.-195,

4- हबीब निजामी: दिल्ली सुल्तनत, भाग-1, पृ.-195,

5- :तारीख-ए-फीरोजशाही, पृ.-29, अनुवाद इलियट एण्ड डाउसन पृ.-105-106,

बुगरा खाँ को यहपरामर्श दिया: "सेना के लिए कितना भी धन व्यय करना अधिक न समझो और अपने आरिज (सैनिक भर्ती करने वाला अधिकारी) को पुराने सैनिकों की व्यवस्था करने और नवीन भर्ती करने में व्यस्त रहने दो । उसे अपने विभाग में प्रत्येक व्यय के विषय में सूचना होनी चाहिए ।[1] सेना को सदैव सतर्क व फुर्तीला बनाये रखने के लिए वह बार-बार सैनिक अभ्यास पर बल देता था । प्रत्येक शरद ऋतु में प्रातः काल वह रेवाड़ी की ओर शिकार खेलने के बहाने जाया करता था और अपने साथ एक हजार अश्वारोही तथा एक हजार पैदल बाण चलाने वाले ले जाता था और बहुत रात गये वापस आता था ।[2]

सेना को पुनर्संगठित कराने के लिए बल्बन ने इल्तुतमिश के समय सैनिकों को दी गई इक्ताओं की अवधि एवं वैधता के विषय में भी जाँच करवाई ।[3] बलबन ने जाँच के तत्काल बाद इन अक्ताओं के अधिकारियों को कुछ मुआवजा देकर पुनर्ग्रहण किए जाने के आदेश दे दिए ।[4] किंतु प्रसिद्ध कोतवाल मलिक फखरूद्दीन के कहने पर आदेश वापस ले लिए । प्रो॰ हबीबुल्ला का कथन है कि केवल वृद्ध इक्ता दारों से सम्बन्धित आदेश ही वापस लिए गए ।[5] अतः स्पष्ट है कि बलबन ने एक सशक्त एवं सुदृढ़ सेना का निर्माण किया जो सल्तनत की रक्षा में समर्थ हो सकी ।

1- बरनी, तारीखे फीरोजशाही, पृ॰-101-102, उद्धृत हबीब निजामी, दिल्ली सल्तनत, पृ॰-239,

2- बरनी: तारीखे फीरोजशाही, अनु॰ एस॰ए॰ए॰ रिजवी, आदि तुर्क कालीन भारत, पृ॰-162-163,

3- बरनी: तारीखे फीरोजशाही, अनु॰ इलियट एण्ड डाउसन, भाग-3, पृ॰-105 110,

4- बरनी: तारीखे फीरोजशाही, अनु॰ इलियट एण्ड डाउसन, भाग-3, पृ॰ 105

5- हबीबुल्ला, ए॰बी॰एम॰, फाउंडेशन, नवीन संस्करण, पृ॰-166,

सुल्तान अलाउद्दीन खिल्जी इस तथ्य को भली-भाँति समझता था कि "राजत्व दो स्तम्भों पर आधारित है प्रशासन और विजय, तथा इन दोनों स्तम्भों का आधार है सेना । यदि शासक सेना के प्रति उदासीन रहता है तो वह अपने ही हाथों अपने राज्य का विनाश कर लेगा ।[1]

अलाउद्दीन के सैन्य सुधार के विषय में कर्नल गौतम शर्मा ने लिखा है: यह श्रेय अलाउद्दीन को है कि वह दिल्ली का प्रथम सुल्तान था जिसने शाही राजधानी में हर समय तैयार रहने वाली एक विशाल स्थायी सेना का संगठन किया । अलाउद्दीन की सेना में पहले की तरह घुड़सवार, पैदल और हाथी थे । इनमें अलाउद्दीन ने घुड़सवार सेना को अधिक उत्तम बनाने की चेष्टा की । उसने बाहर से अच्छे नस्ल के घोड़े मंगवाये और भीतर भी अच्छे नस्ल के सुधार की कोशिश की । उसने घोड़ों को दगवा दिया । जिससे उनको बदल कर खराब घोड़े न लाये जा सकें । अलाउद्दीन स्वयं सैनिकों की भर्ती करता था और उन्हें नियमित नकद वेतन देता था ।[2] सैनिक अभियान से लौटने पर वह विजयी सेना नायकों और सैनिकों को पुरस्कृत करता था । पर चूँकि इतनी विशाल सेना को ऊँचा वेतन देना संभव न था ।[3] और सैनिकों को निर्वाह के लिए भूमि देने के वह विरूद्ध था, अतः उसने आर्थिक सुधार लागू कर जीवन यापन की आवश्यक वस्तुओं को सस्ता किया, बाजार को नियन्त्रित किया ।[4] यद्यपि यह विवादग्रस्त है कि अलाउद्दीन का बाजार नियन्त्रण केवल सैनिकों के लिए एवं मात्र दिल्ली के लिए था । पर के॰एस॰ लाल का यह स्पष्ट अभिमत है कि विशाल सेना का गठन मंगोलों के प्रतिरोध के लिए था और बाजार नियन्त्रण सैनिकों की सुविधा को ध्यान में रखकर निर्धारित किया गया था ।[5]

1- बरनी, फतवा-ए-जहाँदारी, पृ॰-22,
लाल, के॰एस॰, खल्जीवंश का इतिहास, पृ॰-188,
2- कर्नल गौतम शर्मा: भारतीय सेना और युद्ध कला, पृ॰-58-60,
3- बरनी, तारीखे फीरोजशाही, पृ॰-303 अनु॰ एस॰ ए॰ ए॰ रिजवी, खल्जीकालीन भारत-पृ॰-78,
4- बरनी: तारीखे फीरोजशाही अनु॰ रिजवी, खल्जीकालीन भारत, पृ॰-79-87,
5- लाल, के॰एस॰, खल्जी वंश का इतिहास, पृ॰-194-195,

अलाउद्दीन की सैन्य व्यवस्था मुहम्मद तुगलक के समय तक कायम रही किंतु फीरोज तुगलक के समय यह एक सामन्ती संगठन के रूप में परिवर्तित हो गया । लोदियों की सेना कबीलों के आधार पर संकठित थी और उसमें लोदी, फारमूली नोहानी, सूर तथा अन्य अफगान कबीलों के लोग सम्मिलित थे । लोदियों का सैनिक संगठन दुर्बल एवं अव्यवस्थित था और बहुत कुछ इसीलिए प्रथम अफगान साम्राज्य का सितारा बाबर के हाथों डूब गया । उत्तरी-पश्चिमी सीमा पर ऐसे विद्रोह सर्वाधिक हुए । अतः सुल्तानों को भय था कि कहीं आक्रमणकारी इसका लाभ न उठाएँ । इस समस्या ने दिल्ली सुल्तान को बहुत अधिक निरंकुश बना दिया जिससे पूरा का पूरा प्रशासन निरंकुशता पर आधारित हो गया ।[1]

राजस्व सिद्धान्त पर प्रभाव:-

राजस्व का सिद्धान्त दैवी राजत्व में बदल गया । डॉ॰ आर॰ पी॰ त्रिपाठी के अनुसार भारत में मुस्लिम सार्वभौमिकता का इतिहास इल्तुतमिश से प्रारम्भ होता है, जिसने स्वतन्त्र शासक की सभी शर्तों को पूरा किया ।[2] शासक के रूप में अपनी स्थिति को सुदृढ़ करने के लिए उसने चालीस गुलामों के गुट का निर्माण किया । उसने अपनी आज्ञा का पालन करवाया उसके काल में राजाज्ञा सर्वोपरि थी । उसने अपने जीवन काल में ही अपना उत्तराधिकारी मनोनीत करके अपने परिवार में ही राजत्व को रखना चाहा । इस दिशा में वह गजनी एवं गोरी सम्राटों से कहीं आगे था ।[3] निजामी के भी अनुसार मामलूक सुल्तानों ने अमीरों को कड़े अनुशासन में रखा ।[4]

1- श्रीवास्तव, ए॰ एल॰ : दिल्ली सल्तनत, पृ॰-339,

2- त्रिपाठी, आर॰ पी॰ : सम आस्पेक्ट्स आफ मुस्लिम एडमिनिस्ट्रेशन पृ॰-24,

3- राधेश्याम सल्तनत कालीन सामाजिक तथा आर्थिक इतिहास, पृ॰-55,

4- निजामी, के॰ ए॰ : सम ऐस्पेक्ट्स आफ रिलिजन एण्ड पालिटिक्स इन-इण्डिया ड्यूरिंग दि थर्टीथ सैन्चुरी, पृ॰-126,

बलबन कभी तुर्की उमरा वर्ग, उल्मावर्ग अथवा किसी भी राजनीतिक गुट पर निर्भर नहीं रहा । उसके राजत्व सिद्धान्त का स्रोत ईश्वर की महान अनुकम्पा थी । उसने अपने रहन-सहन का ढंग बदल दिया । अब वह एकान्त में जीवन व्यतीत करने लगा । दरबार में वजीर के अतिरिक्त उससे कोई बात नहीं कर सकता था । वह दरबार में न तो हँसता था न किसी को इसकी आज्ञा देता था । अन्य अमीरों व गण्मान्य व्यक्तियों को अपने से दूर रखता था । उसने अपने को प्राचीन अफरासियाब वंश का वंशज बताया और उसने रक्त की शुद्धता के सिद्धान्त व कुलीन वर्ग की पवित्रता पर विशेष बल दिया ।[1] वास्तव में बलबन का राजत्व सिद्धान्त शक्ति एवं न्याय पर आधारित था तथा उसका मुख्य उद्देश्य सेना व राजतंत्र को अपने हाथों में रखना था । यद्यपि एस.बी.पी. निगम ने इसका मुख्य कारण बलबन का पुत्र मोह बताया है कि वह सल्तनत अपने पुत्रों के लिए सुरक्षित रखना चाहता था ।[2] परन्तु यह न्याय संगत नहीं है क्यों कि उसने अपने बड़े पुत्र मुहम्मद खाँ को उत्तरी-पश्चिमी सीमापर तथा छोटे पुत्र बुगरा को बंगाल में नियुक्त किया था । यदि बलबन की यह इच्छा रहती तो वह उन्हें दिल्ली में ही रखता ।

अलाउद्दीन खिल्जी ने भी बलबनी परम्पराओं को बनाये रखा । बल्बन की भाँति उसने भी अमीरों के हृदय में भय व आतंक उत्पन्न कर दिया । उसने धर्म को राजनीति का चेरी नहीं बनने दिया । उसके विचार में राजा को स्वयं

1- मिनहाजसिराज: तबकाते नासिरी अनुवाद रेवर्टी,पृ.-900-910,

2- निगम, एस.बी.पी.: नोबिल्टी अण्डर द सुल्तान्स आफ डेल्टी पृ.43,

अपने हितों को देखना चाहिए और उसे धार्मिक वर्ग के निर्देश में काम नहीं करना चाहिए । यद्यपि वह भारत के बाहर इस्लाम धर्म के रक्षक के रूप में माना जाता था ।[1]

मुहम्मद बिन तुगलक भी अपने को बलबन की भाँति स्वयं को ईश्वर की परिछाई मानता था । इसीलिए उसने अपने सिक्कों पर "अल-सुल्तान-जिल्लाह" शब्द अंकित करवा लिए थे । उसने एक ओर तो शरियत की उपेक्षा की तो दूसरी ओर अपने राजनीतिक व्यवहार को तर्क पर आधारित किया । उसका उद्देश्य शरियत के नियमों का उलंघन करना नहीं वरन् विधि वेत्ताओं के विचारों को तर्क की कसौटी पर कस कर देखना था । उसने पुराने उमरावर्ग को धीरे-धीरे निलंबित कर दिया तथा उनके स्थान पर निम्न वर्ग के लोगों को नियुक्त किया ।[2]

फिरोज तुगलक के समय राजत्व पुनः अमीरों के मध्य गिर गया जो सैय्यद एवं लोदियों के प्रारम्भिक सुल्तानों तक चलतारहा । किंतु पुनः शीघ्र ही सिकंदर लोदी के हाथों यह निरंकुश हो चला जो इब्राहीम लोदी के समय पराकाष्ठा पर पहुँच गया ।

अफगान संप्रभुता के अन्तर्गत सभी अफगान बराबरी के दर्जे में थे चाहे कोई सर्वोच्च पद पर हो और चाहे वह साधारण व्यक्ति हो । वह कभी भी दरबार

1- त्रिपाठी,आर.पी.: सम रेस्पेक्ट्स आफ मुस्लिम एडमिनिस्ट्रेशन पृ.-173,

2- निगम, एस.बी.पी.: नोबिल्टी अण्डर द सुल्तान्स आफ डेल्ही, पृ. 80,

में गद्दी पर नहीं बैठा, बल्कि वह एक बहुत बड़े कालीन पर बैठता था ।[1] अमीरों को "मसनदे आली" कहकर सम्बोधित करता था ।[2] उसने कभी भी अपने अधिकारों का प्रयोग स्वेच्छाचारी ढंग से नहीं किया । वह अफगानों को विश्वास दिलाना चाहता था कि वे ही उसकी शक्ति के स्रोत हैं ।[3] इस प्रकार उसने एक निरंकुश शासक के स्थान पर अनेक स्वेच्छाचारी शासक उत्पन्न कर दिए । सिकन्दर लोदी अपने पिता के राजत्व सिद्धान्त से संतुष्ट नहीं था उसने कबाबूली राजत्व की जगह तुर्की राजत्व सिद्धान्त को प्राथमिकता दी । उसने अमीरों के प्रति सद्भाव, उदारता, नम्रता का व्यवहार त्याग दिया और कठोर दृष्टिकोण अपनाया ताकि वे उसके प्रति निष्ठावान बने एवं अधीन रहें । वह गद्दी पर बैठा और फर्मान जारी किया, उसका फर्मान प्राप्त करने के लिए अमीरों को छः मील आगे जाकर स्वीकार कर अपने सिरपर रखना पड़ता था ।[4]

इब्राहीमलोदी ने अपने पिता सिकन्दर के द्वारा अपनाये गये राजत्व को आगे बढ़ाया । उसने यह स्पष्टतः कहा कि सुल्तान का कोई सम्बन्ध या कबीला नहीं होता और सभी व्यक्ति तथा कबीले उसके सेवक हैं ।[5] इस प्रकार दिल्ली सुल्तानों ने प्रायः निरंकुशतावादी रवैया अख्तियार किया जिसका प्रमुख कारण देश पर मंगोलों एवं अन्य वाह्य आक्रमणकारियों के आक्रमण का खतरा था । ए. बी. एम. हबीबुल्ला के कथन से यह बात और स्पष्ट हो जाती है- बलबन ने सारी

1- त्रिपाठी, आर.पी., सम ऐस्पेक्ट्स आफ मुस्लिम ऐडमिनिस्ट्रेशन, पृ.-80,

2- त्रिपाठी, आर.पी., सम ऐस्पेक्ट्स आफ मुस्लिम ऐडमिनिस्ट्रेशन, पृ.-80,

3- निजामी, के.ए., ए काम्प्रिहेन्सिव हिस्ट्री आफ इण्डिया, भाग-5- पृ.-688,

4- पाण्डेय, ए.बी., पूर्व मध्य कालीन भारत, -पृ.-376,

5- पाण्डेय, ए.बी., पूर्व मध्य कालीन भारत, -पृ.-376,

सत्ता अपने हाथ केन्द्रित कर ली थी तथा अमीरों का ध्यान राजपूतों एवं मंगोलों की समस्या की ओर आकृष्ट किया और उनके विरूद्ध सैनिक अभियान चलाया ।[1] उसका विचार था कि राज्य प्रशासन की सैनिक अभियान चलाने की कोई निर्धारित योजना न होने से अमीर एवं सैनिक अधिकारी आपसी दल बन्दी में फंस जाते थे ।[2]

राजधानी परिवर्तनको प्रभावित करना-

उत्तरी-पश्चिमी सीमा समस्या ने सल्तनत् की राजधानी को भी समय-समय पर स्थानान्तरित किया । सर्वप्रथम कुतबुद्दीन ऐबक ने यल्दौज की ओर से उत्पन्न की गई समस्या के समाधान हेतु, राजधानी का परिवर्तन किया और लाहौर को अपनी राजधानी बनाया । वह जीवन पर्यन्त वहीं रहा ।[3] इल्तुतमिश ने पुनः दिल्ली को राजधानी बनाया । अलाउद्दीन के समय मंगोल आक्रमण से दिल्ली को बचाने हेतु दिल्ली में ही सीरी नामक एक नवीन नगर की स्थापना हुई जो अत्यधिक सुदृढ़ था । यदि डॉ॰ ईश्वरी प्रसाद, एस॰बी॰ पी॰ निगम एवं गार्डिनर ब्राउन में विश्वास किया जाय तो मुहम्मद तुगलक द्वारा राजधानी परिवर्तन का कारण पश्चिमोत्तर समस्या ही थी । ब्राउन का मत है कि मंगोलों के आक्रमण तथा भयानक बाढ़ के आने कसे पंजाब का महत्व घट गया था । इसलिए राजधानी को दक्षिण में स्थानान्तरित किया गया ।[4]

1- हबीबुल्ला, ए॰बी॰एम॰ भारत में मुस्लिम राज्य की बुनियाद, पृ॰ 125

2- हबीबुल्ला, ए॰बी॰एम॰ भारत में मुस्लिम राज्य की बुनियाद, पृ॰ 125

3- इसामी, फुतुहुस्सलातीन: मेंहदी हसन, पृ॰-99,

4- जर्नल ऑफ यू॰पी॰ हिस्टारिकल सोसाइटी, खण्ड-1, भाग-2 पृ॰ 13,

ईश्वरी प्रसाद के अनुसार सुल्तान ऐसे स्थान को अपनी राजधानी बनाना चाहता था जो आक्रमणकारियों से दूर हो, जिससे राजधानी सुरक्षित रह सके । दौलताबाद मंगोलों के मार्गों से अत्यन्त दूर होने कारण काफी सुरक्षित था ।[1] अतः सुल्तान ने दौलताबाद को अपनी राजधानी बनाने का निश्चय किया। डा• निगम ने लिखा है कि सुल्तान ने मंगोल अमीरों को संरक्षण प्रदान किया क्योंकि मंगोलों के आक्रमण के भय से उसने दिल्ली से दौलताबाद राजधानी परिवर्तन की योजना बनाई, जो असफल सिद्ध हुई ।[2]

सिकन्दर लोदी ने भी उत्तरी-पश्चिमी सीमा को लगभग नजरंदाज करते हुए ही आगरा को सल्तनत् की राजधानी बनाया । उत्तरी-पश्चिमी सीमा प्रान्त दौलत खाँ लोदी के अधीन था, जहाँ वह लगभग स्वतन्त्र शासक की भाँति राज्य कर रहा था । ऐसे में सिकन्दर लोदी ने जो पूर्व, मध्य एवं दक्षिण भारत की समस्या से परेशान था यह सोचा कि आगरे से इन समस्याओं से अच्छी तरह निपटा जा सकता है ।[3] प्रो• हबीब भी लिखते हैं कि लोदी काल में राजनीतिक गुरूत्व का केन्द्र धीरे-धीरे आगरा खिसक गया जहाँ से राज्य की समस्याएं अधिक प्रभावशाली ढंग से सुलझाई जा सकती थी ।[4] किंतु आगरा राजधानी बन जाने से उत्तरी-पश्चिमी सीमा पूरी तरह असुरक्षित हो गई ।

वंश-परिवर्तन-

सुल्तनत् काल में बार-बार हो रहे वंश परिवर्तन के पीछे पश्चिमोत्तर सीमा समस्या प्रमुख रूप से उत्तरदायी है ।[5] मामलुक सुल्तानों के बाद सल्तनत

1- ईश्वरी प्रसाद, भारतीय मध्य युग का इतिहास, पृ.-264-265,
श्रीवास्तव, आशीर्वादी लाल, दिल्ली सल्तनत्, पृ.-188,

2- निगम, एस. बी. पी., नोबिल्टी अण्डर दि सुल्तान्स आफ डेल्टी, पृ. 82,

3- पाण्डेय, ए. बी. प्रथम अफगान साम्राज्य, पृ.-122,

4- हबीब निजामी, दिल्ली सुल्तनत्, भाग-1, पृ.-570,

5- श्रीवास्तव, आशीर्वादी लाल, दिल्ली सल्तनत्, पृ.-345,

की गद्दी पर खल्जी वंश का अधिकार हुआ । खल्जी वंश का संस्थापक जलालुद्दीन खल्जी बल्बन के शासनकाल में उत्तरी-पश्चिमी सीमा की सुरक्षा करने वाली सेना में पदाधिकारी था ।[1] बल्बन द्वारा नियुक्त सीमावर्ती प्रदेशों की मंगोलों के आक्रमणों से रक्षा करने वाले सेनापतियों में उसका महत्वपूर्ण स्थान बन गया था । कैकुबाद के समय पुनः जलाउद्दीन समाना का सूबेदार नियुक्त था ।[2] मंगोलों के विरूद्ध उसकी सफलता को देखते हुए उसे शाइस्ता खाँ की पदवी दी गई थी ।[3] इस प्रकार उसके सम्मुख उन्नति करने का मार्ग प्रशस्त था जिसका लाभ उठाते हुए उसने मामलुक वंश का अंत कर खिल्जी वंश की नीव डाली ।

खल्जी वंश के बाद सुल्तनत् पर तुगलक वंश का आधिपत्य हुआ । तुगलक वंश का संस्थापक गाजी तुगलक अलाउद्दीन खल्जी के समय दिपालपुर सैनिक चौकी का संरक्षक था । आगे चलकर उसने मुल्तान एवं दिपालपुर के राज्यपाल के पद पर रहकर सल्तनत् की सेवाएं की थी ।[4] इस काल में उसने देश पर मंगोल आक्रमणों को रोके रखा और सीमान्त नगरों में सेना को प्रभावशाली ढंग से बनाये रखा । अलाउद्दीन के अंतिम समय में तो गाजी तुगलक ने मंगोलों के राज्य में प्रवेश कर उनकी सेनाओं को परास्त किया था ।[5] मुबारकशाह के समय भी पंजाब की शासन व्यवस्था का भार गाजी तुगलक को ही था । इन सबसे वह काफी लोक प्रिय हो गया था । इसी लोकप्रियता के कारण उसे तुगलक वंश की नींव डालने में सफलता मिली ।

1- लाल, के.एस. : खलजी वंश का इतिहास पृ.-5,
2- लाल, के.एस. : खलजी वंश का इतिहास पृ.-5,
3- लाल, के.एस. : खलजी वंश का इतिहास पृ.-5,
4- हबीब निजामी, दिल्ली सुल्तनत्, पृ.-401,
5- हबीब निजामी, दिल्ली सुल्तनत्, पृ.-401,

सैय्यद वंश की स्थापना के मूल में भी उत्तरी-पश्चिमी सीमा की महत्वपूर्ण भूमिका रही है । इस वंश का उत्कर्ष आक्रामक तातारियों या मंगोलों के कारण था । यह आक्रमणकारी तैमूर था । यद्यपि तैमूर के आक्रमण के पूर्व ही अयोग्य एवं निर्बल तुगलक वंश के सुल्तानों के शासन काल में साम्राज्य का विघटन प्रारम्भ हो चुका था किंतु तैमूर के आक्रमण ने साम्राज्य को पूर्णतः झकझोर दिया। वापस लौटते समय वह खिज्र खाँ को पश्चिमी सीमा प्रांत का नायब नियुक्त कर गया था ।[1] सैय्यद वंश के उपरान्त सल्तनत, पर लोदी वंश का अधिकार हुआ । लोदी लोग अफगान जाति के थे । अफगान उत्तरी-पश्चिमी सीमा पर मुख्य रूप से निवसित थे और यही बहलोल लोदी का उत्कर्ष हुआ था ।[2] इस प्रकार स्पष्ट है कि उत्तरी-पश्चिमी सीमा प्रान्त में नियुक्त गवर्नरों को अपनी धाक जमाने का बहुत अधिक अवसर प्राप्त हुआ जिससे वे लोकप्रिय हो उठे । अपनी इसी लोकप्रियता का लाभ उठाकर वे सल्तनत के कमजोर शासकों को, जब कभी भी उन्हें अवसर प्राप्त हुआ तब वे निर्बल शासकों को पदच्युत करने तथा नव वंश की नींव डालने में सफल हुए ।

साम्राज्यवादी नीति पर प्रभाव-

उत्तरी-पश्चिमी सीमा समस्या ने दिल्ली सुल्तानों की साम्राज्यवादी नीति को भी नियन्त्रित किया । ऐबक, इल्तुतमिश एवं बल्बन को यह अवसर न मिल सका कि वे देश के भीतरी हिन्दू राज्यों को व पड़ोसी राज्यों के विरूद्ध

1- सिरहिन्दी, यहया; तारीखे मुबारकशाही; अनु. रिजवी, तुगलक-कालीन भारत-भाग-2, पृ.-220,

2- हबीब निजामी: दिल्ली सुल्तनत, पृ.-520,
पाण्डेय, ए.बी., प्रथम अफगान साम्राज्य, पृ.-39,

अभियान ले जा सकें । इस विषय में बलबन ने स्पष्ट कहा था कि: आक्रमण व विजय के विषय में मेरी हार्दिक आकांक्षा है किंतु मुगल मेरे बाहर जाने की प्रतीक्षा में रहते हैं । जैसे ही मैं बाहर विजय के लिए निकला वे मेरे नगरों पर चढ़ आयेंगे तथा समस्त दोआब को तहस-नहस कर देंगे और दिल्ली की बरबादी की भी सामग्री एकत्र हो जाएगी । मेरे शासन के पूर्व उन्होंने ऐसा ही किया है ।[1] यदि मुझे मुसलमानों और मुसलमानों के नगरों की रक्षा के विषय में उपर्युक्त चिंता न होती तो मैं एक दिन भी राजधानी में अथवा उसके पास न रहता । दूसरे स्थानों पर आक्रमण करता । यदि मैं दूसरे देशों को जीतने तथा उन पर अपना अधिकार जमाने का प्रयत्न करूँ तो मेरे राज्य को भी हानि पहुँचने का भय है ।[2] अलाउद्दीन खल्जी ही मात्र ऐसा सुल्तान था जिसने सफलता पूर्वक वाह्य आक्रमणों से देश की रक्षा और सल्तनत का सीमाओं का विस्तार दक्षिण की ओर किया । किंतु अलाउद्दीन ने भी दक्षिणी राज्यों को मात्र करद राज्य बनाया, उन्हें सीधे अपने प्रशासन में नहीं लिया ।[3] साथ ही यह भी उल्लेखनीय है कि मंगोलों ने जब कभी भी अलाउद्दीन को राजधानी के बाहर पाया उन्होंने दिल्ली तक धावे मारे । मुहम्मद तुगलक ने भी दक्षिणी राज्यों की रक्षा हेतु उत्तरी पश्चिमी भी सीमा समस्या को बड़ी ही सूझ बूझ से निपटाया । उसने मंगोलों के साथ मित्रतापूर्ण सम्बन्ध स्थापित किए ।[4] इस कारण उसके राज्यकाल में तरमाशीरीन के अतिरिक्त कोई अन्य मंगोल आक्रमण न हुए । तुगलक वंश के बाद सल्तनत

1- बरनी, तारीखे फीरोजशाही, अनुवाद एस० ए० ए० रिजवी, आदि तुर्क-कालीन भारत, पृ०-160,

2- बरनी: तारीखे फीरोजशाही, अनु० रिजवी, आदि तुर्क कालीन भारत-पृ०-160,

3- लाल, के० एस०, खल्जी वंश का इतिहास, पृ०-255,

4- निगम, एस० बी० पी० नोबिल्टी अण्डर दि सुल्तान्स आफ डेल्ही, पृ० 82,

का विस्तार बहुत कम रह गया । चारों ओर विद्रोहात्मक शक्तियों का बोल-बाला था ऐसे में न तो सैय्यद सुल्तान और न ही लोदी सुल्तान साम्राज्यवादी नीति पर चल सके । सुल्तानों की साम्राज्यवादी नीति इस लिए भी नियत्रिंत रही की मंगोलों के आक्रमण का लाभ उठाकर तुर्क अमीरों एवं राजपूत सरदारों ने अपनी स्वतन्त्र सत्ता स्थापित करने का प्रयास किया ।[1]

आर्थिक दशा पर प्रभाव-

उत्तरी-पश्चिमी सीमा समस्या ने दिल्ली सल्तनत् की आर्थिक दशा को शोचनीय बना दिया । जहाँ एक ओर आक्रमणकारी यहाँ से धन लूट कर ले गये वहीं उन्होंने व्यापार एवं वाणिज्य के मार्ग को अवरूद्व कर दिया । तथा कृषि को भी बहुत अधिक क्षति पहुँचायी ।

रजिया के शासन काल तक मंगोल आक्रमण सल्तनत् पर न हुआ था । इसका कारण संभवत मंगोलों एवं सल्तनत् के मध्य अनाक्रमक संधि थी ।[2] पर डॉ॰ परमानन्द लाल श्रीवास्तव लिखते हैं कि रजिया के समय तक मंगोलों के आक्रमण न होने का कारण मंगोलों का पूर्वी यूरोप में व्यस्त होना था ।[3] मुइजुद्दीन बहराम शाह के समय बहादुर तायर का आक्रमण हुआ । इसमें लाहौर नगर बुरी तरह नष्ट भ्रष्ट हुआ और लूटा गया । मंगोलों के वापस चले जाने पर खोखरों एवं अन्य जातियों ने भी लाहौर को लूटा और बहुत अधिक आर्थिक क्षति पहुँचाई।

1- श्रीवास्तव,ए॰एल॰, दिल्ली सल्तनत्, पृ॰-339,

2- हबी बुल्ला, ए॰ बी॰एम॰, फाउन्डेशन आफ मुस्लिम रूल इन इण्डिया- पृ॰-176,

3- मिनहाज उस सिराज: तबकात-ए-नासिरी,अनु॰रिजवी,आदि तुर्क-कालीन भारत, पृ॰-39,

नासिरूद्दीन महमूद के समय नूइन सली बहादुर का आक्रमण सल्तनत के लिए घातक रहा । मंगोलों ने मुल्तान एवं लाहौर के अक्तादारी से अलग-अलग 1,00,000 दीनार हरजाना लेकर ही घेरा उठाया ।[1] बरनी लिखता है कि बलबन ने लाहौर व उसके आस-पास के गाँवों व कस्बों को जिन्हें मंगोलों ने उजाड़ बना दिया । पुन: आबाद किया ।[2]

खल्जी काल में मंगोलों ने राजधानी दिल्ली पर भी आक्रमण करना प्रारम्भ किया जो अभी तक अछूती थी । उस पर विजय के लिए अब वे दृढ़ संकल्प होकर प्रयास करते थे ।[3] सुल्तान जलालुद्दीन के समय मंगोलों से जो संधि हुई उसमें क्रय-विक्रय एवं उपहारों का आदान-प्रदान भी हुआ ।[4] अलाउद्दीन के समय मंगोलों ने अपने आक्रमण का केन्द्र दिल्ली को बनाया । किंतु उनके अंतिम अभियान जो अलीबेग, तरताक एवं तरगी के नेतृत्व में थे मुख्यत: दोआब एवं अवध की ओर थे । मंगोल, अलीबेग व तरताक के नेतृत्व में मार्ग में पड़ने वाले प्रदेशों को लूटते, जलाते तथा वहाँ के निवासियों पर अत्याचार करते हुए दिल्ली पर बिना आक्रमण किए ही सीधे दोआब व अवध की ओर बढ़ रहे थे ।[5] स्पष्ट है कि उनका उद्देश्य सम्पन्न दोआब को लूटना था ।

तुगलक काल के अंतिम समय में सल्तनत पर अमीर तैमूर का आक्रमण अन्य कारकों की अपेक्षा आर्थिक अधिक था । यद्यपि तैमूर ने आक्रमण के पूर्व

1- हबीबुल्ला, ए.बी.एम., भारत में मुस्लिम राज्य की बुनियाद, पृ.178,
2- बरनी, तारीखे फीरोजशाही, अनु. रिजवी, आदि तुर्क कालीन भारत- पृ.-167,
3- हबीबुल्ला, ए.बी.एम., भारत में मुस्लिम राज्य कीबुनियाद, पृ.186,
4- बरनी, तारीखे फीरोजशाही, पृ.-219, अनु. रिजवी, खल्जी कालीन- भारत, पृ.-28,
5- खजाइनुल फुतूह= हबीब, पृ.-26,

विचार विमर्श में मुख्य कारण धार्मिक बताया था । किंतु आक्रमण के समय हुए नर संहार ने स्पष्ट कर दिया कि आक्रमण मुख्यत: लूट के लिए था । विचार विमर्श में भी सल्तनत की वार्षिक आय लगभग छ: अरब आँकी गई थी ।[2] अमीर तैमूर के आक्रमण का स्वरूप लूट पाट, आगजनी एवं नरसंहार था । डॉ॰ ईश्वरी प्रसाद ने इस विभीषिका पर प्रकाश डालते हुए लिखा है । तैमूर के आक्रमण से भारत में अराजकता फैल गई । दिल्ली का शासन तन्त्र पंगु हो गया और राजधानी के आस-पास तथा साम्राज्य के प्रान्तों में घोर अव्यवस्था छा गई दिल्ली की जनता को भी अत्याचार सहन करने पड़े थे, उनसे काफी धन लूटा गया था और उनकी सम्पत्ति छीनी गई थी ।[3] आगे वह लिखते हैं- लूटपाट की विभीषिका का शब्दों में वर्णन करना असंभव है । हृदय हीन रक्त पिपासु धर्मान्धों के अमानुषिक अत्याचारों के पश्चात् दुर्भिक्ष एवं महामारी ने अपना तांडव प्रारम्भ किया, मनुष्यों एवं पशुओं का सफाया हुआ । कृषि तथा व्यवसाय रूक गये । सामाजिक व्यवस्था के पूर्णत: अस्त-व्यस्त हो जाने तथा शान्ति एवं व्यवस्था स्थापित करने में सक्षम शासन तन्त्र के अभाव में लाभ उठाकर साहसिक लोभ अपनी अधिकार लिप्सा को तृप्त करने के लिए देश को रौंदने तथा जनता को सताने लगे ।[4] इस प्रकार तैमूर के आक्रमण ने पूरे सल्तनत् की जीवन चर्या को पंगु बना दिया ।

सैय्यद सुल्तानों का काल भी उत्तरी-पश्चिमी सीमा की दृष्टि से सदैव आतंकित रहा तथा लूट एवं नरसंहार का शिकार रहा । इस समय गक्खर जनजाति, तुर्क बाचा एवं काबुल के शेख अली का संकट सदैव मंडराता रहा ।

1- जफर नामा: भाग-2 पृ॰ 15, अनु॰ रिजवी, तुगलक कालीन भारत,- भाग-2, पृ॰-241,

तिमूर: मलफूजाते तिमूरी-इलियट एण्ड डाउसन, भाग-3, पृ॰-397,

2- तिमूर: मुलफजाते तिमूरी-इलियट एण्ड डाउसन, भाग-3, पृ॰-396-99,

3- ईश्वरी, प्रसाद, भारतीय मध्य युग का इतिहास, पृ॰-336,

4- ईश्वरीप्रसाद: भारतीय मध्य युग का इतिहास, पृ॰-337,

सीमा के अफगान प्रदेशों से समय-समय पर बलपूर्वक कर वसूला एवं लूटा ।

उत्तरी-पश्चिमी सीमा के विस्फोटक होने के कारण सल्तनत काल में विदेशी व्यापार बहुत अधिक प्रभावित हुआ । अलमसूदी ने लिखा है कि खुरासान जाने वाले काफिलों का केन्द्र मुल्तान था ।[2] इसी प्रकार अलहद रीसी ने लिखा है कि काबुल केबने कपड़े चीन, खुरासान और सिंध भेजे जाते थे ।[3] थल मार्ग से खैबर दर्रे के के द्वारा भारत का व्यापार मध्य एशिया, अफगानिस्तान और ईरान से होता था । मंगोलों के आक्रमण एवं अनिश्चित राजनीतिक स्थिति के कारण सल्तनत काल में प्राय: व्यापारी मध्य एशिया के मार्ग को सुरक्षित नहीं समझते थे और वे अपना व्यापार आसाम, बर्मा और सिक्किम के रास्ते करते थे ।[4] कभी-कभी व्यापार समुद्र के मार्ग द्वारा भी होता था ।[5]

समाज व संस्कृति पर प्रभाव-

उत्तरी-पश्चिमी सीमा ने सल्तनतकाल के समाज को भी प्रभावित किया । मंगोल आक्रमण के परिणाम स्वरूप मध्य एशिया तथा मुस्लिम देशों के कुछ मुसलमानों ने भारत वर्ष में शरण लिया । इल्तुतमिश व बलबन के शासन काल में वे लोग भारत वर्ष में बस गये । बलबन कालीन अमीरों ने मंगोलों के साथ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किये ।[6] जलालुद्दीन खल्जी के समय मंगोलों से हुई

1- बाबर: बाबरनामा, अनु. वेब्रिज भाग-1, पृ.-373, रिजवी, मुगल-कालीन भारत, पृ.-94,
बाबर: बाबनामा, अनु. वेब्रिज भाग-1, पृ. 383, अकबरनामा, अनु. भाग-1, पृ.-237-38,

2- अबुइसहाक: किताबुल अकालिम, इलियट एवं डाउसन-भाग-1, पृ.-21,

3- अबुइसहाक: किताबुल अकालिम, इलियट एवं डाउसन-भाग-1, पृ.-21,

4- एल. गोपाल, दि इकनामिक लाइफ आफ नार्दन इण्डिया, पृ.-109,

5- एल. गोपाल, दि इकनामिक लाइफ आफ नार्दन इण्डिया, पृ.-112,

6- ए. रशीद, सोसायटी एन्ड कल्चर इन मेडिवल इण्डिया, पृ.-2,

संधि के परिणाम स्वरूप चंगेज खाँ का नाती उलगू खाँ अन्य मंगोल अधिकारियों सहित कलमा पढ़कर मुसलमान हो गया और सुल्तान जलालुद्दीन की शरण में भारत में वह रूक गया । सुल्तान ने अपनी पुत्री से उसका विवाह करके प्रगाढ़ सम्बन्ध स्थापित कर लिया । उलगू के साथ उसके 3,000 अनुयायी भी सपरिवार सुल्तान जलालुद्दीन की राजधानी दिल्ली में आये ।[1] सुल्तान ने सभी लोगों का वेतन निश्चित कर दिया । वे सभी किलो खड़ी, गयासपुर, इन्द्रपत तथा तिलोका के आस-पास बस गये जो आगे चलकर मुगलपुरा के नाम से प्रसिद्ध हुआ ।[2] बरनी लिखता है कि इन लोगों ने यहाँ की संस्कृति को अपना लिया तथा आपस में शादी ब्याह भी करने लगे । वे नव मुस्लिम के नाम से प्रसिद्ध हुए ।[3] इस नये मुसलमानों को सुल्तान जलालुद्दीन खल्जी द्वारा दिये गये अनुचित छूट से भविष्य में बड़ी समस्या उत्पन्न हुई क्योंकि कालान्तर में ये दिल्ली सल्तनत के लिए बड़े कष्ट कारी सिद्ध हुए ।[4] डॉ. ए.बी. पाण्डेय ने भी लिखा है कि जब मंगोलों का दक्षिणी सिंध तथा पश्चिमी पंजाब पर अधिकार हो गया तो उन्होंने वहाँ पर अपनी बस्तियाँ बसा दी । कुछ मंगोल सैनिक बंदी प्राणदान पाने का आश्वासन मिलने पर इस्लाम धर्म स्वीकार कर लेते थे और राजधानी दिल्ली में अथवा उसके निकट भी बस जाते थे । मंगोल आक्रमणों के नेता इन भारत स्थित मंगोलों का उपयोग करने की चेष्टा करते थे ।[5] स्पष्ट है कि मुस्लिम समाज में अरब, तुर्क,

---

1- फरिश्ता: तारीखे फरिश्ता- ब्रिग्स, भाग-1, पृ.-171,

2- बरनी, तारीखे फीरोजशाही, पृ.-219, अनु. इलियट एवं डाउसन,- भाग-3, पृ.-147-48,

3- बरनी, तारीखे फीरोजशाही, पृ.-219, अनु. रिजवी, खल्जी कालीन- भारत-पृ.-28,

4- मजूमदार, राय, चौधरी एवं दत्ता, भारत का राजनीतिक एवं सामाजिक- इतिहास, भाग-2, पृ.-289,

5- पाण्डेय, ए.बी., पूर्व मध्य कालीन भारत, पृ.-362,

अफगान मंगोल, उजबेक तथा धर्म परिवर्तित मुसलमान थे ।

उत्तरी-पश्चिमी सीमा की विस्फोटकता का प्रभाव सल्तनत् कालीन संस्कृति पर भी पड़ा । इसमें चित्रकला, स्थापत्य कला मुख्य है । उत्तरी-पश्चिमी सीमा समस्या में ही उलझे रहने के कारण सुल्तान इन कलाओं की ओर कोई विशेष ध्यान न दे सके । इन कलाओं के विकास के लिए धन एवं समय दोनों की आवश्यकता थी । सुल्तानों के पास इन दोनों की कमी थी । सीमा के सुरक्षार्थ सेना पर सर्वाधिक व्यय किया जाता था अतः स्थापत्य के क्षेत्र में अधिक व्यय न किया जा सका । इस के परिणाम स्वरूप स्थापत्य कला के विकास को गहरा आघात पहुँचा ।[2] इस काल की इमारतों में मुख्य रूप से मस्जिदें, दुर्ग, मकबरे एवं मदरसे थे । तुगलक कालीन आर्थिक तबाही ने वास्तुकला को पूर्णतः सादगी पर ला दिया ।[3] कादिरी के अनुसार यदि सैय्यद वंश को स्थापत्य कला के पतन का युग कहा जाय तो अतिशयोक्ति न होगी ।[4] पर्सी ब्राउन के शब्दों में लोदी युग को मात्र मकबरों का युग कहा जा सकता है ।[5] इस प्रकार सल्तनत् कालीन विस्फोटक स्थिति ने आर्थिक अभाव को जन्म दिया और आर्थिक अभाव ने वास्तुकला को सौन्दर्यता के स्थान पर मात्र आवश्यकता की वस्तु बना दिया । इसी प्रकार चित्रकला का विकास न हो पाने के पीछे सल्तनत कालीन राजनीतिक अस्थिरता ही मुख्य रूप से उत्तरदायी है । डॉ. आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव ने लिखा है कि भारत वर्ष में मुस्लिम

1- मुहम्मद, यासीन, सोशल हिस्ट्री आफ इस्लामिक इण्डिया, पृ.-2,
2- ईश्वरी प्रसाद, भारतीय मध्य युग का इतिहास, पृ.-521,
3- ईश्वरी प्रसाद, भारतीय मध्य युग का इतिहास, पृ.-521,
4- कादिरी, असगर अली: हिन्दू मुस्लिम स्थापत्य कला शैली, पृ.-159,
5- ब्राउन, पर्सी, इण्डियन पेंटिंग, पृ.-24,

शासन की स्थापना के बाद चित्रकला के विकास को प्रोत्साहन नहीं मिला । दिल्ली के सुल्तानों का विश्वास था कि चित्रकार किसी मनुष्य, पशु, पक्षी का चित्र बनाकर उसे सजीव बनाने का प्रयास करता है और इस प्रकार वह ईश्वर का प्रति द्वन्दी होने का प्रयत्न करता है । इस प्रकार रूढ़िवादी मुसलमानों के अनुसार सजीव पशु पक्षी तथा मनुष्य का चित्रण अधार्मिक कार्य था । इसलिए कुरान के अनुसार चित्रकारी पर प्रतिबंध लगा दिया गया था ।[1] परिणाम स्वरूप सुल्तानों के हृदय में चित्र कला के प्रति प्रेम नहीं था । अतः इन्होंने चित्रकारों को संरक्षण नहीं प्रदान किया ।[2] पर प्रो॰ शेरवानी इस मत से सहमत नहीं हैं ।[3] उनके अनुसार दिल्ली के सुलतान चित्रकला के प्रेमी थे और उन लोगों ने चित्रकारों को संरक्षण प्रदान किया ।[4] मिनहाजुस्सिराज के अनुसार जिस समय खलीफा अलमुतसिम बिल्लाह ने अपने दूत को दिल्ली भेजकर इल्तुतमिश को मान्यता प्रदान की उस समय राजधानी को सुसज्जित कर उसके मध्य इल्तुतमिश का एक बड़ा चित्र रखा गया था ।[5] अतः स्पष्ट है कि इल्तुतमिश चित्रकला का विरोधी नहीं था ।

इसी प्रकार मुहम्मद तुगलक के समय ﴾1353 ई॰﴿ का एक चित्र मिला है, जिसमें उसके दरबार का सुन्दर चित्रण किया गया है ।[6] बर्नी के अनुसार रूढ़िवादी तथा धर्मान्ध सुल्तान फिरोज तुगलक ने भी चित्रकला को प्रोत्साहन दिया । उसके राजमहल की दीवारों को सुन्दर चित्रों से अलंकृत किया गया था ।[7] इन सबसे

1- श्रीवास्तव, ए॰एल॰, मध्य कालीन भारतीय संस्कृति, पृ॰-213,

2- श्रीवास्तव, ए॰एल॰, मध्य कालीन भारतीय संस्कृति, पृ॰-213,

3- शेरवानी, एच॰के॰, कल्चरल ट्रेंड्स इन मेडिवल इण्डिया, पृ॰41,

4- शेरवानी, एच॰के॰, कल्चरल ट्रेंड्स इन मेडिवल इण्डिया, पृ॰41,

5- मिन्हाजुस्सिराजः तबकाते नासिरी, उद्धृत, शेरवानी, पृ॰-43,

6- शेरवानी, एच॰के॰, कल्चरल ट्रेंड्स इन मेडिवल, इण्डिया,पृ॰42,

7- बरनी, तारीखे फीरोजशाही, उद्धृत शेरवानी, पृ॰-43,

स्पष्ट हो जाता है कि सुल्तानों ने चित्रकला को प्रोत्साहन दिया । फिर भी चित्रकला का विकास न हो पाने के पीछे उत्तरी-पश्चिमी सीमा द्वारा उत्पन्न की गई समस्या ही प्रधान है ।

सल्तनत काल में बहुत से अप्रवासी मुसलमानों ने मुस्लिम संसार के विभिन्न भागों से भारत वर्ष में आकर बसना जारी रखा । इसका प्रमुख कारण मंगोलों के उत्पात से मुस्लिम राज्यों का विघटन था । इस कारण अनेक राज पुरूषों, विद्वानों एवं अनुभवी कर्मचारियों ने भारत में आकर शरण लिया, जिसके कारण दिल्ली व उसके आस-पास के स्थान इस्लामी शिक्षा तथा मुस्लिम विद्वानों के केन्द्र बन गये । इतिहासकार हसन निजामी को भी जिसका जन्म निशापुर में हुआ था, को खुरसान से मंगोलों के उत्पात् के कारण अपनी जन्म भूमि त्याग कर भारत में आना पड़ा ।[1] उसने ताजुल मआसिर नामक ऐतिहासिक पुस्तक लिखकर 1191 ई. से 1217 ई. तक के इतिहास की जानकारी हेतु अमूल्य सामग्री प्रदान किया ।[2] इल्तुतमिश के शासन काल के प्रारम्भ में अमीर रूहानी, काजी हमीदउद्दीन नागौरी, फखुउल मुल्क ए सामी, नुरूउद्दीन मुहम्मद अफी के अतिरिक्त हजारों हब्शी तथा अन्य जातियों के मुसलमान दिल्ली आये ।[3] चंगेज खाँ की सेनाओं से अपनी जान बचाकर जलाउद्दीन मांग बरनी अपने 10,000 सैनिकों व अनुयाइयों को साथ लेकर भारत में 1221 ई. में आया । यद्यपि वह 1224 में वापस लौट गया पर उसके समर्थक भारत में ही बस गये । तदुपरान्त मंगोलों के भयावह आक्रमणों से आतंकित होकर ईराक, खुरासान तथा मुबारूम्नहर के 25 राजकुमारों ने दिल्ली में शरण ली ।[4] एसामी ने लिखा है

1- रिजवी, एस.ए.ए., आदि तुर्क कालीन भारत, पृ.-273,

2- श्रीवास्तव, पी.एल., दिल्ली सुल्तानों की उत्तर-पश्चिम सीमा नीति- पृ.-149,

3- फरिश्ता, तारीखे फरिश्ता, उदधृत, के. एस. लाल., ग्रोथ आफ द मुस्लिम पापुलेशन इन इण्डिया, पृ.-110,

4- लाल.के.एस. : ग्रोथ आफ दि मुस्लिम पापुलेशन इन इण्डिया, पृ. 110,

कि "जब सुल्तान इल्तुतमिश, जो कि संसार के धर्म का प्रकाश था, ने दिल्ली को अपनी राजधानी बनाया, तो वह शहर चमक उठा । उसमें अरब से अनेक उत्तम वंश के सैय्यद आये, अनेक व्यापारी खुरासान से आये, अनेक चित्रकार चीन से आए, अनेक उल्मा बुखारा से आए तथा अनेक धार्मिक व्यक्ति संसार के अन्य भागों से आए । इसी प्रकार हर प्रकार के शिल्पकार प्रत्येक देश से यहाँ आए । हर प्रकार की सुन्दर स्त्रियाँ विभिन्न शहरों व जातियों की यहाँ आईं । अनेक शरीफ, आभूषण विक्रेता तथामोती विक्रेता, येनानी विचार धारा के दार्शनिक एवं हकीम तथा विद्वान सभी देशों से यहाँ आए । इस प्रकार दिल्ली सात देशों का बन गया ।[1]

बलबन के दरबार में मुसलमान देशों के 15 राजकुमार थे । बलबन के शासन काल में तुर्किस्तान, मुबारूलहर, खुरासान, ईराक, अजर बैजान, फारस रूम से अनेक शरणार्थी राजकुमार दिल्ली आए । इनके साथ इनके साथी भी थे । बलबन ने दिल्ली में उन्हें 15 मुहल्लों में पृथक-पृथक बसाया ।[2] बलबन ने अफगानिस्तान से आए हुए अफगानों को गोपालगिरि, कम्पिल, पटियाली, भोजपुर तथा जलाली में नियुक्त किया ।[3] इसी काल में उत्तर-पश्चिम से या तिब्बत के मार्ग से मंगोल भारत में आते रहे ।[4] जो मंगोल बड़ी सेना के साथ यहाँ आए वे बल्बन की सेना में भर्ती हो गए उन्होंने वहाँ के कुछ अमीरों से सम्बन्ध भी स्थापित किए ।[5] 1291 ई॰ में मंगोल आक्रमणकारी उलुग खाँ 3000 मंगोलों के साथ भारत आया और उसने भारत को अपना घर बना लिया । उनकी बस्ती

1- एसामी: फुतूहुस्सलातीन भाग-2, अनु॰ आगा मेंहदी हसन, पृ॰-227,

2- फरिश्ता: तारीख-ए-फरिश्ता, अनु॰ जे॰ ब्रिग्स: हिस्ट्री आफ द राइज-आफ मुहम्मडन पाव इन इण्डिया, भाग-4, पृ॰-250-51,

लाल. के. एस॰, मुस्लिम स्टेट इन इण्डिया, पृ॰-118,

3- निजामी, के॰ ए॰, काम्प्रिहेन्सिव हिस्ट्री आफ इण्डिया, भाग-5, पृ॰ 7,

4- फरिश्ता, तारीखे फरिश्ता: अनु॰ जे॰ ब्रिग्स: हिस्ट्री आफ द राइज आफ मुहम्मडन पावर इन इण्डिया, भाग-4, पृ॰-226

5- फरिश्ता तारीखे फरिश्ता, अनु॰ ब्रिग्स, हिस्ट्री आफ दि राइज आफ दि-मुहम्मडन पावर इन इण्डिया-भाग-4, पृ॰-302-303,

मुगलपुरा कहलाने लगी । सुल्तान अलाउद्दीन खल्जी के समय अनेक मंगोल बंदियों ने इस्लाम ग्रहण किया और भारत में आकर बस गये ।

जियाउद्दीन बरनी के अनुसार सुल्तान मुहम्मद तुगलक के शासन काल में खुरासान, ईराक, मुबारून्नहर, ख्वारिज्म, सीस्तान, हेरात तथा दमिश्क से अनेक मुसलमान सुल्तान की कृपा अर्जित करने के लिए आये । क्योंकि सुल्तान मुहम्मद तुगलक भारतीयों की तुलनामें विदेशी मुसलमानों को राजकीय सेवा में प्राथमिकता देता था, अत एवं अप्रवासियों को भारत में आने का प्रोत्साहन मिला ।[1]

इन विदेशियों के अतिरिक्त यहाँ अधिक संख्या में व्यापारी बराबर आते रहे । उनमें से अनेक तो यहीं स्थाई रूप से बस गये या अपने प्रतिनिधियों को छोड़ गए । अब्दुल्लाह के अनुसार सुल्तान सिकन्दर लोदी के समय अनेक शेख ईरान, बुखारा से आये और आगरा में रहने लगे ।[2] सुल्तान बहलोल लोदी प्रथम अफगान साम्राज्य की स्थापना की । उसने अफगानिस्तान की अनेक अफगान कबायली जातियों विशेषकर रोह के अफगानों को इस देश में आने के लिए निमंत्रित किया । तारीखे शेरशाही के रचयिता अब्बास खाँ सेरवानी के कथनानुसार उसके निमन्त्रण पर अनेक अफगान टिड्डियों की झुण्ड की भाँति हिन्दुस्तान आए । सुल्तान बहलोल ने उन्हें अक्ताएं प्रदान की व उनको सम्मान प्रदान किया ।[3] इन सब के प्रवास के परिणाम स्वरूप भारत विविध संस्कृतियों का देश बन गया ।

1- इब्नबतूता: रेहला, अनु. मेंहदी हसन, दि रेहला आफ इब्नबतूता, पृ. 67,

2- राधेश्याम: सल्तनत कालीन सामाजिक तथा आर्थिक इतिहास-पृ. 180,

3- सेरवानी, अब्बास खाँ, तारीखे शेरशाही, अनु. बी.पी.अम्बष्ट, पृ. 5-6

अध्याय - 8

उपसंहार

अध्याय-8

उपसंहार

दिल्ली एवं आगरा के सुल्तानों ने सदैव ही उत्तरी-पश्चिमी सीमा समस्या पर विशेष ध्यान दिया । उत्तरी-पश्चिमी सीमा न केवल वाह्य आक्रमण की दृष्टि से विस्फोटक थी, बल्कि यह स्थानीय जनजातियों एवं वहाँ पर नियुक्त प्रान्तपतियों की महत्वाकांक्षा का भी शिकार थी । इस प्रकार यह समस्या तीन दृष्टियों से विस्फोटक थी, जिसने न केवल सल्तनत के इतिहास को राजनीतिक दृष्टि से प्रभावित किया,बल्कि आर्थिक, समाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से भी प्रभावित किया । अतः सुल्तानों को उत्तरी-पश्चिमी सीमा समस्या के समाधान हेतु एक सुदृढ़ नीति अपनानी पड़ी ।

उत्तरी-पश्चिमी सीमा की प्रतिरक्षा की समस्या इसकी प्राकृतिक सीमाओं द्वारा बहुत न्यूनीकृत कर दी गई हैं, यदि हम अरब सागर और बंगाल की खाड़ी का समुद्र तट निकाल दें तो वह केवल उत्तर-पश्चिम में आरक्षित है । भारत का पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त उत्तर में हिमालय पर्वत, उत्तरी-पश्चिम में हिन्दूकुश, सुलेमान एवं किरथार की पहाड़ियों से घिरा हुआ है । पश्चिमोत्तर सीमान्त क्षेत्र का मध्य एवं दक्षिणी भाग मैदानी है । इसे सिंध बेसिन कहते हैं क्योंकि इस पर सिंध एवं उसकी पाँच सहायक नदियाँ प्रवाहित होती हैं । मध्य एशिया से भारत आने वाला मार्ग इन्ही पहाड़ियों से होकर था । उन दिनों सुलेमान के उस पार से आने का साधारण मार्ग न तो प्रसिद्ध खैबर दर्रे से था और न दक्षिण में स्थित बोलन दर्रे से, बल्कि गोमल दर्रे से था जो डेरा इस्माइल खाँ को जाता था और वहाँ से उत्तरी सिंध सागर दोआब को । खैबर, बोलन और कम सुगम कुर्रम तथा तोची दर्रों का उतना इस्तेमाल नहीं होता था जितना गोमल दर्रे का जो सामान्य सैनिक मार्ग था ।

पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त की पर्वत श्रेणियों के विलक्षण आकार के कारण इस प्रवेश मार्ग की वास्तविक प्रतिरक्षा काबुल से गजनी होते हुए कन्दहार तक के क्षेत्र के सैनिक नियन्त्रण से ही संभव है जो भारत की तथा कथित वैज्ञानिक सीमा है । क्यों कि वह पंजाब की नदियों की उपजाऊ घाटियों को जाने वाले मार्गो को नियन्त्रित करता है । यहीं से दक्षिण की ओर मरूस्थल कोजाने वाला मार्ग है, जो भारत का दूसरा मोरचा है । इस प्रकार काबुल गजनी-कन्दहार मार्ग का नियन्त्रण, जिसके दोनों तरफ हिन्दूकुश पर्वत है, केवल युद्ध नीति के दृष्टिकोण से आवश्यक नहीं है, बल्कि जिस युग में भारत के विदेशी विजेता मध्य एशिया पर कुमक के लिए आश्रित रहते थे वह राजनीतिक दृष्टि बिन्दु से भी महत्वपूर्ण था । इसी परिप्रेक्ष्य में सोलहवीं सदी के इतिहासकार अबुल फजल ने काबुल और कन्दहार को हिन्दुस्तान के दो दरवाजों की संज्ञा दी है ।

उत्तरी-पश्चिमी की सीमा समस्या का द्वितीय पहलू उन उपद्रवी पर्वतीय जनजातियों का नियन्त्रण था जो कश्मीर से समुद्र तट तक विस्तृत स्थल की चौड़ी पहाड़ी पट्टी में रहती थीं जिनमें होकर सभी प्रमुख दर्रे गुजरते थे । सिंध सागर दोआब के उत्तरी आधे भाग में नमक की पहाड़ियों के चारों ओर मध्य युग के प्रारम्भ में खोकर अवान, जन्जूह, युसुफ जई, दिलजाक आदि अनेक उद्दंड एवं लड़ाकू जनजातियाँ रहती थीं । इन जनजातियों की राजनीतिक अस्थि-रता एवं झेलम तथा चिनाब घाटियों की आवर्त्ती लूटपाट से समस्या और जटिल हो जाती थी ।

जब तक गोर अफगानिस्तान में एक शक्तिशाली राज्य था । और अपना अस्तित्व बनाये रख सकता था तब तक दिल्ली का राज्य सुरक्षित था और वहाँ से आवागमन अविच्छिन्न था । परन्तु गोर साम्राज्य में उसके अन्त वंश ने उसे मध्य एशिया की सदा परिवर्तनशील राजनीतिक शक्तियों के लिए

आरक्षित कर दिया । जब गजनी का विलयन ख्वारिज्म शाह के साम्राज्य में होगया, जिसकी पूर्व वर्त्ती सीमा सिंध नदी को स्पर्श करती थी तब दिल्ली की सुरक्षा प्रत्यक्ष संकट में पड़ गई । लगभग इसी समय बर्बर मंगोलों ने एशिया के पूरे नक्शे को बदल दिया । गजनी, पेशावर तथा अफगानिस्तान के अन्य स्थानों में मंगोल चौकियाँ स्थापित की गईं और राजनीतिक सीमा के रूप में सिंध का लगभग लोप हो गया । फलत: दिल्ली सुल्तनत की प्रशासनिक सीमा बहुत पीछे की ओर उस भू भाग में खिसक गई जो आधुनिक पंजाब है ।

कुत्बुद्दीन ऐबक ने ख्वारिज्म और गोर के झगड़े से भारत को पृथक् रखकर भारतीय तुर्की सुल्तनत् की एक स्वतन्त्र सत्ता स्थापित कर दी और इस कारण गोर राज्य के विघटन तथा ख्वारिज्म साम्राज्य पर मंगोलों का अधिकार होने पर भारत पर अनिवार्यत: आक्रमण किये जाने का प्रश्न नहीं उठा । गजनी के शासक यल्दौज एवं सिंध तथा मुल्तान के गवर्नर नासिरूद्दीन कुबाचा की ओर से आने वाले संकट को भी ऐबक ने बहुत ही सूझबूझ से निपटाया । यल्दौज के आक्रमण का जबाब उसने आक्रमण से दिया और गजनी पर भी अधिकार कर लिया। किंतु शीघ्र ही उसे गजनी के जनअसंतोष के कारण वापस आना पड़ा । अब उसने लाहौर को अपनी राजधानी बनाकर यल्दौज के संकट का सतर्कता पूर्वक निरीक्षण किया । यल्दौज समस्या को ही प्रमुखता देते हुए ऐबक ने कुबाचा को नहीं छेड़ा। बल्कि उसके साथ बड़ी कुशलता से व्यवहार किया और स्थिति के अनुकूल शक्ति नम्रता और अनुनय से काम लिया ।

इल्तुतमिश ने उत्तरी-पश्चिमी सीमा समस्या को बड़ी ही यथार्थवादी एवं समझौते पूर्ण नीति से हल किया । यल्दौज द्वारा उत्पन्न की गई समस्या के समाधानार्थ उसने उसे (यल्दौज को) अंतिम रूप से पराजित किया और हत्या करवा दी । वास्तव में यह इल्तुतमिश की दुहरी विजय थी । उसकी सत्ता ललकारने वाले सबसे भयंकर शत्रु का विनाश और गजनी से अंतिम रूप से सम्बन्ध

विच्छेद । अब दिल्ली का स्वतन्त्र अस्तित्व निश्चित हो गया । सिंध एवं मुल्तान के गवर्नर नासिरुद्दीन कुबाचा को भी इल्तुतमिश ने अंतिम रूप से पराजित किया, जिससे वह भागते हुए नदी में डूब मरा । मंगोलों द्वारा उत्पन्न संकट के प्रति भी इल्तुतमिश अत्यधिक सतर्क था । उसने सल्तनत को मध्य एशिया की राजनीति से अलग रखा । जलालुद्दीन मंगबरनी को शरण देने से नम्रता पूर्वक इंकार करके, मंगोलों की शत्रुता से सल्तनत को बचा लिया । अवध बिहारी पाण्डेय लिखते हैं कि इल्तुतमिश की इस नीति से दोनों में मैत्री पूर्ण दौत्य-सम्बन्ध स्थापित हुआ । डॉ॰ हबीबुल्ला लिखते हैं कि इल्तुतमिश विदेशी मामलों में बहुत यथार्थवादी था वह धीरता, दृढ़ता एवं दूरदर्शिता से काम लेता था । मध्य-युगीन भारत पर उसका बहुत बड़ा अभार है, क्योंकि उसने मंगोलों के उस प्रकोप से उसे बचा लिया, जिसने उससे कहीं अधिक शक्ति शाली एवं पुराने साम्राज्यों का नाश कर दिया था । इल्तुतमिश की नीति को देखते हुए चंगेज खाँ सिंधु नदी के तट से स्वदेश वापस लौट गया ।

इल्तुतमिश के दुर्बल उत्तराधिकारियों के काल में मंगोलों ने सिंध तथा पंजाब के अधिकांश भाग पर अधिकार कर लिया और वे दिल्ली की ओर भी बढ़ने लगे । परन्तु उसी समय सल्तनत के इतिहास में बलबन ने पदार्पण किया । दिल्ली के प्रारम्भिक तुर्क सुल्तानों में वही एक ऐसा शासक था जिसने पश्चिमोत्तर सीमा समस्या को गहराई से समझा । उत्तरी-पश्चिम सीमा सुरक्षा को बलबन ने अपना प्रथम लक्ष्य बनाया और प्रतिरोधात्मक नीति अख्तियार किया। उसने सीमान्त दुर्गों को सुदृढ़ किया और रावी, चिनाब के पूर्व की ओर उच्छ, मुल्तान, दिपालपुर, लाहौर के दुर्गों में सबल सैनिक चौकियाँ बिठा दीं । इस रक्षा पंक्ति से और पूरब उसने सुनम, समाना, भटिण्डा एवं भटनेर में दूसरी रक्षा पंक्ति बनाई और दिल्ली में बराबर एक सुदृढ़ तथा सुशिक्षित सेना रखी । उसने सैनिक प्रदर्शनों तथा वास्तविक युद्धों द्वारा दिल्ली की सेना के सबल होने का प्रमाण दिया और रक्षात्मक नीति अपनाते हुए मंगोलों को भारत के बाहर खदेड़ने की चेष्टा न करके केवल उनको और आगे बढ़ने से रोका । उसके प्रयत्नों

का फल यह हुआ कि मंगोल रावी-चिनाब रक्षा-पंक्ति को भेद करके अपना राज्य और पूरब की ओर न बढ़ा सके । मंगोलों की सैनिक शक्ति के विरूद्ध यह प्रथम महत्वपूर्ण विजय थी । उनकी बाढ़ को रोक देना ही एक महान सफलता सिद्ध हुई क्योंकि भविष्य में उनका विरोध करने के लिए सुल्तानों की शक्ति अधिक साधन सम्पन्न हो गयीं और स्वयं उनके अंदर अनेक दुर्गुण घर कर गये जिसके कारण उनका आतंक घट गया ।

मामलुक सुल्तानों के समय की उत्तरी-पश्चिमी सीमा नीति का समग्र रूप से विवेचन करते हुए प्रो० के० ए० निजामी ने उसे तीन शब्दों में व्यक्त किया है- पृथक्करण तुष्टीकरण एवं प्रतिरोधात्मक[1] । कुतबुद्दीन ऐबक एवं इल्तुतमिश ने अपने को मध्य एशिया की राजनीति से पृथक रखा । इल्तुतमिश के उत्तराधि-कारियों ने तुष्टीकरण कीनीति अपनायी तथा बलबन ने मंगोलों के विरूद्ध प्रति-रोधात्मक नीति अपनायी ।

अलाउद्दीन खल्जी ने मंगोलों की न तो उपेक्षा की और न उनसे अत्यधिक भयभीत हुआ । उसके राज्यकाल में मंगोल भारत में अपना राज्य स्थापित करने के लिए चेष्टा कर रहे थे और लूटमार में समय एवं शक्ति का अपव्यय किये बिना बार-बार राजधानी के निकट आ धमकते थे । परन्तु अलाउद्दीन की रणवाहिनी उनको बार-बार न केवल पीछे ढकेलती रहती थी वरन् उनमें से हजारों सैनिकों एवं अफसरों को बन्दी बनाकर सुलतान की सेवा में भेजती थी और वह उन्हें क्रूर यातनाएँ देकर मरवा देता था । उत्तर भारत की विजय और दाउद की मृत्यु के बाद अलाउद्दीन ने मंगोलों के विरूद्ध आक्रमणा-त्मक रणपद्धति अपनाई और गाजी मलिक ने प्रतिवर्ष उनके राज्य में घुस-घुस कर उनको ऐसा तंग किया कि उन्होंने पुनः कभी दिल्ली तक आ धमकने की चेष्टा न की ।

1- निजामी, के० ए० सम आस्पेक्ट्स आफ रिलिजन एण्ड पालिटिक्स इन-इण्डिया ड्यूरिंग द थर्टीन्थ सेन्चुरी, पृ०-330.

तुगलक काल में भी मंगोलों के आक्रमण होते रहे । गयासुद्दीन तुगलक जो उत्तरी-पश्चिमी सीमा समस्या से भली-भाँति परिचित था मंगोलों के प्रति प्रतिरोधात्मक एवं सुरक्षात्मक नीति अख्तियार किया । शेर मुगल के नेतृत्व में हुए आक्रमण को विफल करने के लिए गयासुद्दीन ने तत्काल बहाउद्दीन गर्शास्व को मदद भेजी । बहाउद्दीन मुगलों को खदेड़ने में सफल रहा । इससे मंगोलों का मनोबल बहुत गिर गया जिससे उत्तरी-पश्चिम सीमा सुरक्षा को काफी बल मिला । मुहम्मद बिन तुगलक के समय मंगोलों से मित्रतापूर्ण सम्बन्ध स्थापित हो गया । यही कारण है कि इस काल में तरमाशीरी का प्रथम और अंतिम आक्रमण हुआ । मुहम्मद तुगलक और तरमाशीरी ने एक दूसरे के शत्रुओं के विरूद्ध सहायता भी दी । मुहम्मद बिन तुगलक ने तरमाशीरीं को इलखानों के विरूद्ध सहायता दी और बाद में खुरासान पर आक्रमण की संयुक्त योजना बनाई । इसी भाँति तगी के विरूद्ध युद्ध करते समय मुहम्मद तुगलक को मंगोलों ने सहायता दी । इसके बाद मध्य एशिया में मंगोलों की शक्ति घटने लगी और दूसरी ओर भारत में सल्तनत का पतन आरम्भ हुआ ।

तुगलक वंश के सुल्तानों में से किसी ने भी उत्तरी-पश्चिम सीमा की सुरक्षा हेतु कोई प्रभावकारी प्रबन्ध नहीं किया, फिर भी गयासुद्दीन, मुहम्मद तुगलक एवं फिरोज तुगलक ने सल्तनत पर उत्तर-पश्चिम की ओर से आक्रमण करने वाले मंगोल आक्रमण कारियों से देश को बचा लिया । किंतु इनके उत्तराधिकारी इतने निकम्मे और लापरवाह थे कि वे सल्तनत को वाह्य आक्रमण सेन बचा सके । सुल्तान महमूद तुगलक के समय अमीर तैमूर का आक्रमण हुआ । तैमूर के आक्रमण के पूर्व कोई भी आक्रमणकारी दिल्ली पर अधिकार न कर सका था। निःसन्देह तैमूर सल्तनत काल के आक्रमणकारियों में प्रथम एवं अंतिम आक्रमणकारी था, जिसने दिल्ली तक पहुँचकर राजधानी पर अधिकार करनेमें सफलता प्राप्त की । पर तैमूर का उद्देश्य भारत पर अधिकार करना नहीं था । यही कारण है कि उसने पश्चिमोत्तर सीमान्त प्रदेशों का शासन खिज्र खाँ को सौंप दिया,

जिसने आगे चलकर सैय्यद वंश की नींव डाली । तैमूर के आक्रमण की प्रकृति को देखते हुए स्पष्ट है कि उसका मुख्य उद्देश्य भारत की लूट था, जिसमें वह पूर्णतः सफल रहा । डॉ. ईश्वरी प्रसाद लिखते हैं कि "लूटमार की विभीषिका का शब्दों द्वारा वर्णन करना असंभव है । हृदयहीन, रक्त पिपासु धर्मान्धों के अमानुषिक अत्याचारों के पश्चात् दुर्भिक्ष एवं महामारी ने अपना तांडव प्रारम्भ किया, मनुष्यों एवं पशुओं का सफाया हुआ । कृषि तथा व्यवसाय रूक गये । इतना ही नहीं दिल्ली का शासन तन्त्र पूर्णतः पंगु हो जाने के कारण राजधानी के आस-पास तथा साम्राज्य के प्रान्तों में घोर अव्यवस्था फैल गई । इस अव्यवस्था का लाभ उठाकर पंजाब के गवर्नर खिज्रखाँ ने तुगलक वंश की अन्त्येष्टि कर सैय्यद वंश की नींव डाली ।

तुगलक साम्राज्य के पतन के साथ ही विभिन्न स्वाधीन राज्यों का जन्म हुआ जिनकी शक्ति क्रमशः बढ़ती ही गई । सल्तनत् की गद्दी पर सैय्यदों का अधिकार हुआ लेकिन इनमें इतनी शक्ति नहीं थी कि वे सल्तनत् के विघटन को इसके विपरीत रोक पाते या राजनीतिक विश्रृंखलता की स्थिति का अन्त कर पाते । विस्तार में दिल्ली सल्तनत संकुचित हो गई और उसके शासक अपनी नीतियाँ अत्यन्त सीमित संदर्भ में प्रतिपादित करने में संतुष्ट थे । उनकी राजनीतिक दृष्टि दिल्ली के चारों ओर लगभग दो सौ मील के घेरे तक सीमित थी । ऐसे में उत्तरी-पश्चिमी सीमा समस्या का द्वितीय पहलू अधिक शक्तिशाली हो उठा । अब उत्तरी-पश्चिमी सीमा प्रान्त के गवर्नर एवं स्थानीय जनजातियाँ अधिक शक्ति से दिल्ली सुल्तानों का विरोध करने लगी और अपना स्वतन्त्र राज्य स्थापित करने का प्रयास तीव्र कर दिया। डॉ. अवध बिहारी पाण्डेय ने इस स्थिति की समीक्षा करते हुए लिखा है कि 15वीं शदी का पूर्वार्द्ध राजनीतिक विश्रृंखलता का युग रहा और इस काल में किसी सार्वभौम सत्ता की स्थापना संभव नहीं प्रतीत होती थी ।

सैय्यद वंश का उत्कर्ष आक्रामक तातारियों या मंगोलों के कारण था। यही कारण है कि सभी अर्थों में इस वंश कासंस्थापक एक स्वतन्त्र स्थिति धारण नहीं कर सका। खिज्र खाँ ने न तो खुत्बे से और न सिक्के से ही मुगल शासक शाह रूख का नाम हटाया। फिर भी खिज्र खाँ जो स्वयं उत्तरी-पश्चिमी सीमा की उपज था पश्चिमोत्तर सीमा पर विशेष ध्यान दिया। उसने वहाँ अपने पुत्र मुबारक को नियुक्त किया और उसकी मदद के लिए योग्य मुक्तों को नियुक्त किया। किंतु इस समय केरमखाँ तुर्क बाचा, तुमान रईस एवं छझ्वेथी सारंग खाँ का विद्रोह बार-बार हुआ जिसे दबाने का खिज्र खाँ ने सफल प्रयास किया। पर यह उसका दुर्भाग्य ही था कि पश्चिमोत्तर सीमा की भौगोलिक स्थिति एवं तुर्क बाचा तथा तुमान रईस की छापामार युद्ध पद्धति ने समस्या का अंतिम समाधान नहीं होने दिया। मुबारकशाह ने यद्यपि पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त की उत्तम व्यवस्था की, फिर भी उसे गक्खर जनजाति, तुर्क बाचा एवं मुगलों का सामना करना पड़ा। गक्खर जनजाति का नेता जसरथ था जिसने सल्तनत् के लिए गंभीर संकट उत्पन्न कर दिया। इसने लगभग 20 वर्षों तक दिल्ली सुल्तानों के विरुद्ध संघर्ष किया[९]। वास्तव में मुबारकशाह की यह भूल थी कि वह जसरथ को दुश्मन मानता रहा। यदि वह जसरथ को अपने साथ ले लेता तो तुर्क बाचा और मुगलों का संकट हल करने में बड़ी सहायता मिलती। मुगल आक्रान्ता शेख अली के आक्रमण का उद्देश्य मात्र लूट था जिसे गक्खरों एवं तुर्कबाचों का आमंत्रण एवं सहयोग प्राप्त था।

मुबारकशाह की उत्तरी-पश्चिमी सीमा नीति सफल रही थी। यद्यपि कुछ इतिहासकारों ने उसकी पश्चिमोत्तर सीमा प्रांतो की प्रशासनिक व्यवस्था की यह कह कर निंदा की है कि मुबारकशाह द्वारा गर्वनरों के हस्तांतरण जल्दी-जल्दी होते थे और उसे योग्य व्यक्तियों की परख न थी। किंतु यह आक्षेप सिद्धान्ततः सत्य होते हुए भी व्यावहारिक नहीं है। मुबारकशाह इस तथ्य से भलीभाँति परिचित था कि जब भी पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त के गवर्नरों को अधिक शक्ति एवं प्रभुता मिली उन लोगों ने सल्तनत के प्रति विद्रोह किया था। और आवश्यकता पड़ने पर विदेशी शक्ति का सहारा भी लिया था।

यद्यपि शीघ्रता से एवं ईर्ष्यावश किये गये परिवर्तन हानिकारक सिद्ध हुआ किंतु सल्तनत को आन्तरिक विद्रोह से बचाने का यही एक मात्र उपयुक्त साधन था ।

मुहम्मदशाह के समय जसरथ एवं बहलोल की संधि एवं मित्रता ने एक नवीन शक्ति को जन्म दिया । यह शक्ति अफगानों की थी जिसका नेतृत्व बहलोल ने किया और, वह सल्तनत के सिंहासन के लिए लालायित हो उठा । अलाउद्दीन आलम शाह की कमजोरी ने पुन: एक बार पश्चिमोत्तर प्रान्त के गवर्नर को दिल्ली की गद्दी पर बिठा दिया। इस प्रकार बहलोल ने लोदी वंश की नींव डाली ।

बहलोल लोदी जो स्वयं अफगान जाति का था, वह अफगानों की वीरता से भली-भाँति परिचित था । अत: उसने उत्तरी-पश्चिमी समस्या के समाधान हेतु रोह से अफगानों को आमंत्रित कर उन्हें पश्चिमोत्तर प्रान्त में निवासित करने का विचार बनाया । वह जानता था कि अफगान दुर्धर्ष योद्धा होता है, उनके आगमन से लोदी साम्राज्य की जड़ें भारत में गहरी जम जाएगी । वास्तव में यह बहलोल की दुहरी चाल थी । प्रथम तो उसे विश्वास प्राप्त अफगान सैनिक मिल गये और द्वितीय उत्तरी-पश्चिमी सीमा की मजबूत अफगान जाति बहलोल की हितैषी बन गयी । किंतु इस व्यवस्था के बावजूद बहलोल को मुल्तान में लंगाशों एवं पंजाब के गवर्नर तातार खाँ के विद्रोह का सामना करना पड़ा । इन विद्रोहों का दमन करने में बहलोल सफल रहा । इतना ही नहीं बहलोल को किसी बाह्य आक्रमण का भी सामना नहीं करना पड़ा ।

बहलोल लोदी के समय से ही लोदी सुल्तानों का पंजाब पर पकड़ ढीली होती जा रही थी । संभवत: इसका कारण यह था कि पंजाब बहलोल लोदी द्वारा अपने अफ़गान सम्बन्धियों तथा अनुयायियों के लिए विजित किया गया था । किंतु बहलोल लोदी के अंतिम समय से ही वे अब सुल्तान के प्रति भक्त नहीं रह गये थे । सिकन्दर लोदी को मध्य पूर्व एवं दक्षिण भारत में ही इतना व्यस्त रहना पड़ा कि वह पंजाब के अफगानों की ओर विशेष ध्यान न दे सका । इतना ही नहीं जब

1505 ई॰ में मुगल सम्राट बाबर ने अपना भारतीय अभियान प्रारम्भ किया तो सिकन्दर लोदी ने इस अवसर पर सैय्यद अली खान के माध्यम से उत्तरी-पश्चिमी सीमा की रक्षा की । बाबर के अभियानों से सावधान होकर सैय्यद अली खान ने पंजाब दिपालपुर तथा सरहिन्द की सरकारों का तातार खाँ के पुत्र दौलत खाँ लोदी के समक्ष समर्पण कर दिया ।

लोदी सुल्तानों ने पश्चिमोत्तर प्रान्त की अपेक्षा मध्य, पूर्व एवं दक्षिणी भारत के प्रधानता दी । प्रोफेसर हबीब लिखते हैं कि लोदी काल में राजनीतिक गुरूत्व का केन्द्र धीरे-धीरे आगरा खिसक गया, जहाँ से राज्य की समस्याएँ अधिक प्रभावशाली ढंग से निपटा जा सकती थीं । इटवा, कोयल और बदायूँ के जमींदारों और मलिकों पर वहाँ से नियन्त्रण रखना सरल था । मेवातियों की क्रियाओं पर आगरे से भली-भाँति दृष्टि रखी जा सकती थी और शर्कियों के विरूद्ध अभियानों की व्यवस्था प्रभावशाली ढंग से की जा सकती थी । इस प्रकार आगरा के राजधानी बन जाने से लोदियों का ध्यान मुख्य रूप से मध्य एवं पूर्व भारत की ओर लग गया और उत्तरी-पश्चिमी सीमा की उपेक्षा होने लगी । उत्तर-पश्चिम में दौलत खाँ लोदी लगभग अर्द्ध स्वतंत्र शासक बन गया । पंजाब पर अपने अधिकार को दृढ़ करने के लिए उसने अन्य अफगान अमीरों को भी मिला लिया । सिकन्दर लोदी की राजत्व नीति ने अमीरों को और अधिक उसका विरोधी बना दिया ।

इब्राहीम लोदी ने सिकन्दर की निरंकुश राजत्व नीति को और अधिक आगे बढ़ाया । वास्तव में वह सरदारों कोअपनी मुट्ठी में रखना चाहता था । उसने पुराने अमीरों के अहंकार को समाप्त करने के लिए एक प्रतिरोधी सामन्त दल खड़ा करने के विचार से नवयुवकों को ऊँचे पद देना और अपना विश्वासपात्र बनाना आरम्भ कर दिया । इब्राहीम ने निरंकुशता को कुछ इस तरह थोपा कि लोगों ने यह सन्देह करना शुरू किया कि सुल्तान न्याय के नहीं बल्कि ईर्ष्या एवं इनके वशीभूत होकर लोगों को दंडित कर रहा है । इस तरह स्थिति बिगड़ती गई, न तो सुल्तान ने अपना दिल साफ किया और न अमीरों ने ही । इसी

पारस्परिक सन्देह और विद्वेष के कारण प्रायः सारे राज्य में विद्रोह की ज्वाला प्रज्वलित हो उठी । उत्तरी-पश्चिमी सीमा बहुत ही विस्फोटक हो उठी । पंजाब का गवर्नर दौलत खाँ लोदी भी इब्राहीम के क्रूर स्वभाव व नीति से चिंतित हुआ । इसी बीच सुल्तान ने उसे दिल्ली बुलाया। इससे शंका और बढ़ गई और जब उसकापुत्र दिलावर खाँ दिल्ली से वापस आकर सुल्तान की क्रूरता का वर्णन किया तो दौलत खाँ ने मुगल आक्रान्ताबाबर को भारत पर आक्रमण का निमन्त्रण दे डाला । बाबर इस आमन्त्रण से प्रोत्साहित हुआ और उसने उत्तर-पश्चिम से आक्रमण कर अंततः सल्तनत को समाप्त कर डाला । इस प्रकार स्पष्ट है कि लोदी काल में उत्तरी-पश्चिमी सीमा दिल्ली एवं आगरा सुल्तानों की पकड़ से ढीली होती गयी । इसका लाभ मुगल सम्राट बाबर ने उठाया और सल्तनत को मिटाकर मुगल साम्राज्य की स्थापना किया ।

उत्तरी-पश्चिमी सीमासमस्याने दिल्ली सल्तनत की आन्तरिक एवं वाह्य नीति को गम्भीर रूप से प्रभावित किया । यह प्रभाव यद्यपि रचनात्मक भी था किंतु विध्वंसात्मक अधिक था। रचनात्मक प्रभाव यह था कि दिल्ली सल्तनत मंगोलों के उत्पात के कारण मध्य एशिया से भागे हुए राजपुरूषों विद्वानों एवं कलाकारों तथा राजकर्मचारियों की शरण स्थली बन गयाथा । चंगेज खाँ के उत्पात के कारण सुल्तान इल्तुतमिश के काल में अनेक अनुभवी प्रशासक, चित्रकार, धर्मज्ञाता, सन्त, चिकित्सक एवं दार्शनिक मध्य एशिया से भागकर भारत आए । बलबन का दरबार राजकुमारों एवं विद्वानों का शरण स्थली था । अलाउद्दीन के दरबार में इतने बड़े-बड़े आलिम थे जिनकी बराबरी कोई नहीं कर सकता था । इतने बड़े आलिम उस समय समरकन्द, बुखारा, बगदाद, ख्वारिज्म, मिश्र, दमिश्क इस्फहान, रूम यहाँ तक कि सारे संसार में न थे ।

उत्तरी-पश्चिमी सीमा समस्या के निवारणार्थ दिल्ली एवं आगरा सुल्तानों को सैनिकवादी नीति अपनानी पड़ी । सल्तनत पर वाह्य आक्रमण को रोकने के लिए लगभग हर सुल्तान को अपनी सैनिक शक्ति अधिक से अधिक बढ़ानी

पड़ी । इसी प्रकार पश्चिमोत्तर प्रांत के गवर्नरों को नियन्त्रित करने के लिए सुल्तानों को निरंकुश नीति भी अपनानी पड़ी । इसके परिणामस्वरूप निरंकुशता सल्तनत् का राजत्व सिद्धान्त बन गया ।

उत्तरी-पश्चिमी सीमा समस्या ने सुल्तानों की साम्राज्यवादी नीति को भी नियन्त्रित किया । इल्तुतमिश एवं बलबन जैसे शक्तिशाली सुल्तान भी विजय को महत्त्व न दे सके । उन्होंने संगठन एवं सुरक्षा को ही विशेष महत्त्व दिया । मात्र अलाउद्दीन खल्जी ही दक्षिण की विजय कर सका । आगे के सुल्तानों के लिए यह पुन: दुष्कर होगया । मुहम्मद तुगलक के समय से ही पुन: सल्नत उत्तर भारत तक सीमित रह गया ।

पश्चिमोत्तर संकट ने दिल्ली सल्तनत् को बुरी तरह अस्थिर रखा । मात्र तीन शताब्दी के अन्दर ही सल्तनत की गद्दी पर पाँच वंशों का शासन हुआ । पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त में अत्यधिक योग्य व वीर गवर्नर एवं सेनापति को नियुक्त किया जाता था । अपनी वीरता से वे शीघ्र ही लोकप्रिय हो उठते थे । इसका परिणाम यह होता था कि जब कभी सल्तनत् की गद्दी पर अयोग्य शासक आए पश्चिमोत्तर प्रान्त के गवर्नरों ने उन्हें मार कर अपना अधिकार स्थापित कर लियाऔर एक नवीन वंश की नींव डाली । बल्बन, जलालुद्दीन खल्जी, गाजी तुगलक, खिज्र खाँ एवं बहलोल लोदी पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त के ही गवर्नर थे ।

उत्तरी-पश्चिमी सीमासमस्या ने सल्तनत् की सांस्कृतिक स्थिति को भी प्रभावित किया । सुल्तानों का अधिकांश समय सल्तनत् की रक्षा के उपयों में ही व्यतीत होता था । इस कारण उनको स्थापत्य कला एवं चित्रकला के विकास की ओर ध्यान देने का अवसर न मिल सका । अत: इण्डो-मुस्लिम संस्कृति का जो विकास सल्तनत् काल में होना था वह मुगल काल में संभव हो सका । इसी प्रकार सल्तनत का आर्थिक विकास भी अवरुद्ध रहा । एक ओर तो सल्तनत वाह्य आक्रमणकारियों की लूटपाट का शिकार रहा और दूसरी ओर इसका व्यापार व वाणिज्य उत्तरी-पश्चिमी सीमा के विस्फोटक होने के कारण लगभग पंगु हो गया था ।

उत्तरी-पश्चिमी सीमा प्रदेश के "मुक्ता"

§1206-1526 ई.§

§1§ लाहौर:- § LAHORE §

1-	कुतबुद्दीन ऐबक	1194-1205	ए. डी.
2-	मुहम्मद	1206-1207	"
3-	नासिरूद्दीन कुबाचा	1207-1218	"
4-	नासिरूद्दीन महमूद शाह	1218	"
5-	मलिक अलाउद्दीन शेरखान	1236	"
6-	मलिक एजुद्दीन कबीरखान	1236-1239	"
7-	मलिक इख्तियारूद्दीन कराकश	1239-1241	"
8-	मुअज्जम खान, शेरखान	1241-1253	"
9-	अर्सलान खान	1253	"
10-	शेरखान शुन्कर	1254-1270	"
11-	किवामुल मुल्क मुहम्मद	1270-1286	"
12-	मलिक तर्की	1286	"
13-	अर्कली खान	1292	"
14-	गाजी मलिक	1304-1321	"
15-	मलिक तातार खुर्द	1321-1342	"
16-	शेख गक्खर	1394	"
17-	नुशरत गक्खर	1394	"
18-	आदिलखान मलिक कन्धू	1394-1398	"

19-	शेख गक्खर	1398-1398	ए॰डी॰
20-	खिज़्र खान	1398-1414	"
21-	मलिक रजब	1421-1421	"
22-	मलिक महमूद हसन	1421-1421	"
23-	मलिक सिकन्दर तुफा	1421-1432	"
24-	शमसुल मुल्क	1432-1432	"
25-	नुसरतखान गुर्म अन्दाज	1432-1433	"
26-	अल्लाहदाद काका लोदी	1433	"
27-	शेख अली	1433	"
28-	शम्सुल मुल्क	1433	"
29-	इमादुल मुल्क	1433-1441	"
30-	बहलोल खान लोदी	1441-1448	"
31-	दौलत खान लोदी	1524	"
32-	मीर अब्दुल अजीज	1524-1525	"

(2) मुलतान:- (MULTAN)

1-	नासिरूद्दीन कुबाचा	1210-1227	"
2-	मलिक कबीर खान	1227-1245	"
3-	मलिक शेर खान-ए-शुन्कर	1246-1254	"
4-	इज्जुद्दीन बलबन	1254-1270	"
5-	राजकुमार मुहम्मद	1270-1284	"
6-	मलिक जलालुद्दीन फीरोज	1288-1292	"

7-	अर्कली खाँ	1292-1295	ए.डी.
8-	नुसरत खान	1295-1304	"
9-	ताजउद्दीन	1332-1339	"
10-	बहराम ऐबा	1340-1341	"
11-	बहजाद खान	1341-1351	"
12-	तातार खान	1359	"
13-	मलिक मर्दान	1359	"
14-	खिज्र खान	1395	"
15-	खिज्र खान	1397-1414	"
16-	मलिक अलाउलमुल्क	1414-1427	"
17-	मलिक राजव नादि	1427-1430	"
18-	इमादुल मुल्क	1430-1431	"
19-	बहलोल लोदी	1431-1432	"
20-	शेख यूसफ	1443-1445	"
21-	राय शका लंगाह§	§1445-1469	"
22-	हुसैन खान लंगाह	1469-1502	"
23-	शोहराव दुदाह §	§1502-1524	"

§3§ दिपालपुर: § DIPALPUR §

1-	कुतबुद्दीन ऐबक	1192-1204	"
2-	नासिरूद्दीन कुबाचा	1210-1216	"
3-	शिहाबुद्दीन हब्श	1216-1224	"

4-	शेर खान	1225-1254	ए॰ डी॰
5-	मुहम्मद सुल्तान	1255-1286	"
6-	मलिक हुसैन	1286-1290	"
7-	मलिक गयासुददीन तुगलक	1291-1315	"
8-	गाजी मलिक	1315-1320	"
9-	अलीउल खासूस ॥	1321-1329	"
10-	शाहू लोदी	1329-1342	"
11-	सिकन्दर तुफा	1342-1355	"
12-	सारंग खान	1394-1398	"
13-	खिज्र खान	1399-1414	"
14-	मलिक राजब नादिरा	1414-1432.	"
15-	इमादुल मुल्क	1433-1440	"
16-	बहलोल लोदी	1441-1451	"
17-	तातार खान	1451-1485	"
18-	दौलत खान लोदी	1485-1524	"

(4) सरहिन्द:- (SIRHIND)

1-	कुतबुददीन ऐबक	1192-1210	"
2-	नासिरूददीन कुबाचा	1210-1224	"
3-	शेर खान सुन्कर	1224-1254	"
4-	मुहम्मद सुल्तान	1255-1286	"
5-	मलिक हुसैन	1286-1290	"

6-	मलिक गयासुद्दीन	1291-1315	ए॰ डी॰
7-	गाजी-उल-मलिक	1315-1335	"
8-	मलक खताब	§ 1351-1360	"
9-	शम्सुद्दीन अबूर्जा	1371-1387	"
10-	बैरम खान	1406-1416	"
11-	मलिक मुबारक	1416-1418	"
12-	मलिक सुल्तान शाह लोदी	1419-1427	"
13-	इस्लाम खान	1427-1431	"
14-	बहलोल लोदी	1431-1468	"

1468 ई॰ सन् के बाद सरहिन्द दिल्ली में मिला लियागया ।

<u>§5§ समाना</u>:-§ SAMANA §

1-	कुतबुद्दीन ऐबक	1192-1210	"
2-	नासिरूद्दीन कुबाया	1210-1216	"
3-	शेर खान	1216-1246	"
4-	मलिक फिरोज खिल्जी	1246-1254	"
5-	बक खान ऐबक	1254-1257	"
6-	मलिक नुसरत खान	1258	"
7-	मुहम्मद बुगरा खान	1258-1259	"
8-	तैमूर खान	1259	"
9-	शेर खान शुन्कर	1259-1270	"
10-	मुहम्मद	1270-1286	"

11-	मलिक छाजू	1287-1295	ए० डी०
12-	अर्सलान खान	1296	"
13-	मलिक काकलाखी (	(1296-1321	"
14-	मलिक बहाउद्दीन	1321-1338	"
15-	शाहू लोदी	1339-1349	"
16-	कमाल-उद्-दीन	1351-1376	"
17-	मलिक काबुल कुरान खुआन	1377-1387	"
18-	मलिक सुल्तान शाह	1387-1389	"
19-	गालिब खान	1389-1397	"
20-	बहराम खान तुर्कबाचा	1397-1407	"
21-	जिरक खान (	(1407-1434	"
22-	मुहम्मद खान	1434-1441	"
23-	बहलोल लोदी	1441-1452	"

(6) सुनाम:-(SUNAM)

1-	कुतबुद्दीन ऐबक	1192-1210	"
2-	नासिरूद्दीन कुबाया	1210-1234	"
3-	शेर खाँ शुन्कर	1235-1254	"
4-	बक खान ऐबक	1254-1257	"
5-	मलिक नुसरत खान	1257-1258	"
6-	शेर खान शुन्कर	1258-1259	"
7-	तैमूर खान	1259-1266	"

8-	मुहम्मद बुगरा खान	1266-1275	ए० डी०
9-	तातार खान	1275-1290	"
10-	मलिक बहाउद्दीन	1321-1338	"
11-	मलिक मुहम्मद बक	1351-1362	"
12-	कमाल-उद-दीन	1363-1376	"
13-	मलिक काबुल कुरान खुआन	1377-1387	"
14-	मलिक सुल्तान शाह	1387-1389	"
15-	बैरम खान तुर्कबाचा	1399-1407	"
16-	जिरक खान	1407-1434	"
17-	मुहम्मद खान	1434-1441	"
18-	बहलोल लोदी	1441-1452	

सन् 1452 ई० के उपरान्त सुनाम सरहिन्द में मिला लिया गया ।

(7) कुहराम:- (GHURHAM)

1-	कुतबुद्दीन ऐबक	1199-1210	"
2-	नासिरूद्दीन कुबाचा	1210-1234	"
3-	मलिक फिरोज खिल्जी	1246-1254	"
4-	बक खान ऐबक	1254-1257	"
5-	शेर खाँ सुन्कर	1259-1259	"
6-	तैमूर खान	1259-1266	"
7-	महमूद बुगरा खान	1266-1275	"
8-	तातार खान	1275-1287	"

9-	मलिक छाजू	1287-1295	ए॰ डी॰
10-	अर्सलान खान	1296	"
11-	मलिक यकलखी	1296-1321	"
12-	मलिक बहाउद्दीन	1321-1340	"
13-	मुहम्मद खान	1341-1356	"

सन् 1356 ई॰ के उपरान्त कुहराम समाना में मिला लिया गया ।

§8§ भटिंडा:-§BHATINDA§

1-	कुतबुद्दीन ऐबक	1192-1210	"
2-	नासिरूद्दीन कुबाचा	1210-1234	"
3-	मलिक अल्तूनिया	1236-1239	"
4-	मलिक इख्तियारूद्दीन	1239-1246	"
5-	शेर खान शुन्कर	1246-1259	"
6-	तैमूर खान	1259-1265	"
7-	मुहम्मद बुगराखान	1266-1275	"
8-	तातर खान	1275-1286	"
9-	मलिक छज्जू	1287-1295	"
10-	सैय्यद सलीम	1399-1429	"
11-	फौलाद तुर्कबच्या	1430-1433	"

1433 ई॰ सन् के उपरान्त भटिंडा मुल्तान में मिला दिया गया ।

NORTH-WEST FRONTIER
UNDER THE SULTANS
1206 - 1526 A.D.
N
KHAIBAR PASS
KASHMIR
RAWALPINDI
RIVER INDUS
PUNJAB
KURRAM PASS
TOCH PASS
RIVER JHELAM
RIVER CHENAB
AFGHANISTAN
KANGRA
BHAKKAR
LAHOR
R. BEAS
RIVER RAVI
QASUR
R. SUTLAJ
FIROZPUR
GOMEL PASS
MULTAN
DERA GHAZI-KHAN
BHATINDA
BOLAN PASS
SIRSA
UCH
HISSAR
DESERT
MOUNTAINS 3500-5000 M
MOUNTAINS 2000-3500 M
PASSES
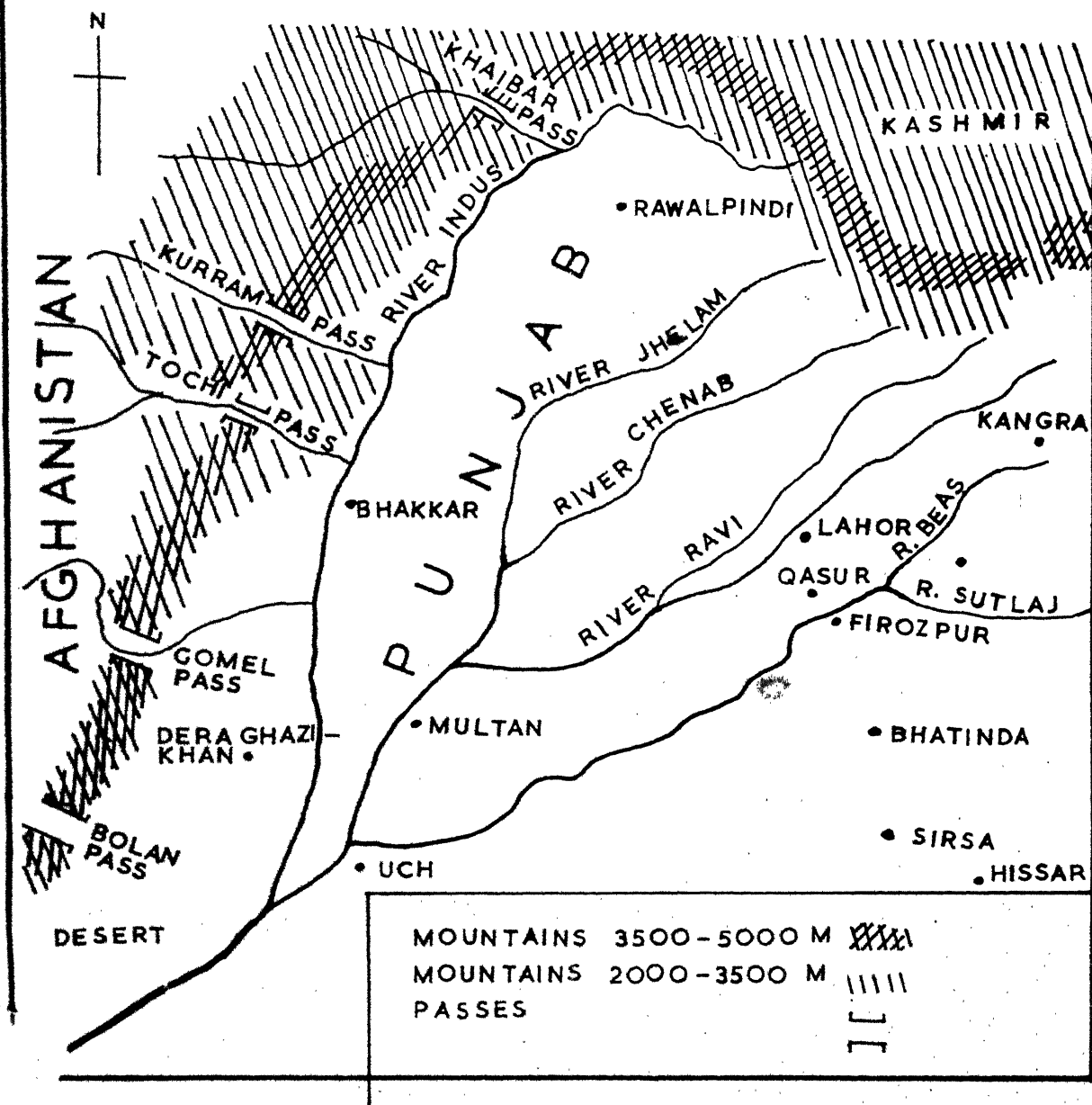
--: संदर्भ-ग्रंथ-सूची :--

फारसी एवं उर्दू ग्रंथ:-

1- अलबरूनी : किताबुल हिन्द, अंग्रेजी अनुवाद-सचाऊ, ई. एस. अलबरूनीज इण्डिया, न्यूडेल्ही, 1964, हिन्दी अनुवाद-रजनीकान्त शर्मा, अलबरूनी का भारत, 492 मालवीय नगर इलाहाबाद 3, 1967 ई.,

2- अफीफ, शम्ससिराज : तारीखे फीरोजशाही, मौलवी विलायत हुसैन द्वारा संपादित, बिब्लियोथिका इंडिका, कलकत्ता, 1981 ई., हिन्दी अनुवाद-रिजवी, सैय्यद अतहर अब्बास, तुगलुक कालीन भारत, भाग-2, अलीगढ़, 1957 ई., अंग्रेजी अनुवाद-इलियट एवं डाउसन, हिस्ट्री आफ इण्डिया ऐज टोल्ड बाई इट्स ओन हिस्टोरियन्स, भाग-3, किताब महल प्रकाशन, इलाहाबाद,

3- अब्दुल्ला : तारीखे दाऊदी अलीगढ़, हिन्दी अनुवाद, रिजवी, एस. ए. ए., उत्तर तैमूर कालीन भारत,

4- अबुल फजल : अकबरनामा, अंग्रेजी अनुवाद-बेव्रिज, एच. कलकत्ता 1821 ई., आइन-ए-अकबरी, अंग्रेजी अनुवाद-ब्लाकमेन एवं जैरेट, कलकत्ता, 1873 ई.,

5- इब्नबतूता : रेहला, हिन्दी अनुवाद-रिजवी, सैय्यद अतहर अब्बास, आदि तुर्क कालीन भारत, अलीगढ़,

1965 ई॰, तुगलुक कालीन भारत, भाग-1, अलीगढ़, 1956 ई॰,
अंग्रेजी अनुवाद-आगा मेंहदी हुसैन, दि रेहला आफ इब्नबतूता, गायकवाड़ ओरियन्टल सिरीज, बड़ौदा, 1953 ई॰, गिब, एच॰ ए॰ आर॰, इब्नबतूताज ट्रेवेल्स इन एशिया एंड अफ्रीका, लंदन, 1953 ई॰,

6- इब्न असीर : कमीलुत तवारीख, संक्षिप्त अंग्रेजी अनुवाद-इलियट एवं डाउसन, हिस्ट्री आफ इंडिया ऐज टोल्ड बाई इट्स ओन हिस्टोरियन्स, भाग-2, किताब महल, इलाहाबाद ।

7- इसामी : फुतूहुस्सलातीन, हिन्दी अनुवाद-रिजवी, सैय्यद अतहर अब्बास, आदि तुर्क कालीन-भारत, अलीगढ़, 1956 ई॰, खल्जी कालीन-भारत, अलीगढ़, 1955 ई॰, तुगलुक कालीन-भारत, भाग-1, अलीगढ़, 1956 ई॰,
अंग्रेजी अनुवाद-आगा मेंहदी हुसैन, 3 भाग, एशिया पब्लिशिंग हाउस, 1967, 1976 एंव 1977 ई॰,

8- उत्बी, अल : तारीख-ए-यमीनी, संक्षिप्त अंग्रेजी अनुवाद-इलियट एवं डाउसन, भाग-2, किताब महल, इलाहाबाद,

9- ख्वन्दमीर : हबीब-उस-सियार, संक्षिप्त अंग्रेजी अनुवाद-इलियट एवं डाउसन, हिस्ट्री अफ इण्डिया ऐज टोल्ड बाई इट्स ओन हिस्टोरियन्स, भाग-4, किताब महल, इला॰, 1964 ई॰,

10- खानी, मुहम्मद बिहामद : तारीखे मुहम्मदी, अंग्रेजी अनुवाद-मुहम्मद जकी, एशिया पब्लिशिंग हाउस, अलीगढ़, 1972, ई०,
हिन्दी अनुवाद-रिजवी, सैय्यद अतहर-अब्बास, तुगलुक कालीन भारत, भाग-1, अलीगढ़, 1956, तुगलुक कालीन भारत, भाग-2, अलीगढ़, 1957 ई०,

11- खुसरो, अमीर : तुगलकनामा, सैय्यद हाश्मी फरीदाबादी, द्वारा संपादित, औरंगाबाद, 1933,
हिन्दी अनुवाद-रिजवी, सैय्यद अतहर अब्बास, खलजी कालीन भारत, अलीगढ़, 1955 ई०,
: मिफ्ताहुलफुतूह, ओरियन्टल कालेज मैगजीन, मई 1936-फरवरी 1937, एस० ए० रशीद द्वारा संपादित, अलीगढ़, 1954 ई०,
हिन्दी अनुवाद-रिजवी, सैय्यद अतहर अब्बास, खलजी कालीन भारत, अलीगढ़, 1955 ई०,
: देवलरानी खिज्र खाँ, रशीद अहमद सलीम-द्वारा संपादित, अलीगढ़, 1917 ई०,
हिन्दी अनुवाद-रिजवी, सैय्यद अतहर अब्बास, खलजी कालीन भारत, अलीगढ़, 1955 ई०
संक्षिप्त अंग्रेजी अनुवाद- इलियट एवं डाउसन, भाग-3, किताब महल, इलाहाबाद,
: खजाइनुलफुतूह, एस० मुईनुलहक, अलीगढ़, 1927 ई०
हिन्दी अनुवाद-रिजवी, सैय्यद अतहर अब्बास, खलजी कालीन भारत, अलीगढ़, 1955 ई०,

अंग्रेजी अनुवाद-हबीब मोहम्मद, हिंद कैम्पेंस आफ अलाउद्दीन खल्जी, मद्रास 1931 ई.,

: किरानुस्सादेन, मौलवी मुहम्मद इस्माइल, अलीगढ़, 1918 ई.
हिन्दी अनुवाद-रिजवी, सैय्यद अतहर अब्बास आदि तुर्क कालीन भारत, अलीगढ़, 1956 ई.,

: वस्तुल हयात, अलीगढ़,
हिन्दी अनुवाद-रिजवी, सैय्यद अतहर अब्बास, आदि तुर्क कालीन भारत, अलीगढ़, 1956ई.,

12- जुवैनी, अता मलिक : तारीख-ए-जहाँकुशा, मिर्जा अब्दुल वहाब कजवीनी द्वारा संपादित, गिब मेमोरियल सिरीज-1911-12, लंदन, 1931 ई.,
अंग्रेजी अनुवाद-ब्वायल, जे., दि हिस्ट्री आफ दि वर्ल्ड कांकरर, 2 भाग, मैनचेस्टर, युनिवर्सिटी, प्रेस, 1958 ई.,
संक्षिप्त अंग्रेजी अनुवाद-इलियट एवं डाउसन, भाग-2, किताब महल, इलाहाबाद.

13- तुग्लक, फीरोजशाह : फुतूहाते फीरोजशाही, सय्यद मीर हसन, रिजवी प्रेस, दिल्ली से प्रकाशित, निरोद भूषन राय द्वारा संपादित, जे.ए.एस.बी., भाग-7, 1941 ई.,
हिन्दी अनुवाद-रिजवी, सैय्यद अतहर अब्बास तुगलुक कालीन भारत, भाग-2, अलीगढ़, 1957

14- तिमूर : मुलफूजाते तिमूरी, संक्षिप्त अंग्रेजी अनुवाद, इलियट एवं डाउसन, भाग-3, किताब महल, इलाहाबाद.

15- दुगलात, मिर्जा हैदर : तारीखे रशीदी, अंग्रेजी अनुवाद-इलियस रास, दि हिस्ट्री आफ मंगोल्स आफ सेन्ट्रल एशिया, पटना, 1973, ई.,

16- निजामुद्दीन, अहमद : तबकात-ए-अकबरी (कलकत्ता, एन, 1927) हिन्दी अनुवाद-रिजवी, सैय्यद अतहर अब्बास, तुगलुक कालीन भारत, भाग-1, अलीगढ़, 1956, तुगलुक कालीन भारत, भाग-2, अलीगढ़, 1957, ई. अंग्रेजी अनुवाद-डे, बी., भाग-1, दि एशियाटिक सोसाइटी कलकत्ता, 1973,

17- फरिश्ता, मुहम्मद कासिम : तारीख-ए-फरिश्ता (नवल किशोर प्रेस, लखनऊ) हिन्दी अनुवाद-रिजवी, सैय्यद अतहर अब्बास, खलजी कालीन भारत, अलीगढ़, 1955 ई. तुगलुक कालीन भारत, भाग-1, अलीगढ़, 1956 ई.,
अंग्रेजी अनुवाद-ब्रिग्स, जे., हिस्ट्री आफ दि राइज ऐण्ड फाल आफ दि मुहम्मडन पावर इन इण्डिया, भाग-1, कलकत्ता, 1966 ई.

18- बरनी, जियाउद्दीन : तारीख-ए-फीरोजशाही, सर सैय्यद अहमद खाँ द्वारा संपादित, बिब्लियोथिका इंडिका कलकत्ता, 1862 ई.,
हिन्दी अनुवाद-रिजवी, सैय्यद अतहर अब्बास आदि तुर्क कालीन भारत, अलीगढ़, 1956 खलजी कालीन भारत, अलीगढ़, 1955, तुगलुक कालीन भारत, भाग-1, अलीगढ़, 1956 तुगलुक कालीन भारत, भाग-2, अलीगढ़, 1957,
संक्षिप्त अंग्रेजी अनुवाद-इलियट एवं डाउसन,

भाग-3, किताब महल , इला०, फुलर एवं खलिज, दि रेन आफ अलाउद्दीन खलजी, कलकत्ता, 1967,

: फतवाए जहांदारी, इंडिया आफिस लाइब्रेरी की पाण्डुलिपि,
अंग्रेजी अनुवाद-हबीब एवं श्रीमती अफसर खाँ, दि पोलिटिकल थ्योरी आफ दि डेल्ही सल्तनत, किताब महल, इलाहाबाद,
हिन्दी अनुवाद-रिजवी, सैय्यद अतहर अब्बास, तुगलुक कालीन भारत, भाग-2, अलीगढ़, 1957,

19- बिलादुरी, अल : फुतूहुल बुल्दान, संक्षिप्त अंग्रेजी अनुवाद- इलियट एवं डाउसन, भाग-1, किताब महल, इला०,

20- बाबर, जहीरूद्दीन मुहम्मद : बाबर नामा, अनुवाद ए० एस. बेवरिज, लंदन-1922

21- बदायुनी, अब्दुल कादिर : मुन्तखबुत्तवारीख, बिब्लियोथिका इंडिका, कलकत्ता, 1868 ई०,
हिन्दी अनुवाद-रिजवी, सैय्यद अतहर अब्बास, तुगलुक कालीन भारत, भाग-1, अलीगढ़, 1956ई०
अंग्रेजी अनुवाद-रैकिंग, भाग-1, पटना, 1973 ई०

22- मुहम्मद, अली हमीद : चचनामा, संक्षिप्त अंग्रेजी अनुवाद-इलियट एवं डाउसन, भाग-1, किताब महल, इलाहाबाद

23- मिनहाज-उस-सिराज : तबकात-ए-नासिरी, नसाऊ लीस, खादिम हुसैन और अब्दुल हई, बिब्लियोथिका इंडिका, 1864
हिन्दी अनुवाद-रिजवी, सैय्यद अतहर अब्बास, आदि तुर्क कालीन भारत, अलीगढ़, 1956,

अंग्रेजी अनुवाद-रेवर्टी, मेजर एच॰जी॰, 2भाग न्यू डेल्ही, 1970 ई॰,

24- मीर मासूम : तारीखे सिन्ध, पूना 1938,
हिन्दी अनुवाद-रिजवी, सैय्यद अतहर अब्बास,
तुगलुक कालीन भारत, भाग-1, अलीगढ़, 1956
तुगलुक कालीन भारत, भाग-2, अलीगढ़, 1957

25- यजदी, शरफुद्दीन अली : जफरनामा, मौलवी मुहम्मद इलाहबाद द्वारा संपादित, बिब्लियोथिका इंडिका, कलकत्ता, 1888,
हिन्दी अनुवाद-रिजवी, सैय्यद अतहर अब्बास,
तुगलुक कालीन भारत, भाग-2, अलीगढ़, 1957

26- यादगार, अहमद : तारीख-ए-शाही या तारीख-ए-सलातीन अफगना, बिब्लियोथिका इंडिका, 1939,
हिन्दी अनुवाद-रिजवी, सैय्यद अतहर अब्बास,
उत्तरतैमूर कालीन भारत,

27- सरहिन्दी, यहया बिन अहमद- : तारीखे मुबारक शाही, एम॰ हिदायत हुसैन द्वारा संपादित, बिब्लियोथिका इंडिका, 1931
हिन्दी अनुवाद-रिजवी, सैय्यद अतहर अब्बास,
तुगलुक कालीन भारत, भाग-2, अलीगढ़, 1957
अंग्रेजी अनुवाद-बसु, के॰के॰, बड़ौदा, 1932,

28- हाजी-उद-दबीर : जफरूल वालेह बे मुजफ्फर वालेह, डेनसन रास द्वारा संपादित, ऐन अरेबिक हिस्ट्री आफ गुजरात, भाग-2 एवं भाग-3, 1921 एवं 1928,
अंग्रेजी अनुवाद-लोखन्दवाला, एम॰ एफ॰, भाग-2, बड़ौदा, 1974॰

29- हसन निजामी : ताजुल मआसिर, प्रो॰ हबीब की पाण्डुलिपि संक्षिप्त अंग्रेजी अनुवाद-इलियट एवं डाउसन, भाग-2, किताब महल, इला॰

हिन्दी ग्रंथ:

1- ओझा, गौरी शंकर : मध्य कालीन भारतीय संस्कृति, हिन्दुस्तानी अकादमी, इलाहाबाद, 1928,

2- ईश्वरी प्रसाद : भारतीय मध्य युग का इतिहास, इला॰ 1968

3- चौबे, झारखण्डे एवं श्रीवास्तव, कन्हैया लाल : मध्ययुगीन भारतीय समाज एवं संस्कृति, लखनऊ 1979,

4- नदवी, सैय्यद सुलेमान : अरब और भारत के सम्बन्ध, प्रयाग, 1930

5- पाण्डेय, अवध बिहारी : मध्य कालीन शासन और समाज, इला॰ 1966
: पूर्व मध्य कालीन भारत,

6- माथुर, विजयेन्द्र कुमार : ऐतिहासिक ग्रंथावली, शिक्षा मंत्रालय (भारत-सरकार द्वारा प्रकाशित), 1969,

7- यूसुफ अली : मध्य कालीन भारत की सामाजिक दशा, हिन्दुस्तानी-अकादमी, इलाहाबाद, 1928,

8- राधेश्याम : सल्तनत् कालीन सामाजिक तथा आर्थिक-इतिहास, वोहरा, इलाहाबाद 1987,

9- रशीद, शेख अब्दुर : जलालुद्दीन फीरोजशाह खलजी, अलीगढ़, 1957,

10- लाहा, विमल चरण : प्राचीन भारत का ऐतिहासिक भूगोल, लखनऊ, 1972,

11- लाल, के॰ एस॰ : खलजी वंश का इतिहास, लक्ष्मी नारायण-अग्रवाल, आगरा, 1970

12- श्रीवास्तव,आशीर्वादी लाल : दिल्ली सल्तनत,आगरा, 1976
: मध्य कालीन भारतीय संस्कृति,आगरा, 1976,

13- हबीबुल्ला, ए.बी.एम. : भारत में मुस्लिम राज्य की बुनियाद, सेण्ट्रल बुक डिपो इलाहाबाद, 1978,

14- हबीब एवं निजामी : दिल्ली सुल्तनत,भाग-1, दि मैकमिलन कम्पनी आफ इण्डिया, दिल्ली 1978,

अंग्रेजी :

1- अहमद, मुहम्मद अजीज : पोलिटिकल हिस्ट्री एण्ड इंस्टीट्यूशन्स आफ अर्ली टर्किश इम्पायरआफ डेल्ही, लाहौर - 1949 ई.

2- अशरफ,के.एम. : लाइफ ऐण्ड कन्डीशन्स आफ दि पीपुल हिंदुस्तान, डेल्ही-1959,

3- अजीज अहमद : स्टडीजइन इस्लामिक कल्चर इन दि इण्डियन एन्वायरनमेंट, आक्सफोर्ड, 1964 ई.,

4- अहमद मकबूल : इण्डो-अरबरिलेशन्स,बाम्बे, 1969 ई.

5- अहमद, बी. : एडमिनिस्ट्रेशन आफ जस्टिस ड्यूरिंग मुस्लिम रूल इन इण्डिया, अलीगढ़, 1941,

6- अर्नाल्ड, टी. डब्लू. : प्रीचिंग आफ इस्लाम, लंदन, 1896,

7- अमीर अली : दि स्पिरिट आफ इस्लाम, कलकत्ता, 1922

8- अहमद मनजिर : सुल्तान फीरोजशाह तुगलक,युग पब्लिकेशन, 1973,

9- आगा, मेंहदी हुसैन : दि राइज एण्ड फाल आफ मुहम्मद बिन तुगलक लन्दन, 1938,

: तुगलक डायनेस्टी, न्यू डेल्ही, 1976,

10- आयंगर, कृष्णास्वामी : साउथ इंडिया ऐण्ड हर मोहम्मडन इनवेडर्स, लंदन, 1921

11- अस्करी, सैय्यद हसन : मेटीरियल ऑफ हिस्टारिकल इन्टरेस्ट इन एजाज-ए-खुसरवी-मेडिवल इण्डिया मिसिलैनी, भाग-1, अलीगढ़, 1969, ई.

12- इलियट एण्ड डाउसन : हिस्ट्री आफ इण्डिया एज टोल्ड बाई इट्स हिस्टोरियन्स, भाग-8, लंदन, 1866-77 ई.

13- ईश्वर टोपा : पालिटिक्स इन दि प्रि मुगल टाईम्स, इला. 1938,

14- ईश्वरी प्रसाद : ए हिस्ट्री आफ दि करूनाह टर्कस इन इंडिया इलाहाबाद, 1936,

15- एवर्ट, जे. एम. : स्टोरी आफ दि नार्थ-वेस्ट फ्रन्टियर प्राविंश, पेशावर, 1930,

16- एल्फिंस्टन : दि हिस्ट्री आफ इण्डिया, लंदन 1857

17- कनिंघम, ए. : क्वायंस आफ मेडिवल इण्डिया, लंदन 1894
: दि ऐन्शियंट ज्योग्राफी आफ इण्डिया, वाराणसी, 1963 ई.

18- कुरेशी, आई. एच. : दि एडमिनिस्ट्रेशन आफ दि सल्तनत आफ डेल्ही, लाहौर, 1944 ई.

19- कूक, डब्लू. : रेसेस आफ नार्दन इंडिया, डेल्ही, 1973

20- कौशिक, देवेन्द्र : सेन्ट्रल एशिया इन माडर्न टाइम्स, मास्को, 1970,

21- गिबन, ई. : दि डिक्लाइन ऐण्ड फाल ऑफ दि रोमन-एम्पीयर, लंदन एण्ड न्यूयार्क, 1890,

22- गनी, मुहम्मद अब्दुल : दि प्री मुगल पर्शियन इन हिन्दुस्तान,इला. 1941,

23- चौधरी, जी०सी० : पोलिटिकल हिस्ट्री आफ नार्दन इंडिया फ्राम जैन सोर्सेज, अमृतसर, 1954,

24- जौहरी,आर.सी. : फीरोज तुगलक, आगरा, 1968

25- जाफर, एस.एम. : सम कल्चरल एस्पेक्ट्स आफ मुस्लिम इंडिया, पेशावर, 1939,

: मेडिवल इंडिया अण्डर मुस्लिम किंग्स,डेल्ही, 1972,

26- टामस, इडवर्ड : दि क्रानिकल ऑफ दि पठान किंग्स ऑफ डेल्ही, लंदन, 1971,

27- टाड, जे. : एनल्स ऐण्ड एंटीक्विटीज आफ राजस्थान,लंदन 1950,

28- डे, यू.एन. : एडमिनिस्ट्रेटिव सिस्टम ऑफ डेल्ही सल्तनत किताब महल,इला. 1959

: सम एस्पेक्ट्स आफ मेडिवल इण्डियन हिस्ट्री, न्यू डेल्ही, 1977,

29- ड्रुई,जेम्स : दि पंजाब नार्थ-वेस्ट फ्रन्टियर प्राविन्श एंड कश्मीर, डेल्ही, 1974,

30- डार्न, वेनहार्ड : हिस्ट्री ऑफ दि अफगान्स,मखजने अफगना का अंग्रेजी अनुवाद, लंदन, 1829,

31- ताराचन्द : इन्फ्लुएन्स आफ इस्लाम आन इण्डियन कल्चर, इलाहाबाद, 1936,

32- त्रिपाठी, आर.पी. : सम ऐस्पेक्ट्स आफ मुस्लिम एडमिनिस्ट्रेशन इलाहाबाद, 1959

33- त्रिपाठी, आर.एस. : हिस्ट्री आफ ऐन्शियंट इंडिया , डेल्ही, 1960 बनारस, 1937

34- द्विवेदी, एस.डी. : दि रिलेशन आफ दि राजपूत्स विद दि डेल्ही सुल्तान्स, आगरा 1978,

35- निजामी, के.ए. : स्टडीज इन मेडिकल इण्डियन हिस्ट्री ऐण्ड कल्चर, इलाहाबाद, 1966

: सम ऐस्पेक्ट्स आफ रिलिजन ऐण्ड पालिटिक्स इन इण्डिया ड्यूरिंग दि थर्टीन्थ सेंचुरी- अलीगढ़ 1961,

: सप्लिमेन्ट टू इलियट ऐण्ड डाउसन्स, हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, भाग-2, अलीगढ़

36- निगम, एस.बी.पी. : नोबिल्टी अण्डर दि सुल्तान्स आफ डेल्ही, डेल्ही, 1968

37- निज्जर, बी.एस. : पंजाब अण्डर दि सुल्तान्स आफ डेल्ही, डेल्ही 6.

: पंजाब अण्डर दि ग्रेट मुगल्स, बाम्बे, 1968

38- नियोगी, पी. : इकोनोमिक हिस्ट्री आफ नार्दन इंडिया, कलकत्ता-1962,

39- नदवी, एस. : मुस्लिम कालोनीज इन इण्डिया बिफोर दि मुस्लिम कान्क्वेस्ट, आई.सी. 1934,

: दि एजूकेशन आफ हिन्दूज अण्डर दि मुस्लिम रूल, करांची, 1963,

40- नाजिम, मुहम्मद : दि लाइफ ऐंड टाइम्स आफ सुल्तान महमूद आफ गजनी, कैम्ब्रिज, 1931,

41- पनिकर, के. एम. : ज्योग्राफिकल फैक्टर्स इन इण्डियन हिस्ट्री, भारतीय विद्या भवन, बाम्बे, 1955,
: ए सर्वे आफ इण्डियन हिस्ट्री, एशिया पब्लिशिंग हाउस, बाम्बे, 1957,

42- प्राउन,एम. : दि मंगोल एम्पायर-इट्स राइज ऐण्ड लिगेसी लंदन, 1940,

43- पाण्डेय, ए0बी. : दि फर्स्ट अफगान एम्पायर इन इंडिया, कलकत्ता, 1956,

44- पियर्सन, जे. डी. : इण्डेक्स इस्लामिकस "सेकेन्ड सप्लिमेंट" (1961-65),कैम्ब्रिज-इंग्लैण्ड, 1967,

45- फरग्यूसन, जेम्स : हिस्ट्री आफ इण्डिया ऐण्ड इस्टर्न आर्किटेक्चर 2 भाग, लंदन 1910,

46- बनर्जी, जे. एम. : हिस्ट्री आफ फीरोजशाह तुगलक, डेल्ही-1967

47- बनर्जी, अनिलचन्द्र : मेडिकल स्टडीज, कलकत्ता, 1958

48- वर्थाल्ड : तुर्किस्तान डाउन्स टू दि मंगोल इन्वेजन, फिडेल्फिया, 1977

49- ब्राउन,पी. : इण्डियन आर्किटेक्चर, बाम्बे

50- ब्राउन, ई.जी. : ए लिटरेरी हिस्ट्री आफ पर्शिया, लंदन, 1906

51- ब्रिग्स,जे. : हिस्ट्री आफ दि राइज आफ मुहम्मडन पावर इन इण्डिया,तारीखे फरिश्ता का अंग्रेजी अनु.

52- मजूमदार, राय चौधरी एवं दत्ता : ऐनएड्वान्स्ड हिस्ट्री आफ इंडिया, मैकमिलन, 1977

53- मजूमदार, आर. सी. (सं.) : दि हिस्ट्री ऐण्ड कल्चर आफ दि इंडियन पीपुल, भाग-5 (स्ट्रगल फार एम्पायर) एवं भाग-6 (दि डेल्ही सल्तनत), भारतीय विद्या भवन, बाम्बे, 1957 एवं 1967

54- मिर्जा, डब्लू : दि लाइफ ऐण्ड वर्क्स ऑफ अमीर खुसरो, कलकत्ता, 1935

55- मुहम्मद अकबर : दि पंजाब अण्डर दि मुगल्स, डेल्ही, 1974

56- मुजीब, एम. : इंडियन मुस्लिम्स, लंदन, 1967

57- मुकर्जी, राधाकुमुद : ऐन्शियन्ट इंडिया, इलाहाबाद, 1956

58- मोरलैन्ड, डब्लू. एच. : एग्रेरियन सिस्टम ऑफ मुस्लिम इण्डिया, हिन्दी अनुवाद-मुस्लिम भारत की ग्रामीण व्यवस्था, इलाहाबाद, 1963,

59- रे, एच. सी. : दि डायनेस्टिक हिस्ट्री ऑफ नार्दन इंडिया, 2-भाग, डेल्ही, 1973

60- लतीफ, सै. मु. : हिस्ट्री आफ पंजाब, न्यू डेल्ही, 1964

61- लाल, के. एस. : हिस्ट्री आफ दि खल्जीज, इलाहाबाद, 1950

: ट्वाइलाइट आफ दि सल्तनत, एशिया पब्लिशिंग हाउस, 1963

: स्टडीजइन मेडिवल इण्डियन हिस्ट्री, डेल्ही, 1966,

62- लेनपूल, एस. : मेडिवल इण्डिया अण्डर मुहम्मडन रूल, लंदन, 1903,

: दि मुहम्मडन डायनेस्टी, लंदन, 1894

63- वर्मा, एच. सी. : मेडिवल रूट्स टू इण्डिया, कलकत्ता, 1978

64- वेम्बरी, ए. : हिस्ट्री आफ बोखारा, न्यूयार्क, 1973

65- वैद्य, सी.वी. : हिस्ट्री आफ मेडिवल हिन्दू इंडिया, 3भाग, पूना, 1921, 1924 तथा 1926,

66- शर्मा, दशरथ : राजस्थान थ्रू दि एजेज, भाग-1, बीकानेर, 1966

67- शर्मा, एस.आर. : क्रैसेन्ट इन इण्डिया, हिन्दी अनुवाद-भारत में मुस्लिम शासन का इतिहास, आगरा ।

68- श्रीवास्तव, आ.ला. : स्टडीज इन इण्डियन हिस्ट्री, आगरा, 1974

69- श्रीवास्तव, कन्हैया लाल : दि पोजीशन आफ हिन्दूज अण्डर दि डेल्ही सल्तनत, न्यू डेल्ही, 1980

70- श्रीवास्तव, अशोक कुमार : दि लाइफ ऐण्ड टाइम्स आफ कुत्बुद्दीन, ऐबक, गोरखपुर, 1972,
: इण्डिया ऐ जडिस्क्राइब्ड बाई दि अरब ट्रैवलर्स, गोरखपुर, 1967

71- सक्सेना, आर.के. : तैमूर की आत्मकथा, पटना

72- सरकार, डी.सी. : ईरान्स ऐण्ड ग्रीक्स इन ऐन्शियन्ट पंजाब, पटियाला, 1973
: स्टडीज इन दि ज्योग्रफी आफ दि एन्शियंट ऐण्ड मेडिवल इण्डिया, डेल्ही, 1971

73- सरन, पी. : दि प्राविन्शियल गवर्नमेण्ट आफ दि मुगल्स, इलाहाबाद, 1941
: रेजिस्टेन्स आफ इण्डियन प्रिन्सेज टू तुर्किस अग्रेसन, पंजाब युनिवर्सिटी, पटियाला, 1967,
: स्टडीज इन मेडिवल इण्डिया, डेल्ही, 1952
: डिस्क्रिप्टिव कैटलाग आफ नान पर्शियन सोर्स आफ मेडिवल इंडियन हिस्ट्री, न्यूयार्क, 1965

74- सरकार, यदुनाथ : इण्डिया थ्रू दि एजेज, हिन्दी अनुवाद-युग युगीन भारत, आगरा, 1958

75- साइक्स, पी. एम. : ए हिस्ट्री ऑफ पर्शिया, भाग-2, लंदन 1915

76- स्टैम्प, एल. डडले : एशिया: ए रिजनल ऐण्ड इकनामिक ज्योग्राफी हिन्दी अनुवाद-एशिया का भूगोल, इला. 1959

77- स्विन्सन : नार्थ-वेस्ट-फ्रन्टियर--पीपुल ऐण्ड इवेन्ट्स, लंदन, 1967

78- स्मिथ, वी. ए. : अर्ली हिस्ट्री आफ इण्डिया, आक्सफोर्ड, 1924
: आक्सफोर्ड हिस्ट्री आफ इंडिया, आक्सफोर्ड, 1919,

79- स्पुलर, बी. : दि मुस्लिम वर्ल्ड--ए हिस्टारिकल सर्वे, भाग-2 (दि मंगोल पीरियड)-ए. आर. सी. बेगले द्वारा जर्मन से अनुवादित, लिडेन, ई. जे. ब्रिल, 1960,

80- सिंह, फौजा : हिस्ट्री आफ पंजाब, भाग-3, पटियाला, 1972

81- हबीबुल्ला, ए. बी. एम. : दि फाउण्डेशन आफ मुस्लिम रूल इन इंडिया, इलाहाबाद, 1976,

82- हबीब, मोहम्मद : सुल्तान महमूद ऑफ गजनी, अलीगढ़, 1927

83- हलीम, ए. : हिस्ट्री आफ लोदी सुल्तान्स आफ डेल्ही ऐंड आगरा, डेल्ही, 1974

84- हार्डी, पी. : हिस्टोरियन्स आफ मेडिवल इंडिया, लंदन 1960

85- हावर्थ, हेनरी, एच. : हिस्ट्री आफ दि मंगोल्स, 4 भाग, लंदन, 1876

86- ह्यूज, टी. पी. डिक्शनरी ऑफ इस्लाम, लंदन, 1885

87- ह्वीलर, जे. टी. इण्डिया अण्डर दि मुस्लिम रूल, डेल्ही, 1975

88- हिन्दी, पी.के. : हिस्ट्री ऑफ अरबस,लंदन, 1958

89- हुसैन, युसूफ : ग्लिम्सेज आफ मेडिवल इण्डियन कल्चर, बाम्बे, 1959

90- हुसैन वाहेद : एडमिनिस्ट्रेशन आफ जस्टिस ड्यूरिंग दि मुस्लिम रूल इन इंण्ड्या,कलकत्ता, 1934

91- हेग, डब्लू. : केम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया,भाग-1,एवं भाग-3, न्यू डेल्ही, 1968 एवं 1965

92- हैवेल, ई.बी. : दि हिस्ट्री आफ आर्यन रूल इन इण्ड्या, लंदन ।

: इण्ड्यन आर्किटेक्चर, लंदन, 1913

93- होलिडक, टी.एच. : इण्डिया, लाइट ऐफ्लाइफ पब्लिकेशन, 1975

94- होडीवाला, एस. एच. : स्टडीज इन इण्डो-मुस्लिम हिस्ट्री,बाम्बे, 1939

<u>लेख:</u>

1- अहमद, मुहम्मद अजीज : सुल्तान शम्सुद्दीन इल्तुतमिश-इण्डियन, हिस्टारिकल क्वार्टरली, 13, 1937

: सुल्तान गयासउद्दीन बलबन-जर्नल ऑफ इंडियन हिस्ट्री, 15, 1939

: दि फाउन्डेशन ऑफ मुस्लिम रूल इन इंडिया प्रोसीडिंग्स ऑफ दि इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस 1939

2- अली, एम. ए. : केपिटल ऑफ सुल्तान्स आफ डेल्ही ड्यूरिंग द थर्टीन्थ एण्ड फोर्टीन्थ सेंचुरीज,आई. एच. सी. 1980

3- अजीज अहमद : रेवेन्यू आर्गेनाइजेशन ऑफ इम्पायर ऑफ डेल्ही (1206-1290) जनरल ऑफ यू.पी. हिस्टारिकेल सोसायटी, 1939

4- एडवर्ड थामस : रीएडजस्टमेंट ऑफ दि क्वाइनेग इन दि रेन आफ मुहम्मद बिन तुगलक, जे.ए.एस.बी., 1865, खण्ड 34

5- गुलाटी, जी.डी. : न्यू मुसलमान्स ड्यूरिंग थर्टीन्थ ऐण्ड फोर्टीन्थ सेन्चुरी, प्रोसीडिंग्स आफ दि इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस-1978

: दि ट्राइब्स इन नार्थ वेस्ट फ्रान्टियर ऑव इण्डिया ड्यूरिंग थर्टीन्थ ऐण्ड फोर्टीन्थ सेन्चुरीज-प्रोसीडिंग्स ऑव दि पंजाब हिस्ट्री कान्फ्रेन्स, 13, 1979.

: मुल्तान इज दि ट्रेडिंग सेन्टर ड्यूरिंग थरटींथ ऐण्ड फोरटीन्थ सेन्चुरीज-प्रोसीडिंग्स आफ दि पंजाब हिस्ट्री कान्फ्रेंस, 12, 1978

6- चौधरी, वाई.एन. : कामर्स एण्ड इन्डस्ट्री इन प्री-मुगल पीरियड, आई.एच.क्यू. 1948, पृ.-122-133

7- जाफर, एस.एम.- : एण्ड आफ दि इमादुद्दीन मुहम्मद बिनकासिम दि अरब कनक्वेरर आफ सिन्ध-इस्लामिक कल्चर, 19, 1945.

8- डे, यू.एन. : नार्थ-वेस्ट फ्रन्टियर अण्डर दि खल्जी सुल्तांस आफ डेल्ही-इण्डियन हिस्टारिकल क्वार्टरली 1963

: दि मिलिटरी आर्गनाइजेशन आफ दि सल्तनत आफ डेल्ही-जर्नल आफ दि युनाइटेड प्राविंसेज हिस्टारिकल सोसायटी, 14, 1941.

: नार्थ-वेस्ट फ्रन्टियर आफ दि सल्तनत ड्यूरिंग दि थरटीन्थ सेन्चुरी-इण्डियन हिस्टारिकल क्वार्टरली; 17, 1941.

9- ताराचन्द : मुसलमानों का भारत में आना-हिन्दुस्तानी, जनवरी, 1931.

10- धर्मपाल : अलाउद्दीन प्राइस कन्ट्रोल सिस्टम-इस्लामिक कल्चर, 18, 1944.

: अलाउद्दीन खलजीज मंगोल पालिसी-इस्लामिक कल्चर, 21, 1947,

11- धर, एस. एन. : दि अरब कन्क्वेस्ट आफ सिन्ध-प्रोसीडिंग्स आफ दि इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस, 1939.

12- लाल. के. एस. : तिमूर्स विजिटेशन आफ डेल्ही-प्रोसीडिंग्स आफ इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस, 1957

: ए नोट आन अमीर तिमूर्स इन्वेजन आन इण्डिया-प्रोसीडिंग्स आफ इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस, 1970.

: दि सेलरी आफ ए सोल्जर इन दि डेज आफ अलाउद्दीन खलजी-प्रोसीडिंग्स आफ दि इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस, 1949.

13- बसु. के. के. : फिरोजशाह तुग़लक एज ए रूलर, आई. एच. क्यू. 1941, पृ.-386-393.

: एन एकाउन्ट आफ दि फर्स्ट सैयद किंग आफ डेल्ही, जे.बी.ओ.आर.एस. 1928 पृ. 36-53

: एन एकाउन्ट आफ फिरोजशाह तुगलक ≬फ्राम सिरत-ए-फिरोजशाही≬ जे.बी. ओ.आर.एस. 22. 1936, पृ. 96-107 265-274.

14- वर्मा, एच.सी. : दि रोल ऑफ दि खोखर इन नार्थ-वेस्ट फ्रन्टियर ऐण्ड दि पंजाब टिल दि ईव आफ खिलजी पीरियड-प्रोसीडिंग्स आफ दि इंडियन हिस्ट्री कांग्रेस, 1974.

15- साहू, के.पी. : सम लाइट आन दि स्टैन्डर्ड आफ नार्थ इण्डियन हाउसिंग ड्यूरिंग दि टर्की-अफगान पीरियड, जे.एच.आर.अगस्त 1973 पृ. 66-73

: ए शार्ट नोट आन नारायण दास छिताई वार्ता, एस. ए. सोर्स आफ इण्डियन सोशल हिस्ट्री, जे.एच.आर. ≬रांची≬जनवरी 1968, पृ.-44-47,

: ए ब्रीफ एकाउन्ट आफ द कस्टम आफ पर्दा इन इण्डिया इन दि तर्का-अफगान पीरियड, जे.एच.आर.,जनवरी 1873,पृ.-75-80,

: सम लाइट आन दि इन्करेज मेण्ट आफ नार्थ इण्डियन एजूकेशन एण्ड लरनिंग अण्डर दि डेल्ही सुल्तान्स ≬1000-1526≬ जे.एच.आर. अगस्त 1971, पृ.-46-53,

16- सक्सेना, बी.पी. : अलाउद्दीन मार्केट रेग्युलेशन्स-प्रोसीडिंग्स-ऑफ दि इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस, 1939

17- सेन, ए.के. : दि इन्वेडिंग तुर्कस, दि इण्डियन पीपुल्स ऐंड देयर [illegible] से-प्रोसीडिंग्स आफ दि इण्डियन-

हिस्ट्री कांग्रेस 1955,

18- सैय्यद हसन : हिस्ट्री ऑफ डेल्ही टू दि टाइम आफ तिमूर इन्वेजन-इस्लामिक कल्चर 12, 1938.

19- सिद्दीकी, इक्तेदार हुसैन : इक्तासिस्टम अण्डर दि लोदीज, पी.आई.एच.सी. 1961,

20- हबीब, मोहम्मद : अरब कान्क्वेस्ट टू सिंध-इस्लामिक कल्चर, 3, 1929

21- हबीबुल्ला, ए0बी0एम0 : जलालुद्दीन मंगबरनी एण्ड दि फर्स्ट मंगोल इंवेजन इन इण्डिया-प्रोसीडिंग्स आफ दि इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस, 1943,

22- हबीब, इरफान : इकनॉमिक हिस्ट्री आफ डेल्ही सल्तनत: ऐन एसे इन इंटर प्रेटेशन आई.एच.सी., 1979

23- हार्डी, पी. : दि मुस्लिम हिस्टोरियन्स आफ दि डेल्ही-सल्तनत: इज हबार दे रियली ह्वाट दे मीन-जर्नल ऑफ एशियाटिक सोसायटी, पाकिस्तान, I, 1964,

गजेटियर्स एवं एन्साइक्लोपीडिया:-

दि डिस्ट्रिक्ट गजेटियर्स आफ पंजाब।

दि इम्पीरियल गजेटियर आफ इण्डिया।

सेण्ट्रल इण्डिया स्टेट्स गजेटियर्स, भाग-1, ।

एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका।

एन्साइक्लोपीडिया अमेरिकाना।

एन्साइक्लोपीडिया आफ इस्लाम।

चैम्बर्स एन्साइक्लोपीडिया।

एग्लोरी आफ दि ट्राइब्स ऐण्ड कास्ट्स आफ दि पंजाब ऐण्ड नार्थ-वेस्ट फ्रन्टियर प्राविन्श, भाग-1,2,एवं 3, पंजाब, 1970,

प्रयुक्त शोध-प्रबन्धः-

श्रीवास्तव,पी.एल.: दिल्ली सुल्तानों की उत्तर-पश्चिम सीमा नीति, गोरख पुर विश्वविद्यालय-

ऐतिहासिक पत्रिकाएँ:-

जर्नल्स आफ दि एशियाटिक सोसायटी आफ बंगाल, कलकत्ता ।

जनल्स आफ दि पंजाब हिस्टारिकल सोसायटी, लाहौर ।

जर्नल्स एण्ड प्रोसीडिंग्स आफ दि रॉयल एशियाटिक सोसायटी आफ बंगाल, कलकत्ता- 1833 एवं 1834

इस्लामि कल्चर

इण्डियन हिस्टारिकल क्वार्टरली

प्रोसाडिंग्स आफ इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस

जर्नल आफ दि युनाइटेड प्राविंसेज हिस्टारिकल सोसायटी